श्री श्री रामकृष्ण कथामृत - 4

प्रथम खण्ड

ठाकुर श्रीरामकृष्ण
दक्षिणेश्वर-मन्दिर में श्रीयुक्त राखाल, प्राणकृष्ण, केदार आदि भक्तों के संग

प्रथम परिच्छेद

(दक्षिणेश्वर में प्राणकृष्ण, मास्टर आदि के संग में)

ठाकुर श्रीरामकृष्ण कालीबाड़ी के उसी पूर्वपरिचित कमरे में भक्तों के संग बैठे हैं। निशिदिन हरि-प्रेम में— माँ के प्रेम में— मतवाले!

फर्श पर मादुर (चटाई) बिछी है। वे उसी मादुर पर आकर बैठ गए हैं। सम्मुख प्राणकृष्ण और मास्टर हैं। श्रीयुक्त राखाल भी कमरे में हैं। हाजरा महाशय कमरे के बाहर दक्षिणपूर्व के बरामदे में बैठे हुए हैं।

शीतकाल— पौष मास। ठाकुर के शरीर पर मोलस्किन का शॉल। सोमवार, समय चार बजे। अग्रहायण कृष्णा अष्टमी। पहली जनवरी, 1883 ईसवी।

अब अनेक ही अन्तरंग भक्त ठाकुर के साथ मिल गए हैं। न्यूनाधिक एक वर्ष से नरेन्द्र, राखाल, भवनाथ, बलराम, मास्टर (श्री म), बाबूराम,

लाटु आदि आना-जाना करते हैं। उनसे सालेक पूर्व से राम, मनमोहन, सुरेन्द्र, केदार आ रहे हैं।

प्राय: पाँच मास हुए ठाकुर श्रीरामकृष्ण ने विद्यासागर के बादुड़बागान के घर में शुभागमन किया था। दो मास हुए श्रीयुत केशवसेन के साथ विजय आदि ब्राह्मभक्तों के संग वे नौ-यान (स्टीमर) में आनन्द करते-करते कलकत्ता गए थे।

श्रीयुत प्राणकृष्ण मुखोपाध्याय कलकत्ता में श्यामपुकुर नामक मुहल्ले में वास करते हैं। उनका आदि निवास जनाई ग्राम में है। Exchange (एक्सचेंज) के बड़े बाबू हैं। नीलाम के काम की देख-रेख करते हैं। प्रथम स्त्री से सन्तान न होने पर, उनका मत लेकर दूसरी बार विवाह किया है। उनके भी एकमात्र पुत्र सन्तान हुई है। ठाकुर श्रीरामकृष्ण की प्राणकृष्ण बड़ी भक्ति करते हैं। थोड़े स्थूलकाय हैं, तभी ठाकुर कभी-कभी 'मोटा बामुन' कहते हैं। अति सज्जन व्यक्ति हैं। प्राय: नौ मास हुए ठाकुर ने भक्तों के संग उनके घर में निमन्त्रण ग्रहण किया था। प्राणकृष्ण ने नाना व्यंजन और मिष्ठान्न आदि बनाकर अन्नभोग दिया था।

ठाकुर ज़मीन पर बैठे हैं। निकट जलेबी की डलिया है— कोई भक्त लाए हैं। उन्होंने तोड़कर थोड़ी-सी जलेबी खाई।

श्रीरामकृष्ण *(प्राणकृष्ण के प्रति, सहास्य)*— देखते हो, मैं माँ का नाम करता हूँ; इसीलिए ऐसी वस्तुएँ खाने को मिलती हैं। *(हास्य)*।

"किन्तु वे घीया-कद्दू फल नहीं देते— वे अमृत फल देते हैं— ज्ञान, प्रेम, विवेक, वैराग्य!"

कमरे में छ:-सात वर्ष के एक बालक ने प्रवेश किया। ठाकुर श्रीरामकृष्ण की बालकावस्था है, एक बालक दूसरे एक बालक से जैसे मिठाई आदि छिपाकर रखता है, कहीं वह खा न ले, ठाकुर की भी ठीक वैसी ही अपूर्व बालकवत् अवस्था हो रही है। वे जलेबी का झबुआ हाथों द्वारा ढककर छिपा रहे हैं। धीरे-धीरे उन्होंने उस टोकरी को एक ओर सरका दिया।

प्राणकृष्ण चाहे गृहस्थ तो हैं, किन्तु वेदान्त-चर्चा करते हैं। कहते हैं— ब्रह्म सत्य, जगत मिथ्या; वह ही मैं हूँ— सोऽहम्। ठाकुर उनसे

कहते हैं, कलियुग में प्राण अन्न में रहते हैं— कलियुग में नारदीय भक्ति चाहिए।

'से जे भावेर विषय, भाव व्यतीत अभावे के धरते पारे।'

[वे तो भाव के विषय हैं, भाव बिना अभाव में कौन (उन्हें) पकड़ सकता है ?]

बालक की न्यायीं हाथों से ढकते हुए मिठाई को लुकाते-लुकाते ठाकुर समाधिस्थ हो गए।

द्वितीय परिच्छेद

(भावराज्य और रूप-दर्शन)

ठाकुर समाधिस्थ—अनेक क्षण से भावाविष्ट हुए बैठे हैं। देह हिलती नहीं— चक्षु स्पन्दहीन— नि:श्वास चल भी रहा है कि नहीं— समझ में नहीं आ रहा।

काफी देर पश्चात् दीर्घ नि:श्वास छोड़ी— जैसे इन्द्रियों के राज्य में फिर दोबारा लौटकर आ रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण *(प्राणकृष्ण के प्रति)*— वे केवल निराकार नहीं हैं, वे फिर साकार भी हैं। उनका रूप-दर्शन किया जाता है। भाव-भक्ति के द्वारा उनका वही अतुलनीय रूप-दर्शन किया जाता है। माँ नाना रूपों में दर्शन देती हैं।

(गौरांग-दर्शन— रति की माँ के वेश में माँ)

"कल माँ को देखा। गेरुआ चोगा पहना हुआ, किनारे बिना मुड़े सिले थे। मेरे साथ बातें करती रहीं।

"और एक दिन मुसलमान लड़की के रूप में माँ मेरे पास आई थीं। माथे पर तिलक, किन्तु दिगम्बरी। छ:-सात वर्ष की कन्या— मेरे साथ-साथ टहलने लगीं और गप्पें हाँकने लगीं।

"हृदय के घर जब मैं था— गौरांग-दर्शन हुआ था— काली कन्नी की

धोती पहने हुए।

"हलधारी कहता था— वे भाव-अभाव के अतीत हैं। मैंने माँ से जाकर कहा— माँ, हलधारी यह बात कहता है, तो फिर क्या रूप-टूप सब मिथ्या हैं? माँ ने रति की माँ के वेश में मेरे पास आकर कहा— 'तुइ भावेइ थाक्' (तू भाव में ही रह)। मैंने भी हलधारी से वैसा ही कह दिया।

"एक-एक बार वह बात भूल जाता हूँ, तभी कष्ट होता है। भाव में न रहने पर दाँत टूट गया। तभी तो दैववाणी या प्रत्यक्ष न हो जाने तक भाव में ही रहूँगा— भक्ति लेकर रहूँगा! क्या कहते हो?"

प्राणकृष्ण— जी हाँ।

(भक्ति का अवतार क्यों? राम की इच्छा)

श्रीरामकृष्ण— फिर तुम से ही क्यों पूछूँ! इसके भीतर कोई एक है। वह ही मेरे द्वारा इस प्रकार कर रहा है। बीच-बीच में मुझे देव-भाव हुआ करता, तब मैं पूजा बिना किए शान्त नहीं हो पाता था।

"मैं यन्त्र, वे यन्त्री! वे जो करवाती हैं, वैसा ही करता हूँ। जैसे बुलवाती हैं, वैसा ही बोलता हूँ।"

"प्रसाद बोले भवसागरे, बसे आछि भासिये भेला।
जोयार ऐले उजिये जाबो, भाँटीये जाबो भाँटार बेला।"

[रामप्रसाद कवि कहते हैं भवसागर में अपनी नाव लेकर बैठा हुआ हूँ। ज्वार आने पर चढ़ जाऊँगा, भाटे के समय उतर आऊँगा।]

"आँधी में झूठा पत्ता कभी तो उड़कर अच्छी जगह पर जा पड़ता है— अथवा कभी जाकर नाली में जा पड़ता है— आँधी जिस ओर ले जाए!

"जुलाहे ने कहा— राम की इच्छा से डाका पड़ा, राम की इच्छा से मुझे पुलिस ने पकड़ा— और फिर राम की इच्छा से छोड़ दिया।

"हनुमान ने कहा था— हे राम! शरणागत, शरणागत,— ऐसा आशीर्वाद

करो, जिससे तुम्हारे पादपद्मों में शुद्धाभक्ति हो जाए। और जैसे तुम्हारी भुवनमोहिनी-माया में मुग्ध न होऊँ!

''बड़े मेंढ़क ने मुमूर्षु अवस्था में कहा— राम! जब साँप पकड़ता है तब 'राम रक्षा करो' कहकर चीत्कार करता हूँ। किन्तु अब राम के धनुष से बिन्धकर मर रहा हूँ, इसीलिए चुप हूँ।

''पहले प्रत्यक्ष दर्शन होते थे— इन्हीं चक्षुओं द्वारा। जैसे तुम्हें देखता हूँ। अब भावावस्था में दर्शन होते हैं।

''ईश्वर-लाभ हो जाने पर बालक का स्वभाव हो जाता है। जो जिसकी चिन्ता करता है, उसी की सत्ता प्राप्त करता है। ईश्वर का स्वभाव बालक की न्यायीं होता है। बालक जैसे खेल-खेल में घर बनाता है, तोड़ता है और फिर गढ़ता है— वे भी उसी प्रकार सृष्टि, स्थिति, प्रलय करते हैं। बालक जैसे किसी भी गुण के बस में नहीं होता— वे भी सत्त्व, रज, तम तीनों गुणों के अतीत हैं।

''तभी तो परमहंस दस-पाँच बालक अपने साथ रखते हैं, स्वभाव आरोप करने के लिए।''

अगरपाड़ा से एक बीस-बाईस वर्ष का लड़का आया है। वह जब आता है, ठाकुर इशारा करके अकेले में ले जाते हैं और धीरे-धीरे मन की बातें करते हैं। वे नए-नए आने लगे हैं। आज वह लड़का निकट आकर फर्श पर बैठ गया।

(प्रकृति-भाव और कामजय— सरलता और ईश्वर-लाभ)

श्रीरामकृष्ण *(लड़के के प्रति)*— आरोप करने से भाव बदल जाता है। प्रकृति-भाव आरोप करने से क्रमश: काम आदि रिपु नष्ट हो जाते हैं। बिल्कुल स्त्रियों की भाँति व्यवहार हो जाता है। यात्रा (गीतिनाटक) में जो स्त्रियों का अभिनय करते हैं, उन्हें स्नान के समय देखा है, वे लड़कियों की तरह मंजन

करते हैं, बातें करते हैं।

"तुम एक दिन शनि— मंगलवार को आओ!"

(प्राणकृष्ण के प्रति)— "ब्रह्म और शक्ति अभेद हैं। शक्ति को न मानने पर जगत मिथ्या हो जाता है— मैं, तुम, घर, मकान, परिवार— सब मिथ्या। उन आद्याशक्ति के होने के कारण ही तो यह जगत खड़ा है। ढाँचे की खूँटी के बिना ढाँचा ही नहीं बनता— दुर्गा की सुन्दर मूर्त्ति भी नहीं बनती।

"विषयबुद्धि–त्याग बिना किए चैतन्य ही नहीं होता, भगवान–लाभ नहीं होता— विषयबुद्धि रहने से ही कपटता होती है। सरल बिना हुए उन्हें नहीं पाया जाता—

"ऐसी भक्ति करो घट भीतर, छोड़ कपट चतुराई।
सेवा, वन्दना और अधीनता सहज मिलें रघुराई॥"

"जो लोग विषय–कर्म करते हैं— ऑफिस का कार्य अथवा व्यवसाय करते हैं— उनको भी सत्य पर ही रहना उचित है। सत्य बोलना कलि की तपस्या है।"

प्राणकृष्ण— अस्मिन्धर्मे महेशि स्यात् सत्यवादी जितेन्द्रियः।
परोपकारनिरतो निर्विकारः सदाशयः॥

[सत्यवादी, जितेन्द्रिय, विकाररहित सज्जन व्यक्ति परोपकार में लगा रहता हुआ इस धर्म में स्थिर रहे।]

"महानिर्वाणतन्त्र में इस प्रकार है।"

श्रीरामकृष्ण— हाँ, इन सब की धारणा करनी चाहिए।

तृतीय परिच्छेद

(ठाकुर श्रीरामकृष्ण का यशोदा का भाव और समाधि)

ठाकुर छोटी खाट पर जाकर अपने आसन पर बैठ गए। सर्वदा ही भाव में पूर्ण हैं। भाव–चक्षुओं से राखाल के दर्शन कर रहे हैं। राखाल को

देखते-देखते वात्सल्य रस से आप्लुत हो रहे हैं— अंगों में पुलक हो रहा है। इन्हीं चक्षुओं से क्या यशोदा जी गोपाल को देखती थीं?

देखते ही देखते ठाकुर फिर समाधिस्थ हो गए। कमरे के बीच बैठे हुए भक्तगण अवाक् और निस्तब्ध होकर ठाकुर श्रीरामकृष्ण की इस अद्भुत भावावस्था का दर्शन कर रहे हैं।

किञ्चित् प्रकृतिस्थ होकर कहते हैं, राखाल को देखकर उद्दीपन क्यों होता है? जितना आगे जाएँगे उतना ही ऐश्वर्य का भाग कम हो जाएगा। साधक को प्रथम दर्शन होता है— दस भुजा वाली ईश्वरी मूर्ति। उस मूर्ति में ऐश्वर्य का अधिक प्रकाश होता है। फिर दर्शन होता है, द्विभुजा मूर्ति— तब दस हाथ नहीं होते— इतना अस्त्रशस्त्र नहीं। उसके पश्चात् गोपाल-मूर्ति-दर्शन— कोई भी ऐश्वर्य नहीं, केवल छोटे बच्चे की मूर्ति। इस से भी परे है केवल ज्योति-दर्शन।

(समाधि के बाद ठीक ब्रह्मज्ञान की अवस्था, विचार व आसक्ति-त्याग)

''उनकी प्राप्ति हो जाने पर, उनमें समाधिस्थ होने पर, ज्ञान-विचार फिर नहीं रहता।

''ज्ञान-विचार फिर कब तक? जब तक अनेक का बोध होता है।

''जब तक जीव, जगत, मैं, तुम— ऐसा बोध रहता है। जब ठीक-ठीक एक ज्ञान हो जाता है तब चुप हो जाता है। जैसे त्रैलंगस्वामी हैं।

''ब्राह्मण-भोजन के समय देखा नहीं? प्रथम तो खूब हल्ला-गुल्ला। पेट जितना ही भरता है, हल्ला-गुल्ला उतना ही कम होता जाता है। जब दही-चीनी (पत्तल में) पड़ी तब केवल 'सुप्-साप्।' और कोई भी शब्द नहीं। उसके पश्चात् ही निद्रा— समाधि। तब तो 'चिल्ल-पौं' बिल्कुल ही नहीं रहता!''

(*मास्टर और प्राणकृष्ण के प्रति*)— ''अनेक लोग ब्रह्मज्ञान की बातें तो करते हैं, किन्तु नीचे की चीजें लेकर रह रहे होते हैं। घर-मकान, रुपया, मान, इन्द्रिय-सुख। मोन्युमैण्ट के नीचे जब तक रहता है तब तक गाड़ी, घोड़ा, साहब, मेम— यह सब दिखाई देता है। ऊपर चढ़ जाने पर तो केवल

आकाश, समुद्र धू-धू कर रहा होता है! तब बाड़ी, घोड़ा, गाड़ी, मनुष्य— यह सब और अच्छे नहीं लगते। ये सब चींटियों जैसे दिखाई देते हैं!

''ब्रह्मज्ञान हो जाने पर संसारासक्ति, कामिनी-काञ्चन में उत्साह— सब चला जाता है। पूर्ण शान्ति हो जाती है। लकड़ी के जलते समय बहुत पड़्-पड़् शब्द और आग की झाँझ (सेक)। जब सब समाप्त हो जाता है, राख हो जाती है— तब फिर शब्द नहीं रहता। आसक्ति के जाते ही उत्साह चला जाता है— अन्त में शान्ति।

''ईश्वर के जितना ही निकट बढ़ते जाओगे, उतनी ही शान्ति होती जाएगी। शान्तिः! शान्तिः! प्रशान्तिः! गंगा जी के जितना ही निकट जाओगे, उतना ही शीतल बोध होगा। स्नान कर लेने पर और भी शान्ति।

''तभी जीव-जगत— चतुर्विंशति तत्त्व— वे (ईश्वर) हैं, इसी कारण ये सब हैं। उनको छोड़ देने पर कुछ भी नहीं रहता। १ (एक) के बाद शून्य लगाने से संख्या बढ़ जाती है। १ को पौंछ डालने पर शून्य का फिर कुछ भी अर्थ नहीं रह जाता।''

प्राणकृष्ण पर कृपा करने के लिए क्या अब अपनी अवस्था के सम्बन्ध में इशारा कर रहे हैं?

ठाकुर कहते हैं—

(ठाकुर की अवस्था— ब्रह्मज्ञान के पश्चात् भक्त का 'मैं')

''ब्रह्मज्ञान के पश्चात्— समाधि के पश्चात्— कोई-कोई नीचे आकर 'विद्या का मैं', 'भक्ति का मैं' लेकर रहता है। बाजार खत्म हो जाने पर कोई-कोई अपनी खुशी से बाजार में रहता है। जैसे नारद आदि। उन्होंने लोकशिक्षा के लिए 'विद्या का मैं' रखा हुआ था।

''तनिक-सी भी आसक्ति रहने पर उनको नहीं पाया जाता। धागे में ज़रा-सा भी रेशा (अंश) रह जाने पर— सूई के भीतर नहीं जाता।

''जिन्होंने ईश्वर-लाभ कर लिया है, उनका काम-क्रोधादि नाममात्र

को होता है। जैसे जली हुई रस्सी। रस्सी का आकार। किन्तु फूँक मारने से उड़ जाती है।

"मन के आसक्ति-शून्य होने पर ही उनका दर्शन होता है। शुद्ध मन में जो उठेगी वह उनकी ही वाणी होगी। शुद्ध मन जो है, शुद्ध बुद्धि भी वही है— शुद्ध आत्मा भी वही है। क्योंकि उनके अतिरिक्त और कोई शुद्ध नहीं है।

"केवल उनको प्राप्त कर लेने पर ही धर्म-अधर्म के पार हुआ जाता है।"

यह कहकर ठाकुर ने उसी देवदुर्लभ कण्ठ से रामप्रसाद का गाना आरम्भ कर दिया—

आय मन बेड़ाते जाबि।
काली कल्पतरु मूले रे, चारि फल कुड़ाये पाबि॥
प्रवृत्ति निवृत्ति जाया निवृत्ति रे संगे लोबि।
विवेक नामे तार बेटा रे तत्त्वकथा ताय सुधाबि॥*

[भावार्थ— आ रे मन, टहलने चलें। काली कल्पतरु के नीचे तुझे चारों फल— धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष— मिलेंगे। 'प्रवृत्ति' और 'निवृत्ति' दो पत्नियाँ हैं, निवृत्ति को साथ ले लेना। उनका 'विवेक' नामक पुत्र है, उससे तात्त्विक कथा पूछना।]

चतुर्थ परिच्छेद

(ठाकुर श्रीरामकृष्ण का श्रीराधा का भाव)

ठाकुर दक्षिणपूर्व वाले बरामदे में बैठे हुए हैं। प्राणकृष्ण आदि भक्तगण भी संग में आ गए हैं। हाजरा महाशय बरामदे में बैठे हैं। ठाकुर हँसते-हँसते प्राणकृष्ण से कहते हैं—

"हाजरा भी कुछ कम नहीं है। यदि ये *(अपनी ओर इंगित करके)* बड़ा दरोगा है, तो फिर हाजरा छोटा दरोगा है। *(सब का हास्य)*।

नवकुमार बरामदे के दरवाज़े तक आए हैं। भक्तों को देखकर ही चले

* परिशिष्ट-2 में पूरा गाना है।

गए। ठाकुर ने कहा— अहंकार की मूर्ति।

समय साढ़े नौ का है। प्राणकृष्ण ने प्रणाम करके विदा ली— कलकत्ते वाले घर लौटेंगे।

एक वैरागी गोपीयन्त्र (इकतारा) द्वारा ठाकुर के कमरे में गाना गा रहे हैं—

नित्यानन्देर जाहाज एसेछे।
तोरा पारे जावि तो धरे एसे॥
छय मानोयारि गोरा, तारा देय सारा पारा;
बुक पिठे तार ढाल खाँड़ा घेरा।
तारा सदर दुयार आलगा कोरे रत्नमाणिक बिलाच्छे॥

[भावार्थ— नित्यानन्द का जहाज आया है। तुम पार जाना चाहो तो इसे आकर पकड़ लो। छः मनोहर गोरे इसमें सदा पहरा देते हैं। उनकी पीठ व छाती पर ढाल का घेरा है। वे सदर-द्वार खोलकर रत्न-मणि लुटा रहे हैं।]

गान : एइ बेला ने घर छेये।
ए बारे वर्षा भारि, हओ हुँशारी, लागो आदा जल खेये।
जखन आसबे श्रावणा, देख्ते देबे ना।
बाँश बाखारी पोचे जाबे, घर छाओया होबे ना।
जेमन आस्बे झट्का, उड़बे मट्का, मट्का जाबे फाँक होये।
(तुमि ओ जाबे हाँ होये)।

[भावार्थ— इस समय घर छा लेना। इस बार भारी वर्षा होगी, होशियार हो जाओ और अदरक का पानी पीकर लग पड़ो। जब श्रावण आएगा तो देखने भी नहीं देगा। बाँस-फूस तब सड़ जाएगा और तुम छप्पर नहीं छा सकोगे। जब झौंका आएगा तो छप्पर उड़ जाएगा, उसमें घट्टे हो जाएँगे। तुम्हें भी फिर 'हाँ' करके वहाँ से जाना होगा।]

गान : कार भावे नदे ऐसे, कांगाल बेशे,
हरि होये बोल्छो हरि।
कार भावे धरेछो भाव, एमन स्वभाव,
ताओ तो किंछु बुझते नाहि।

[भावार्थ— नदिया में आकर कंगालवेश में तुम किसके भाव में हरि होकर भी 'हरि' बोल रहे हो। किस विचार से तुमने यह भाव और स्वभाव लिया है, यह कुछ समझ नहीं पा रहा।]

ठाकुर गाना सुन रहे हैं। इस समय श्रीयुत केदार चाटुर्ज्ये ने आ कर प्रणाम किया। वे ऑफिस की पोशाक पहने हुए आए हैं— चापकान (अचकन), घड़ी, घड़ी की चेन। किन्तु ईश्वर की कथा होते ही उनके नेत्रों में जल भर आता है। अति प्रेमिक व्यक्ति हैं। अन्तर में गोपी-भाव है।

केदार को देखकर ठाकुर को एकदम श्रीवृन्दावन-लीला का उद्दीपन हो गया। प्रेम में मतवाले होकर खड़े हो गए और केदार को सम्बोधन करके गाना गाने लगे—

सखि, से बन कत दूर।
(यथा आमार श्यामसुन्दर) (आर चलिते जे ना रि)।

[हे सखी, वह वन कितनी दूर है, जहाँ मेरा श्यामसुन्दर है? मैं और अधिक नहीं चल सकती।]

श्री राधा के भाव में गाना गाते-गाते ठाकुर समाधिस्थ हो गए। चित्रार्पितवत् खड़े हैं। केवल चक्षुओं की दोनों कोरों से आनन्द-अश्रु बह रहे हैं।

केदार भूमिष्ठ। ठाकुर के चरण स्पर्श करके स्तव करते हैं—

हृदयकमलमध्ये निर्विशेषं निरीहम्।
हरिहरविधिवेद्यं योगिभिर्ध्यानगम्यम्॥
जनममरण भीतिभ्रंशि सच्चित्स्वरूपम्।
सकलभुवनबीजं ब्रह्मचैतन्यमीडे॥*

[भावार्थ— मैं समस्त ब्रह्माण्ड के बीजस्वरूप ब्रह्म-चैतन्य की वन्दना करता हूँ, जो हृदयकमल के मध्य शोभायमान हैं, गुणरहित हैं, निर्विशेष हैं, ब्रह्मा-विष्णु-महेश के लिए ज्ञेय हैं, योगियों के द्वारा ध्यानगम्य हैं, जन्म-मृत्यु के भय को नष्ट करने वाले हैं तथा सत्-चित् स्वरूप हैं।]

कुछ क्षणों के पश्चात् ठाकुर श्रीरामकृष्ण प्रकृतिस्थ हो रहे हैं। केदार

---

* महानिर्वाणतन्त्र, तृतीय उल्लास

हालिशहर के अपने घर से कलकत्ता कर्मस्थल पर जाएँगे। मार्ग में दक्षिणेश्वर के काली–मन्दिर में ठाकुर श्रीरामकृष्ण के दर्शन करके जा रहे हैं। कुछ विश्राम करके केदार ने विदा ली।

इस प्रकार भक्तों के संग बातें करते–करते प्राय: दोपहर का समय हो गया। श्रीयुक्त रामलाल ने ठाकुर के लिए थाली में माँ काली का प्रसाद ला दिया। घर में ठाकुर ने आसन पर दक्षिणास्य बैठकर प्रसाद पाया। आहार बालक की न्यायीं— थोड़ा–थोड़ा सब कुछ मुख में दिया।

आहारान्ते ठाकुर छोटी खाट पर थोड़ा विश्राम करते हैं। कुछ देर बाद मारवाड़ी भक्त आ उपस्थित हुए।

पञ्चम परिच्छेद

(अभ्यासयोग— दो पथ— विचार और भक्ति)

समय तीन का। मारवाड़ी भक्त धरती पर बैठे ठाकुर से प्रश्न करते हैं। मास्टर, राखाल और अन्यान्य भक्त कमरे में हैं।

मारवाड़ी भक्त— महाराज, उपाय क्या है ?

श्रीरामकृष्ण— दो उपाय हैं। विचार–पथ और अनुराग अथवा भक्ति–पथ।

"सत्–असत्–विचार। एकमात्र सत् अथवा नित्यवस्तु ईश्वर है और समस्त असत् वा अनित्य है। जादूगर ही सत्य है, जादू मिथ्या— ऐसा विचार।

"विवेक और वैराग्य। इसी सत्–असत्–विचार का नाम विवेक है। वैराग्य अर्थात् संसार के द्रव्य के ऊपर विरक्ति हो जाना। यह एकदम नहीं होती— रोज अभ्यास करना चाहिए। पहले मन से कामिनी–काञ्चन–त्याग करना चाहिए— फिर उनकी इच्छा से मन से भी त्याग करना चाहिए और बाहर से भी त्याग करना चाहिए। कलकत्ता के लोगों से 'ईश्वर के लिए सब कुछ त्याग करो' कहना ठीक नहीं है— कहना चाहिए 'मन से त्याग करो'।

"अभ्यासयोग के द्वारा कामिनी-काञ्चन की आसक्ति त्याग की जाती है। गीता में यह बात है। अभ्यास द्वारा मन में असाधारण शक्ति आ जाती है। तब इन्द्रिय-संयम करते हुए— काम, क्रोध वश में करते हुए— कष्ट नहीं होता। जैसे कछुआ, हाथ-पाँव खींच लेने पर फिर बाहर नहीं करता। कुल्हाड़ी से काटकर चार टुकड़े कर देने पर भी बाहर नहीं निकालता।"

मारवाड़ी भक्त— महाराज, दो पथ आप कहते हैं; और पथ क्या है?

श्रीरामकृष्ण— अनुराग का या भक्ति का पथ। व्याकुल होकर एक बार क्रन्दन करो— निर्जन में, गोपन में— कहो— दर्शन दो।

"डाको देखि मन डाकार मत केमन श्यामा थाकते पारे!"*

[हे मन, व्याकुल पुकार की भाँति पुकारो तो देखूँ फिर माँ श्यामा कैसे रह सकती हैं?]

माड़वाड़ी भक्त— महाराज, साकार पूजा का क्या अर्थ है? और निराकार निर्गुण— इसका मतलब ही फिर क्या है?

श्रीरामकृष्ण— जैसे पिता का फोटोग्राफ देखने पर पिता की स्मृति हो आती है, वैसे ही प्रतिमा में पूजा करते-करते सत्य के रूप का उद्दीपन हो जाता है।

"साकार रूप कैसा है, जानते हो? जैसे जल-राशि के बीच में से बुलबुले उठते हैं, उसी प्रकार। महाकाश चिदाकाश में विभिन्न रूप उठते हुए दिखाई देते हैं। अवतार भी एक वैसा ही रूप है। अवतार-लीला। वह तो आद्याशक्ति का खेल है।"

(पाण्डित्य— 'मैं' कौन? 'मैं' ही 'तुम')

"पाण्डित्य में क्या है? व्याकुल होकर पुकारने से उन्हें पाया जाता है। नाना विषय जानने की आवश्यकता नहीं है।

"जो आचार्य हैं, उन्हें ही बहुत जानना आवश्यक है। अन्य का वध करने के लिए ढाल, तलवार चाहिए। अपना वध तो एक सूई या नहरनी होने

---

* परिशिष्ट-2 में पूरा गाना है।

से ही हो जाता है।

" 'मैं कौन हूँ'— इसकी खोज करने से ही उनकी प्राप्ति हो जाती है। मैं क्या मांस हूँ, या हाड़ हूँ, या रक्त, या मज्जा हूँ— या मन अथवा बुद्धि हूँ? अन्त में विचार से दिखाई दे जाता है कि मैं यह सब कुछ भी नहीं हूँ— 'नेति' 'नेति'। आत्मा पकड़ी या छुई जाने वाली नहीं है। वे निर्गुण— निरुपाधि हैं।

"किन्तु भक्ति-मत में वे सगुण हैं। चिन्मय श्याम, चिन्मय धाम— सब चिन्मय!"

मारवाड़ी भक्तों ने प्रणाम करके विदा ली।

(दक्षिणेश्वर में सन्ध्या-आरती)

सन्ध्या हो गई है। ठाकुर गंगादर्शन कर रहे हैं। कमरे में प्रदीप जला दिया है। श्रीरामकृष्ण जगत-माता का नाम करते हैं और छोटी खाट पर बैठकर उनका चिन्तन करते हैं।

ठाकुर-मन्दिर में अब आरती हो रही है। जो लोग अब पुश्ते के ऊपर या पञ्चवटी में टहल रहे हैं, वे दूर से आरती का मधुर घण्टा-निनाद सुनते हैं। ज्वार आई है, भागीरथी कुलकुल शब्द करती हुई उत्तरवाहिनी हुई है। आरती का मधुर शब्द इस कुलकुल शब्द के संग मिलकर और भी मधुर हो गया है। इन सब के मध्य प्रेमोन्मत्त ठाकुर रामकृष्ण बैठे हुए हैं। सकल ही मधुर! हृदय मधुमय! मधु, मधु, मधु!

द्वितीय खण्ड

ठाकुर श्रीरामकृष्ण दक्षिणेश्वर-मन्दिर में राखाल, राम, नित्यगोपाल, चौधुरी प्रभृति के संग

प्रथम परिच्छेद

(निर्जन में साधन— फिलॉसफी— ईश्वरदर्शन)

ठाकुर श्रीरामकृष्ण उसी पूर्वपरिचित कमरे में मध्याह्न-सेवा के पश्चात् भक्तों के संग बैठे हैं। आज रविवार, 25 फरवरी, 1883 ईसवी।

राखाल, हरीश, लाटु, हाजरा आजकल ठाकुर की पदछाया में सर्वदा वास करते हैं। कलकत्ते से राम, केदार, नित्यगोपाल, मास्टर प्रभृति भक्त आए हैं। और चौधुरी आए हैं।

चौधुरी का सम्प्रति (अभी-अभी) पत्नी-वियोग हुआ है। मन की शान्ति के लिए वे ठाकुर-दर्शन करने कई बार आए हैं। उन्होंने चार[1] पास की हैं— राज-सरकार[2] में कार्य करते हैं।

श्रीरामकृष्ण *(राम प्रभृति भक्तों के प्रति)*— राखाल, नरेन्द्र, भवनाथ— ये लोग नित्य-सिद्ध हैं— जन्म से ही चैतन्य है। लोकशिक्षा के लिए ही शरीर धारण किया है।

"और एक क्लास (श्रेणी) है कृपासिद्ध। हठात् उनकी कृपा हुई— तुरन्त दर्शन और ज्ञान-लाभ। जैसे हजार वर्ष का अन्धेरा कमरा— प्रकाश ले

---

1 चार बड़ी परीक्षाएँ पास— उच्च शिक्षित

2 Government

जाने पर! उसी क्षण प्रकाशित हो जाता है— थोड़ा-थोड़ा करके नहीं होता।

"जो संसार (गृहस्थ) में हैं, उनको साधन करना चाहिए। निर्जन में जाकर व्याकुल होकर उन्हें पुकारना चाहिए। *(चौधुरी के प्रति)*— "पाण्डित्य द्वारा उन्हें प्राप्त नहीं किया जाता।

"और फिर उनके विषय में विचार करके क्या समझेगा— उनके पादपद्मों में जिससे भक्ति हो जाए वही सबको करना उचित है।"

(भीष्मदेव का क्रन्दन— हार-जीत— दिव्य चक्षु और गीता)

"उनका अनन्त ऐश्वर्य है— क्या समझेगा? उनका कार्य ही अथवा कोई क्या समझ सकेगा?

"भीष्मदेव जो साक्षात् अष्टवसुओं में एक वसु थे— वे ही शरशय्या पर रोने लगे। कहते हैं— कैसा आश्चर्य! पाण्डवों के संग स्वयं भगवान सर्वदा ही रहते हैं तब भी उनके दु:ख व विपदाओं का अन्त नहीं है!— भगवान के कार्य को कौन समझेगा?

"कोई-कोई सोचता है, मैंने थोड़ा साधन-भजन किया है, मैं जीत गया! किन्तु हार-जीत तो उनके हाथ में है। यहाँ एक वेश्या ने मरने के समय संज्ञान में गंगा-लाभ किया।"

चौधुरी— उनका किस प्रकार दर्शन किया जाए?

श्रीरामकृष्ण— इस नेत्र द्वारा उन्हें नहीं देखा जाता। वे दिव्य चक्षु देते हैं। तब फिर देखा जाता है। अर्जुन को विश्वरूप-दर्शन के समय ठाकुर ने दिव्य चक्षु दे दिए थे।

"तुम्हारी फिलॉसफी तो केवल हिसाब-किताब करती है, केवल विचार करती है। उससे उनको प्राप्त नहीं किया जाता।"

(अहेतुकी भक्ति—मूलकथा— रागानुगा भक्ति)

"यदि रागभक्ति हो— अनुराग के साथ भक्ति— तो फिर वे स्थिर ठहर नहीं

सकते।

"भक्ति उन्हें कैसी प्रिय है— खल वाली सानी जैसे गाय को प्रिय होती है— गप-गप करके खाती है!

"रागभक्ति— शुद्धाभक्ति— अहेतुकी भक्ति। जैसे प्रह्लाद की थी।

"तुम किसी बड़े व्यक्ति के पास से कुछ न माँगो— किन्तु हर रोज आते हो— उसको मिलना पसन्द करते हो। पूछने पर कहते हो— 'जी कुछ भी नहीं चाहिए— बस आपको देखने आ गया हूँ।' इसका नाम है अहेतुकी भक्ति। तुम ईश्वर से कुछ न माँगो— केवल प्यार करो।"

यह कहकर ठाकुर गाना गाते हैं—

आमि मुक्ति दिते कातर नइ
शुद्धा भक्ति दिते कातर होइ (गो)।
आमार भक्ति जेबा पाय, तारे केबा पाय,
से जे सेवा पाय, होये त्रिलोकजयी॥

शुन चन्द्रावली भक्तिर कथा कइ,
मुक्ति मिले कभु भक्ति मिले कोई।
भक्तिर कारणे पाताल भवने,
बलिर द्वारे आमि द्वारी होये रइ॥

शुद्धा भक्ति एक आछे वृन्दाबने,
गोप गोपी बिने अन्ये नाहि जाने।
भक्तिर कारणे नन्देर भवने,
पिता ज्ञाने नन्देर बाधा माथाय बोइ॥

[भावार्थ— (श्री कृष्ण कह रहे हैं) मैं मुक्ति देता हुआ कातर नहीं रे भाई, शुद्धाभक्ति देता हुआ कातर होता हूँ। मेरी भक्ति जो प्राप्त कर लेता है, वह मेरी सेवा प्राप्त करता है। उससे वह त्रिलोकजयी हो जाता है। सुनो चन्द्रावली, मैं तुम्हें भक्ति की बात बताता हूँ— मुक्ति तो मिल जाती है, भक्ति कभी मिलती है क्या? भक्ति के कारण मैं पाताल में राजा बलि के द्वार पर द्वारपाल होकर रहता हूँ। शुद्धाभक्ति तो एक वृन्दावन में है। गोप-गोपियों के सिवाय उसे और कोई नहीं जानता। भक्ति के कारण मैं नन्द के भवन में पितृ-ज्ञान में

नन्द का बोझा सिर पर उठाता हूँ।]

"मूल बात है ईश्वर में रागानुगा भक्ति। और विवेक-वैराग्य।"

चौधुरी— महाशय, गुरु न हो तो नहीं होगा?

श्रीरामकृष्ण— सच्चिदानन्द ही गुरु।

"शव-साधना करके इष्ट-दर्शन के समय गुरु सामने आ जाते हैं— और कहते हैं, 'यह देख तेरा इष्ट है'— फिर गुरु इष्ट में लीन हो जाते हैं। जो गुरु— वे ही इष्ट। गुरु सिरा पकड़वा देते हैं।

"अनन्तव्रत करते हैं। किन्तु पूजा करते हैं— विष्णु की। उनके ही भीतर ईश्वर का अनन्तरूप है।"

(श्रीरामकृष्ण का सर्वधर्म-समन्वय)

(राम आदि भक्तों के प्रति)— "यदि कहो किस मूर्ति का चिन्तन करूँ, जो मूर्त्ति अच्छी लगे उसका ध्यान करोगे। किन्तु जानोगे कि सब ही एक हैं।

"किसी से भी विद्वेष नहीं करते। शिव, काली, हरि— सब ही एक के भिन्न-भिन्न रूप हैं। जिसने एक समझ लिया है, वही धन्य है।

"बाहर शैव, हृदय में काली, मुख में हरि बोल।

"थोड़ा-सा काम, क्रोधादि न रहे तो शरीर नहीं रहता। इसलिए तुम लोग केवल कम करने की चेष्टा करो।"

ठाकुर केदार को दिखाकर कहते हैं—

"ये ठीक हैं। नित्य भी मानते हैं, लीला भी मानते हैं। एक ओर ब्रह्म और फिर देव-लीला— मनुष्य-लीला तक।"

केदार कहते हैं कि ठाकुर मनुष्य-देह लेकर अवतीर्ण हुए हैं।

(संन्यासी और कामिनी— भक्ता स्त्रियाँ)

नित्यगोपाल को दिखाकर ठाकुर भक्तों से कहते हैं—

"इसकी सुन्दर अवस्था है।"

(नित्यगोपाल के प्रति)— ''तू वहाँ पर अधिक मत जा— कभी-कभी एकाध बार चला गया। भक्त ही चाहे हो— स्त्री जाति ही तो है। जभी सावधान!

''संन्यासी का बड़ा कठिन नियम है। स्त्रियों के चित्र तक नहीं देखेगा। यह बात गृहस्थी लोगों के लिए नहीं है।

''स्त्री यदि खूब भक्त भी हो— तो भी मेलजोल रखना उचित नहीं है। जितेन्द्रिय हो तो भी लोकशिक्षा के लिए त्यागी को यह सब करना चाहिए।

''साधु का सोलह आना त्याग देखकर अन्य लोग त्याग करना सीखेंगे। वैसा न होगा तो वे गिर जाएँगे। संन्यासी जगत्गुरु है।''

अब ठाकुर और भक्तगण उठकर टहलते हैं। मास्टर प्रह्लाद की छवि के सम्मुख खड़े होकर छवि देखते हैं। प्रह्लाद की अहेतुकी भक्ति है— ठाकुर ने कहा है।

तृतीय खण्ड

नरेन्द्र, राखाल आदि भक्तों के संग
बलराम-मन्दिर में

प्रथम परिच्छेद

(ठाकुर श्रीरामकृष्ण नरेन्द्रादि भक्तों के संग कीर्त्तनान्द में)

ठाकुर श्रीरामकृष्ण बलराम के घर में भक्तों के संग बैठे हुए हैं— बैठक के उत्तर-पूर्व के कमरे में। समय एक का होगा। नरेन्द्र, भवनाथ, राखाल, बलराम, मास्टर कमरे में उनके संग बैठे हुए हैं।

आज अमावस्या है— शनिवार, 7 अप्रैल (25 चैत्र), 1883 ईसवी। ठाकुर ने सुबह बलराम के घर आकर दोपहर का भोजन यहीं लिया है। नरेन्द्र, भवनाथ, राखाल तथा और भी दो-एक भक्तों को भोजन पाने के लिए कहा था। उन्होंने भी यहाँ पर आहार किया है। ठाकुर बलराम से कहते रहते हैं— इन्हें खिलाओ, उससे अनेक साधुओं को खिलाना हो जाएगा।

कई एक दिन हुए ठाकुर श्रीयुक्त केशव के घर में 'नववृन्दावन' नाटक देखने के लिए गए थे। संग में नरेन्द्र और राखाल थे। नरेन्द्र ने अभिनय में योग दिया था। केशव पवहारी बाबा बने थे।

श्रीरामकृष्ण *(नरेन्द्रादि भक्तों के प्रति)*— केशव (सेन) साधु बनकर शान्तिजल छिड़कने लगा। किन्तु मुझे अच्छा नहीं लगा। अभिनय करके शान्तिजल!

"और एक व्यक्ति (कु-बाबू) पापपुरुष बने थे। उस प्रकार का अभिनय करना भी अच्छा नहीं। स्वयं पाप करना अच्छा नहीं— पाप का

अभिनय करना भी अच्छा नहीं।''

नरेन्द्र का शरीर उतना स्वस्थ नहीं है, किन्तु उनका गाना सुनने की ठाकुर की बड़ी इच्छा है। वे कह रहे हैं— ''नरेन्द्र, ये कह रहे हैं— थोड़ा-सा गा ना!''

नरेन्द्र तानपुरा लेकर गा रहे है—

आमार प्राणपिंजरेर पाखि, गाओ ना रे।
ब्रह्मकल्पतरु परे बोसे रे पाखि, विभुगुण गाओ देखि,
(गाओ गाओ), धर्म अर्थ काम मोक्ष,
सुपक्व फल खाओ ना रे।
बोलो बोलो आत्माराम, पड़ो प्राणाराम,
हृदय माझे प्राण विहंग डाको अविराम,
डाको तृषित चातकेर मत,
पाखि अलस थेको ना रे।

[भावार्थ— मेरे प्राणपिंजरे के पक्षी, गाओ रे। अरे पक्षी, ब्रह्मकल्पतरु के ऊपर बैठकर विभु-गुण गाओ तो थोड़ा-सा, (गाओ-गाओ)। धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष रूप पके हुए फल खाओ ना रे! बोलो आत्माराम, पढ़ो प्राणाराम, हे प्राण रूप विहंग (पक्षी)! हृदय में अविराम (लगातार) पुकारो। प्यासे चातक की भाँति पुकारो। अरे पक्षी, आलस्य में मत रहो।]

गान— विश्व भुवन रंजन ब्रह्म परमज्योति।
अनादिदेव जगतपति प्राणेर प्राण।।

[भावार्थ— वे ब्रह्म समस्त विश्व के रंजन हैं, परम ज्योति हैं, अनादि देव हैं, जगत्पति हैं, प्राणों के प्राण हैं।]

गान— ओ हे राजराजेश्वर, देखा दाओ।
चरणे उत्सर्ग दान, करितेछि एइ प्राण,
संसार अनल कुण्डे झलसि गियाछे ताओ।
कलुष-कलंके ताहे, आवरित ए हृदय;
मोहे मुग्ध मृतप्राय, होये आछि दयामय,
मृत-संजीवनी दृष्टे, शोधन करिये लओ।

[भावार्थ— अरे हे राजराजेश्वर, दर्शन दो। इन प्राणों को मैं तुम्हारे चरणों में उत्सर्ग करता हूँ। ये प्राण भी संसार के अग्निकुण्ड में झुलस गए हैं। यह हृदय पाप-कलंक से ढका हुआ है। हे दयामय, मैं मोह से मुग्ध होकर मृतप्राय हो गया हूँ। आप अपनी मृत-संजीवनी दृष्टि से शोधन कर लीजिए।]

गान— गगनेर थाले रवि चन्द्र दीपक ज्वले,
तारकामण्डल चमके मोती रे।
धूप मलयानिल, पवन चामर करे,
सकल बनराजि फुटन्त ज्योति रे।
केमन आरति हे भवखण्डन तव आरति,
अनाहत शब्द बाजन्त भेरी रे॥

[भावार्थ— गगन के थाल में रवि-चन्द्र दीपक जल रहे हैं, तारक-मण्डल मोती रूप में चमक रहे हैं। मलयानिल धूप की गन्ध है, पवन चँवर डुला रही है, सब बनराजि की वनस्पतियाँ ज्योति विकसित कर रही हैं। यह कैसी तेरी आरती है! हे भव-खण्डन, अनाहत शब्द की भेरी बज रही है।]

गान— चिदाकाशे होलो पूर्ण प्रेमचन्द्रोदय हे।
उथलिलो प्रेमसिन्धु कि आनन्दमय हे।
(जय दयामय, जय दयामय, जय दयामय)
चारिदिके झलमल करे भक्त ग्रहदल,
भक्तसंगे भक्तसखा लीलारसमय हे।
(जय दयामय, जय दयामय, जय दयामय)
स्वर्गेर दुयार खुलि, आनन्द-लहरी तुलि;
नवविधान बसन्त समीरण बय,
फूटे ताहे मन्द-मन्द लीलारस प्रेमगंध,
घ्राणे योगीवृन्द योगानन्दे मत्त होए हे।
(जय दयामय, जय दयामय, जय दयामय)
भवसिन्धु-जले, विधान-कमले, आनन्दमयी विराजे,
आवेशे आकुल, भक्त अलिकुल, पिये सुधा तार माझे।
देखो-देखो मायेर प्रसन्न वदन चित्त विनोदन भुवन-मोहन।

पदतले दले-दले साधुगण, नाचे गाय तारा होइये मगन;
किवा अपरूप आहा मरि मरि, जुड़ाइलो प्राण दरशन करि
प्रेमदासे बोले सबे पाये धरि, गाओ भाई मायेर जय॥

[भावार्थ—अरे, चिदाकाश में पूर्ण चन्द्रोदय हुआ है। उससे प्रेम-सिन्धु उथल-पुथल कर रहा है। अरे, यह कैसा आनन्दमय है! (जय दयामय, जय दयामय, जय दयामय।)
चारों ओर भक्त रूपी ग्रह झिलमिलाते हैं। भक्तों के सखा (ईश्वर) भक्तों के संग लीला में रसमय हो रहे हैं। (जय दयामय, जय दयामय, जय दयामय)।
स्वर्गद्वार खोल कर, आनन्द की लहरें उठाकर 'नवविधान' रूपी वसन्त-समीर बह रहा है और लीलारस की प्रेमगन्ध उससे फूट रही है जिससे योगीवृन्द योगानन्द में मत्त हुए हैं। (जय दयामय, जय दयामय, जय दयामय।)
संसार-समुद्र के जल में, 'विधान' रूपी कमल पर आनन्दमयी विराजती हैं। आवेश में आकुल भक्त रूपी अलिकुल उसमें सुधापान कर रहे हैं। माँ का भुवनमोहन, चित्तविनोदन प्रसन्नवदन देखो, देखो! माँ के पदतले दल के दल साधुगण मग्न होकर नाचते हैं, गाते हैं। आहा! कितना अपरूप कि दर्शन पाकर जाय-जाय प्राण लौट आय। प्रेमदास सबके पाँव पकड़ कर बोलता है—गाओ भाई, माँ की जय।]

नरेन्द्र का गान समाप्त हो गया। ठाकुर भवनाथ को गाने के लिए कह रहे हैं। भवनाथ गा रहे हैं—

दयाघन तोमा हेन के हितकारी!
सुखे दुःखे सम, बन्धु एमन के, पाप-ताप-भयहारी।
संकट-पूरित घोर भवार्णव, तारे कौन काण्डारि;
कार प्रसादे दूर-पराहत रिपुदल विप्लवकारी?
पापदहन-परिताप निबारि, के देय शान्तिर वारि;
त्यजिले सकले, अन्तिमकाले, के लय क्रोड़ प्रसारि।।

[भावार्थ— हे दयामय, तुम्हारे बिना कौन हितकारी है! पाप-ताप-भय को हरने वाला, सुख-दुःख में सम— ऐसा बन्धु कौन है? यह भव-सागर संकटों से भरा हुआ है, कौन-सा कर्णधार तारता है; किसके प्रसाद से (कृपा से) विप्लवकारी शत्रुदल पराजित होकर दूर हो जाता है? पाप दहन के परिताप को

दूर कर के कौन शान्ति-जल देता है? सब के छोड़ देने पर, अन्तिम काल में, कौन अपना अंक फैलाकर लेता है?]

नरेन्द्र *(सहास्य)*— इस (भवनाथ) ने पान और मछली त्याग कर दिए हैं।

श्रीरामकृष्ण *(भवनाथ के प्रति, सहास्य)*— वह क्या करे! पान और मछली में क्या हुआ है? उसमें कोई दोष नहीं होता! कामिनी-काञ्चन-त्याग ही त्याग है। राखाल कहाँ है?

एकजन भक्त— जी, राखाल सो रहे हैं।

ठाकुर *(सहास्य)*— कोई व्यक्ति चटाई बगल में लेकर यात्रा (गीतिनाटक) सुनने के लिए आया था। गीतिनाटक में देर देखकर चटाई बिछाकर सो गया। जब उठा तब सब समाप्त हो चुका था! *(सब का हास्य)*।
''तब चटाई बगल में दबाकर घर लौट गया।'' *(हास्य)*।

रामदयाल बड़े पीड़ित हैं। एक ओर कमरे में चारपाई पर हैं। ठाकुर ने उसी कमरे के सामने जाकर पूछा, कैसे हैं!

(पञ्चदशी, वेदान्त शास्त्र और श्रीरामकृष्ण— संसारी और शास्त्रार्थ)

समय चार का होगा। बैठक में नरेन्द्र, राखाल, मास्टर, भवनाथ आदि भक्तों के साथ ठाकुर बैठे हुए हैं। कई ब्राह्मभक्त आए हैं। उनके साथ बातें हो रही हैं।

ब्राह्मभक्त— महाशय, पञ्चदशी देखी है?

श्रीरामकृष्ण— ये सब एक बार प्रथम-प्रथम सुनने चाहिएँ, पहले-पहले एक बार विचार करके लेना चाहिए। उसके पश्चात्—

''यतने हृदये रेखो आदरिणी श्यामा मा के,
मन तुइ देख् आर आमि देखि, आर जेनो केउ नाहि देखे।*

[आदरणीय माँ श्यामा को प्यार और यत्न से हृदय में रखो।
हे मन, तू देखे और मैं देखूँ और अन्य कोई जैसे न देखे।]

''साधना-अवस्था में वह सब सुनना चाहिए। उनकी प्राप्ति के बाद ज्ञान का

* पृष्ठ 87 पर पूरा गाना है।

अभाव नहीं रहता। माँ राश (ढेर) ठेल देती हैं।

''पहले हिज्जे करके लिखना होता है— उसके बाद ऐसे ही खींचते जाओ।

''सोना गलाने के समय खूब उठ लग पड़ना पड़ता है। एक हाथ में धौंकनी, एक हाथ में पंखा— मुख में चोंगा (नली)—जब तक सोना नहीं गल जाता। गलने के पश्चात् ज्योंहि साँचे में डाल दिया— त्योंहि निश्चिन्त।

''शास्त्र को केवल पढ़ने से नहीं होता। कामिनी-काञ्चन के मध्य रहने से ये शास्त्र का मर्म समझने नहीं देते। संसार की आसक्ति से ज्ञान लुप्त हो जाता है।

''साध करे शिखे छिलाम काव्यरस जतो।
कालार पिरीते पड़े सब होइलो हतो॥'' *(सब का हास्य)*

[प्रयत्न करके मैंने काव्यरस के जितने भेद सीखे थे, इस काले की प्रीति में पड़कर वे सब नष्ट हो गए]

ठाकुर ब्राह्मभक्तों के साथ श्रीयुक्त केशव की बातें कह रहे हैं—

''केशव का योग-भोग। गृहस्थ में रहकर ईश्वर की ओर मन है।''

एक भक्त कन्वोकेशन (विश्वविद्यालय के विद्वानों की वार्षिक सभा— दीक्षान्त समारोह) के सम्बन्ध में बता रहे हैं— देखा लोग ही लोग, लोकारण्य!

श्रीरामकृष्ण— बहुत-से लोगों को एक साथ देखने पर ईश्वर का उद्दीपन हो जाता है। मैं देखता, तो विह्वल हो जाता!

चतुर्थ खण्ड

नन्दनबागान-ब्राह्मसमाज में राखाल, मास्टर आदि भक्तों के संग में

प्रथम परिच्छेद

(मन्दिर-दर्शन और उद्दीपन— श्री राधा का प्रेमोन्माद)

ठाकुर श्रीरामकृष्ण नन्दनबागान के ब्राह्मसमाज-मन्दिर में भक्तों के संग में आए हैं। ब्राह्मभक्तों के साथ बातें कर रहे हैं। संग में राखाल, मास्टर आदि हैं। समय पाँच का होगा।

श्री काशीश्वर मित्र का मकान नन्दनबागान में है। वे पहले सब-जज थे। आदि ब्राह्मसमाज के ब्रह्मज्ञानी थे। वे अपने घर में दो तल पर बड़े कमरे में ईश्वर की उपासना करते थे और भक्तों को निमन्त्रण देकर बीच-बीच में उत्सव किया करते थे। उनके स्वर्गारोहण के बाद श्रीनाथ, यज्ञनाथ आदि उनके पुत्रों ने कुछ दिन इसी प्रकार उत्सव किया था। वे ही ठाकुर को अति यत्न से निमन्त्रण करके लाए हैं।

ठाकुर ने आकर प्रथम नीचे एक बैठक में आसन ग्रहण किया था। उस कमरे में ब्राह्म भक्तगण धीरे-धीरे आकर एकत्रित हुए थे। श्रीयुक्त रवीन्द्र (ठाकुर) आदि ठाकुर (टैगोर) वंश के भक्तगण इसी उत्सव-क्षेत्र में उपस्थित थे।

बुलाने पर ठाकुर भक्तों के संग दो तल पर उपासना-मन्दिर में जाकर बैठ गए। उपासना-गृह के पूर्व के किनारे पर वेदी रची गई है। दक्षिणपश्चिम कोने में एक अंग्रेज़ी बाजा (piano) रखा है। कमरे के उत्तर के हिस्से में कई कुर्सियाँ बिछाई हुई हैं। उनके पूर्व के किनारे पर

द्वार है— अन्तःपुर में जाता है।

सन्ध्या के समय उत्सव की उपासना आरम्भ होगी। आदि ब्राह्मसमाज के श्रीयुक्त भैरव वन्द्योपाध्याय दो-एक भक्तों के संग वेदी पर बैठकर उपासना-कार्य सम्पन्न करेंगे।

ग्रीष्म काल, आज बुधवार, चैत्र कृष्णा, दशमी तिथि; 2 मई, 1883 ईसवी। ब्राह्मभक्त अनेक ही नीचे के बड़े प्रांगण में या बरामदे में टहल रहे हैं। श्रीयुक्त जानकी घोषाल आदि कोई-कोई ठाकुर श्रीरामकृष्ण के पास उपासना-घर में आकर बैठ गए हैं। उनके मुख से ईश्वरीय बातें सुनेंगे। कमरे में प्रवेश करते ही वेदी के सम्मुख ठाकुर ने प्रणाम किया। आसन ग्रहण करके राखाल, मास्टर आदि से कह रहे हैं—

''नरेन्द्र ने मुझसे कहा था, 'समाज-मन्दिर को प्रणाम करने से क्या होता है'?

''मन्दिर देखने पर उनकी ही याद आती है— उद्दीपन होता है। जहाँ पर उनकी बातें होती हैं वहीं पर उनका आविर्भाव होता है, — और सब तीर्थ उपस्थित होते हैं। ऐसी जगहें देख लेने से भगवान की ही याद आती है।

''एक भक्त बबूल का पेड़ देखकर भावाविष्ट हो गया था!— यह याद करके कि इसी लकड़ी से भगवान राधाकान्त के बाग के लिए कुल्हाड़ी का दस्ता बनता है।

''एक भक्त की ऐसी गुरु-भक्ति थी कि गुरु के मुहल्ले के व्यक्ति को देखकर भाव-विभोर हो गया!

''मेघ देखकर— नीला वस्त्र देखकर— चित्रपट देखकर— श्रीमती का कृष्ण के लिए उद्दीपन हो जाता! वे ये सब देखकर उन्मत्त की न्यायीं 'कहाँ कृष्ण!' कहकर व्याकुल हो जातीं।''

घोषाल— उन्माद तो अच्छा नहीं।

श्रीरामकृष्ण— अजी, यह कैसी बात! यह क्या विषय-चिन्ता करके उन्माद है, जो बेहोश हो जाएगा? यह अवस्था तो भगवान-चिन्तन करके होती है! प्रेमोन्माद, ज्ञानोन्माद— क्या सुना नहीं?

(उपाय— ईश्वर को प्यार करना और छः रिपुओं का मोड़ फिराना)

एक ब्राह्मभक्त— किस उपाय से उनको प्राप्त किया जाता है?

श्रीरामकृष्ण— उनके ऊपर प्यार हो।— और सदा-सर्वदा यह विचार हो— ईश्वर ही सत्य, जगत् अनित्य।

''अश्वत्थ ही सत्य है— फल दो दिन के लिए हैं।''

ब्राह्मभक्त— काम, क्रोध रिपु रहते हैं, क्या किया जाए?

श्रीरामकृष्ण— छओं रिपुओं का ईश्वर की ओर मोड़ फिरा दो।

''आत्मा के साथ रमण करना, यह कामना हो।

''जो ईश्वर के पथ में बाधा देते हैं उनके ऊपर क्रोध। उनको (ईश्वर को) पाने का लोभ। 'मेरा-मेरा' यदि करना हो— तो उनको लेकर करो। जैसे— मेरा कृष्ण, मेरा राम। यदि अहंकार करना हो तो विभीषण की भाँति— मैंने राम को प्रणाम किया है— यह सिर फिर किसी के निकट— अवनत करूँगा नहीं।''

ब्राह्मभक्त— वे ही यदि सब करवा रहे हैं तो फिर मैं पाप के लिए उत्तरदायी नहीं?

[Free will, Responsibility (पाप का दायित्व)]

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— दुर्योधन ने यह बात कही थी—

''त्वया हृषीकेश हृदि स्थितेन, यथा नियोक्तोऽस्मि तथा करोमि।

[हे हृषीकेश! तुम हृदय में बैठकर जैसा करा रहे हो वैसा ही करता हूँ।]

''जिसका विश्वास ठीक है— ईश्वर ही कर्त्ता और मैं अकर्त्ता, उस से पाप-कार्य नहीं होता। जो नाचना ठीक सीखा है, उसका पाँव बेताल नहीं

पड़ता।

''अन्तर शुद्ध बिना हुए, ईश्वर हैं— ऐसा विश्वास ही नहीं होता!''

ठाकुर उपासना-गृह में समवेत लोगों को देख रहे हैं और कह रहे हैं— ''बीच-बीच में इस प्रकार एक संग ईश्वर-चिन्तन और उनका नाम-गुण-कीर्त्तन करना खूब भला है।

''किन्तु संसारी लोगों का ईश्वर में अनुराग उतना ही क्षणिक होता है— जितना क्षणिक तप्त लोहे के ऊपर जल का छींटा देने पर, वह जल उसके ऊपर ठहरता है!''

(ब्रह्मोपासना और श्रीरामकृष्ण)

अब उपासना आरम्भ होगी। उपासना का बड़ा कमरा ब्राह्मभक्तों से भर गया। कई एक ब्राह्मिकाएँ (ब्राह्मभक्त स्त्रियाँ) कमरे के उत्तर की ओर कुर्सियों पर बैठ गईं— हाथों में संगीत की पुस्तक।

पियानो और हारमोनियम के साथ ब्रह्मसंगीत-गीत होने लगा। संगीत सुनकर ठाकुर के आनन्द की सीमा नहीं रही। क्रमश: उद्बोधन— प्रार्थना— उपासना हुई। वेदी पर बैठे हुए आचार्यगण वेद से मन्त्रपाठ करने लगे—

ॐ पिता नोऽसि पिता नोबोधि नमस्तेऽस्तु मा मा हिंसी:।

[तुम हमारे पिता हो, हमें सद्बुद्धि दो। तुम्हें नमस्कार। हमें विनष्ट न करना।]

ब्राह्म भक्तगण समस्वर में आचार्य के साथ बोलते हैं—

ॐ सत्यं ज्ञानं अनन्तं ब्रह्म। आनन्दरूपं अमृतं यद्विभाति।
शान्तं शिवं अद्वैतम्। शुद्धमपापविद्धम्।

अब आचार्यगण स्तव कर रहे हैं—

ॐ नमस्ते सते ते जगत्कारणाय
नमस्ते चिते सर्वलोकाश्रयाय।... इत्यादि।

स्तोत्र-पाठ के पश्चात् आचार्यगण प्रार्थना कर रहे हैं—

असतो मा सद्गमय। तमसो मा ज्योतिर्गमय।
मृत्योर्माऽमृतं गमय। आविराविर्म्म एधि।
रुद्र यत्ते दक्षिणं मुखं तेन मां पाहि नित्यम्।*

स्तोत्र आदि पाठ सुनकर ठाकुर भावाविष्ट हो रहे हैं। अब आचार्य प्रबन्ध-पाठ कर रहे हैं।

(आक्रोध परमानन्द श्रीरामकृष्ण— अहेतुक कृपासिंधु)

उपासना हो गई। भक्तों को लुचि (पूरी) मिठाई आदि खिलाने की तैयारी हो रही है। ब्राह्म भक्तगण अधिकांश ही नीचे के प्रांगण और बरामदे में वायुसेवन कर रहे हैं।

रात के नौ बज गए। ठाकुर को दक्षिणेश्वर-मन्दिर में लौटना है। घर के मालिक निमन्त्रित गृहस्थ भक्तों की खातिर करते-करते इतने व्यस्त हो गए हैं कि ठाकुर की खबर भी नहीं ले पा रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण *(राखाल आदि के प्रति)*— क्यों रे, कोई बुलाता ही नहीं जो!

राखाल *(सक्रोध)*— महाशय आओ चलें, दक्षिणेश्वर चलें।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— अरे रोष!— गाड़ी-भाड़ा तीन रुपये दो आने कौन देगा?— रोष करने से ही तो नहीं होता। पैसे नहीं हैं और खाली रोष! और इतनी रात को खाऊँ कहाँ!

अनेक क्षण पश्चात् सुना गया, पत्तलें पड़ गई हैं। सब भक्तों को इकट्ठे एक समय में आह्वान किया गया। उसी भीड़ में ठाकुर राखाल आदि के

---

* मुझे असत् से सत् की ओर ले चलो। अन्धकार से ज्योति में ले चलो। मृत्यु से अमृत में पहुँचाओ। मेरे पास आविर्भूत होओ। हे रुद्र, अपने करुणापूर्ण मुख से सर्वदा मेरी रक्षा करो।

(कुपन्थ से मुझे हटा। सुपन्थ पर मुझे बढ़ा।
तू अन्धकार दूर कर। जला प्रदीप ज्ञान का।
प्रभो! मरण का भय न हो। अजर-अमर मुझे बना।
बढ़ा चलूँ सुपंथ पर हे नाथ! तव सुगान गा।
हे देव, शान्ति-वृष्टि हो! विहंस उठे वसुन्धरा॥)

संग दोतल पर जलपान करने चले। भीड़ में बैठने की जगह नहीं मिल रही थी। बड़े कष्ट से ठाकुर को एक किनारे पर बिठाया गया।

स्थान अस्वच्छ था। एक मिसरानी ब्राह्मणी ने तरकारी परोसी— ठाकुर की तरकारी खाने की प्रवृत्ति हुई नहीं। उन्होंने नमक छुआ-छुआ कर पूरी खा ली और किंचित् मिठाई ग्रहण की।

ठाकुर दयासिंधु। गृहस्वामियों की छोकरा उमर है। वे उनकी पूजा करना नहीं जानते, इस कारण वे क्यों विरक्त (परेशान) होंगे? यदि बिना खाए चले जाते हैं तो उन (गृहस्वामियों) का अमंगल होगा। और फिर उन्होंने तो ईश्वर का उद्देश्य करके ही तो यह समस्त आयोजन किया है।

आहारान्ते ठाकुर गाड़ी में बैठ गए। गाड़ी का किराया कौन देगा? मालिक तो दिखाई ही नहीं दे रहे हैं। (बाद में) ठाकुर ने गाड़ी-भाड़े के सम्बन्ध में भक्तों के निकट आनन्द करते-करते गल्प रूप में सुनाया था—

''गाड़ी-भाड़ा माँगने गए। पहले तो उसे भगा दिया! — तब फिर अनेक कष्ट से तीन रुपये दिए, दो आने तो फिर भी दिए नहीं! कह दिया, इससे ही हो जाएगा।''

पञ्चम खण्ड

ठाकुर श्रीरामकृष्ण दक्षिणेश्वर-मन्दिर में श्रीयुक्त राखाल, राम, केदार, तारक, मास्टर आदि भक्तों के संग में

प्रथम परिच्छेद

(दक्षिणेश्वर-मन्दिर में— ठाकुर की श्रीचरणपूजा)

ठाकुर श्रीरामकृष्ण आज सन्ध्या-आरती के पश्चात् दक्षिणेश्वर के काली-मन्दिर में देवी-प्रतिमा के सम्मुख खड़े हुए दर्शन कर रहे हैं और चँवर लेकर कुछ क्षण डुला रहे हैं।

ग्रीष्म काल। आज शुक्रवार, ज्येष्ठ शुक्ला-तृतीया तिथि; आठ जून, 1883 ईसवी। (पिछले मंगलवार अमावस्या की बातें श्री श्री कथामृत द्वितीय भाग, पञ्चम खण्ड में प्रकाशित हुई हैं।) आज कलकत्ते से सन्ध्या के बाद राम, केदार (चाटुर्ज्ये), तारक ठाकुर के लिए फूल, मिठाई लेकर एक गाड़ी करके आए हैं।

श्रीयुक्त केदार प्राय: पचास के होंगे। परम भक्त हैं। ईश्वर की बात होते ही आँखें जल से डबडबा आती हैं। पहले ब्राह्मसमाज में यातायात किया करते थे— उसके पश्चात् कर्ताभजा, नवरसिक आदि नाना सम्प्रदायों के साथ मिलकर अन्त में ठाकुर श्रीरामकृष्ण के चरणों में आश्रय लिया है। सरकारी अकाऊन्टेण्ट का काम करते हैं। उनका घर काञ्चड़ापाड़ा के निकट हालिसहर ग्राम में है।

श्रीयुक्त तारक की वयस 24 वर्ष होगी। विवाह किया था— कुछ

दिन पश्चात् पत्नी-वियोग हो गया। उनका घर बारासत ग्राम में है। उनके पिता एक उच्चदर (उच्चकोटि के) साधक— ठाकुर श्रीरामकृष्ण के अनेक बार दर्शन किए थे। तारक के मातृ-वियोग के पश्चात् उनके पिता ने दूसरा विवाह कर लिया था।

तारक राम के घर सर्वदा यातायात करते हैं। उनके (राम के) और नित्यगोपाल के संग वे प्राय: ठाकुर के दर्शन करने आते हैं। आजकल एक ऑफिस में कर्म करते हैं। किन्तु सर्वदा ही उदास भाव रहता है।

ठाकुर श्रीरामकृष्ण ने काली-मन्दिर से बाहर आकर चबूतरे पर भूमिष्ठ होकर माँ को प्रणाम किया। उन्होंने देख लिया कि राम, मास्टर, केदार, तारक आदि भक्त वहाँ पर खड़े हुए हैं।

(श्रीयुक्त तारक के प्रति स्नेह— केदार और कामिनी-काञ्चन)

ठाकुर तारक की चिबुक (ठोडी) पकड़कर आदर-प्यार कर रहे हैं। उन्हें देखकर बड़े ही आनन्दित हुए हैं।

ठाकुर भावाविष्ट होकर अपने कमरे में फर्श पर बैठे हुए हैं। पाँव दोनों बढ़ा दिए हैं,— राम और केदार ने नाना कुसुम और पुष्पमाला द्वारा श्रीपादपद्म विभूषित किए हैं। ठाकुर समाधिस्थ हैं!

केदार का नवरसिक का भाव है। श्रीचरण का अँगूठा पकड़े हुए हैं। धारणा है कि इससे शक्ति-सञ्चार होगा। ठाकुर थोड़ा-सा प्रकृतिस्थ होकर कह रहे हैं— ''माँ, आँगुल पकड़कर मेरा क्या कर सकेगा!'' केदार विनीत भाव से हाथ जोड़े हुए हैं।

श्रीरामकृष्ण *(केदार के प्रति, भावावेश में)*— कामिनी-काञ्चन में (तुम्हारा) मन खिंचता है— मुख से बोलने से क्या होगा कि मेरा उसमें मन नहीं है।

''आगे बढ़ो। चन्दन-काठ के बाद और भी है— चाँदी की खान— सोने की खान— हीरे-माणिक। तनिक-सा उद्दीपन हुआ है तो मन में यह मत सोचो कि सब हो गया है!''

ठाकुर फिर दोबारा माँ के साथ बातें कर रहे हैं। कह रहे हैं, ''माँ, इसको

हटा दो।''

केदार शुष्ककण्ठ होकर सभय राम से कह रहे हैं— 'ठाकुर यह क्या कह रहे हैं!'

(अवतार और पार्षद)

श्रीयुक्त राखाल को देखकर ठाकुर फिर और भावाविष्ट हो रहे हैं। भाव में राखाल को सम्बोधन करके कह रहे हैं—

''मैं अनेक दिनों से यहाँ पर आया हुआ हूँ!— तू कब आया?''

ठाकुर क्या इंगित करके कह रहे हैं कि वे ईश्वर के अवतार हैं—और राखाल हैं उनके एक पार्षद— अन्तरंग?

षष्ठ खण्ड

ठाकुर श्रीरामकृष्ण पेनेटी के महोत्सव-क्षेत्र में राखाल, राम, मास्टर, भवनाथ आदि भक्तों के संग में

प्रथम परिच्छेद

(ठाकुर संकीर्त्तनानन्द में— ठाकुर क्या गौरांग ?)

ठाकुर श्रीरामकृष्ण पेनेटी के महोत्सव-क्षेत्र में बहुत लोगों से भरे हुए राजपथ पर संकीर्त्तन के दल के मध्य नृत्य कर रहे हैं। समय एक का हुआ है। आज सोमवार, ज्येष्ठ शुक्ला त्रयोदशी तिथि; 18 जून, 1883 ईसवी।

संकीर्त्तन के बीच ठाकुर के दर्शन करने के लिए चारों ओर लोग कतार बाँधकर खड़े हुए हैं। ठाकुर प्रेम में मतवाले होकर नाच रहे हैं। कोई-कोई सोच रहे हैं क्या श्री गौरांग फिर दोबारा प्रकट हुए हैं ? चारों ओर हरि-ध्वनि समुद्र-कल्लोल की न्यायीं बढ़ रही है। चारों ओर से पुष्प-वृष्टि और 'हरि की लूट' पड़ रही है।

नवद्वीप गोस्वामी प्रभु-संकीर्त्तन करते-करते राघव-मन्दिर की ओर जा रहे थे। उस समय ठाकुर कहाँ से तीर-वेग से आकर संकीर्त्तन-दल के मध्य नृत्य करने लगे!

यह राघवपण्डित का चिंड़ा-महोत्सव है। शुक्लपक्ष की त्रयोदशी तिथि को प्रति वर्ष यह होता है। यह महोत्सव प्रथम रघुनाथदास ने किया था। राघवपण्डित ने उसके बाद हर वर्ष किया था। दास रघुनाथ को नित्यानन्द ने कहा था, 'ओ रे चोर, तू घर से केवल भाग-भाग कर आ जाता है, और चोरी करके प्रेम-आस्वादन करता है— हम कोई जान भी

नहीं पाए! आज तुझे दण्ड दूँगा, तू चिंड़ा का महोत्सव करके भक्तों की सेवा कर।'

ठाकुर प्राय: प्रति वर्ष ही आते हैं, आज भी राम आदि भक्तों के संग में आने की बात थी। राम सुबह कलकत्ते से मास्टर के साथ दक्षिणेश्वर आए थे। वहाँ पर आकर ठाकुर के दर्शन और प्रणाम के पश्चात् उत्तर के बरामदे में आकर प्रसाद पाया। राम कलकत्ता से जिस गाड़ी द्वारा आए थे, उसी गाड़ी द्वारा ठाकुर का पेनेटी आना हुआ। उसी गाड़ी में राखाल, मास्टर, राम, भवनाथ, और भी दो-एक भक्त थे। उनमें से एक जन छत पर बैठे थे।

गाड़ी मैगज़ीन रोड से चानके के बड़े रास्ते (ट्रंक रोड) पर चली गई। जाते-जाते ठाकुर छोकरे भक्तों के साथ बहुत ही हँसी-दिल्लगी करने लगे।

(पेनेटी महोत्सव में श्रीरामकृष्ण का महाभाव)

पेनेटी के महोत्सव-क्षेत्र में गाड़ी के पहुँचते ही राम आदि भक्तगण देखकर अवाक् हो गए— ठाकुर गाड़ी में अभी आनन्द कर रहे थे, हठात् एकाकी उतरकर तीरवत् छूट रहे हैं। उन्होंने अनेक खोजने पर देखा कि नवद्वीप गोस्वामी के संकीर्त्तन के दल के मध्य ठाकुर नृत्य कर रहे हैं और बीच-बीच में समाधिस्थ हो रहे हैं। पीछे गिर न जाएँ, नवद्वीप गोस्वामी समाधिस्थ देखकर उन्हें अति यत्न से पकड़ रहे हैं। और चारों ओर के भक्तगण हरि-ध्वनि करके उनके चरणों पर पुष्प और बतासे डाल रहे हैं और एक बार दर्शन करने के लिए धक्कमधक्की कर रहे हैं।

ठाकुर अर्धबाह्य-दशा में नृत्य कर रहे हैं। बाह्यदशा में नाम कर रहे हैं—

जादेर हरि बोलिते नयन झरे, ऐ तारा तारा दुभाई एसेछे रे।
जारा आपनि नेचे जगत् नाचाय, तारा तारा दुभाई एसेछे रे।*
(जारा आपनि केंदे जगत् काँदाय) (जारा मार खेये प्रेम जाचे)

[भावार्थ— वे दो भाई आए हैं, जिनके हरि बोलते हुए दोनों नयन झरते हैं; जो आप नाचकर जगत को नचाते हैं, वे दोनों भाई आए हैं रे! (जो आप रोकर

* परिशिष्ट-2 में पूरा गाना है।

जगत को रुलाते हैं, जो मार खाकर प्रेम माँगते है, वे दो भाई आए हैं रे!)]

ठाकुर के संग में सब उन्मत्त होकर नाच रहे हैं और बोध कर रहे हैं— गौर-निताई हमारे सामने नाच रहे हैं। ठाकुर ने फिर और गाना पकड़ लिया— नदे टलमल-टलमल करे— गौर प्रेमेर हिल्लौले रे!

[गौर के प्रेम की हिल्लोलों से नदिया डोल रहा है।]

संकीर्त्तन-तरंग राघव-मन्दिर की ओर बढ़ रही है। वहाँ पर परिक्रमण और नृत्य करके और श्री श्री राधाकृष्ण-विग्रह के सम्मुख प्रणाम करके, गंगाकुल के बाबुओं द्वारा प्रतिष्ठित श्री श्री राधाकृष्ण की बाड़ी की ओर तरंगायित जनसंघ अग्रसर होता है।

श्री श्री राधाकृष्ण की बाड़ी में संकीर्त्तन-दल का कुछ अंश प्रवेश कर रहा है— अधिकांश लोग प्रवेश नहीं कर पा रहे हैं । केवल द्वार के स्थान से ठेलाठेलि करके झाँकियाँ मार रहे हैं!

(श्री श्री राधाकृष्ण के आँगन के मध्य नृत्य)

ठाकुर श्री श्री राधाकृष्ण के आँगन में फिर और नृत्य कर रहे हैं। कीर्त्तनानन्द में गर्गर मतवाले हैं। बीच-बीच में समाधिस्थ हो रहे हैं। और चारों ओर से पुष्प और बतासे चरणों में पड़ रहे हैं। हरि-नाम की ध्वनि आँगन में बार-बार हो रही है। वही ध्वनि राजपथ पर पहुँच कर सहस्र कण्ठों में प्रतिध्वनित होने लगी। भागीरथी-वक्ष पर जितनी भी नौकाएँ यातायात कर रही थीं, उनके सवार अवाक् होकर इस समुद्र-किल्लोल जैसी हरि-ध्वनि को सुनने लगे और स्वयं भी 'हरिबोल', 'हरिबोल' बोलने लगे।

पेनेटी के महोत्सव में समवेत सहस्र नर-नारी सोच रहे हैं, इन महापुरुष के भीतर ही निश्चय श्री गौरांग का आविर्भाव हुआ है। दो-एक जन सोच रहे हैं, ये ही साक्षात् श्री गौरांग हैं।

छोटे आँगन में बहुत लोग एकत्रित हो गए हैं। भक्तगण अति सावधानी से ठाकुर श्रीरामकृष्ण को बाहर ले आए।

(श्री मणिसेन की बैठक में श्रीरामकृष्ण)

ठाकुर भक्तों के संग श्रीयुक्त मणिसेन की बैठक में आकर बैठ गए। इन्हीं सेन-परिवारों की ही पेनेटी में श्री श्री राधाकृष्ण की सेवा है। वे ही अब प्रति वर्ष महोत्सव का आयोजन करते रहते हैं और ठाकुर को निमन्त्रित करते हैं।

ठाकुर के थोड़ा-सा विश्राम कर लेने पर मणिसेन और उनके गुरुदेव— नवद्वीप गोस्वामी ने ठाकुर को दूसरे कमरे में ले जाकर प्रसाद लाकर सेवा कराई। कुछ क्षण बाद राम, राखाल, मास्टर, भवनाथ आदि भक्तों को और एक कमरे में बिठाया गया। ठाकुर भक्तवत्सल— स्वयं खड़े होकर आनन्द करते-करते उन्हें खिला रहे हैं।

द्वितीय परिच्छेद

(श्रीयुक्त नवद्वीप गोस्वामी के प्रति उपदेश—
श्री गौरांग का महाभाव, प्रेम और तीन दशाएँ)

अपराह्ण। राखाल, राम आदि भक्तों के संग ठाकुर मणिसेन की बैठक में बैठे हुए हैं। नवद्वीप गोस्वामी प्रसाद पाकर ठण्डे होकर बैठक में आकर ठाकुर के पास बैठे हुए हैं।

श्रीयुक्त मणिसेन ने ठाकुर को गाड़ी-भाड़ा देना चाहा। ठाकुर तब बैठक में एक काऊच पर बैठे हुए हैं और कह रहे हैं, 'गाड़ी-भाड़ा ये लोग (राम आदि भक्त) क्यों लेंगे? ये लोग रोजगार करते हैं।'

अब ठाकुर नवद्वीप गोस्वामी के साथ ईश्वरीय बातें कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण *(नवद्वीप के प्रति)*— भक्ति के पकने पर भाव;— फिर महाभाव;— उसके पश्चात् प्रेम;— तब फिर वस्तु-लाभ (ईश्वर-लाभ)।

"गौरांग का— महाभाव, प्रेम।

"यह प्रेम हो जाने पर जगत तो भूल हो जाता ही है। और फिर अपनी देह जो इतनी प्रिय है, वह भी भूल जाती है। गौरांग को यही प्रेम हुआ था।

समुद्र देखकर, यमुना समझकर उसमें छलाँग मारकर गिर पड़े।

''जीव का महाभाव अथवा प्रेम नहीं होता— उनका भाव पर्यन्त। और गौरांग की तीनों अवस्थाएँ होती थीं। क्यों जी ?

नवद्वीप— जी हाँ। अन्तर्दशा, अर्धबाह्यदशा और बाह्यदशा।

श्रीरामकृष्ण— अन्तर्दशा में वे समाधिस्थ रहते। अर्धबाह्यदशा में केवल नृत्य कर सकते थे। बाह्यदशा में नाम-संकीर्त्तन करते।

नवद्वीप ने अपने बेटे को लाकर ठाकुर के साथ आलाप करवा दिया। लड़का युवा पुरुष हैं— शास्त्र-अध्ययन करते हैं। उन्होंने ठाकुर को प्रणाम किया।

नवद्वीप— घर में शास्त्र पढ़ता है। इस देश में वेद तो एक तरह से मिलता ही नहीं था। मैक्समूलर ने छपवा लिया है, तभी तो उसे लोग पढ़ते हैं।

(पाण्डित्य और शास्त्र— शास्त्र का सार जानकर लेना चाहिए)

श्रीरामकृष्ण— अधिक शास्त्र पढ़ने से और भी हानि होती है।

''शास्त्र का सार जान लेना चाहिए। तब फिर ग्रन्थ का और क्या प्रयोजन ?

''सार-रूप जानकर डुबकी लगानी चाहिए— ईश्वर प्राप्ति के लिए!

''मुझे माँ ने बता दिया है, वेदान्त का सार है— ब्रह्म सत्य, जगत मिथ्या। गीता का सार, दस बार गीता बोलने से जो होता है, अर्थात् 'त्यागी,त्यागी'।''

नवद्वीप— ठीक 'त्यागी' नहीं होता, 'तागी' होता है। उसका भी वही अर्थ है। तग् धातु घञ् = ताग;— उसके पीछे इन् प्रत्यय— तागी। 'त्यागी' का जो अर्थ है 'तागी' का अर्थ भी वही है।

श्रीरामकृष्ण— गीता का सार है— हे जीव, सब त्याग करके भगवान को पाने के लिए साधना कर।

नवद्वीप— त्याग करने वाला मन कहाँ होता है ?

श्रीरामकृष्ण— तुम लोग गोस्वामी हो, तुम्हारे यहाँ ठाकुर-सेवा है, तुम लोगों का गृहस्थ-त्याग करने से चलेगा नहीं। वैसा होने पर ठाकुर-सेवा कौन करेगा ? तुम लोग मन से त्याग करोगे।

"उन्होंने ही लोकशिक्षा के लिए तुम लोगों को गृहस्थ में रखा हुआ है। तुम मन में हजार चाहो, त्याग नहीं कर सकोगे— उन्होंने ऐसी प्रकृति तुम्हें दी है कि तुम्हें संसार का कार्य करना ही होगा।

"श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा था— तुम युद्ध नहीं करोगे, यह क्या कहते हो ? — तुम इच्छा करने से ही युद्ध से निवृत्त नहीं हो सकोगे, तुम्हारी प्रकृति तुम से युद्ध करवाएगी।"

(समाधिस्थ श्रीरामकृष्ण— गोस्वामी का योग और भोग)

'श्री कृष्ण अर्जुन के साथ बातें कर रहे हैं'— यह बात कहते-कहते ठाकुर फिर और समाधिस्थ हो रहे हैं। देखते-देखते समस्त स्थिर— चक्षु पलकशून्य। नि:श्वास चल रहा है कि नहीं चल रहा— समझ में नहीं आ रहा। नवद्वीप गोस्वामी, उनका पुत्र और भक्तगण अवाक् होकर देख रहे हैं।

कुछ प्रकृतिस्थ होकर ठाकुर नवद्वीप से कह रहे हैं—

"योग, भोग। तुम लोग गोस्वामी-वंश के हो, तुम लोगों के दोनों ही हैं।

"अब केवल उनसे प्रार्थना करो, आन्तरिक प्रार्थना— 'हे ईश्वर तुम्हारी इस भुवनमोहिनी माया का ऐश्वर्य मैं नहीं चाहता,— मैं तुम्हें चाहता हूँ।'

"वे तो सर्वभूतों में ही हैं, किन्तु भक्त किसको कहते हैं ? जो उन में रहता है— जिसका मन-प्राण-अन्तरात्मा सब उनमें ही गत हो गया है।"

ठाकुर को अब सहजावस्था प्राप्त हो गई है। नवद्वीप से कह रहे हैं—

"मेरी यह जो अवस्था हो जाती है (समाधि अवस्था), कोई-कोई कहता है

रोग। मैं कहता हूँ जिनके चैतन्य से जगत चैतन्य हो रहा है— उनका चिन्तन करके क्या कोई अचैतन्य होता है?''

श्रीयुक्त मणिसेन अभ्यागत ब्राह्मणों और वैष्णवों को विदा कर रहे हैं— किसी को एक रुपया, किसी को दो रुपये— जो जैसा व्यक्ति है, दे रहे हैं। ठाकुर को पाँच रुपये देने के लिए आए। श्रीरामकृष्ण बोले—

''मुझे रुपया नहीं लेना।''

मणिसेन तथापि नहीं छोड़ते।

ठाकुर तब बोले, ''यदि दो तो तुम्हारे गुरु की कसम है।'' मणिसेन फिर भी देने के लिए आए। तब ठाकुर जैसे अधीर होकर मास्टर से कह रहे हैं— क्यों जी, लूँ? मास्टर ने घोरतर आपत्ति करके कहा,'जी नहीं— किसी तरह भी मत लें।'

श्रीयुक्त मणिसेन के व्यक्तियों ने तब आम-सन्देश खरीदने का नाम करके राखाल के हाथ में रुपये दे दिए।

श्रीरामकृष्ण *(मास्टर के प्रति)*— मैंने तो गुरु की सौगन्ध दे दी है।— मैं अब छूट गया हूँ। राखाल ने लिए हैं, अब वह समझे।

ठाकुर श्रीरामकृष्ण ने भक्तों के संग गाड़ी पर आरोहण किया— दक्षिणेश्वर-मन्दिर लौट जाएँगे।

(निराकार-ध्यान और ठाकुर श्रीरामकृष्ण)

रास्ते में मतिशील का मन्दिर है। ठाकुर ने मास्टर से अनेक दिन हुए कहा था— एक साथ आकर इस मन्दिर की झील का दर्शन करेंगे— निराकार-ध्यान किस प्रकार आरोप करना चाहिए, सिखाने के लिए।

ठाकुर को खूब सर्दी लग गई है। तथापि भक्त के संग में मन्दिर देखने के लिए गाड़ी से अवतरण किया।

ठाकुरबाड़ी में श्री गौरांग की सेवा है। सन्ध्या में अभी भी कुछ देरी है। ठाकुर ने भक्तों के संग में श्री गौरांग-विग्रह के सम्मुख भूमिष्ठ होकर

प्रणाम किया!

अब ठाकुर बाड़ी के पूर्वांश में जो झील है, उसके घाट पर आकर झील और मत्स्य-दर्शन कर रहे हैं। कोई व्यक्ति मछलियों की हिंसा नहीं करता, मुरमुरे इत्यादि खाने की वस्तु कुछ देते ही बड़ी-बड़ी मछलियाँ दल के दल सम्मुख आकर खाती हैं— तत्पश्चात् निर्भय होकर आनन्द में लीला करते-करते जल के मध्य में विचरण करती हैं।

ठाकुर मास्टर से कह रहे हैं—

''यह देखो, कैसी मछलियाँ हैं! इसी प्रकार चिदानन्द-सागर में इस मछली की भाँति आनन्द में विचरण करना।''

सप्तम खण्ड

दक्षिणेश्वर में गुरुरूपी श्रीरामकृष्ण अन्तरंगों के संग में

प्रथम परिच्छेद

(प्रह्लाद-चरित्र-श्रवण और भावावेश— स्त्रीसंग-निन्दा)

ठाकुर श्रीरामकृष्ण दक्षिणेश्वर में उसी पूर्वपरिचित कमरे में फर्श पर बैठे हुए प्रह्लाद-चरित्र सुन रहे हैं। समय प्राय: 8 का होगा। श्रीयुक्त रामलाल भक्तमाल ग्रन्थ से प्रह्लाद-चरित्र पढ़ रहे हैं।

आज शनिवार, अगहन (अग्रहायन) कृष्णा प्रतिपदा; 15 दिसम्बर, 1883 ईसवी। मणि दक्षिणेश्वर में ठाकुर के संग उनकी पदछाया में वास कर रहे हैं। वे ठाकुर के पास बैठे हुए प्रह्लाद-चरित्र सुन रहे हैं। कमरे में श्रीयुक्त राखाल, लाटु, हरीश हैं। कोई बैठकर सुनते हैं,— कोई आ-जा रहे हैं। हाजरा बरामदे में हैं।

ठाकुर प्रह्लाद-चरित्र की कथा सुनते-सुनते भावाविष्ट हो रहे हैं। जब हिरण्यकशिपु का वध हो गया, नृसिंह की रुद्र मूर्ति देखकर और सिंहनाद सुनकर ब्रह्मादि देवताओं ने प्रलय की आशंका से प्रह्लाद को ही नृसिंह के पास भेज दिया। प्रह्लाद बालक की न्यायीं स्तव कर रहे हैं। भक्तवत्सल (भगवान नृसिंह) स्नेह से प्रह्लाद की देह चाट रहे हैं। ठाकुर भावाविष्ट होकर कह रहे हैं, ''आहा! आहा! भक्त के ऊपर कितना प्यार!'' कहते-कहते ठाकुर को भावसमाधि हो गई! स्पन्दहीन,—

चक्षुओं के कोणों में प्रेमाश्रु!

भाव-उपशम के पश्चात् ठाकुर छोटी खाट पर जाकर बैठ गए। मणि फर्श पर उनके चरणों में बैठ गए। ठाकुर उनके साथ बातें कर रहे हैं। ईश्वर के पथ पर रहते हुए जो स्त्री-संग करते हैं, उनके प्रति ठाकुर क्रोध और घृणा प्रकाशित कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण— लज्जा नहीं आती। बच्चे हो गए हैं फिर भी स्त्री-संग से घृणा नहीं होती। पशुओं की भाँति व्यवहार! लार, रक्त, मल, मूत्र इत्यादि से घृणा नहीं होती! जो भगवान के पादपद्मों का चिन्तन करता है, उसको परमसुन्दरी रमणी चिता की भस्म जैसी लगती है। जो शरीर रहेगा नहीं— जिसके भीतर कृमि, क्लेद (तरल मैल) श्लेष्मा (बलगम), हर प्रकार की अपवित्र वस्तुएँ हैं, उसी शरीर के साथ आनन्द! लज्जा नहीं आती?

(ठाकुर का प्रेमानन्द और माँ काली की पूजा)

मणि तिरस्कृत होकर चुपचाप मुँह लटका कर बैठे हुए हैं। ठाकुर श्रीरामकृष्ण फिर और कह रहे हैं—

"उनके प्रेम की एक बून्द भी यदि कोई पा लेता है तो कामिनी-काञ्चन अति तुच्छ जैसा बोध होता है। मिश्री का शरबत मिल जाने पर राब (गुड़ का शरबत) तुच्छ हो जाता है। उनसे व्याकुल होकर प्रार्थना करने से, उनका नाम-गुण सर्वदा कीर्त्तन करने से— उनके ऊपर वही प्यार क्रमश: हो जाता है।"

यह कहकर ठाकुर प्रेमोन्मत्त होकर कमरे में नाचते हुए घूमने लगे और गाना गाने लगे—

सुरधनीर तीरे हरि बोले के, बुझि प्रेमदाता निताई एसेछे।
(निताई नैले प्राण जुड़ाबे किसे)

[गंगा के तीर पर कौन हरि-हरि बोल रहा है? लगता है प्रेमदाता निताई आए हैं। निताई के बिना प्राणों को शान्ति मिलेगी कैसे?]

प्राय: 10 बजे हैं। श्रीयुक्त रामलाल ने काली-मन्दिर में काली की नित्यपूजा समाप्त कर ली है। ठाकुर माँ का दर्शन करने के लिए काली-

मन्दिर में जा रहे हैं। मणि संग में हैं। मन्दिर में प्रविष्ट होकर ठाकुर आसन पर बैठ गए। दो एक फूल माँ के चरणों में दिए। अपने सिर पर फूल रखकर ध्यान कर रहे हैं। अब गीत के बहाने माँ का स्तव कर रहे हैं।

भवदारा भयहरा नाम शुनेछि तोमार,
ताइते एबार दिएछि भार, तारो तारो ना तारो मा।
तुमि मा ब्रह्माण्डधारी ब्रह्माण्ड व्यापिके,
के जाने तोमारे तुमि काली कि राधिके,
घटे घटे तुमि घटे आछो गो जननी,
मूलाधार कमले थाको मा कुलकुण्डलिनी।
तदूर्ध्वेते आछे मागो नामे स्वाधिष्ठान,
चतुर्दल पद्मे तथाय आछो अधिष्ठान।
चतुर्दले थाको तुमि कुलकुण्डलिनी,
षड़्दल वज्रासने बोशो मा आपनि।
तदूर्ध्वेते नाभिस्थान मा मणिपुर कय,
नीलवर्णेर दशदल पद्म जे तथाय,
सुषुम्नार पथ दिये एशो गो जननी,
कमले कमले थाको कमले कामिनी।
तदूर्ध्वेते ते आछे मागो सुधा सरोवर,
रक्तवर्णेर द्वादशदल पद्म मनोहर,
पादपद्म दिये यदि ए पद्म प्रकाश,
(मा) हृदे आछे विभावरी तिमिर विनाश।
तदूर्ध्वे आछे मागो नाम कण्ठस्थल,
धूम्रवर्णेर पद्म आछे होये षोड़शदल।
सेई पद्म मध्ये आछे अम्बुज आकाश,
से आकाश रुद्ध होले सकलि आकाश।
तदूर्ध्वे ललाटे स्थान मा आछे द्विदल पद्म,
सदाय आछये मन होइये आबद्ध।
मन जे माने ना आमार मन भालो नय,
द्विदले बोसिया रंग देखये सदाय।
तदूर्ध्वे मस्तके स्थान मा अति मनोहर,

सहस्रदल पद्म आछे ताहार भितर।
तथाय परम शिव आछेन आपनि,
सेई शिवेर काछे बोशो शिवे मा आपनि।
तुमि आद्याशक्ति मा जितेन्द्रिय नारी,
योगीन्द्र मुनीन्द्र भावे नगेन्द्र कुमारी।
हर शक्ति हर शक्ति सुदनेर एबार,
येनो ना आसिते होय मा भव पारावार।
तुमि आद्याशक्ति मागो तुमि पञ्चतत्त्व,
के जाने तोमारे तुमि तुमिइ तत्त्वातीत।
ओ मा भक्त जन्य चराचरे तुमि से साकार,
पञ्चे पञ्चे लय होले तुमि निराकार।

[भावार्थ— हे भवानी, मैंने तुम्हारा भयहरा— भय–हरण करने वाला नाम सुना है, तभी तो इस बार भार दिया है। अब तुम चाहे तारो या न तारो। तुम माँ, ब्रह्माण्ड–धारिणी हो, ब्रह्माण्ड में व्याप्त हो। कौन जाने कि तुम काली हो या राधा! हे माँ, तुम घट–घट में हो। मूलाधार के चतुर्दल कमल में तुम कुल–कुण्डलिनी हो। तुम्हीं फिर सुषुम्ना के मार्ग से ऊपर उठकर स्वाधिष्ठानचक्र के षड्दल के वज्रासन पर पहुँचती हो। इसी प्रकार माँ, तुम उसके ऊपर नाभिस्थान में मणिपुर चक्र के नीलवर्ण दशदल कमल में पहुँचती हो। सुषुम्नापथ से हे जननी! कमले कामिनी! तुम ऊर्ध्वोर्ध्व कमलों में रहती हो। उसके ऊपर है माँ, सुधा–सरोवर में रक्तवर्ण द्वादशदल मनोहर पद्म। उसे अपने पादपद्म द्वारा यदि तुम विकसित कर दो तो हृदय के अज्ञानान्धकार का नाश हो जाता है। इसके ऊपर कण्ठस्थल में धूम्रवर्ण षोडशदल पद्म है, उसी कमल में है अम्बुज आकाश। उस आकाश के रुद्ध होने पर सब ही आकाश है। उसके ऊपर ललाट स्थान पर द्विदल पद्म है, वहाँ मन सदा आबद्ध है, वहीं द्विदल में रहकर सदा मजा चखना चाहता है। उसके ऊपर मस्तक के अति मनोहर स्थान में सहस्रदल पद्म में परमशिव स्वयं विराजमान हैं। हे माँ! उसी शिव के निकट तुम आद्याशक्ति जितेन्द्रिय नारी के रूप में हो। योगीन्द्र, मुनीन्द्र, नगेन्द्रकुमारी (दुर्गा)के रूप में तुम्हारा ध्यान करते हैं। तुम शिव की शक्ति हो। मेरी वासनाओं का नाश कर दो, ताकि इस संसार में फिर न आना हो। माँ, तुम आद्याशक्ति हो, पञ्चतत्त्व हो और तुम्हीं तत्त्वों से परे हो। भक्त के लिए तुम साकार हो, पञ्चतत्त्वों में लीन होने पर तुम निराकार हो।]

ठाकुर काली–मन्दिर से लौटकर आके अपने कमरे के दक्षिणपूर्व वाले

बरामदे में बैठे हुए हैं। समय 10 का होगा। अभी तक भी देवताओं का भोग और भोग-आरती नहीं हुई। माँ काली और राधाकान्त के प्रसादि मक्खन और फल-मूल में से कुछ लेकर ठाकुर ने जलपान किया है। राखाल आदि भक्तों ने भी कुछ-कुछ पाया है।

ठाकुर के पास बैठकर राखाल स्माइल की 'सैल्फ-हैल्प' पढ़ रहे हैं,— लॉर्ड एर्स्किन (Erskine) के विषय में।

(निष्काम कर्म- पूर्णज्ञानी ग्रन्थ नहीं पढ़ता)

श्रीरामकृष्ण *(मास्टर के प्रति)*— उसमें क्या कहता है ?

मास्टर— साहब फल की आकांक्षा बिना किए कर्त्तव्य-कर्म किया करते थे,— यही बात कहता है। निष्काम कर्म।

श्रीरामकृष्ण— तब तो सुन्दर है ! किन्तु पूर्ण ज्ञान का लक्षण है— एक पुस्तक भी साथ में नहीं रहेगी। जैसे शुकदेव— सब उनके मुख में था।

''पुस्तक में— शास्त्र में— रेत और चीनी मिले रहते हैं। साधु चीनी-चीनी लेता है। बालू (रेत) छोड़ देता है। साधु सार ग्रहण करता है।''

शुकदेव आदि का नाम करके ठाकुर क्या अपनी अवस्था इंगित करके समझा रहे हैं ?

वैष्णवचरण कीर्त्तनीया आए हुए हैं। उन्होंने सुबोल-मिलन-कीर्त्तन सुनाया।

कुछ क्षण पश्चात् श्रीयुक्त रामलाल ने थाल में ठाकुर के लिए प्रसाद लाकर दिया। सेवा के पश्चात् ठाकुर ने कुछ विश्राम किया।

रात को मणि ने नहबत में शयन किया। श्री श्री माँ जब दक्षिणेश्वर-मन्दिर में ठाकुर की सेवा के लिए आती हैं तब इसी नहबत में ही वास करती हैं। कई मास हो गए हैं, उन्होंने कामारपुकुर में शुभागमन किया हुआ है।

द्वितीय परिच्छेद

(श्री राखाल, लाटु, जनाइयों के मुखुज्ये आदि भक्तों के संग में)

ठाकुर श्रीरामकृष्ण मणि के संग पश्चिम के गोल बरामदे में बैठे हुए हैं। सम्मुख दक्षिणवाहिनी भागीरथी। पास ही करवी (कनेर), बेला (मोतिया), जूही, गुलाब, कृष्णचूड़ा आदि नाना कुसुमों से सजे हुए पुष्पवृक्ष हैं। समय 10 का होगा।

आज रविवार, अगहन कृष्णा द्वितीया; 16 दिसम्बर, 1883 ईसवी। ठाकुर मणि को देख रहे हैं और गाना गा रहे हैं-

तारिते होबे मा तारा होयेछि शरणागत।
होइया-रयेछि जेनो पिंजरेर पाखिर मत॥
असंख्य अपराधी आमि, ज्ञानशून्य मिछे भ्रमि।
मायाते मोहित होये वत्सहारा गाभीर मत॥

[भावार्थ— माँ तारा, आपको पार करना ही पड़ेगा क्योंकि मैं शरणागत हो गया हूँ। मैं पिंजरे के पक्षीवत् हो गया हूँ। मैं असंख्य अपराधी हूँ, ज्ञानशून्य हूँ और बछड़ा खोई हुई माँ की भाँति माया से मोहित हुआ मैं वृथा भटक रहा हूँ।]

(राम-चिन्तन— सीता की भाँति व्याकुलता)

''क्यों? पिंजरे के पक्षी के जैसा क्यों बनूँगा? ह्याक्! थू!''

बात करते-करते भावाविष्ट— शरीर, मन सब स्थिर और नयनों में धारा! कुछ क्षणों के बाद कह रहे हैं,

''माँ सीता की भाँति कर दो— एकदम सब भूल जाऊँ— देहभूल— योनि, हाथ, पाँव, स्तन— किसी भी तरफ की होश नहीं। केवल एक चिन्ता— 'कहाँ राम'!''

कैसा व्याकुल होने पर ईश्वर-लाभ होता है— मणि को यही बात सिखाने के लिए ठाकुर को क्या सीता का उद्दीपन हुआ है? सीता राममयजीविता,— रामचिन्तन करके उन्मादिनी— देह जो इतनी प्रिय है,

उसको भी भूल गई हैं।

समय— चार बज गए हैं। ठाकुर श्रीरामकृष्ण भक्तों के साथ उसी कमरे में बैठे हुए हैं। जनाई के मुखुज्येबाबू आए हैं— वे श्रीयुक्त प्राणकृष्ण के गोत्र के हैं। उनके साथ एक शास्त्रज्ञ ब्राह्मबन्धु हैं। मणि, राखाल, लाटु, हरीश, योगीन आदि भक्तगण भी हैं।

योगीन दक्षिणेश्वर के सावर्ण चौधुरियों का लड़का है। वे आजकल प्राय: नित्य शाम को ठाकुर का दर्शन करने आते हैं और रात को चले जाते हैं। योगीन ने अभी तक विवाह नहीं किया।

मुखुज्ये *(प्रणामान्तर)*— आपका दर्शन करके बड़ा आनन्द हुआ।

श्रीरामकृष्ण— वे सबके भीतर ही हैं; सब के भीतर वही सोना है, किसी स्थान पर अधिक प्रकाश होता है। संसार (गृहस्थ) में सोना बहुत-सी मिट्टी के नीचे दबा पड़ा हुआ है।

मुखुज्ये *(सहास्य)*— महाशय! ऐहिक (लौकिक), पारत्रिक (पारलौकिक) में क्या अन्तर है?

श्रीरामकृष्ण— साधन के समय 'नेति'-'नेति' करके त्याग करना चाहिए। उनकी प्राप्ति के पश्चात् समझ में आ जाता है कि वे ही सब बने हुए हैं।

"जब रामचन्द्र को वैराग्य हुआ, दशरथ बहुत चिन्तित होकर ऋषि वशिष्ठदेव के शरणागत हुए— जिससे राम संसार (गृहस्थ) त्याग न करें। वशिष्ठ ने रामचन्द्र के पास जाकर देखा वे विमना (अनमना, उदास) हुए बैठे हैं, अन्तर में तीव्र वैराग्य है। वशिष्ठ जी ने कहा— राम, तुम संसार त्याग करोगे क्यों? संसार क्या उनके बिना है? हमारे संग विचार करो। राम ने देखा, संसार उसी परब्रह्म से ही बना है,— इसलिए चुप रहे।

"जैसे जिस वस्तु से छाछ बनती है, उसी वस्तु से मक्खन। तब छाछ का ही मक्खन, मक्खन की ही छाछ। बहु कष्ट से मक्खन निकाल लेने पर (अर्थात् ब्रह्मज्ञान हो जाने पर);— तब देखते हो कि मक्खन के रहने से ही छाछ भी है,— जहाँ पर मक्खन, वहाँ पर ही छाछ। ब्रह्म है, यह बोध रहने से ही— जीव जगत चौबीस तत्त्व भी हैं।"

(ब्रह्मज्ञान का एकमात्र उपाय)

"ब्रह्म क्या वस्तु है, मुख से नहीं बोला जाता। सब वस्तुएँ झूठी हो चुकी हैं (अर्थात् मुख से बोली जा चुकी हैं), किन्तु ब्रह्म क्या है,— कोई मुख से बोल नहीं पाया है। तभी उच्छिष्ठ (झूठा) हुआ नहीं। यही बात विद्यासागर से कही थी— विद्यासागर सुनकर भारी खुश हुआ था।

"विषयबुद्धि का लेश भी रहने पर यह ब्रह्मज्ञान नहीं होता। कामिनी-काञ्चन में मन बिल्कुल भी नहीं रहेगा, तभी होगा। गिरिराज से पार्वती ने कहा, 'पिता जी, ब्रह्मज्ञान यदि चाहते हो तो फिर साधु-संग करो'।"

ठाकुर क्या यही बोल रहे हैं कि संसारी व्यक्ति या संन्यासी यदि कामिनी-काञ्चन लेकर रहता है तो फिर ब्रह्मज्ञान नहीं होता?

(योगभ्रष्ट— ब्रह्मज्ञान के बाद संसार)

श्रीरामकृष्ण फिर मुखुज्ये को सम्बोधन करके और कहते हैं—

तुम्हारे पास धन-ऐश्वर्य है अथच ईश्वर को पुकारते हो, यह खूब अच्छा है। गीता में है— जो योगभ्रष्ट होता है, वह ही भक्त होकर धनी के घर में जन्म लेता है।

मुखुज्ये *(बन्धु के प्रति, सहास्य)*— शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते।*

श्रीरामकृष्ण— वे चाहें तो ज्ञानी को संसार में भी रख सकते हैं। उनकी इच्छा से जीव-जगत बना है। वे इच्छामय हैं।

मुखुज्ये *(सहास्य)*- उनकी फिर इच्छा क्या? उन्हें क्या कुछ अभाव है?

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— उसमें फिर दोष ही क्या है? जल स्थिर रहने पर भी जल,— तरंग होने पर भी जल।

(जीव-जगत क्या मिथ्या?)

"साँप चुप करके कुण्डली मारे रहने पर भी साँप— और फिर तिर्यक् गति होकर टेढ़ा-मेढ़ा चलने पर भी साँप।

---

* गीता— 6/41

"बाबू जब चुप है तब वह जो व्यक्ति है— जब काम कर रहा है तब भी वही व्यक्ति है।

"जीव-जगत को कैसे हटाया जाए, तब तो वजन कम हो जाएगा। बेल के बीज-छिलका को हटा देने से समस्त बेल का तोल नहीं मिलेगा।

"ब्रह्म निर्लिप्त है। वायु में सुगन्ध-दुर्गन्ध होती है, किन्तु वायु निर्लिप्त है। ब्रह्म और शक्ति अभेद हैं। उसी आद्याशक्ति से ही जीव-जगत हुए हैं।"

(समाधियोग का उपाय— क्रन्दन : भक्तियोग और ध्यानयोग)

मुखुज्ये— योगभ्रष्ट क्यों हो जाता है?

श्रीरामकृष्ण— गर्भे छिलाम योगे छिलाम, भूमे पड़े खेलाम माटि।
ओरे धात्रीते केटेछे नाड़ी, मायार बेड़ी किसे काटि।

[गर्भ में जब था तब मैं योग में था, भूमि पर पड़कर मिट्टी खाई। अरे भाई, दाई (धात्री) ने नाड़ी तो काट दी है, माया की बेड़ी कैसे काटूँ!]

"कामिनी-काञ्चन ही माया। मन से इन दोनों के चले जाने पर ही योग। आत्मा— परमात्मा चुम्बक पत्थर हैं, जीवात्मा जैसे एक सूई है, उनके खींच लेने पर ही योग हो जाता है। किन्तु सूई पर यदि मिट्टी लिपटी रहे तो चुम्बक नहीं खींचता— मिट्टी साफ कर देने पर फिर खींचता है। कामिनी-काञ्चन मिट्टी है,परिष्कार (साफ) करनी चाहिए।"

मुखुज्ये— परिष्कार कैसे होता है?

श्रीरामकृष्ण— उनके लिए व्याकुल होकर रोओ— वह जल मिट्टी पर लगने से वह धुल कर साफ हो जाएगी। जब खूब साफ हो जाएगी तब चुम्बक खींच लेगा।— योग तब ही होगा।

मुखुज्ये— आहा, कैसी बात!

श्रीरामकृष्ण— उनके लिए रो लेने पर दर्शन हो जाता है— समाधि होती है। योग में सिद्ध हो जाने पर ही समाधि। क्रन्दन करने पर कुम्भक अपने-आप हो जाता है; उसके बाद समाधि।

"और एक है ध्यान। सहस्रार में शिव विशेष रूप में हैं। उनका ध्यान। शरीर मिट्टी का कटोरा है, मन-बुद्धि जल हैं। इस जल में उसी सच्चिदानन्द-सूर्य का प्रतिबिम्ब पड़ता है। उसी प्रतिबिम्ब सूर्य का ध्यान करते-करते सत्य सूर्य का उनकी कृपा से दर्शन होता है।"

(साधु-संग करो और आममुखतारी (बकलमा) दे दो)

"किन्तु संसारी लोगों को सर्वदा ही साधु-संग आवश्यक है। सबको ही आवश्यक है। संन्यासी को भी आवश्यक। किन्तु गृहस्थियों को विशेषत:, रोग लगा ही हुआ है— कामिनी-काञ्चन के बीच सर्वदा रहना पड़ता है।"

मुखुज्ये— जी, रोग लगा ही हुआ है।

श्रीरामकृष्ण— उन्हें आममुखतारी दे दो। वे जो हो, करें। तुम बिल्ली के बच्चे की भाँति केवल उनको पुकारो— व्याकुल होकर। उसकी माँ जहाँ पर उसको रखती है— वह कुछ नहीं जानता;— कभी बिछौने के ऊपर रखती है— कभी फिर रसोई में।

(प्रवर्तक शास्त्र पढ़ता है— साधना के पश्चात् फिर दर्शन)

मुखुज्ये— गीता आदि शास्त्र पढ़ना अच्छा है।

श्रीरामकृष्ण— केवल पढ़ने-सुनने से क्या होगा? किसी ने दूध सुना है, किसी ने दूध देखा है, किसी ने दूध पिया है। ईश्वर का दर्शन किया जाता है— और फिर उनके संग आलाप किया जाता है।

"पहले प्रवर्तक होता है। वह पढ़ता, सुनता है। उसके पश्चात् साधक,— उनको पुकारता है, ध्यान-चिन्तन करता है, नाम-गुण-कीर्तन करता है। उसके पश्चात् सिद्ध,— उनको बोधे बोध करता है, दर्शन करता है। उसके पश्चात् सिद्ध का सिद्ध; जैसे चैतन्यदेव की अवस्था— कभी वात्सल्य, कभी मधुर भाव।"

मणि, राखाल, योगीन, लाटु प्रभृति भक्तगण यह समस्त देवदुर्लभ तत्त्वकथा अवाक् होकर सुन रहे हैं।

अब मुखुज्येगण विदा लेते हैं। वे प्रणाम करके खड़े हो गए। ठाकुर जैसे उनके सम्मानार्थ उठकर खड़े हो गए।

मुखुज्ये *(सहास्य)*— आपका भी फिर उठना-बैठना!

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— और फिर उठने-बैठने में ही क्या हानि है? जल स्थिर होने पर भी जल है,— और हिलने-डुलने से भी जल। तूफान का झूठा पत्ता— हवा जिस तरफ ले जाए। मैं यन्त्र, वे यन्त्री।

तृतीय परिच्छेद

श्रीरामकृष्ण का दर्शन और वेदान्त के विषय में गुह्य व्याख्या

(अद्वैतवाद और विशिष्टाद्वैतवाद— जगत क्या मिथ्या? Identity of the Undifferentiated and Differentiated)

जनाइयों के मुखुज्ये लोग चले गए। मणि सोच रहे हैं, वेदान्त-दर्शन-मत में 'सब स्वप्नवत्' है। तो फिर जीव-जगत, मैं, ये सब— क्या मिथ्या हैं?

मणि ने कुछ-कुछ वेदान्त देखा है। और फिर वेदान्त की अस्फुट प्रतिध्वनि— काण्ट, हैगल आदि जर्मन विद्वानों के विचार— थोड़े पढ़े हैं। किन्तु ठाकुर श्रीरामकृष्ण ने दुर्बल मनुष्य की भाँति विचार नहीं किया— जगन्माता ने उन्हें समस्त दर्शन* करवा दिया है। मणि वही सोच रहे हैं।

कुछ क्षण पश्चात् ठाकुर श्रीरामकृष्ण मणि के साथ एकाकी पश्चिम के गोल बरामदे में बातें कर रहे हैं। सम्मुख गंगा— कुल-कुल रव (शब्द) से दक्षिण में प्रवाहित हो रही हैं। शीतकाल— सूर्य भगवान अब दिखलाई दे रहे हैं, दक्षिणपश्चिम कोण में। जिनका जीवन वेदमय— जिनके श्रीमुख से निकले वाक्य, वेदान्त-वाक्य— जिनके श्रीमुख द्वारा

* Revelation; Transcendental Perception; God-vision.

श्री भगवान बातें करते हैं— जिनकी कथामृत (वाणी का अमृत) लेकर वेद, वेदान्त, श्री भागवत ग्रन्थकार धारणा करते हैं, वे ही अहेतुक कृपासिन्धु पुरुष गुरुरूप लेकर बातें कर रहे हैं।

मणि— जगत क्या मिथ्या है?

श्रीरामकृष्ण— मिथ्या क्यों? वे सब तो विचार की बातें हैं।

"पहले-पहले, 'नेति-नेति' विचार करने के समय, वे जीव नहीं हैं, जगत नहीं हैं, चौबीस तत्त्व नहीं हैं, हो जाता है— 'यह सब स्वप्नवत्' हो जाता है। उसके पश्चात् अनुलोम-विलोम। तब वे ही जीव-जगत बने हुए हैं, बोध हो जाता है।

"तुम सीढ़ियों को पकड़-पकड़ कर ऊपर छत पर चढ़ गए। किन्तु जब तक छत-बोध है तब तक सीढ़ियों का भी बोध है। जिसका ऊँचाई-बोध है, उसका नीचाई-बोध भी है।

"और फिर छत के ऊपर चढ़कर, देखता है— जिस वस्तु से छत तैयार हुई है— ईंट, चूना, सुरखी— उसी वस्तु से ही सीढ़ी तैयार हुई है।

"और जैसे तेल की बात कही थी।

"जिसका अटल है उसका टल भी है।

"मैं तो जाने वाला नहीं है। 'मैं घट हूँ' जब तक रहता है तब तक जीव-जगत भी रहता है। उनको प्राप्त कर लेने पर देख लेता है वे ही जीव-जगत हुए हैं।— केवल विचार से नहीं होता।

"शिव की दोनों अवस्थाएँ हैं। जब समाधिस्थ— महायोग में बैठे हुए हैं— तब आत्माराम। और फिर जब उस अवस्था से उतर आते हैं— थोड़ा-सा 'मैं' रहता है तब 'राम'-'राम' करके नृत्य करते हैं।"

ठाकुर शिव की अवस्था का वर्णन करके क्या अपनी अवस्था इंगित करके बता रहे हैं?

सन्ध्या हो गई। ठाकुर जगन्माता का नाम और उनका चिन्तन कर रहे हैं। भक्तगण भी निर्जन में जाकर जो जिसका है, ध्यान आदि करने

लगे। इधर देव-मन्दिरों में— माँ काली के मन्दिर में, श्री श्री राधा-कान्त के मन्दिर में और द्वादश शिव-मन्दिरों में आरती होने लगी।

आज है कृष्णपक्ष की द्वितीया तिथि। सन्ध्या के काफी देर बाद चन्द्रोदय हुआ। उस आलोक ने मन्दिर-शीर्षों पर, चारों ओर वृक्ष-लता और मन्दिर के पश्चिम में भागीरथी-वक्ष पर पड़कर अपूर्व शोभा धारण की है। इस समय उसी पूर्वपरिचित कमरे में ठाकुर श्रीरामकृष्ण बैठे हुए हैं। मणि फर्श पर बैठे हैं। मणि ने शाम को वेदान्त के सम्बन्ध में जिस बात की अवतारणा की थी, ठाकुर फिर दोबारा वही बातें ही कर रहे हैं।

(सब चिन्मय दर्शन— माथुर को खजानची का पत्र लिखना)

श्रीरामकृष्ण *(मणि के प्रति)*— जगत मिथ्या क्यों होगा? वे सब विचार की बातें हैं। उनके दर्शन हो जाने पर तब समझ में आता है कि वे ही जीव-जगत हुए हैं।

''मुझे माँ ने काली-मन्दिर में दिखला दिया कि वे ही सब हुई हैं। दिखला दिया सब चिन्मय! —प्रतिमा चिन्मय! —वेदी चिन्मय!— कोशा-कुशी चिन्मय! —चौकाठ चिन्मय! —मार्बल का पत्थर (संगेमरमर)— सब चिन्मय!

''कमरे के भीतर देखता हूँ— सब जैसे रस में सराबोर हैं! सच्चिदानन्द-रस में।

''काली-मन्दिर के सम्मुख एक दुष्ट व्यक्ति को देखा था;— किन्तु उसके भी भीतर उनकी शक्ति झल-झल कर रही है, देखा!

''जभी तो बिल्ली को भोग की लुचि (पूरी) खिलाई थी। देखा, माँ ही सब हुई हैं— बिल्ली पर्यन्त। तब खजानची ने सेजोबाबू को चिट्ठी लिखी कि भट्टाचार्य महाशय भोग की लुचि बिल्ली को खिलाते हैं। सेजोबाबू मेरी अवस्था समझते थे। पत्र के उत्तर में लिखा, 'वे जो करते हैं, उस पर कोई बात मत बोलो।'

''उनको पा लेने पर यह सब ठीक-ठीक देखा जाता है कि वे ही

जीव-जगत, चौबीस तत्त्व हुए हैं।

"किन्तु वे यदि 'मैं' को बिल्कुल पोंछ देते हैं तब क्या हो जाता है,— मुख से नहीं बोला जाता। रामप्रसाद ने जैसे कहा है—

'तब तुम अच्छे हो या मैं अच्छा हूँ यह तुम्हीं समझोगे।'

"यह अवस्था भी मेरी एक-एक बार होती है।

"विचार करके एक प्रकार से दिखता है— और वे जब दिखला देते हैं तब और एक प्रकार से दिखता है।"

चतुर्थ परिच्छेद

(जीवन का उद्देश्य है ईश्वर-दर्शन— उपाय प्रेम)

अगले दिन सोमवार, समय आठ का है। ठाकुर उसी कमरे में बैठे हुए हैं। राखाल, लाटु आदि भक्तगण भी हैं। मणि फर्श पर बैठे हैं। श्रीयुक्त मधु डॉक्टर आए हुए हैं। वे ठाकुर के पास उसी छोटी खाट के ऊपर ही बैठे हुए हैं। मधु डॉक्टर प्रवीण हैं, ठाकुर को असुख होने पर वे प्रायः आकर देखते हैं। बड़े रसिक व्यक्ति हैं।

मणि कमरे में प्रवेश करके प्रणाम के बाद बैठ गए।

श्रीरामकृष्ण *(मणि के प्रति)*— बात तो यही है— सच्चिदानन्द में प्रेम।

(ठाकुर का सीता-मूर्ति-दर्शन— गौरी पण्डित की बात)

"कैसा प्रेम? ईश्वर से कैसे प्यार होगा? गौरी कहता था राम को जानने के लिए सीता की भाँति होना चाहिए, भगवान को जानने के लिए भगवती जैसा होना चाहिए,— भगवती ने जैसे शिव के लिए कठोर तपस्या की थी, उसी प्रकार तपस्या करनी चाहिए। पुरुष को जानने के लिए प्रकृति-भाव-आश्रय करना चाहिए— सखी-भाव, दासी-भाव, मातृ-भाव।

"मैंने सीता-मूर्ति के दर्शन किए थे। देखा था सारा मन राम में ही है।

योनि, हाथ, पाँव, वसन, भूषण— किसी पर भी दृष्टि नहीं। जैसे जीवन ही राममय है— राम के न रहने से, राम को न पाने से, प्राण नहीं बचेगा!''

मणि— जी हाँ, जैसे पागलिनी।

श्रीरामकृष्ण— उन्मादिनी!— आहा! ईश्वर को प्राप्त करना हो, तो पागल होना पड़ता है।

''कामिनी-काञ्चन में मन रहने पर नहीं होता। कामिनी के संग रमण,— उसमें क्या सुख! ईश्वर-दर्शन में रमण-सुख का करोड़-गुणा आनन्द होता है। गौरी कहता था, महाभाव हो जाने पर शरीर के सब छिद्र— लोमकूप पर्यन्त— महायोनि हो जाते हैं। एक-एक छिद्र में आत्मा के साथ रमण-सुख-बोध होता है।''

(गुरु पूर्णज्ञानी हों)

श्रीरामकृष्ण— व्याकुल होकर उन्हें पुकारना चाहिए। गुरु के मुख से सुन लेना चाहिए,— किस प्रकार उन्हें पाया जाता है।

''गुरु स्वयं पूर्णज्ञानी होने पर ही तब पथ दिखला सकता है।

पूर्णज्ञान होने पर वासना जाती है, पाँच वर्ष के बालक का स्वभाव हो जाता है। दत्तात्रेय और जड़भरत— इनका बालक-स्वभाव हो गया था।''

मणि— जी, इनका तो पता है;— और भी इन जैसे कितने ज्ञानी व्यक्ति हो गए हैं।

श्रीरामकृष्ण— हाँ! ज्ञानी की समस्त वासना चली जाती है,— जो रहती है उससे कोई हानि नहीं होती। पारस पत्थर को छूकर तलवार सोना हो जाती है,— तब फिर उस तलवार से हिंसा का काम नहीं होता। उसी प्रकार ज्ञानी का काम-क्रोध केवल दिखावे का रहता है, नाम-मात्र। उससे कोई अनिष्ट नहीं होता।

मणि— जी, आप जैसे कहते हैं, ज्ञानी तीन गुणों के अतीत होता है। सत्त्व,

रज, तम— किसी भी गुण के वश में नहीं। ये तीनों ही डाकू हैं।

श्रीरामकृष्ण— इनकी धारणा करनी चाहिए।

मणि— पूर्णज्ञानी पृथ्वी पर, बोध होता है, तीन-चार जन से अधिक नहीं हैं।

श्रीरामकृष्ण— क्यों? पश्चिम (पश्चिमी बंगाल) के मठों में अनेक साधु-संन्यासी दिखाई देते हैं।

मणि— जी, वह संन्यासी मैं भी हो सकता हूँ!

श्रीरामकृष्ण यह बात सुनकर कुछ क्षण मणि को एक दृष्टि से देख रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण *(मणि के प्रति)*— क्या सब छोड़कर?

मणि— माया बिना गए क्या होगा? माया को यदि जय न कर सके तो केवल संन्यासी होकर क्या होगा?

सब ही कुछ क्षण चुप रहे।

(त्रिगुणातीत भक्त जैसे बालक)

मणि— जी, त्रिगुणातीत भक्ति किसे कहते हैं?

श्रीरामकृष्ण— यह भक्ति हो जाने पर चिन्मय देखता है। चिन्मय श्याम। चिन्मय धाम। भक्त भी चिन्मय। सब चिन्मय। यह भक्ति कम लोगों में होती है।

डॉक्टर मधु *(सहास्य)*— त्रिगुणातीत भक्ति— अर्थात् भक्त किसी भी गुण के वशीभूत नहीं।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— हाँ! जैसे पाँच वर्ष का बालक— किसी गुण के वश में नहीं।

मध्याह्न-सेवा के बाद ठाकुर श्रीरामकृष्ण थोड़ा विश्राम कर रहे हैं। श्रीयुक्त मणिलाल मल्लिक ने आकर प्रणाम किया और फर्श पर आसन ग्रहण किया। मणि भी फर्श पर बैठे हैं। ठाकुर लेटे हुए मणिमल्लिक के संग बीच-बीच में कोई-कोई बात कर रहे हैं।

मणिमल्लिक— आप केशवसेन को देखने गए थे?

श्रीरामकृष्ण— हाँ— अब कैसे हैं?
मणिमल्लिक— कुछ ठीक नहीं।
श्रीरामकृष्ण— देखा था बड़ा राजसिक है, अनेक क्षण बैठा था,— तब फिर मिलना हुआ।

ठाकुर उठकर बैठ गए और भक्तों से बातें कर रहे हैं।

(श्रीमुख-कथित चरितामृत— ठाकुर 'राम'-'राम' करके पागल)

श्रीरामकृष्ण *(मणि के प्रति)*— मैं 'राम'-'राम' करते-करते पागल हो गया था। संन्यासी के देव 'रामलाला' को लिए-लिए फिरता था। उसे नहलाता, खिलाता, सुलाता। जहाँ जाना होता, संग-संग ले जाता। 'रामलाला', 'रामलाला' कर-करके पागल हो गया था।

पञ्चम परिच्छेद

(विल्ववृक्ष-तले और पञ्चवटी तले श्रीरामकृष्ण)

ठाकुर श्रीरामकृष्ण विल्ववृक्ष के निकट मणि के साथ बातें कर रहे हैं। समय प्राय: नौ का होगा।

आज बुधवार, 19 दिसम्बर, 1883 ईसवी। कृष्णा पञ्चमी तिथि।

विल्ववृक्ष ठाकुर की साधन-भूमि है, अति निर्जन स्थान। उत्तर में बारूदखाना और प्राचीर। पश्चिम में झाउ वृक्ष सर्वदा ही प्राण-उदासकारी साँ-साँ शब्द करते रहते हैं; उसके बाद ही भागीरथी। दक्षिण में पञ्चवटी दिखाई देती है। चारों ओर इतने वृक्ष-पौधे, देवालय दिखाई देते हैं।

श्रीरामकृष्ण *(मणि के प्रति)*— किन्तु कामिनी-काञ्चन त्याग बिना किए तो होगा नहीं।

मणि— क्यों? वशिष्ठ ऋषि ने तो रामचन्द्र जी से कहा था,— 'राम, संसार यदि ईश्वर के बिना हो तो फिर संसार-त्याग करो।'

श्रीरामकृष्ण *(ईषत् हँसकर)*— वह रावणवध के लिए!— जभी राम संसार में रहे— विवाह किया।

मणि निर्वाक् होकर काष्ठवत् खड़े रह गए।

ठाकुर श्रीरामकृष्ण यह बात कहकर अपने कमरे में लौट जाने के लिए पञ्चवटी की ओर चले।

(निराकार-साधन बड़ा कठिन)

ठाकुर श्रीरामकृष्ण पञ्चवटी तले मणि के साथ बातें कर रहे हैं। समय प्राय: 10 का हो गया है।

मणि— जी, निराकार-साधन क्या नहीं होता?

श्रीरामकृष्ण— होगा क्यों नहीं? वह पथ बड़ा कठिन* है। पहले के ऋषिगण अनेक तपस्या के द्वारा बोधे बोध किया करते थे,— ब्रह्म क्या वस्तु है, अनुभव करते थे। ऋषियों की मेहनत कितनी थी!— अपनी कुटीर से सुबह-सुबह निकल जाते,— समस्त दिन तपस्या करके सन्ध्या के पश्चात् फिर लौटते। तब फिर आकर थोड़ा-सा फल-मूल खाते।

"यह साधन ज़रा-सी भी विषयबुद्धि का लेशमात्र रहने से नहीं होगा! रूप, रस, गन्ध, स्पर्श,— ये सब विषय मन में बिल्कुल भी नहीं रहें। तब मन शुद्ध होगा। वह शुद्ध मन जो है शुद्ध आत्मा भी वही है। मन में कामिनी-काञ्चन बिल्कुल भी नहीं रहेगा—

"तब और एक अवस्था हो जाती है। 'ईश्वर ही कर्त्ता, मैं अकर्त्ता'— 'मैं' बिना हुए चलेगा नहीं, ऐसा ज्ञान नहीं रहेगा, सुख में दु:ख में।

"एक मठ के साधु को एक दुष्ट व्यक्ति ने मारा था,— वह बेहोश हो गया था। चैतन्य होने पर पूछा, कौन दूध पिला रहा है? तो वह बोला, जिन्होंने मुझे मारा था वे ही दूध पिला रहे हैं।"

मणि— जी हाँ, जानता हूँ।

---

* क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम्।
अव्यक्ता हि गतिर्दु:खं देहवद्भिरवाप्यते॥ (गीता 12:5)

(स्थितसमाधि और उन्मनासमाधि)

श्रीरामकृष्ण— नहीं, केवल जानना नहीं होगा; धारणा करनी चाहिए।

"विषय-चिन्ता मन को समाधिस्थ नहीं होने देती।

"विषयबुद्धि बिल्कुल त्याग हो जाने पर स्थितसमाधि होती है। मेरी स्थितसमाधि में देह छूट सकती है, किन्तु भक्ति, भक्त के लिए तनिक-सी वासना है। इसीलिए थोड़ा देह के ऊपर भी मन है।"

"और एक है उन्मनासमाधि। बिखरा हुआ मन हठात् इकट्ठा हो जाना। उसे तुम समझे?"

मणि— जी हाँ।

श्रीरामकृष्ण— बिखरा हुआ मन हठात् इकट्ठा हो जाना। यह समाधि अधिक क्षण नहीं ठहरती, विषय-चिन्ता आकर भंग कर देती है— योगी का योग भंग हो जाता है।

"वहाँ गाँव में दीवार के भीतर गड्ढे में नेवला रहता है। गर्त्त में जब रहता है तब अच्छे आराम से रहता है। कोई-कोई पूँछ में ईंट बाँध देते हैं— तब ईंट के जोर से गड्ढे में से बाहर आना पड़ता है। जितनी बार गर्त में जाकर आराम से बैठने की चेष्टा करता है— उतनी बार ही ईंट के जोर से बाहर आ गिरता है। ऐसे ही विषय-चिन्तन— योगी को योगभ्रष्ट करता है।

"विषयी व्यक्ति की कभी-कभी समाधि की अवस्था हो सकती है। सूर्योदय पर पद्म खिलता है, किन्तु सूर्य के मेघ से ढका जाने पर फिर से पद्म बन्द हो जाता है। विषय मेघ है।"

मणि— साधन करने पर ज्ञान और भक्ति क्या दोनों ही नहीं हो जाते?

श्रीरामकृष्ण— भक्ति को लेकर रहने पर दोनों ही हो जाते हैं। आवश्यकता होने पर, वे ही ब्रह्मज्ञान दे देते हैं। खूब ऊँचा घर होने पर एक आधार में दोनों ही हो सकते हैं।

अष्टम खण्ड

दक्षिणेश्वर-मन्दिर में
गुरुरूपी श्रीरामकृष्ण भक्तसंग में

प्रथम परिच्छेद

(समाधिमन्दिर में— ईश्वर-दर्शन और ठाकुर की परमहंस-अवस्था)

ठाकुर श्रीरामकृष्ण अपने कमरे के दक्षिणपूर्व के बरामदे में राखाल, लाटु, मणि, हरीश आदि भक्तों के संग में बैठे हुए हैं। समय नौ का होगा। रविवार, अगहन कृष्णा नवमी; 23 दिसम्बर, 1883 ईसवी।

मणि का गुरुगृह में वास का आज दसवाँ दिन है।

श्रीयुत मनोमोहन कोन्नगर से सुबह से आए हैं। ठाकुर का दर्शन करके और कुछ देर विश्राम करके फिर कलकत्ता लौट जाएँगे। हाजरा भी ठाकुर के पास बैठे हुए हैं। नीलकण्ठ-देश के एक वैष्णव ने ठाकुर को गाना सुनाया। उन्होंने पहले नीलकण्ठ का गाना गाया—

श्री गौरांग सुन्दर नव-नटवर तपत काञ्चन काय।
क'रे स्वरूप विभिन्न, लुकाइये चिह्न, अवतीर्ण नदीयाय।
कलिघोर अन्धकार विनाशिते, उन्नत उज्ज्वल रस प्रकाशिते,
तिन वांछा तिन वस्तु आस्वादिते, एसेछो तिनेरि दाय;—
से तिन परशे, विरस-हरषे, दरशे जगत माताय॥

नीलाब्ज हेमाब्जे करिये आवृत्त, ह्लादिनीर पूराओ देहभेदगत;
अधिरूढ़ महाभावे विभावित, सात्त्विकादि मिले जाय;
से भाव आस्वादनेर जन्य, कान्देन अरण्ये,
प्रेमेर वन्ये भेसे भेसे जाय॥

नवीन संन्यासी, सुतीर्थ अन्वेषी, कभु नीलाचले कभु जान काशी;
अयाचके देन प्रेम राशि राशि, नाहि जातिभेद ताय;
द्विज नीलकण्ठ भणे, एइ वांछा मने, कबे बिकार गौरेर पाय।

[भावार्थ— सुन्दर नव-नटवर श्री गौरांग का तप्तकाञ्चन के समान शरीर है। अब की बार वे भिन्न स्वरूप लेकर, पहले के चिह्न छिपाकर, नदिया में अवतीर्ण हुए हैं। कलिकाल का घोर अन्धकार विनाश करने के लिए और उन्नत तथा उज्ज्वल प्रेम-रस के प्रकाशन के लिए, एवं तीन इच्छाएँ, तीन वस्तु-आस्वादन के लिए तीनों की जिम्मेवारी लेकर आए हैं;— उन तीनों को स्पर्श करके, विशेष प्रेम-रस से हर्षित होकर देखने से जगत मतवाला हो जाता है।

अब की बार (कृष्णावतार की) नीली देह को तुम सुनहरी-काञ्चन (राधा) जैसी देह में आवृत्त करके आए हो। तुम महाभाव में समारूढ़ हो गए हो और सात्त्विक आदि भाव तुम में मिल गए हैं। उस भाव के आस्वादन के लिए वनों में क्रन्दन करते फिरते हो तथा प्रेम-रस की बाढ़ आ रही है।

तुम नवीन संन्यासी, सुतीर्थों के अन्वेषी (खोजी) कभी नीलाचल तथा कभी काशी जाते हो; अयाचकों को जाति-भेद बिना ढेरों-ढेरों प्रेम बाँट रहे हो। द्विज नीलकण्ठ कहता है, मन में यही इच्छा है कि कब गौर के चरणों में बिकूँगा।]

अगला गाना मानस-पूजा के सम्बन्ध में था।

श्रीरामकृष्ण *(हाजरा के प्रति)*— यह गाना (मानस-पूजा) किस प्रकार का लगा?

हाजरा— यह साधक का नहीं,— ज्ञानदीप; ज्ञान-प्रतिमा!

(पञ्चवटी में तोतापुरी का क्रन्दन— पद्मलोचन का क्रन्दन)

श्रीरामकृष्ण— मुझे कैसा-कैसा बोध हुआ!

"पहले के सब गाने यथार्थ (ठीक-ठीक) हैं। पञ्चवटी में न्याँगटा (तोतापुरी नागा) के निकट मैंने गाया था—

'जीव साज समरे, रणवेशे काल प्रवेशे तोर घरे।'*

[हे जीव, युद्ध के लिए तैयार हो जा। रणवेश में काल तेरे घर में प्रवेश कर चुका है।]

* परिशिष्ट-2 में पूरा गाना है।

"और एक गाना—

'दोष कारू नय गो मा, आमि स्वखात सलिले डुबे मरि श्यामा!'[1]

[हे माँ, दोष किसी का नहीं है, मैं अपने ही खोदे हुए (गढ़े) के जल में डूबकर मर रहा हूँ।]

"न्याँगटा (तोतापुरी नागा) इतना ज्ञानी,— अर्थ बिना समझे ही रोने लगा।

"इन सब गानों में कैसी ठीक बातें हैं— 'भावो श्रीकान्त नरकान्त-कारीरे नितान्त कृतान्त भयान्त हबि!'[2]

[हे जीव, नरक-अन्तकारी श्रीकान्त का चिन्तन करो, तब तुम अत्यन्त भयंकर यमराज से भी भयरहित हो जाओगे।]

"पद्मलोचन मेरे मुख से रामप्रसाद का गाना सुनकर रोने लगा। देखो, इतना बड़ा पण्डित!"

(God-vision— One and Many; Unity in Diversity— ठाकुर श्रीरामकृष्ण और विशिष्टाद्वैतवाद)

आहार के बाद ठाकुर ने थोड़ा विश्राम किया है। फर्श पर मणि बैठे हुए हैं। नहबत की रोशनचौकी (शहनाई) बजती सुनते-सुनते ठाकुर आनन्द कर रहे हैं।

श्रवण के पश्चात् मणि को समझा रहे हैं, 'ब्रह्म ही जीव-जगत हो कर रह रहे हैं'।

श्रीरामकृष्ण *(मणि के प्रति)*— कोई कहता है, अमुक स्थान पर हरि-नाम नहीं है। कहते मात्र ही देखा, वे ही सब जीव-जगत[3] होकर रह रहे हैं। जैसे असंख्य जल के— बुलबुले— जल का बिम्ब! और देखता हूँ जैसे असंख्य गोलियाँ ही गोलियाँ!

"उस गाँव से वर्धमान आते-आते दौड़कर एक बार मैदान की ओर गया,— देखने के लिए कि यहाँ पर जीवगण कैसे खाते हैं, कैसे रहते हैं!—

1,2 परिशिष्ट-2 में पूरा गाना है।

3 सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शन:॥ (गीता 6:29)

जाकर देखता हूँ, मैदान में च्यूँटियाँ चल रही हैं! सब स्थानों पर ही चैतन्य!''

हाजरा कमरे में प्रवेश करके फर्श पर बैठ गए।

श्रीरामकृष्ण— नाना फूल— पत्तियाँ, भाँत-भाँत* की, वे भी देखीं!— छोटे बिम्ब, बड़े बिम्ब!

ये सब ईश्वरीय रूप-दर्शन बताते-बताते ठाकुर समाधिस्थ हो रहे हैं। कह रहे हैं,

''मैं हुआ हूँ! मैं आया हूँ!''

यह बात कहते ही एकदम समाधिस्थ हो गए। समस्त स्थिर! अनेक क्षण सम्भोग के बाद बाहर का थोड़ा होश आ रहा है।

अब बालक की न्यायीं हँस रहे हैं। हँसते-हँसते कमरे के मध्य पादचारण (चहलकदमी) कर रहे हैं।

(क्षोभ, वासना जाने से ही परमहंस अवस्था—
साधन-काल में बटतले पर परमहंस-दर्शन— कथा)

अद्‌भुत दर्शन के पश्चात् आँखों से जिस प्रकार आनन्द-ज्योति निकलती है, उसी प्रकार ठाकुर की आँखों का भाव हो गया। मुख पर हास्य। शून्य दृष्टि।

ठाकुर टहलते-टहलते बोल रहे हैं,—

''बटतले का परमहंस देखा— इसी प्रकार हँसता हुआ चल रहा था!— वही स्वरूप क्या मेरा हो गया है!''

इस प्रकार पादचारण के पश्चात् ठाकुर छोटी खाट पर जाकर बैठ गए और जगन्माता के साथ बातें कर रहे हैं।

ठाकुर कह रहे हैं,—

''ठहर, मैं जानना भी नहीं चाहता!— माँ, तुम्हारे पादपद्मों में जैसे शुद्धा भक्ति रहे!''

---

* आत्मनि चैयम् विचित्राश्च हि। वेदान्त सूत्र— 28-1, 2

(मणि के प्रति)— क्षोभ, वासना जाने के पश्चात् ही ऐसी अवस्था!

और फिर माँ से कह रहे हैं—

"माँ! पूजा हटा ली है;— सब वासना जैसे न जाए! माँ, परमहंस तो बालक है— बालक को क्या माँ नहीं चाहिए? जभी तुम माँ, मैं पुत्र। माँ का पुत्र माँ को छोड़कर किस प्रकार रहे!"

ठाकुर ऐसे स्वर में माँ के संग में बातें कर रहे हैं,— कि पत्थर तक विगलित हो जाए। और फिर माँ से कह रहे हैं,—

"माँ! केवल अद्वैत ज्ञान! ह्याक थू!! जब तक 'मैं' रखे हुए हो तब तक 'तुम' हो! परमहंस तो बालक है, बालक को क्या माँ नहीं चाहिए?"

मणि अवाक् होकर ठाकुर की यह देवदुर्लभ अवस्था देख रहे हैं। सोच रहे हैं ठाकुर हैं अहेतुक कृपासिन्धु। उनके ही विश्वास के लिए— उनके ही चैतन्य के लिए— और— जीवशिक्षा के लिए गुरुरूपी ठाकुर श्रीरामकृष्ण की है यह परमहंस अवस्था।

मणि और भी सोच रहे हैं—

'ठाकुर कहते हैं, अद्वैत— चैतन्य— नित्यानन्द। अद्वैतज्ञान होने पर चैतन्य होता है— तब ही नित्यानन्द होता है।'

ठाकुर का केवल अद्वैतज्ञान नहीं,— नित्यानन्द की अवस्था है। जगन्माता के प्रेमानन्द में सर्वदा ही विभोर,— मतवाले रहते हैं!

हाजरा ठाकुर की यह अवस्था हठात् देखकर हाथ जोड़कर बीच-बीच में कहने लगे— 'धन्य! धन्य!'

श्रीरामकृष्ण हाजरा से कहते हैं—

"तुम्हारा विश्वास कहाँ? किन्तु तुम यहाँ पर हो जैसे जटिला-कुटिला थीं— लीला की पुष्टि के लिए।"

शाम हो गई है। मणि एकाकी देवालय में निर्जन में घूम रहे हैं। ठाकुर श्रीरामकृष्ण की यह अद्भुत अवस्था सोच रहे हैं। और सोच रहे हैं,

ठाकुर ने क्यों कहा है, 'क्षोभ, वासना जाने पर ही ऐसी अवस्था।' ये गुरुरूपी ठाकुर श्रीरामकृष्ण कौन हैं? स्वयं भगवान क्या हमारे लिए देह धारण करके आए हैं? ठाकुर कहते हैं, ईश्वरकोटि— अवतारादि— न हो तो जड़समाधि (निर्विकल्प समाधि) से उतरकर नहीं आ सकते।

द्वितीय परिच्छेद

(गुह्य कथा)

आहुस्त्वामृषयः सर्वे देवर्षिनारदस्तथा।
असितो देवलो व्यासः स्वयं चैव ब्रवीषि मे॥ [गीता 10:13]

दूसरे दिन ठाकुर श्रीरामकृष्ण झाउतले पर मणि के साथ एकाकी बातें कर रहे हैं। समय आठ का होगा। सोमवार, कृष्णपक्ष की दशमी तिथि; 24 दिसम्बर, 1883 ईसवी। आज मणि का प्रभुसंग में ग्यारहवाँ दिन है।

शीतकाल। सूर्यदेव पूर्वकोण में अभी उदित हुए हैं। झाउतले के पश्चिम की ओर गंगा बह रही है। अब उत्तरवाहिनी है— अभी ज्वार आई है। चारों ओर वृक्षलता। अनतिदूर (समीप में) साधना का स्थान वही विल्वतरु-मूल दिखाई देता है। ठाकुर पूर्वास्य हुए बातें कर रहे हैं। मणि उत्तरास्य हुए विनीतभाव में सुन रहे हैं। ठाकुर के दायीं ओर पञ्चवटी और हंसपुकुर हैं। शीतकाल-सूर्योदय से जगत मानो हँस रहा है। ठाकुर ब्रह्मज्ञान की बातें बोल रहे हैं।

(तोतापुरी का ठाकुर के प्रति ब्रह्मज्ञान का उपदेश)

श्रीरामकृष्ण— निराकार भी सत्य और साकार भी सत्य।

"न्याँगटा (तोतापुरी, नागा) उपदेश देता था,— सच्चिदानन्द ब्रह्म कैसा है। जैसे अनन्त सागर— ऊर्ध्वे-नीचे, दाहिने-बायें, जल ही जल है। कारण— जल। जल स्थिर।— कार्य होने पर तरंग। सृष्टि-स्थिति-प्रलय— कार्य।

''और फिर कहता, विचार जहाँ पर जाकर थम (ठहर) जाता है, वही ब्रह्म है। जैसे कर्पूर जलाने पर जल जाता है, तनिक राख भी नहीं रहती।

''ब्रह्म वाक्य, मन के अतीत है। नमक का पुतला समुद्र मापने गया था। आकर फिर खबर नहीं दी। समुद्र में ही गल गया।

''ऋषियों ने राम से कहा— राम, भरद्वाज आदि तुम्हें अवतार कह सकते हैं। किन्तु हम वैसा नहीं कहते। हम शब्दब्रह्म की उपासना करते हैं। हम मानुषरूप नहीं चाहते। राम थोड़ा-सा हँसकर, प्रसन्न होकर उनकी पूजा ग्रहण करके चले गए।''

(नित्य, लीला— दोनों ही सत्य)

''किन्तु जिनका नित्य है, उनकी ही लीला है। जैसे कहा था, छत और सीढ़ी। ईश्वर-लीला, देव-लीला, नर-लीला, जगत-लीला। नर-लीला में अवतार। नर-लीला कैसी है, जानते हो? जैसे बड़ी छत का जल नाली द्वारा हड़हड़ करके (बड़ी तेजी से) गिरता है। वही सच्चिदानन्द, उनकी ही शक्ति एक प्रणाली द्वारा— नाले के भीतर से— आती है। केवल भरद्वाज आदि बारह जन ऋषियों ने रामचन्द्र को अवतार कह कर पहचाना था। अवतार को सब पहचान नहीं सकते।''

(ठाकुर श्रीरामकृष्ण क्या अवतार? श्रीमुख-कथित चरितामृत— क्षुदिराम का गयाधाम में स्वप्न— हृदय की माँ द्वारा ठाकुर-पूजा— ठाकुर के मध्य मथुर का ईश्वरीय-दर्शन— फुलुई श्यामबाजार में श्री गौरांग का आवेश)

श्रीरामकृष्ण *(मणि के प्रति)*— वे अवतार होकर ज्ञान-भक्ति सिखाते हैं। अच्छा, मेरे लिए तुम्हें कैसा बोध होता है?

''मेरे पिता गया में गए थे। वहाँ पर रघुवीर ने स्वप्न दिया— मैं तुम्हारा पुत्र होऊँगा। पिता स्वप्न देखकर बोले, 'प्रभु! मैं दरिद्र ब्राह्मण, किस प्रकार तुम्हारी सेवा करूँगा!' रघुवीर बोले— वह हो जाएगी।

''दीदी— हृदय की माँ— मेरे पाँवों की पूजा फूल–चन्दन द्वारा किया करती थीं। एक दिन उनके सिर पर पाँव लगाकर (माँ ने) कहा, तेरी काशी में ही मृत्यु होगी।

''सेजोबाबू (मथुर) ने कहा, 'बाबा! तुम्हारे भीतर और कुछ नहीं है,— वे ईश्वर ही हैं। देह तो केवल खोल मात्र है,— जैसे बाहर कद्दू का आकार है किन्तु भीतर गूदा–बीज कुछ भी नहीं। तुम्हें देखा, मानो घूँघट काढ़े कोई चला जा रहा है।'

''पहले से ही सब दिखा देते हैं। बटतले (पञ्चवटीतले) गौरांग के संकीर्त्तन के दल में देखा था। उसमें जैसे बलराम को देखा था,— और जैसे तुम्हें देखा था।

''गौरांग का भाव जानना चाहता था। वहाँ देश में— श्यामबाजार में— दिखलाया। वृक्षों पर, प्राचीर पर लोग,— रातदिन संग–संग लोग! सात दिन हगने के लिए भी (समय) नहीं था। तब माँ से कहा, और काम नहीं है क्या? इसीलिए अब शान्त है।

''और एक बार आना होगा। जभी तो पार्षदों को सब ज्ञान नहीं देता। *(सहास्य)* तुम लोगों को यदि सब ज्ञान दे दूँ— तब तो फिर तुम लोग सहज में आसानी से क्यों मेरे पास आओगे?

''तुम्हें पहचान लिया है— तुम्हारा चैतन्य भागवत–पाठ सुनकर। तुम अपने जन हो— एक सत्ता— जैसे पिता और पुत्र। यहाँ पर सब आ रहे हैं— जैसे कलमी बेल पौधों का समूह— एक स्थान से खींचने पर सबका सब आ जाता है। परस्पर सब आत्मीय— जैसे भाई–भाई। राखाल, हरीश आदि जगन्नाथ गए हैं, फिर तुम भी जाओ— तो क्या अलग वासा होगा?

''जितने दिन यहाँ पर नहीं आए थे, उतने दिन भूले हुए थे; अब अपने को पहचान सकोगे। वे गुरुरूप में आकर जनवा देते हैं।''

(तोतापुरी का उपदेश— गुरुरूपी श्री भगवान स्वस्वरूप जनवाते हैं)

''न्याँगटा ने शेर और बकरियों के दल की कहानी सुनाई थी। एक शेरनी ने बकरियों के समूह पर आक्रमण किया था। एक व्याध (शिकारी) ने उसे दूर से देखकर मार दिया। उसके पेट में बच्चा था, वह पैदा हो गया। वह बच्चा बकरियों के संग बड़ा होने लगा। पहले बकरियों की माँ का दूध पीता रहा,— उसके पश्चात् कुछ बड़ा होने पर घास खाना आरम्भ किया। और फिर बकरियों की भाँति म्याँ-म्याँ करता है। क्रमश: खूब बड़ा हो गया— किन्तु घास खाता और म्याँ-म्याँ किया करता। किसी जानवर के आक्रमण करने पर बकरियों की भाँति भागता।

''एक दिन एक भयंकर बाघ ने बकरियों के उस झुण्ड पर आक्रमण किया। उसने अवाक् होकर देखा कि उनके भीतर एक बाघ घास खा रहा है,— बकरियों के संग-संग दौड़ रहा है। तब बकरियों को बिना कुछ कहे इसी घासखेको (घास खाने वाले) बाघ को पकड़ लिया। वह म्याँ-म्याँ करने लगा! और भागने की चेष्टा करने लगा। तब वह उसे खींचकर जल के किनारे ले गया और बोला, 'इस जल के भीतर अपना मुख देख। देख, जैसा मेरा हाण्डी जैसा मुख है, तेरा भी वैसा ही है।' उसके पश्चात् उसके मुख में थोड़ा-सा माँस घुसेड़ (ठूँस) दिया। पहले तो उसने किसी भी तरह से खाना नहीं चाहा;— उसके बाद थोड़ा-सा स्वाद पाकर खाने लगा। तब बाघ ने कहा, 'तू बकरियों के साथ था और तू उनकी भाँति घास खा रहा था! तुझे धिक्कार है!' तब वह लज्जित हुआ।

''घास खाना अर्थात् कामिनी-काञ्चन लेकर रहना। बकरी की भाँति म्याँ-म्याँ करके पुकारना और भागना है सामान्य जीव की भाँति आचरण करना! बाघ के संग में चले जाना, अर्थात् गुरु जिन्होंने चैतन्य करवा दिया; उनके शरणागत होना, उनको ही आत्मीय (अपना) करके जानना; अपना ठीक मुख देखना अर्थात् स्वस्वरूप को पहचानना।''

ठाकुर खड़े हो गए। चारों ओर निस्तब्ध! केवल झाउ-वृक्षों का सौं-सौं शब्द और गंगा की कल-कल ध्वनि! वे रेल पार करके पञ्चवटी के

बीच से मणि के साथ बातें करते–करते अपने घर की ओर जा रहे हैं। मणि मन्त्रमुग्धवत् संग–संग जा रहे हैं।

(ठाकुर श्रीरामकृष्ण का वटतले प्रणाम)

पञ्चवटी में आकर, जहाँ पर डाल गिर गई है, वहाँ पर खड़े होकर पूर्वास्य होकर वटवृक्ष के मूल में, चबूतरे को मस्तक द्वारा स्पर्श करके प्रणाम किया। यही स्थान साधना का स्थान है;— यहाँ पर कितना व्याकुल होकर क्रन्दन— कितना ईश्वरीय रूप–दर्शन, और माँ के संग में कितनी बातें हुई हैं!— इसीलिए क्या ठाकुर जब यहाँ पर आते हैं, तब प्रणाम करते हैं ?

बकुलतले से होकर नहबत के निकट आ गए हैं। मणि संग में हैं। नहबत के निकट आकर हाजरा को देखा। ठाकुर उनसे कह रहे हैं—

'अधिक मत खाना। और शुचिबाई (सुच–सुच का वहम) छोड़ दो। जिन्हें शुचिबाई होती है, उन्हें ज्ञान नहीं होता। आचार भी जितना प्रयोजनीय है, उतना ही करोगे। अधिक बढ़ा–चढ़ा कर मत करो।'

ठाकुर अपने कमरे में जाकर बैठ गए।

तृतीय परिच्छेद

(राखाल, राम, सुरेन्द्र, लाटु आदि भक्तों के संग में)

आहारान्ते ठाकुर थोड़ा विश्राम कर रहे हैं। आज 24 दिसम्बर। बड़े दिनों की छुट्टियाँ आरम्भ हो गई हैं। कलकत्ता से सुरेन्द्र, राम आदि भक्त क्रमशः आ रहे हैं।

समय एक का होगा। मणि एकाकी झाउतले पर टहल रहे हैं। इस समय रेल के निकट खड़े हुए हरीश उच्च स्वर से मणि से कह रहे हैं— प्रभु बुला रहे हैं,— शिवसंहिता पढ़ी जाएगी।

शिवसंहिता में योग की बातें हैं,— षटचक्र की बात है।

मणि ठाकुर के कमरे में आकर प्रणाम करके बैठ गए। ठाकुर खाट के ऊपर हैं, भक्तगण फर्श के ऊपर बैठे हैं। शिवसंहिता फिर अब नहीं पढ़ी गई। ठाकुर स्वयं ही बातें कर रहे हैं।

(प्रेमाभक्ति और श्रीवृन्दावन-लीला— अवतार और नर-लीला)

श्रीरामकृष्ण— गोपियों की प्रेमाभक्ति। प्रेमाभक्ति में दो चीजें होती हैं— अहंता और ममता। मैं कृष्ण की सेवा न करूँ तो कृष्ण को असुख होगा— इसका नाम अहंता है। इसमें ईश्वर-बोध नहीं रहता।

''ममता— 'मेरा-मेरा' करना। पीछे कोई आघात लगे, गोपियों की इतनी ममता थी कि उनका सूक्ष्म शरीर श्रीकृष्ण के चरणतले रहता।

''यशोदा कहती हैं, तुम्हारे चिन्तामणि कृष्ण को मैं नहीं जानती,— मेरे तो गोपाल हैं। गोपियाँ भी कहती हैं, 'कहाँ है मेरा प्राणवल्लभ! मेरा हृदयवल्लभ!' ईश्वर-बोध नहीं।

''जैसे छोटे लड़कों को देखा है, कहते हैं, 'मेरा पिता'। यदि कोई कहे, 'नहीं, तेरा बाबा' (पिता) नहीं;— उस पर कहेगा, 'ना, मेरा बाबा'।

''नर-लीला में अवतार को ठीक मनुष्य की तरह आचरण करना चाहिए,— तभी पहचानना बड़ा कठिन है। मनुष्य हुए हैं तो ठीक मनुष्य। वही भूख-प्यास, रोग-शोक, अथवा कभी भय— ठीक मनुष्य के जैसा। रामचन्द्र सीता के शोक में कातर हो गए थे। गोपाल नन्द का जूता सिर पर रखकर ले गए थे— पीढ़ा उठाकर ले गए।

''थियेटर में साधु बनता है तो साधु के जैसा व्यवहार करेगा,— जो राजा सजता (बनता) है वह उसके जैसा व्यवहार नहीं करेगा? जो बना है वही अभिनय करेगा।

''एक बहुरूपिया 'त्यागी साधु' बना था। सजावट (पोशाक) ठीक हुई देखकर बाबुओं ने एक रुपया देना चाहा। उसने नहीं लिया, ऊँहू करके चला गया। मुख-हाथ-पाँव धोकर जब सहज वेश में आया, तब बोला, 'रुपया दो'। बाबू बोले, 'अभी तो तुम कहकर चले गए थे कि रुपया नहीं

लूँगा, और अब रुपया माँगते हो?' वह बोला, 'तब साधु बना हुआ था, रुपया नहीं लेना था।'

''वैसे ही ईश्वर हैं, जब मनुष्य होते हैं, ठीक मनुष्य जैसा ही व्यवहार करते हैं।

''वृन्दावन में जाने पर अनेक लीलाओं के स्थान दिखते हैं।''

(सुरेन्द्र के प्रति उपदेश— भक्त-सेवार्थ दान और सत्यवाणी)

सुरेन्द्र— मैं छुट्टी में गया था; 'पैसा दो', 'पैसा दो' बहुत करते हैं। 'दो'-'दो' करने लगे— पण्डे लोग सब। उनसे कहा, 'मैं कल कलकत्ता जाऊँगा' कहकर, उसी दिन भाग लिया।

श्रीरामकृष्ण— वह क्या! छि:! छि:! 'कल जाऊँगा' कहकर आज भागना! छि:!

सुरेन्द्र *(लज्जित होकर)*— वन में बीच-बीच में बाबाजिओं को देखा था, निर्जन में बैठकर ध्यान-भजन कर रहे थे।

श्रीरामकृष्ण— बाबाजियों को कुछ दिया?

सुरेन्द्र— जी नहीं।

श्रीरामकृष्ण— यह अच्छा नहीं किया। साधु-भक्तों को कुछ देना चाहिए। जिनके पास रुपया पैसा है, उन्हें ऐसा व्यक्ति सामने पड़ने पर कुछ देना चाहिए।

(श्रीमुख कथित चरितामृत— मथुर के संग वृन्दावन-दर्शन, 1868 ईसवी)

''मैं वृन्दावन गया था— सेजोबाबू के संग में।

''मथुरा का ध्रुव घाट ज्योंहि देखा त्योंहि दप् से दर्शन हो गया, वसुदेव कृष्ण को गोद में लिए हुए यमुना पार कर रहे हैं।

''और फिर सन्ध्या के समय यमुना के तट पर टहल रहा हूँ, रेत के ऊपर छोटे-छोटे झोंपड़े। बड़े-बड़े बेर के वृक्ष। गोधूलि के समय गायें चरागाहों से लौटकर आ रही हैं। देखा, पैदल यमुना-पार हो रही हैं। उसके बाद कितने ही राखाल (ग्वाले) गौवों को लेकर पार हो रहे हैं।

''ज्योंहि देखा, त्योंहि 'कहाँ कृष्ण!' बोलकर बेहोश हो गया।

''श्यामकुण्ड, राधाकुण्ड-दर्शन करने की इच्छा हुई थी। पालकी द्वारा मुझे भेज दिया। पथ बहुत था; पूरी-जलेबी पालकी में रख दीं। पार होते समय यह कहकर रोने लगा, 'कृष्ण रे! तू नहीं है, किन्तु वे ही सब स्थान हैं। वे ही मैदान हैं, जहाँ तुम गौवें चराया करते थे!'

''हृदय मार्ग में संग-संग पीछे आ रहा था। मेरी आँखों से जल बहने लगा। कहारों से खड़े होने के लिए न कह सका!

''जाकर श्यामकुण्ड, राधाकुण्ड देखे, साधुओं ने एक-एक झोंपड़ी जैसी बना रखी थी;— उनके भीतर पीठ फेरकर साधन-भजन कर रहे थे, पीछे लोगों के ऊपर नजर पड़े। द्वादश वन देखने योग्य हैं।

''बांके बिहारी को देखकर भाव हुआ था, मैं उन्हें पकड़ने के लिए गया। गोविन्द जी को दो बार देखने की चाह नहीं हुई। मथुरा में राखाल (गोपाल)कृष्ण को स्वप्न में देखा था। हृदय और सेजोबाबू (मथुरबाबू) ने भी देखा था।''

(देवी-भक्त श्रीयुक्त सुरेन्द्र— योग और भोग)

''तुम्हारा योग भी है, भोग भी है।

''ब्रह्मर्षि, देवर्षि, राजर्षि। ब्रह्मर्षि जैसे शुकदेव— एक पुस्तक भी पास नहीं। देवर्षि— जैसे नारद। राजर्षि हैं जनक, निष्काम कर्म करते हैं।

''देवी-भक्त धर्म, मोक्ष दोनों ही प्राप्त करता है और फिर अर्थ, काम भी भोग करता है।

''तुम्हें एक दिन 'देवी-पुत्र' देखा था। तुम्हारे दोनों ही हैं, योग और भोग। न होने से तुम्हारा चेहरा शुष्क होता।''

(घाट पर ठाकुर का देवी-भक्त-दर्शन—
नवीन नियोगी का योग और भोग)

"सर्वत्यागी का चेहरा शुष्क होता है। घाट पर एक देवी-भक्त देखा था। स्वयं खा रहा है और साथ-साथ देवी-पूजा भी कर रहा है। सन्तान-भाव था।

"तो भी अधिक रुपया होना अच्छा नहीं। यदुमल्लिक को अब देखा है, डूब गया है! रुपया अधिक हो गया है ना!

"नवीन नियोगी,— उसके भी योग और भोग दोनों ही हैं। दुर्गा-पूजा के समय देखा, बाप-बेटा दोनों ही चँवर डुलाते हैं।"

सुरेन्द्र— जी, ध्यान क्यों नहीं होता?
श्रीरामकृष्ण— स्मरण-मनन तो है?
सुरेन्द्र— जी, माँ-माँ कहता हुआ सो जाता हूँ।
श्रीरामकृष्ण— खूब भला है। स्मरण-मनन रहने से ही हुआ।

ठाकुर ने सुरेन्द्र का भार ले लिया है, फिर उन्हें क्या चिन्ता?

चतुर्थ परिच्छेद

(ठाकुर श्रीरामकृष्ण और योग-शिक्षा— शिवसंहिता)

सन्ध्या के पश्चात् ठाकुर भक्तों के संग बैठे हैं। मणि भी भक्तों के साथ फर्श पर बैठे हुए हैं। योग के विषय— षडचक्र के विषय पर बातें कर रहे हैं। शिवसंहिता में वे सब बातें हैं।

श्रीरामकृष्ण— ईड़ा, पिंगला, सुषुम्ना— सुषुम्ना के भीतर सब पद्म हैं— चिन्मय। जैसे मोम का वृक्ष— डालें, टहनियाँ, फल— सब मोम के। मूलाधार पद्म में कुलकुण्डलिनी शक्ति है। चतुर्दल पद्म। जो आद्याशक्ति हैं वे ही सबके शरीरों में कुलकुण्डलिनी रूप में हैं। जैसे सोया हुआ साँप कुण्डली

मारे रहता है—

'प्रसुप्त भुजगाकारा आधारपद्मवासिनी!'

(मणि के प्रति)— ''भक्तियोग में कुलकुण्डलिनी शीघ्र जाग्रत होती है। किन्तु यदि वह जाग्रत न हो तो भगवान-दर्शन नहीं होते। गाना गाते-गाते एकाग्रता के साथ गाओगे— निर्जन में गोपन में—

जागो माँ कुलकुण्डलिनी, तुमि नित्यानन्द स्वरूपिणी।
प्रसुप्त भुजगाकारा आधार-पद्मवासिनी।*

[भावार्थ— हे माँ कुल कुण्डलिनी, जागो। आप तो नित्यानन्द स्वरूपिणी हो। माँ, आप ब्रह्मानन्द स्वरूपिणी हो। आप सोए हुए सर्प के आकार वाली हो और आधार (मूलाधार) में पद्मवासिनी हो।

''गानों में रामप्रसाद सिद्ध हैं। व्याकुल होकर गाना गाने से ईश्वर-दर्शन होता है!''

मणि— जी, एक बार ये सब कर लेने से मन का खेद मिट जाता है!

श्रीरामकृष्ण— आहा! खेद मिटता है, निश्चय।

''योग के विषय में कुछ-कुछ मोटी-मोटी बातें (दो-चार) तुम्हें बता देनी होंगी।''

(गुरु ही सब करते हैं— साधना और सिद्धि— नरेन्द्र स्वतः सिद्ध)

''कैसे है जानते हो, अण्डे के भीतर बच्चा (चूजा) न होने तक पक्षी चोंच नहीं मारता। समय होने पर ही पक्षी अण्डे को फोड़ता है।

''किन्तु थोड़ी साधना करनी आवश्यक है। गुरु ही सब करते हैं,— तो भी अन्त में थोड़ी साधना करवा लेते हैं। बड़े वृक्ष को काटने के समय प्रायः सारा कट जाने पर थोड़ा-सा हट कर खड़ा होना होता है। उसके पश्चात् वृक्ष मड़मड़ करके अपने-आप ही टूट कर गिर पड़ता है।

''जब नहर काटकर जल लाते हैं, और जब थोड़ा-सा काटते ही नदी

---

* परिशिष्ट-2 में पूरा गाना है।

के संग योग हो जाता है, तब जो काटता है वह हट कर खड़ा हो जाता है। तब मिट्टी भीगकर अपने आप गिर जाती है, और नदी का जल हड़हड़ करके नहर में आ जाता है।

"अहंकार, उपाधि इन सबका त्याग होने पर ही ईश्वर का दर्शन किया जाता है। 'मैं विद्वान, मैं अमुक का पुत्र', 'मैं धनी, मैं मानी'— यह सब उपाधियाँ छूटने पर ही दर्शन।

"ईश्वर सत्य और सब अनित्य, संसार अनित्य— इसका नाम है विवेक। विवेक बिना हुए उपदेश ग्रहण नहीं होता।

"साधना करते-करते उनकी कृपा से सिद्ध हो जाता है। थोड़ा परिश्रम चाहिए। उसके बाद ही दर्शन और आनन्द-प्राप्ति।

"एक स्थान पर सोने की कलसी रखी है, सुनकर व्यक्ति दौड़कर जाता है और खोदना आरम्भ करता है। खोदते-खोदते माथे से पसीना गिरने लगता है। अनेक खोदने पर एक जगह फावड़े से ठन् करके शब्द हुआ; फावड़ा फेंककर देखता है, कलसी निकली है कि नहीं। कलसी देखकर नाचने लगता है।

"कलसी बाहर निकाल कर मोहरें उँडेलकर हाथ में लेकर गिनता है, और खूब आनन्द! दर्शन, स्पर्शन, सम्भोग! कैसे?"

मणि— जी हाँ।

ठाकुर थोड़ा चुप रहे और फिर बातें कर रहे हैं—

(मेरा अपना जन कौन? एकादशी करने का उपदेश)

"मेरे जो अपने जन हैं, उन्हें डाँटने पर भी वे फिर आवेंगे।

"आहा, नरेन्द्र का कैसा स्वभाव है! पहले माँ काली के लिए जो चाहे बोल देता था; मैंने विरक्त (परेशान) होकर एक दिन कह दिया, 'साले, तू फिर यहाँ पर मत आ।' तब वह धीरे-धीरे जाकर हुक्का बनाने लगा। जो अपना व्यक्ति है, वह तिरस्कार करने पर भी क्रोध नहीं करेगा। क्या कहते

हो ?''

मणि— जी, हाँ।

श्रीरामकृष्ण— नरेन्द्र स्वत: सिद्ध,— निराकार में निष्ठा है।

मणि *(सहास्य)*— जब आता है एक न एक काण्ड साथ लाता है।

ठाकुर आनन्द में हँस रहे हैं, कह रहे हैं, 'एक न एक काण्ड ही सचमुच।'

अगला दिन, मंगलवार, 25 दिसम्बर, कृष्णपक्ष की एकादशी। समय प्राय: ग्यारह का होगा। ठाकुर की अभी तक भी सेवा (भोजन) नहीं हुई। मणि और राखाल आदि भक्तगण ठाकुर के कमरे में बैठे हुए हैं।

श्रीरामकृष्ण *(मणि के प्रति)*— एकादशी रखना अच्छा है। उससे मन बड़ा पवित्र हो जाता है और ईश्वर में भक्ति होती है। है ना?

मणि— जी, हाँ।

श्रीरामकृष्ण— खील-दूध खाओगे, क्यों?

नवम खण्ड

दक्षिणेश्वर-मन्दिर में राखाल आदि भक्तों के संग में

प्रथम परिच्छेद

(दक्षिणेश्वर-मन्दिर में राखाल, राम, केदार आदि भक्तों के संग में— वेदान्तवादी साधु के संग ब्रह्मज्ञान की बातें)

ठाकुर श्रीरामकृष्ण गाड़ी में बैठ रहे हैं— कालीघाट-दर्शन के लिए जाएँगे। श्रीयुक्त अधरसेन के घर होकर जाएँगे— अधर भी वहाँ से संग में जाएँगे। आज शनिवार, अमावस्या; 29 दिसम्बर, 1883 ईसवी। समय एक का होगा। गाड़ी उनके कमरे के उत्तर के बरामदे के निकट खड़ी हुई है। मणि गाड़ी के द्वार के पास आकर खड़े हो गए हैं।

मणि *(श्रीरामकृष्ण के प्रति)*— जी, मैं चलूँ क्या ?
श्रीरामकृष्ण— क्यों ?
मणि— एक बार कलकत्ता के घर में हो आता।
श्रीरामकृष्ण *(चिन्तित होकर)*— तो फिर जाओगे ? यहाँ अच्छे तो हो।

मणि घर लौटेंगे— कई घण्टों के लिए, किन्तु ठाकुर का मत नहीं है।

रविवार, 30 दिसम्बर, पौष, शुक्ल प्रतिपदा तिथि। समय तीन का होगा। मणि वृक्ष के नीचे एकाकी टहल रहे हैं,— एक भक्त ने आकर कहा, प्रभु बुला रहे हैं। कमरे में ठाकुर भक्तों के संग में बैठे हुए हैं। मणि ने जाकर प्रणाम किया और फर्श पर भक्तों के संग में बैठ गए।

कलकत्ता से राम, केदार आदि भक्त आए हैं। उनके संग एक

वेदान्तवादी साधु आया है। ठाकुर जिस दिन राम के बागान का दर्शन करने गए थे, उस दिन इस साधु के साथ मेल हुआ था। साधु साथ के बागान के एक वृक्ष के नीचे एकाकी एक खाट पर बैठे हुए थे। राम आज ठाकुर के आदेश से उसी साधु को संग में लाए हैं। साधु ने भी ठाकुर के दर्शन की इच्छा की थी।

ठाकुर साधु के साथ आनन्द से बातें कर रहे हैं। अपने पास छोटे तख्त के ऊपर साधु को बिठाया हुआ है। कथावार्त्ता हिन्दी में हो रही है।

श्रीरामकृष्ण— यह सब तुम्हें कैसा बोध होता है?

वेदान्तवादी साधु— यह सब स्वप्नवत् है।

श्रीरामकृष्ण— ब्रह्म सत्य, जगत मिथ्या? अच्छा जी, ब्रह्म कैसा है?

साधु— शब्द ही ब्रह्म है। अनाहत शब्द।

श्रीरामकृष्ण— जी, किन्तु शब्द का प्रतिपाद्य एक तो है। क्यों?

साधु— वाच्य* वही है, वाचक वही है।

यह बात सुनते-सुनते ठाकुर समाधिस्थ हो गए हैं। स्थिर,— चित्रार्पित की न्यायीं बैठे हुए हैं। साधु और भक्तगण अवाक् होकर ठाकुर की यह समाधि-अवस्था देख रहे हैं। केदार साधु से कह रहे हैं— ''यह देखो जी, इसको समाधि बोलते हैं।''

साधु ने समाधि की बात ग्रन्थ में ही पढ़ी है, समाधि कहीं देखी नहीं।

ठाकुर थोड़ा-थोड़ा प्रकृतिस्थ हो रहे हैं और जगन्माता के साथ बातें कर रहे हैं। कह रहे हैं—

''माँ, ठीक होऊँगा— बेहोश मत कर— साधु के संग सच्चिदानन्द की बातें करूँगा!— माँ, सच्चिदानन्द की बातें लेकर विलास करूँगा!''

साधु अवाक् होकर देख रहे हैं और ये बातें सुन रहे हैं। अब ठाकुर साधु के साथ बातें कर रहे हैं— कह रहे हैं—

''अब सोऽहं उड़ा दो। अब हम-तुम;— विलास! (अर्थात् सोऽहं—'वही मैं

---

* वाच्यवाचकभेदेन त्वमेव परमेश्वर— अध्यात्म रामायण।
(वाच्य-वाचक भेद से आप ही परमेश्वर हैं।)

हूँ' उड़ा दो;— अब 'मैं-तुम')।

जब तक 'मैं-तुम' रहता है— तब तक माँ भी हैं— आओ उन्हें लेकर आनन्द किया जाए। यही बात क्या ठाकुर कह रहे हैं?

कुछ क्षण कथावार्त्ता के पश्चात् ठाकुर पञ्चवटी में टहल रहे हैं,— संग में राम, केदार, मास्टर आदि हैं।

(श्रीरामकृष्ण का केदार के प्रति उपदेश— संसार-त्याग)

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— साधु को कैसा देखा?

केदार— शुष्क ज्ञान! अभी हण्डी चढ़ी है,— अभी चावल नहीं चढ़े।

श्रीरामकृष्ण— वह तो है, किन्तु त्यागी है। संसार का जिसने त्याग किया है, वह बहुत-सा आगे बढ़ गया है।

''साधु प्रवर्तक के घर का है। उनको प्राप्त किए बिना कुछ भी नहीं हुआ। जब उनके प्रेम में मस्त हो जाता है, और कुछ अच्छा नहीं लगता, तब—

यतने हृदये रेखो आदरिणी श्यामा मा के!
मन तुइ देख् आर आमि देखि, आर जेनो केउ नाहि देखे!
कामादिरे दिये फांकि, आय मन विरले देखि,
रसनारे संगे राखि, शे जेनो मा बोले डाके।
(माझे माझे शे जेनो मा बोले डाके)
कुरुचि कुमंत्री जतो, निकट होते दिओ नाको,
ज्ञान नयने प्रहरी रेखो, शे जेनो सावधाने थाके।
(खूब जेनो सावधाने थाके)॥

[भावार्थ— आदरिणी श्यामा माँ को बड़े यत्न से हृदय में रखो। हे मन, तू देख और मैं देखूँ और कोई उसे जैसे देख न पावे। काम-क्रोध आदि को चकमा देकर हे मन! आ चल, अकेले में देखूँ। रसना को संग में रखूँगा, ताकि वह माँ-माँ कह कर पुकारती रहे। (बीच-बीच में वह जैसे माँ-माँ कहकर पुकारती रहे।) अरे मन, कुरुचि आदि जितने बुरे मन्त्री हैं, उन्हें निकट न आने देना। ज्ञान-नयनों को पहरेदार रखो ताकि वे सावधान रहें।]

ठाकुर के भाव में केदार एक गाना बोल रहे हैं—

मनेर कथा कइबो कि सइ, कइते माना—
दरदी नइले प्राण बांचे ना।
मनेर मानुष होय जे जना,
ओ तार नयनेते जाय गो चेना,
ओ से दुइ एक जना, भावे भासे रसे डोबे,
ओ से उजान पथे करे आनागोना (भावेर मानुष)।

[भावार्थ— अरी सखि, मन की बात कैसे कहूँ, कहना जो मना है। दर्दी बिना हुए प्राण बचेंगे नहीं। जो मनमानुष (मन का मीत) होता है, वह तो नयनों से ही पहचाना जाता है। वह जन दो-एक ही होते हैं जो भाव में बहते हैं और इसमें डूबे रहते हैं। वे तो उजान पथ पर भी आना-जाना करते हैं (भाव का मानुष)।]

ठाकुर अपने कमरे में लौट आए हैं। चार बज गए हैं,— माँ काली का मन्दिर खुला हुआ है। ठाकुर साधु को संग में लेकर माँ काली के मन्दिर में जा रहे हैं। मणि संग में हैं।

काली-मन्दिर में प्रवेश करके ठाकुर माँ को भक्तिपूर्ण प्रणाम कर रहे हैं। साधु ने भी हाथ जोड़कर माथा नवाकर माँ को पुनः-पुनः प्रणाम किया।

श्रीरामकृष्ण— जी, कैसा है दर्शन!

साधु *(भक्ति से भरकर)*— काली प्रधाना है।

श्रीरामकृष्ण— काली-ब्रह्म अभेद। क्यों जी ?

साधु— जब तक बहिर्मुख है, तब तक काली को मानना होगा। जब तक बहिर्मुख, तब तक भला-मन्दा; तब तक यह प्रिय, यह त्याज्य।

''यही देखिए, नाम-रूप तो सब मिथ्या है, किन्तु जब तक 'मैं' बहिर्मुख है तब तक स्त्री त्याज्य है। और उपदेश के लिए यह भला, वह मन्दा रहता है;— नहीं तो भ्रष्टाचार होगा।''

ठाकुर साधु के संग बातें करते-करते कमरे में लौट आए।

श्रीरामकृष्ण *(मणि के प्रति)*— देखो,— साधु ने काली-मन्दिर में प्रणाम किया।
मणि— जी, हाँ।

अगला दिन सोमवार, 31 दिसम्बर। समय चार का होगा। ठाकुर भक्तों के संग में कमरे में बैठे हुए हैं। बलराम, मणि, राखाल, लाटु, हरीश आदि हैं। ठाकुर मणि से और बलराम से कह रहे हैं—

(मुख में ज्ञान की बात— हलधारी को ठाकुर की तिरस्कार-वाणी)

''हलधारी का ज्ञानी का भाव था। वह अध्यात्म, उपनिषत्— यही सब रात-दिन पढ़ता था। इधर साकार की बात पर मुँह टेढ़ा करता था। मैंने जब कंगालों की पत्तलों में से थोड़ा-थोड़ा खाया था, तब कहा, 'तेरे लड़कों का विवाह कैसे होगा!' मैंने कहा, 'तो क्या रे साले, मेरे भी फिर लड़के-बच्चे होंगे! तेरे गीता, वेदान्त पढ़ने के मुख में आग!' देखो ना, इधर कहता है जगत मिथ्या!— और फिर विष्णु-मन्दिर में नाक सिकोड़ कर ध्यान!''

सन्ध्या हो गई है। बलराम आदि भक्तगण कलकत्ता चले गए हैं। कमरे में ठाकुर माँ का चिन्तन कर रहे हैं। कुछ क्षण पश्चात् देव-मन्दिर से आरती का सुमधुर शब्द सुनाई देने लगा।

रात के प्राय: आठ बज गए हैं। ठाकुर भाव में सुमधुर स्वर में सुर करके माँ के साथ बातें कर रहे हैं। मणि फर्श पर बैठे हुए हैं।

(ठाकुर श्रीरामकृष्ण और वेदान्त)

ठाकुर मधुर नाम उच्चारण कर रहे हैं— हरिॐ! हरिॐ! हरिॐ! माँ से कह रहे हैं—

''ओ माँ! ब्रह्मज्ञान देकर बेहोश मत करके रख! ब्रह्मज्ञान नहीं चाहता माँ! मैं आनन्द करूँगा! विलास करूँगा!''

और फिर कह रहे हैं—

''वेदान्त नहीं जानता माँ! जानना भी नहीं चाहता माँ!— माँ, तुझे पाकर तो वेद-वेदान्त कितने नीचे पड़े रहते हैं!

''कृष्ण रे! तुझसे कहूँगा, खा रे— ले रे— बाप! कृष्ण रे! कहूँगा, तू मेरे लिए देह धारण करके आया है बाप!''

द्वितीय परिच्छेद

(ज्ञान और विचार-पथ— भक्तियोग और ब्रह्मज्ञान)

ठाकुर श्रीरामकृष्ण कमरे में बैठे हुए हैं। रात्रि के प्रायः आठ होंगे। आज पौष शुक्ला पञ्चमी; बुधवार, 2 जनवरी, 1884 ईसवी। कमरे में राखाल और मणि हैं। मणि का आज प्रभुसंग में इक्कीसवाँ दिन है।

ठाकुर ने मणि को विचार करने के लिए मना किया है।

श्रीरामकृष्ण *(राखाल के प्रति)*— ''अधिक विचार करना अच्छा नहीं। आगे ईश्वर उसके पश्चात् जगत— उनको प्राप्त कर लेने पर उन के जगत के विषय में भी पता लग जाता है।

(मणि और राखाल के प्रति)— ''यदुमल्लिक के संग आलाप करने पर उनके कितने मकान, बागान, कम्पनी के कागज हैं— सब जाना जा सकता है।

''जभी तो ऋषियों ने वाल्मीकि को 'मरा'-'मरा' जप करने को कहा।

''उसका एक विशेष अर्थ है; 'म' माने ईश्वर, 'रा' माने जगत— आगे ईश्वर उसके बाद जगत।''

(कृष्णकिशोर के साथ 'मरा' मन्त्र-वाणी)

''कृष्णकिशोर ने कहा था, 'मरा'-'मरा' शुद्ध मन्त्र है,— ऋषियों ने दिया था इस कारण। 'म' माने ईश्वर 'रा' माने जगत।

''इसीलिए तो पहले वाल्मीकि की भाँति सब छोड़कर निर्जन में, गोपन में व्याकुल होकर, रो-रोकर ईश्वर को पुकारना चाहिए। पहले आवश्यक है ईश्वर-दर्शन— फिर उसके बाद विचार-शास्त्र, जगत।''

(ठाकुर का मार्ग में क्रन्दन— माँ विचार-बुद्धि पर वज्राघात दो— 1868)

(मणि के प्रति)— "इसीलिए तुमसे कहता हूँ,— और विचार मत करो। मैं झाउतले से उठकर जा रहा था यही बात कहने के लिए। अधिक विचार करने से अन्त में हानि होती है— अन्त में हाजरा जैसा हो जाएगा। मैं रात को अकेला सड़क पर रो-रोकर टहलता रहता था और कहा करता था—

"माँ, विचार-बुद्धि पर वज्राघात दो।

"कहो, और (विचार) नहीं करोगे?"

मणि— जी, नहीं।

श्रीरामकृष्ण— भक्ति से ही सब प्राप्त हो जाता है। जो ब्रह्मज्ञान चाहते हैं, यदि भक्ति का रास्ता पकड़े रहें, वे ब्रह्मज्ञान भी पावेंगे।

"उनकी दया रहने पर क्या ज्ञान का अभाव रहता है? वहाँ गाँव में धान मापते हैं, ज्योंहि ढेर खत्म होता है त्योंहि एक व्यक्ति ढेर ठेल देता है! माँ ज्ञान की राश (ढेर) ठेल देती हैं।"

(पद्मलोचन की ठाकुर के प्रति भक्ति— पञ्चवटी में साधन-काल में प्रार्थना)

"उनको पा लेने पर पण्डित लोग घास-फूस से बोध होने लगते हैं! पद्मलोचन ने कहा था,
'तुम्हारे संग कैवर्त (केवट, धीवर) के घर में सभा में जाऊँगा, उसका फिर क्या है?— तुम्हारे संग डोम के घर जा कर खा सकता हूँ!'

"भक्ति द्वारा ही सब प्राप्त किया जाता है। उनको प्यार कर सकने पर फिर किसी का भी अभाव नहीं रहता। भगवती के पास कार्त्तिक और गणेश बैठे हुए थे। उनके (माँ के) गले में मणिमय रत्नमाला थी। माँ ने कहा, 'जो पहले ब्रह्माण्ड की प्रदक्षिणा करके आ सकेगा, उसे यह माला दे दूँगी।' कार्त्तिक उसी क्षण, एक क्षण भी विलम्ब बिना किए, मोर पर चढ़कर निकल गए। गणेश ने धीरे-धीरे माँ की प्रदक्षिणा करके प्रणाम किया। गणेश जानते हैं, माँ के भीतर ही है ब्रह्माण्ड! माँ ने प्रसन्न होकर गणेश के गले में हार पहना

दिया। काफी देर के बाद कार्त्तिक ने आकर देखा कि दादा हार पहने बैठा हुआ है।

"माँ से रो–रोकर मैंने कहा था, 'माँ, वेद–वेदान्त में क्या है, मुझे जना दो,— पुराण–तन्त्र में क्या है, मुझे जना दो। उन्होंने एक–एक करके मुझे सब जना दिया है।'

"उन्होंने मुझे सब जना दिया है,— कितना सब दिखा दिया है।

(साधन–काल में ठाकुर का दर्शन— शिव–शक्ति, नृमुण्डस्तूप, गुरु कर्णधार, सच्चिदानन्द–सागर)

"एक दिन दिखलाया, चारों ओर शिव और शक्ति। शिव–शक्ति का रमण। मनुष्य, जीव–जन्तु, तरु–लता— सब के भीतर ही वही शिव–शक्ति! पुरुष और प्रकृति! इनका रमण।

"और एक दिन दिखाया नृमुण्डस्तूपाकार!— पर्वताकार! और कुछ भी नहीं!— मैं उसके मध्य में अकेला बैठा हुआ हूँ!

"और एक बार दिखलाया महासमुद्र! मैं नमक की पुतली बनकर मापने जाता हूँ! मापने लगने पर गुरु की कृपा से पत्थर बन गया!— एक जहाज देखा;— झट से चढ़ गया!— गुरु कर्णधार!

(मणि के प्रति) सच्चिदानन्द गुरु को रोज सुबह पुकारते हो?"

मणि— जी, हाँ।

श्रीरामकृष्ण— गुरु कर्णधार। तब देखता हूँ, मैं एक हूँ, तुम एक हो। और फिर छलाँग लगाके गिरकर मछली हो गया। देखा, सच्चिदानन्द–सागर में आनन्द से फिर रहा हूँ।

"ये समस्त अति गुह्य बातें हैं! विचार करने से क्या समझोगे? वे जब दिखला देते हैं, सब प्राप्त हो जाता है— किसी का भी अभाव नहीं रहता।"

तृतीय परिच्छेद

साधन-काल में बेलतले ध्यान, 1859-61
कामिनी-काञ्चन-त्याग

(श्रीरामकृष्ण का जन्मभूमि-गमन—
रघुवीर की जमीन की रजिस्ट्री 1879-80)

ठाकुर की मध्याह्न-सेवा हो गई है। समय प्राय: एक। शनिवार, पाँचवीं जनवरी। मणि का आज प्रभु-संग में तेईसवाँ दिन है।

मणि आहार के बाद नहबत में थे— हठात् सुना, किसी ने उनका नाम लेकर तीन-चार बार पुकारा। बाहर आकर देखा, ठाकुर के कमरे के उत्तर के लम्बे बरामदे से ठाकुर श्रीरामकृष्ण उनको पुकार रहे हैं। मणि ने आकर उन्हें प्रणाम किया।

दक्षिण के बरामदे में ठाकुर मणि के साथ बैठे हुए बातें कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण— तुम किस प्रकार से ध्यान करते हो?— मैं बेलतले पर स्पष्ट नाना रूप-दर्शन करता था। एक दिन देखा सामने रुपया, शाल, एक कसोरा सन्देश, दो स्त्रियाँ! मन से पूछा, मन! तू इनमें से कुछ चाहता है?— सन्देश देखे, गु! स्त्रियों में से एक स्त्री की बड़ी सारी नथ थी। उसका भीतर-बाहर सब दिखाई दे रहा था— आँतें, मल-मूत्र, हाड़-मांस, रक्त। मन ने कुछ भी नहीं चाहा।

''उनके पादपद्मों में ही मन रहा। निक्ति (सोनादि तोलने का छोटा तराजू) का नीचे का काँटा और ऊपर का काँटा, मन वही नीचे का काँटा है। पीछे कहीं ऊपर के काँटे (ईश्वर) से मन विमुख न हो जाए, सदा ही यह आतंक रहता। फिर और एक व्यक्ति सदा ही हाथ में शूल लेकर निकट बैठा रहता;— भय दिखाता, नीचे के काँटे का ऊपर के काँटे से अन्तर होते ही इसका आघात करूँगा।

''किन्तु कामिनी-काञ्चन त्याग बिना हुए नहीं होगा। मैंने तीन त्याग

किए थे— जमीन, जोरू, ज़र (रुपया)।* रघुबीर के नाम की जमीन गाँव में रजिस्ट्री कराने के लिए गया था। मुझको सही (हस्ताक्षर) करने के लिए कहा। मैंने सही नहीं किए। 'मेरी जमीन' ऐसा तो बोध नहीं है।

"केशवसेन का गुरु जानकर खूब आदर किया था। आम लाकर दिए— उन्हें घर तो नहीं ले जा सकता। संन्यासी को संचय नहीं करना।

"त्याग बिना हुए किस प्रकार उन्हें प्राप्त किया जाएगा? यदि एक वस्तु के बाद और एक वस्तु रखी हुई है, तो पहली वस्तु को बिना हटाए, कैसे अन्य वस्तु मिलेगी?

"निष्काम होकर उन्हें पुकारना चाहिए। किन्तु सकाम भजन करते-करते निष्काम हो जाता है। ध्रुव ने राज्य के लिए तपस्या की थी, किन्तु भगवान को पा लिया था। कहते थे, 'यदि काँच समेटने के लिए आकर कोई काञ्चन पा ले, तो क्यों छोड़ेगा?' "

(दया, दानादि और ठाकुर श्रीरामकृष्ण— चैतन्यदेव का दान)

"सत्त्वगुण आने पर ही तब उन्हें पाया जाता है।

"दान आदि कर्म संसारी (गृहस्थी) लोगों के प्रायः सकाम ही होते हैं,— वह अच्छा नहीं। फिर भी निष्काम करना अच्छा है। किन्तु निष्काम करना बड़ा कठिन है।

"साक्षात्कार (दर्शन) होने पर ईश्वर से क्या यह प्रार्थना करेगा कि मैं कुछ तालाब, सड़क, घाट, डिस्पैन्सरी-हस्पताल इत्यादि बनाऊँगा— प्रभु मुझे वर दो। उनका साक्षात्कार हो जाने पर ऐसी वासनाएँ एक तरफ पड़ी रहती हैं।

"किन्तु दया का काम— दान आदि का काम— क्या कुछ नहीं करेगा?

---

* भिक्षुः सौवर्णादीनां नैव परिग्रहेत्।
यस्माद्भिक्षुर्हिरण्यं रसेन दृष्टं च स ब्रह्महा भवेत्।
यस्माद्भिक्षुर्हिरण्यं रसेन स्पृष्टं च स पौल्कसो भवेत्।
यस्माद्भिक्षुर्हिरण्यं रसेन ग्राह्यं च स आत्महा भवेत्।
तस्माद्भिक्षुर्हिरण्यं रसेन न दृष्टं च स्पृष्टंच न ग्राह्यं च। (परमहंसोपनिषत्)

"वैसा नहीं। सामने दु:ख-कष्ट देखने पर रुपया होने से देना उचित है। ज्ञानी कहता है, 'दे रे दे रे, इसको कुछ दे'। वैसा न होने पर, मैं क्या कर सकता हूँ,— 'ईश्वर ही कर्त्ता और सब अकर्त्ता' ऐसा बोध होता है।

"महापुरुषगण जीव के दु:ख में कातर होकर भगवान का पथ दिखला देते हैं। शंकराचार्य ने जीवशिक्षा के लिए 'विद्या का मैं' रखा हुआ था।

"अन्न-दान की अपेक्षा ज्ञान-दान, भक्ति-दान और भी बड़ा है। चैतन्यदेव ने इसीलिए तो चण्डाल तक को भक्ति बाँटी थी। देह का सुख-दु:ख तो है ही। यहाँ पर आम खाने आए हो, आम खाकर जाओ। ज्ञान-भक्ति का ही प्रयोजन है। ईश्वर ही वस्तु है और सब अवस्तु।"

(क्या स्वाधीन इच्छा (Free Will) है ? ठाकुर का सिद्धान्त)

"वे ही सब कर रहे हैं; यदि यह कहो तो फिर तो लोग पाप कर सकते हैं। किन्तु वह नहीं है— जिसको ठीक बोध हो गया है 'ईश्वर कर्त्ता, मैं अकर्त्ता' उसका पाँव फिर बेताल नहीं पड़ता।

"इंग्लिशमैन जिसको स्वाधीन इच्छा (free will) कहते हैं, वह स्वाधीन इच्छाबोध वे ही दिए रखते हैं।

"जिन्होंने उन्हें प्राप्त नहीं किया है, उनके भीतर वैसा स्वाधीन इच्छा-बोध न देने से तो पाप की वृद्धि होती। अपने दोष से पाप कर रहा हूँ, यह बोध यदि वे न देते, तब तो फिर पाप की और भी वृद्धि होती।

"जिन्होंने उन्हें प्रास कर लिया है, वे जानते हैं देखने में ही 'स्वाधीन इच्छा' है, वस्तुत: वे ही यन्त्री हैं, मैं यन्त्र हूँ! वे इञ्जीनियर हैं, मैं गाड़ी।"

चतुर्थ परिच्छेद

(गुरुदेव श्रीरामकृष्ण— भक्त के लिए क्रन्दन और प्रार्थना)

समय— चार बज गए हैं। पञ्चवटी के कमरे में श्रीयुक्त राखाल और भी दो–एक भक्त मणि का कीर्त्तन–गान सुन रहे हैं—

गान— घरेर बाहिर दण्डे शतबार तिले तिले एसे जाय।*

[कमरे के बाहर सौ बार दण्डवत् प्रणाम करके तिल–तिल करके भीतर आ जाता है।]

राखाल गाना सुनकर भावाविष्ट हो गए हैं।

कुछ क्षण पश्चात् ठाकुर श्रीरामकृष्ण पञ्चवटी में आए। उनके संग बाबूराम, हरीश हैं। क्रमशः राखाल और मणि आए।

राखाल— इन्होंने आज सुन्दर कीर्त्तन करके आनन्द दिया है।

ठाकुर श्रीरामकृष्ण भावाविष्ट होकर गाना गा रहे हैं—

बांचलाम सखि, शुनि कृष्णनाम (भाल कथार मन्दउ भाल)।

[हे सखि! कृष्ण–नाम सुनकर मैं बच गया। (अच्छी वाणी का मन्दा भी भला।)]

(मणि के प्रति)— ऐसे सब गाने गाओगे—

‘सब सखि मिली बैठलो,
(एइतो राई भालो छिलो)।
(बुझि हाट भांगलो!)’

[सब सखियाँ मिलकर बैठी हुई थीं— अभी तो राधा रानी ठीक थीं— शायद हाट (भाव) टूट गया है।]

और फिर कह रहे हैं, ‘‘यह फिर है भी क्या!— भक्ति, भक्त लेकर रहना।’’

---

* परिशिष्ट–2 में पूरा गाना है।

(श्री राधा और यशोदा-संवाद— ठाकुर का 'अपना व्यक्ति')

"कृष्ण के मथुरा चले जाने के पश्चात् यशोदा श्रीमती के पास आई थीं। श्रीमती ध्यानस्थ थीं। उसके बाद यशोदा से बोलीं, 'मैं आद्याशक्ति हूँ, तुम मुझ से कुछ वर लो।' यशोदा बोलीं, 'वर और क्या दोगी!— किन्तु यही कहो— जैसे कायमनोवाक्य (शरीर-मन-वाणी) से उसकी ही सेवा कर सकूँ,— जैसे इन आँखों से उसके भक्तों का दर्शन हो;— इस मन से उसका ध्यान-चिन्तन जैसे हो,— और जैसे वाक्य द्वारा उसका नाम-गुण-गान हो।'

"किन्तु जिनका खूब पक्का हो गया है, उनका भक्त बिना भी चल जाता है,— कभी-कभी भक्त अच्छे नहीं लगते। सिप्पी (पंख) के काम के ऊपर चूना नहीं ठहरता। अर्थात् वे जिनके अन्दर बाहर हैं, उनकी ऐसी अवस्था हो जाती है।"

ठाकुर झाउतले से लौटकर पञ्चवटी के नीचे मणि से फिर और कह रहे हैं—

"तुम्हारा स्त्रियों का सा सुर है— इस प्रकार के गाने अभ्यास कर सकते हो?— सखि शे बन कतो दूर!— जे बने आमार श्याम सुन्दर।"

[सखि, वह वन कितनी दूर है, जिस वन में मेरे श्याम-सुन्दर हैं।]

(बाबूराम को देखते हुए, मणि के प्रति)— "देखो, जो अपने हैं वे हो गए हैं पराये— रामलाल और सब मानो कोई और हैं। जो पराये हैं वे हो गए हैं अपने। देखो ना, बाबूराम से कहता हूँ— 'बाह्य जा— मुख धो!' अब हैं भक्तगण ही आत्मीय।"

मणि— जी, हाँ।

(उन्माद से पूर्व पञ्चवटी में साधन 1857-58— चित्‌शक्ति और चिदात्मा)

श्रीरामकृष्ण *(पञ्चवटी को देखते हुए)*— इसी पञ्चवटी में बैठा करता था।— काल (समय) होने पर उन्माद हो गया!— वह भी गया! काल ही ब्रह्म। जो काल के साथ रमण करतीं हैं, वे ही काली हैं— आद्याशक्ति!

अटल को टाल देती हैं।

यह कहकर ठाकुर गाना गा रहे हैं—

भावो कि भेवे पराण गेलो।
जार नामे हरे काल,
पदे महाकाल,
तार कालरूप केनो हालो।

[क्या भावना (चिन्ता) करूँ? चिन्ता कर-करके प्राण ही चला गया है। जिसका नाम काल को हर लेता है, जिसके चरणों में महाकाल पड़ा रहता है, उसका काला रूप क्यों हो गया?]

"आज शनिवार है, माँ काली के मन्दिर में जाइयो।"

बकुलतले के निकट आकर ठाकुर मणि से कह रहे हैं—

"चिदात्मा और चित्शक्ति। चिदात्मा पुरुष, चित्शक्ति प्रकृति। चिदात्मा श्रीकृष्ण, चित्शक्ति श्रीराधा। भक्त हैं उसी चित्शक्ति के एक-एक विशेष रूप।

"अन्यान्य भक्तगण सखी-भाव में अथवा दास-भाव में रहेंगे। यही मूल बात है।"

सन्ध्या होने पर ठाकुर काली-मन्दिर गए। मणि को वहाँ पर माँ का चिन्तन करते देखकर ठाकुर प्रसन्न हुए।

(भक्तों के लिए जगन्माता के निकट क्रन्दन—
भक्तों को आशीर्वाद)

समस्त देवालयों में आरती हो गई। ठाकुर कमरे में तख्त के ऊपर बैठकर माँ का चिन्तन कर रहे हैं। फर्श पर केवल मणि बैठे हुए हैं।

ठाकुर समाधिस्थ हो गए हैं!

कुछ क्षण के बाद समाधि भंग हो रही है। अब भाव की पूर्ण मात्रा है— ठाकुर माँ के संग बातें कर रहे हैं, छोटा-सा बच्चा जैसे माँ के साथ

लाड़ से बातें करता है। माँ से करुण स्वर में कहते हैं,—

"ओ माँ, क्यों वह रूप नहीं दिखलाया!— वही भुवनमोहन रूप! इतना करके तुमसे कहा था! वैसा तुझसे कहे तो तू सुनेगी नहीं!— तू इच्छामयी है।"

ऐसा सुर करके माँ से ये बातें कहीं कि सुनने पर पत्थर भी विगलित हो जाए।

ठाकुर माँ के साथ फिर और बातें कर रहे हैं—

"माँ, विश्वास चाहता हूँ। साला विचार चला जाए।— सात बार का विचार एक ही बार में हट जाता है। विश्वास चाहता हूँ (गुरु-वाक्य में विश्वास)— बालकवत् विश्वास!— माँ ने कहा, वहाँ पर भूत है— तो ठीक जान लिया है कि भूत है! माँ ने कहा वहाँ पर हौआ है!— तो वही ठीक जान लिया है! माँ ने कहा, वह तेरा दादा है— तो पक्का पाँच चवन्नी (सवा रुपया) जान लिया कि दादा है! विश्वास चाहता हूँ।

"किन्तु माँ! उनका भी फिर दोष ही क्या!— वे क्या करें! एक बार विचार करके ही तो लेना होता है!— देखो ना, वही उस दिन इतना करके कहा था, तो कुछ नहीं हुआ— आज कैसे एकदम..."

ठाकुर माँ के पास करुण गद्गद्स्वर में रोते-रोते प्रार्थना कर रहे हैं। कैसा आश्चर्य! भक्तों के लिए माँ के निकट क्रन्दन कर रहे हैं—

"माँ, जो-जो तुम्हारे पास आते हैं, उनकी मनोवांछा पूर्ण करो!— सब त्याग मत करवाना माँ!— अच्छा, अन्त में जो हो, करो।

"माँ, संसार में यदि रखो, तो कभी-कभी दर्शन दिओ!— नहीं तो कैसे रहेगा? एक-एक बार नहीं दिखेगी तो उत्साह कैसे होगा माँ!— उसके बाद अन्त में जैसा हो, करो।"

ठाकुर अभी भी भावाविष्ट हैं। उसी अवस्था में मणि से हठात् कह रहे हैं—

"देखो, तुमने जो विचार किया है, बहुत हो गया है! और नहीं। बोलो, और

नहीं करोगे।''

मणि हाथ जोड़कर कह रहे हैं— जी नहीं।

श्रीरामकृष्ण— बहुत हो गया है!— तुम्हारे प्रथम आते ही तो तुमसे मैंने बता दिया था— तुम्हारा घर।— मैं तो सब जानता हूँ!

मणि *(करजोड़े)*— जी हाँ।

श्रीरामकृष्ण— तुम्हारा घर, तुम कौन हो, तुम्हारा अन्तर-बाहर, तुम्हारी पहले की बातें, आगे तुम्हारा क्या होगा,— ये सब तो मैं जानता हूँ?

मणि *(करजोड़े)*— जी हाँ।

श्रीरामकृष्ण— बच्चे हुए हैं, सुनकर डाँटा था।— अब जाकर घर में रहो— उनको दिखाना कि जैसे तुम उनके अपने हो। अन्तर में समझोगे तुम भी उनके अपने नहीं हो, वे भी तुम्हारे अपने नहीं हैं।

मणि चुप हैं। ठाकुर फिर और बातें कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण— और पिता के संग प्रीति करो— अब उड़ना सीखा है,— तुम बाप को साष्टांग प्रणाम नहीं कर सकोगे?

मणि *(करजोड़े)*— जी, हाँ।

श्रीरामकृष्ण— तुम्हें और क्या कहूँ, तुम तो सब जानते हो? सब तो समझते हो?

मणि चुप हैं।

ठाकुर— सब समझते हो?

मणि— जी, थोड़ा-थोड़ा समझता हूँ।

श्रीरामकृष्ण— काफी सारा समझते हो। राखाल जो यहाँ पर है, उसका बाप सन्तुष्ट है।

मणि हाथ जोड़े चुप हैं। श्रीरामकृष्ण फिर और कह रहे हैं—

''तुम जो सोचते हो, वह भी हो जाएगा।''

(भक्तों के संग में कीर्त्तनानन्द में— माँ और जननी— क्यों नर-लीला!)

ठाकुर अब प्रकृतिस्थ हो गए। कमरे में राखाल और रामलाल हैं।

रामलाल को गाना गाने के लिए कह रहे हैं। रामलाल गाना गा रहे हैं— समर आलो करे कार कामिनी!*

[यह कौन कामिनी है जो समरभूमि आलोकित कर रही है ?]

गान— के रणे नाचिछे बामा नीरदबरणी।
शोणित सायरे जेनो भासिछे नव नलिनी॥

[यह नीरद वर्णी कौन है जो रणभूमि में नाच रही है और शोणित-समुद्र में नव-नलिनी सी लग रही है।]

श्रीरामकृष्ण— माँ और जननी। जो जगत रूप में सर्वव्यापी होकर हैं— वे ही माँ हैं। जन्म-स्थान जो है वही जननी है। मैं माँ कहते-कहते समाधिस्थ हो जाता था;— माँ कहते-कहते मानो जगत की ईश्वरी को खींच लाता! जैसे मछुवे जाल फेंककर फिर काफी देर पीछे जाल समेटते हैं। उसमें बड़ी-बड़ी मछलियाँ आ जाती हैं।

(गौरी पण्डित की बात— काली और श्री गौरांग एक)

''गौरी ने कहा था, काली और गौरांग जब एक बोध हो जाता है, तब ही ठीक (यथार्थ) ज्ञान होता है। जो ब्रह्म हैं, वे ही शक्ति (काली) हैं। वे नर-रूप में श्री गौरांग हैं।''

ठाकुर क्या इंगित कर रहे हैं, जो आद्याशक्ति हैं वे ही नररूपी श्रीरामकृष्ण होकर आए हैं!

श्रीयुक्त रामलाल ठाकुर के आदेश से फिर और गा रहे हैं— अब श्री गौरांग-लीला।

---

* परिशिष्ट-2 में पूरा गाना है।

गान— कि देखिलाम रे, केशव भारतीर कुटीरे अपरूप ज्योति,
श्री गौरांग मूरति, दुनयने प्रेम बहे शत धारे।[1]

[केशव भारती की कुटीर में हे भाई, मैंने कैसी अपरूप ज्योति, श्री गौरांग मूर्त्ति देखी जिनके दोनों नयनों से सैंकड़ों धाराओं में प्रेम बह रहा था!]

गान— गौर प्रेमेर ढेउ लेगेछे गाय।[2]

[गौरांग के प्रेम की लहर देह में लग गई है।]

श्रीरामकृष्ण *(मणि के प्रति)*— जिनका नित्य, उन्हीं की लीला। भक्त के लिए लीला। उनको नर-रूप में देखकर ही तो भक्तगण प्यार कर सकेंगे, तभी तो भाई-बहिन, बाप-माँ, सन्तान की भाँति स्नेह कर सकेंगे।

"वे भक्त को प्यार करने के लिए छोटा-सा बनकर लीला करने आते हैं।"

---

1 परिशिष्ट-2 में पूरा गाना है।

2 पृष्ठ 188 पर पूरा गाना है।

दशम खण्ड

दक्षिणेश्वर-मन्दिर में राखाल, लाटु, मास्टर, महिमा आदि के संग

प्रथम परिच्छेद

(श्रीरामकृष्ण के हाथ में चोट— समाधि व जगन्माता से बातें)

ठाकुर दक्षिणेश्वर-मन्दिर के उसी कमरे में रह रहे हैं। समय तीन। शनिवार, 2 फरवरी, 1884 ईसवी; 20वाँ माघ, 1290 (बंगला) साल; शुक्ला षष्ठी।

एक दिन ठाकुर भावाविष्ट हुए झाउतले की ओर जा रहे थे; संग में किसी के न रहने के कारण रेल (रेलिंग) के निकट गिर गए। उससे उनके बायें हाथ की हड्डी सरक गई और खूब चोट लगी। मास्टर कलकत्ता से भक्तों के पास से चपटियाँ, पैड और पट्टी लाए हैं।

श्रीयुक्त राखाल, महिमाचरण, हाजरा आदि भक्तगण कमरे में हैं। मास्टर ने आकर भूमिष्ठ होकर ठाकुर की चरण-वन्दना की।

श्रीरामकृष्ण— क्यों जी! तुम्हें क्या बीमारी हुई थी? अब हट तो गई है?

मास्टर— जी हाँ।

श्रीरामकृष्ण *(महिमा के प्रति)*— हाँ भई, जब 'मैं यन्त्र, तुम यन्त्री' है तब इस प्रकार क्यों हुआ?

ठाकुर तख्तपोश के ऊपर बैठे हुए हैं। महिमाचरण अपने तीर्थ-दर्शनों की बातें कर रहे हैं। ठाकुर सुन रहे हैं— बारह वर्ष पूर्व का तीर्थ-दर्शन।

महिमाचरण— काशी सिकरोल के एक बाग में एक ब्रह्मचारी देखा था।

उसने बताया, बीस वर्ष से इस बाग में हूँ। किन्तु किसका बाग है, वह नहीं जानता था। मुझ से पूछा, 'बाबू, नौकरी करते हो?' मैंने कहा, 'नहीं।' तब बोला— 'क्या परिव्राजक हो?'

"नर्मदा-तीर पर एक साधु देखा, अन्तर में गायत्री-जप कर रहे थे— शरीर पर पुलक हो रही थी। और फिर ऐसा प्रणव और गायत्री-उच्चारण करते कि जो लोग बैठे रहते, उन्हें रोमाञ्च और पुलक हो जाता।"

ठाकुर का बालक-स्वभाव है,— भूख लगी है; मास्टर से कह रहे हैं, 'अजी, क्या लाए हो?' राखाल को देखकर ठाकुर समाधिस्थ हो गए।

समाधि भंग हुई। प्रकृतिस्थ होने के लिए ठाकुर कहते हैं— 'मैं जलेबी खाऊँगा, मैं जल पीऊँगा!'

ठाकुर बालक-स्वभाव हैं,— जगन्माता से रोते-रोते कहते हैं—

"ब्रह्ममयी! मुझे ऐसा क्यों किया? मेरे हाथ में बड़ा (दर्द) लगता है। *(राखाल, महिमा, हाजरा आदि के प्रति)*— मेरा (हाथ) ठीक तो हो जाएगा?"

छोटे बच्चे को जैसे समझाते हैं, भक्तगण उसी प्रकार कहते हैं—

"ठीक नहीं होगा तो क्या!"

श्रीरामकृष्ण *(राखाल के प्रति)*— यद्यपि शरीर-रक्षा के लिए तू है, तथापि तेरा दोष नहीं।— क्योंकि तू होता, तो भी रेलिंग पर्यन्त तो नहीं जाता।

(श्रीरामकृष्ण का सन्तान-भाव— 'ब्रह्मज्ञान को मेरा कोटि नमस्कार')

ठाकुर फिर और भावाविष्ट हो गए हैं। भावाविष्ट होकर कहते हैं—

'ॐ ॐ ॐ— माँ, मैं क्या कह रहा हूँ! माँ, मुझे ब्रह्मज्ञान द्वारा बेहोश मत करो— माँ, मुझको ब्रह्मज्ञान मत देना। मैं तो बच्चा हूँ!— भयत्रासे।— मुझे माँ चाहिए— ब्रह्मज्ञान को मेरा कोटि नमस्कार। वह जिन्हें देना हो, वह उनको दो। आनन्दमयी! आनन्दमयी!'

ठाकुर उच्च स्वर से 'आनन्दमयी! आनन्दमयी!' कहकर रो रहे हैं

और कह रहे हैं—

आमि ओई खेदे खेद करि (श्यामा)।
तुमि माता थाक्‌ते आमार जागा घरे चुरि॥*

[हे माँ, मैं इसी खेद से दु:खी हूँ कि आप माता के रहते हुए,
मेरे जागते हुए घर में चोरी हो गई है।]

ठाकुर फिर और माँ से कह रहे हैं—

'मैंने क्या अन्याय किया है, माँ? मैं क्या कुछ करता हूँ, माँ?— तू ही तो सब करती है, माँ। मैं यन्त्र, तुम यन्त्री।'

(राखाल के प्रति, सहास्य) देखियो, तू जैसे गिर न जाइयो।— मान करके कहीं ठगा न जाइयो।

ठाकुर माँ से फिर और कह रहे हैं—

'माँ, क्या मैं चोट लगने से रो रहा हूँ? नहीं।—

आमि ओई खेदे खेद करि (श्यामा)।
तुमि माता थाक्‌ते आमार जागा घरे चुरि।'

द्वितीय परिच्छेद

(कैसे ईश्वर को पुकारना चाहिए, व्याकुल होओ)

ठाकुर श्रीरामकृष्ण बालक की न्यायीं फिर और हँस रहे हैं और बातें कर रहे हैं— बालक जैसे अधिक रोग होने पर भी कभी-कभी हँसता हुआ खेलता-फिरता रहता है। वे महिमा आदि भक्तों से बातें कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण— सच्चिदानन्द प्राप्त नहीं हुआ तो कुछ भी नहीं हुआ, बाबू!

"विवेक-वैराग्य जैसी और वस्तु नहीं।

"संसारियों का अनुराग तो क्षणिक है— तपे हुए तवे पर जल जितना क्षणिक। एक फूल देखकर शायद कह देता है, आहा! कैसी चमत्कारी है

---

* पृष्ठ 147 पर पूरा गाना है।

ईश्वर की सृष्टि!

"व्याकुलता चाहिए। जब लड़का सम्पत्ति के हिस्से के लिए तंग करता है, तब बाप-माँ परामर्श करके लड़के को पहले ही हिस्सा दे देते हैं। व्याकुल होने पर वे सुनेंगे ही सुनेंगे। उन्होंने जब हमें जन्म दिया है, तब तो उनके घर में हमारा हिस्सा है ही। वे अपने बाप, अपनी माँ हैं,— उनके ऊपर जोर चलता है। 'परिचय दो। नहीं तो गले पर छुरी मार लूँगा'।"

किस प्रकार माँ को पुकारना चाहिए, ठाकुर सिखा रहे हैं—

"मैं माँ को इस प्रकार पुकारा करता था— 'माँ आनन्दमयी!— दर्शन दो यदि तुम हो तो'।"

और फिर कभी कहता,—

"आओ दीनानाथ— जगन्नाथ— मैं तो जगत के बिना नहीं हूँ नाथ! मैं ज्ञानहीन,— साधनहीन,— भक्तिहीन हूँ, कुछ भी नहीं जानता— दया करके दर्शन देना ही होगा।"

ठाकुर अति करुण स्वर में आवाज़ निकालकर, किस प्रकार उनको पुकारना चाहिए, सिखा रहे हैं। वह करुण स्वर सुनकर भक्तों के हृदय द्रवीभूत हो रहे हैं। महिमाचरण की आँखों में जल तैर रहा है। महिमाचरण को देखकर ठाकुर फिर और बोल रहे हैं—

डाक देखि मन डाकार मतन केमन श्यामा थाकते पारे?*

[हे मन, सच्चे मन से पुकारो जैसे पुकारा जाता है, तो माँ श्यामा आए बिना कैसे रह सकती हैं?]

तृतीय परिच्छेद

[शिवपुर के भक्तगण और आममुखतारी (बकलमा)— श्री मधु डॉक्टर]

शिवपुर से भक्तगण आए हैं। वे लोग इतनी दूर से कष्ट उठाकर आए हैं,

* परिशिष्ट-2 में पूरा गाना है।

ठाकुर श्रीरामकृष्ण फिर चुप नहीं रह सके। सार-सार कुछेक मोटी-मोटी बातें उनसे कह रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण *(शिवपुर के भक्तों के प्रति)*— ईश्वर ही सत्य और सब अनित्य। बाबू और बागान। ईश्वर और उनका ऐश्वर्य। लोग बागान ही देखते हैं, बाबू को कितने लोग चाहते हैं?

भक्त— जी, उपाय क्या है?

श्रीरामकृष्ण— सदसत्-विचार। वे सत्य और सब अनित्य— यही विचार सर्वदा करना। व्याकुल होकर पुकारना।

भक्त— जी, समय कहाँ होता है?

श्रीरामकृष्ण— जिनके पास समय है, वे ध्यान-भजन करेंगे।

''जो बिल्कुल कर नहीं सकेंगे, वे दो समय बड़े प्यार, श्रद्धा से प्रणाम करेंगे। वे तो अन्तर्यामी हैं,— समझते हैं कि ये क्या करें! बहुत-सा काम करना पड़ता है। तुम्हारे पास पुकारने का समय नहीं है,— उनको आममुखतारी (बकलमा) दे दो। किन्तु उनको यदि प्राप्त न किया— उनका दर्शन न किया तो कुछ भी नहीं हुआ।''

एक भक्त— जी, आपको जो देखना है, वही तो ईश्वर को देखना है।

श्रीरामकृष्ण— ऐसी बात फिर मत कहना। गंगा की ही लहरें होती हैं, लहरों की गंगा नहीं। मैं इतना बड़ा मनुष्य; मैं अमुक— ऐसा अहंकार बिना गए उनको नहीं पाया जाता। 'मैं' रूप टीले को भक्ति के जल से भिगोकर समभूमि कर दो।

(क्यों गृहस्थ?— भोग के अन्त में व्याकुलता और ईश्वर-प्राप्ति)

भक्त— क्यों उन्होंने गृहस्थ में रखा है?

श्रीरामकृष्ण— सृष्टि की रक्षा के लिए। उनकी इच्छा। उनकी माया। कामिनी-काञ्चन के द्वारा उन्होंने भुला रखा है।

भक्त— क्यों भुला रखा है? उनकी इच्छा क्यों है?

श्रीरामकृष्ण— वे यदि ईश्वर का आनन्द एक बार दे दें तो फिर तो कोई

गृहस्थी ही न करेगा और फिर सृष्टि भी न चले।

"चावल की आढ़त में बड़े बोरों में चावल रखे रहते हैं। चूहों को पीछे कहीं इन चावलों का पता न लग जाए, इसलिए दुकानदार एक छाज में मीठा लावा (मीठी खीलें) रख देते हैं। वह मीठा लावा मीठा लगता है, तभी चूहे सारी रात कड़र-मड़र करते हुए खाते रहते हैं। चावलों की खोज नहीं करते।

"किन्तु देखो, एक सेर चावलों की चौदह गुणा खीलें हो जाती हैं। कामिनी-काञ्चन के आनन्द की अपेक्षा ईश्वर का आनन्द कितना अधिक है! उनके रूप का चिन्तन करने से रम्भा-तिलोत्तमा का रूप चिता-भस्मवत् बोध होता है।"

भक्त— उन्हें प्राप्त करने के लिए व्याकुलता क्यों नहीं होती?

श्रीरामकृष्ण— भोग का अन्त हुए बिना व्याकुलता नहीं होती। कामिनी-काञ्चन का जितना भोग है, उसकी तृप्ति हुए बिना जगत की माँ की याद ही नहीं आती। बच्चा जब खेल में मस्त होता है, तब माँ को नहीं चाहता। खेल समाप्त हो जाने पर तब कहता है, 'माँ के पास जाऊँगा'। हृदय का लड़का कबूतर लेकर खेल रहा था; कबूतर को पुकारता है,— 'आ रे ती ती!' करता है। कबूतर से ज्यों ही तृप्ति हो गई, त्यों ही रोना आरम्भ कर दिया। तब एक अनजाने व्यक्ति ने आकर कहा, मैं तुझको माँ के पास ले जाता हूँ, आ। वह उसके ही कन्धे पर चढ़कर अनायास ही चला गया।

"जो नित्यसिद्ध हैं, उन्हें गृहस्थ में नहीं घुसना पड़ता। उनके भोग की वासना जन्म से ही मिटी हुई है।"

(श्री मधु डॉक्टर का आगमन— श्री मधुसूदन और नाम माहात्म्य)

पाँच बज गए हैं। मधु डॉक्टर आए हैं। ठाकुर के हाथ में चपटियाँ और पट्टी बाँध रहे हैं। ठाकुर बालकवत् हँस रहे हैं और कह रहे हैं, इहलोक और परलोक के मधुसूदन!

मधु *(सहास्य)*— केवल नाम का बोझा ढोता हुआ मर रहा हूँ।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— क्यों ? नाम क्या कम है ? वे और उनके नाम में फर्क नहीं है। सत्यभामा तराजू पर सोने-मणियों आदि के द्वारा जब भगवान को तोल रही थीं, तब पूरा नहीं हो रहा था! तब रुक्मणी ने तुलसी और कृष्ण-नाम एक तरफ लिख दिया, तब वजन ठीक हुआ!

अब डॉक्टर चपटियाँ बाँधेंगे। फर्श पर बिछौना किया गया। ठाकुर हँसते-हँसते फर्श पर आकर लेट गए। सुर से कह रहे हैं—

''राई-एर दशम दशा! वृन्दे बोले, आर कतो बा होबे!''

[राधा की दसवीं हालत है। वृन्दा कह रही है— और न जाने कितना क्या कुछ होगा!]

भक्तगण चारों ओर बैठे हुए हैं। ठाकुर फिर और गा रहे हैं—

''सब सखि मिलि बैठलो— सरोवर कूले!''

[सब सखियाँ सरोवर के तीर पर मिलकर बैठ गईं।]

ठाकुर भी हँस रहे हैं, भक्तगण भी हँस रहे हैं। चपटियाँ बँध जाने पर ठाकुर कह रहे हैं—

''मेरा कलकत्ता के डाक्टरों पर उतना विश्वास नहीं होता। शम्भु को विकार हुआ था, डॉक्टर (सर्वाधिकारी) ने कहा, वह कुछ नहीं है, वह तो औषध का नशा है! उसके बाद ही शम्भु की देह* छूट गई।''

चतुर्थ परिच्छेद

(महिमाचरण के प्रति उपदेश)

सन्ध्या होने पर ठाकुरबाड़ी में आरती हो गई। कुछ देर बाद अधर कलकत्ता से आए और ठाकुर को भूमिष्ठ होकर प्रणाम किया। कमरे में हैं महिमाचरण, राखाल, मास्टर। हाजरा भी बीच-बीच में आते हैं।

---

* शम्भुमल्लिक की मृत्यु 1877 में हुई थी।

अधर— आप कैसे हैं ?

श्रीरामकृष्ण *(स्नेहसने स्वर में)*— यह देखो! हाथ में लगकर क्या हुआ है! *(सहास्य)*— हूँ फिर कैसा!

अधर फर्श पर भक्तों के संग में बैठे हुए हैं। ठाकुर उसे कह रहे हैं— "तुम एक बार इस पर हाथ तो फेर दो!"

अधर छोटी खाट के उत्तर के स्थान पर बैठकर ठाकुर की श्रीचरण-सेवा कर रहे हैं। ठाकुर महिमाचरण के साथ फिर और बातें कर रहे हैं।

(मूल बात है अहेतुकी भक्ति— 'स्वस्वरूप को जानो')

श्रीरामकृष्ण *(महिमा के प्रति)*— अहेतुकी भक्ति,— तुम इसी को ही यदि सिद्ध कर सको, तब तो बड़ा ही अच्छा हो।

"मुक्ति, मान, रुपया, रोग चंगा होना, कुछ भी नहीं चाहता;— केवल तुम्हें चाहता हूँ। इसका नाम अहेतुकी भक्ति है। बाबू के पास बहुत-से व्यक्ति आते हैं— नाना प्रकार की कामना करते हैं; किन्तु यदि कोई कुछ भी न चाहे, केवल प्यार से कहे बाबू को मिलने आता हूँ, तब तो बाबू का भी प्यार उसके ऊपर होता है।

"प्रह्लाद की अहेतुकी भक्ति थी— ईश्वर के प्रति शुद्ध निष्काम प्यार।"

महिमाचरण चुप हैं। ठाकुर फिर और उनसे कह रहे हैं,

"अच्छा, तुम्हारा जैसा भाव है उसी तरह कहता हूँ, सुनो।

(महिमा के प्रति)— "वेदान्त-मत में स्वस्वरूप को पहचानना होता है। किन्तु अहं त्याग बिना किए नहीं होता। अहं एक लाठी जैसा है— जैसे वह जल के दो भाग कर रहा है। मैं अलग, तुम अलग।

"समाधिस्थ हो जाने पर, इस अहं के चले जाने पर ब्रह्म बोधे बोध होता है।"

भक्तगण सम्भवत: कोई-कोई सोच रहे हैं, ठाकुर को क्या ब्रह्मज्ञान हुआ है? वह यदि हो गया है तब ये 'मैं'-'मैं' क्यों कर रहे हैं?

ठाकुर फिर और बातें कर रहे हैं—

'मैं' महिमा चक्रवर्ती,— विद्वान्, इस 'मैं' का त्याग करना होगा। विद्या के 'मैं' में दोष नहीं। शंकराचार्य ने लोकशिक्षा के लिए 'विद्या का मैं' रखा हुआ था।

"स्त्रियों के सम्बन्ध में खूब सावधान न रहे तो ब्रह्मज्ञान नहीं होता। इसीलिए गृहस्थ में यह (ब्रह्मज्ञान) कठिन है। कितना ही सियाना क्यों न हो, काजल के घर में रहने से शरीर पर कालस लगेगी ही।

"युवतियों के संग में निष्काम में भी कामना हो सकती है। किन्तु ज्ञानी के पक्ष में स्वदारा में कभी-कभी गमन, दोष नहीं। जैसे मलमूत्र त्याग वैसे ही रेत:त्याग— पाखाना, फिर याद नहीं रहता।

"कभी अथवा पनीर का आधा पेड़ा खा लेना। *(महिमा का हास्य)*। गृहस्थी के पक्ष में इतना दोषनीय नहीं।"

(संन्यासी के कठिन नियम और ठाकुर श्रीरामकृष्ण)

"संन्यासी के लिए बहुत दोषनीय है। संन्यासी स्त्रियों के चित्र तक नहीं देखेगा। संन्यासी के लिए तो स्त्री ऐसे है जैसे थूक कर चाटना।

"स्त्रियों के संग संन्यासी बैठा हुआ बातें नहीं करेगा— वे चाहे हज़ार भक्त हों। जितेन्द्रिय होने पर भी आलाप नहीं करेगा।

"संन्यासी कामिनी-काञ्चन दोनों ही त्याग करेगा— जैसे स्त्री का चित्र तक नहीं देखेगा, उसी तरह काञ्चन— रुपया— स्पर्श नहीं करेगा। रुपया पास रहने से ही खराब है! हिसाब, दुश्चिन्ता, रुपये का अहंकार, लोगों के ऊपर क्रोध, पास रहने से ये सब आ जाते हैं।— सूर्य दिखाई दे रहा था, मेघों ने आकर सब ढक दिया।

"इसीलिए तो मारवाड़ी ने जब हृदय के पास रुपया जमा रखना चाहा

था, तब मैंने कहा, 'वह भी नहीं होगा— पास रहने से ही मेघ उठेगा।'

"संन्यासी के लिए ऐसा कठिन नियम क्यों? उसके अपने भले के लिए भी और लोकशिक्षा के लिए भी। संन्यासी यद्यपि स्वयं निर्लिप्त हो— जितेन्द्रिय हो— तथापि लोकशिक्षा के लिए कामिनी-काञ्चन-त्याग करेगा।

"संन्यासी का सोलहों आने त्याग देखकर तब ही तो लोगों को साहस होगा। तब ही तो वे कामिनी-काञ्चन-त्याग करने की चेष्टा करेंगे!

"यह त्याग-शिक्षा यदि संन्यासी न दे, तो फिर कौन देगा!"

(जनकादि का ईश्वर-लाभ के बाद संसार— ऋषि और शूकर-मांस)

"उनको प्राप्त करके ही फिर संसार में रहा जाता है। जैसे माखन निकालकर जल में रख दिया जाता है। जनक ब्रह्मज्ञान-लाभ करके ही तब संसार में थे।

"जनक दो तलवारें घुमाते थे— ज्ञान की और फिर कर्म की। संन्यासी कर्म-त्याग करता है। तभी केवल एक तलवार— ज्ञान की। जनक जैसा ज्ञानी गृहस्थी वृक्ष के नीचे का फल और ऊपर का फल दोनों ही खा सकता है। साधु-सेवा, अतिथि-सत्कार— ये सब कर सकता है। माँ से (मैंने) कहा था, 'माँ, मैं शुष्क साधु नहीं होऊँगा'।

"ब्रह्मज्ञान-लाभ के पश्चात् खाने का विचार नहीं रहता। ब्रह्मज्ञानी ऋषि ब्रह्मानन्द के बाद सब खा सकते थे— शूकर-मांस पर्यन्त।"

(चार आश्रम, योग-तत्त्व और श्रीरामकृष्ण)

(महिमा के प्रति)— "मोटे तौर पर तो दो प्रकार का योग है— कर्मयोग और मनोयोग— कर्म के द्वारा योग और मन के द्वारा योग।

"ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ और संन्यास— इनमें से प्रथम तीन में कर्म करना होता है। संन्यासी को दण्ड-कमण्डलु, भिक्षा-पात्र धारण करना होता है। संन्यासी नित्यकर्म करता है। किन्तु उस में शायद मन का योग

नहीं— ज्ञान नहीं, ईश्वर में मन है। कोई-कोई संन्यासी नित्य कर्म कुछ-कुछ रखते हैं,— लोकशिक्षा के लिए। गृहस्थ या अन्य आश्रमी यदि निष्काम कर्म कर सकें, तो फिर उनका कर्म के द्वारा योग हो जाता है।

''परमहंस अवस्था— जैसे शुकदेव आदि की— कर्म सब उठ जाते हैं— पूजा, जप, तर्पण, सन्ध्या इत्यादि कर्म। इस अवस्था में केवल मन का योग है। बाहर के कर्म कभी-कभी इच्छा करके करता है— लोकशिक्षा के लिए। किन्तु सर्वदा स्मरण-मनन रहता है।''

पञ्चम परिच्छेद

(महिमाचरण से शास्त्रपाठ-श्रवण और ठाकुर की समाधि)

बातें करते-करते रात के आठ बज गए। ठाकुर श्रीरामकृष्ण ने महिमाचरण को शास्त्र से कुछ स्तव आदि सुनाने के लिए कहा। महिमाचरण एक पुस्तक लेकर उत्तर गीता के आरम्भ से ही परब्रह्म के सम्बन्ध के जो श्लोक हैं, वे सुना रहे हैं—

''यदेकं निष्कलं ब्रह्म व्योमातीतं निरंजनम्।
अप्रतर्क्यमविज्ञेयं विनाशोत्पत्तिवर्जितम्॥''

[ब्रह्म एक हैं, अखण्ड हैं, आकाश से भी परे हैं, निरञ्जन हैं, तर्क से परे हैं, उन्हें जाना नहीं जा सकता, वे उत्पत्ति एवं नाश अर्थात् जन्म-मृत्यु से परे हैं।]

क्रमश: तीसरे अध्याय का सातवाँ श्लोक पढ़ रहे हैं—

''अग्निर्द्देवो द्विजातीनां मुनीनां हृदि दैवतम्।
प्रतिमा स्वल्पबुद्धीनां सर्वत्र समदर्शिनाम्॥''

[अर्थात् ब्राह्मणों के देवता अग्नि हैं, मुनियों के देवता हृदय में, स्वल्प बुद्धि मनुष्यों के लिए प्रतिमा ही देवता है और समदर्शी महायोगियों के देवता सर्वत्र ही हैं।]

'सर्वत्र समदर्शिनाम्'— यह बात उच्चारण करते ही ठाकुर हठात् आसन-त्याग करके खड़े होकर समाधिस्थ हो गए। हाथ में वही चपटियाँ और पट्टी बँधी हुई हैं। भक्तगण सब ही अवाक् होकर इस समदर्शी महायोगी की अवस्था-निरीक्षण कर रहे हैं।

अनेक क्षण इसी प्रकार खड़े रहकर प्रकृतिस्थ हुए और दोबारा आसन ग्रहण किया। महिमाचरण को अब वही हरि-भक्ति का श्लोक आवृत्ति करने के लिए कहा। महिमा नारद पञ्चरात्र से आवृत्ति कर रहे हैं—

अन्तर्बहिर्यदि हरिस्तपसा ततः किम्।
नान्तर्बहिर्यदि हरिस्तपसा ततः किम्॥
आराधितो यदि हरिस्तपसा ततः किम्।
नाराधितो यदि हरिस्तपसा ततः किम्॥
विरम् विरम् ब्रह्मन् किं तपस्यासु वत्स।
व्रज व्रज द्विज शीघ्रं शंकरं ज्ञानसिन्धुम्॥
लभ लभ हरिभक्तिं वैष्णवोक्तां सुपक्वाम्।
भवनिगडनिबन्धच्छेदनीं कर्तररीञ्च॥*

श्रीरामकृष्ण— आहा! आहा!

(भाण्ड और ब्रह्माण्ड— तुम ही चिदानन्द— नाहं नाहं)

श्लोकों की आवृत्ति सुनकर ठाकुर फिर और भावाविष्ट हो रहे थे। कष्ट से भाव संवरण किया। अब यतिपञ्चक पाठ हो रहा है—

यस्यामिदं कल्पितमिन्द्रजालं, चराचरं भाति मनोविलासम्।
सच्चित्सुखैकं जगदात्मरूपं, सा काशिकाहं निजबोधरूपम्॥

---

* ('नारदपञ्चरात्र' में है। नारद तपस्या कर रहे थे, तब दैववाणी हुई— हरि की यदि आराधना की जाए तो फिर तपस्या का क्या प्रयोजन? और हरि की यदि आराधना न की जाए, तो भी फिर तपस्या का क्या प्रयोजन? हरि यदि अन्तर-बाहर रहते ही हैं, तो फिर तपस्या का क्या प्रयोजन? और यदि अन्तर-बाहर नहीं रहते तो भी फिर तपस्या का क्या प्रयोजन? अतएव हे ब्रह्मन्, निवृत्त हो जाओ। वत्स, तपस्या का क्या प्रयोजन? ज्ञान-सिन्धु शंकर के निकट गमन करो। वैष्णवगण जो हरिभक्ति की बात कह गए हैं, वही सुपक्वा भक्ति प्राप्त करो, प्राप्त करो। इसी भक्ति की कटारी द्वारा भव-बन्धन कट जाएँगे।)

[जिसमें यह (संसार) इन्द्रजाल के समान समाया हुआ है, चर और अचर जिसका मनोविलास है, जो सत्-चित्— सुख (आनन्द) स्वरूप है, यह जगत् जिसका आत्मरूप है, वह आत्मबोधरूपिणी काशी (ज्ञानस्वरूपिणी माँ) मैं हूँ।]

'सा काशिकाहं निजबोधरूपं'— यह वाणी सुनकर ठाकुर सहास्य कह रहे हैं— "जो है भाण्ड में, वही है ब्रह्माण्ड में।"

अब निर्वाण-षट्कम् पाठ हो रहा है।

ॐ मनोबुद्ध्यहंकारचित्तानि नाहं,
न च श्रोत्रजिह्वे न च घ्राणनेत्रे।
न च व्योम भूमिर्न तेजो न वायु-
श्चिदानन्दरूप: शिवोऽहं शिवोऽहम्॥*

जितनी बार महिमाचरण कह रहे हैं— चिदानन्दरूप: शिवोऽहं शिवोऽहम्, उतनी बार ही ठाकुर सहास्य कह रहे हैं—

"नाहं! नाहं!— तुमि तुमि चिदानन्द।"

महिमाचरण जीवन्मुक्ति गीता से कुछ पढ़कर षट्चक्र-वर्णन पढ़ रहे हैं। उन्होंने काशी में स्वयं योगी की योगावस्था में मृत्यु देखी थी, बतलाई।

अब भूचरी और खेचरी मुद्राओं का वर्णन करते हैं,— और साम्भवी विद्या का भी। साम्भवी,— जहाँ-तहाँ जाती है, कोई उद्देश्य नहीं।

(पूर्वकथा— साधुओं से ठाकुर का रामगीता-पाठ-श्रवण)

महिमा— रामगीता में सुन्दर-सुन्दर बातें हैं।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— तुम रामगीता-रामगीता करते हो,— तभी तुम घोर वेदान्ती हो! यहाँ पर साधु लोग कितना पढ़ते थे!

महिमाचरण प्रणव शब्द कैसा है, वही पढ़ रहे हैं—

'तैलधारामविच्छिन्नम्— दीर्घघण्टानिनादवत्!' और फिर समाधि

---

* मैं मन, बुद्धि, अहंकार, चित्त नहीं हूँ; न ही कर्ण, जिह्वा, नासिका व नेत्र हूँ। न मैं व्योम (आकाश) हूँ, न भूमि, न तेज, न वायु हूँ। मैं चित्-आनन्द-रूप कल्याणमय शिव हूँ।

के लक्षण बोल रहे हैं—

ऊर्ध्वपूर्णमध:पूर्णं मध्यपूर्णं यदात्मकम्।
सर्वपूर्णं स आत्मेति समाधिस्थस्य लक्षणम्॥

[आत्मा ऊपर से भी पूर्ण है, नीचे से भी पूर्ण है, मध्य से भी पूर्ण है। आत्मा सब ओर से पूर्ण है, यह समाधिस्थ का लक्षण है।]

अधर और महिमाचरण ने क्रमशः प्रणाम करके विदा ग्रहण की।

षष्ठ परिच्छेद

(उन्माद अवस्था— सरलता और सत्यवाणी)

अगला दिन रविवार, 3 फरवरी, 1884 ईसवी; 21वाँ माघ, 1290 बंगला साल। माघ शुक्ला सप्तमी। मध्याह्न-सेवा के बाद ठाकुर अपने आसन पर बैठे हुए हैं। कलकत्ता से राम, सुरेन्द्र आदि भक्तगण उनका असुख सुनकर चिन्तित हुए आए हैं। मास्टर भी पास बैठे हुए हैं। ठाकुर के हाथ में चपटियाँ बँधी हुई हैं, भक्तों के साथ बातें कर रहे हैं।

(पूर्व कथा— उन्माद, जानबाजार में वास— सरलता और सत्यवाणी)

श्रीरामकृष्ण *(भक्तों के प्रति)*— ऐसी अवस्था में माँ ने रखा हुआ है कि अब ढाकाढाकी (ढकना, छिपाना) नहीं की जाती। बालक की अवस्था है!

"राखाल मेरी अवस्था नहीं समझता। पीछे कोई देख ले, फिर निन्दा करे, इसलिए देह पर कपड़ा डालकर हाथ ढक देता है। उसने डॉक्टर मधु को ओट में ले जाकर सब बातें बतलाईं। तब मैं चिल्लाकर बोला— 'कहाँ हो मधुसूदन, आओ देखो, मेरा हाथ टूट गया है।'

"सेजोबाबू (मथुरबाबू) और उसकी घर वाली (सेजोगिन्नी) जिस कमरे में सोया करते, मैं भी उसी कमरे में सोता था! वे ठीक बच्चे की भाँति मेरी देखभाल करते थे। तब थी मेरी उन्माद-अवस्था। सेजोबाबू कहता,

'बाबा, तुम हमारी कोई बातचीत सुन पाते हो? मैं कहता, 'सुनता हूँ'।

"सेजोगिन्नी सेजोबाबू पर सन्देह करके कहती, यदि कहीं भी जाओ— तो भट्चाज्यि मोशाय (भट्टाचार्य महाशय) तुम्हारे संग जाएँगे। एक जगह पर गए— मुझे नीचे बिठा दिया। उसके बाद आध घण्टे के पश्चात् आकर बोले, 'चलो बाबा, गाड़ी पर बैठो चलकर।' सेजोगिन्नी के पूछने पर, मैंने ठीक वे ही सब बातें बोल दीं। मैंने कहा, 'देखो जी, एक गाड़ी पर हम लोग गए थे,— उन्होंने मुझे नीचे बिठा दिया— ऊपर स्वयं गए;— आध घण्टे के बाद आकर बोले, 'चलो बाबा, चलो'! सेजोगिन्नी ने जो हो, समझ लिया।

"मारवाड़ियों का एक साझी (शरीक, हिस्सेदार) यहाँ के वृक्षों के फल, गोभी गाड़ी भरकर अपने घर में भेज दिया करता था। दूसरे साझियों के पूछने पर मैंने बिल्कुल वही कह दिया।"

एकादश खण्ड

दक्षिणेश्वर-मन्दिर में राखाल, मास्टर, मणिलाल आदि के संग

प्रथम परिच्छेद

(ठाकुर का अधैर्य क्यों ? मणिमल्लिक के प्रति उपदेश)

ठाकुर श्रीरामकृष्ण मध्याह्न-सेवा के पश्चात् थोड़ा विश्राम कर रहे हैं। फर्श पर मणिमल्लिक बैठे हुए हैं। ठाकुर के हाथ पर अभी भी चपटियाँ बँधी हुई हैं। मास्टर आकर प्रणाम करके मणिमल्लिक के निकट फर्श पर बैठ गए। आज रविवार, कृष्णा त्रयोदशी; 24 फरवरी, 1884 ईसवी; 13वाँ फाल्गुन, 1290 (बंगला) साल।

श्रीरामकृष्ण— *(मास्टर के प्रति)*— कैसे आए ?

मास्टर— जी, आलमबाजार तक गाड़ी में आकर वहाँ से पैदल आया हूँ।

मणिलाल— उहः ! खूब पसीना आया है।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— तभी सोचता हूँ, मेरी यह समस्त बाई (वायु, सनक) नहीं है। नहीं तो इंग्लिशमैन क्या इतना कष्ट करके आते ?

ठाकुर कैसे हैं— हाथ टूटने की बातें हो रही हैं।

श्रीरामकृष्ण— मैं इसके लिए कभी-कभी अधीर हो जाता हूँ— इस को दिखाता हूँ— फिर उसको दिखलाता हूँ— और कहता हूँ, अजी ठीक हो जाएगा क्या ? राखाल नाराज होता है,— मेरी अवस्था समझता नहीं। कभी-कभी सोचता हूँ,— यहाँ से जाता है तो जाए,— और फिर माँ से कहता हूँ, माँ

कहाँ पर जाएगा— कहाँ पर जलने–फुँकने जाएगा!

"मेरी यह बालकवत् अधीर अवस्था आज ही नहीं है। मैं सेजोबाबू को हाथ दिखाया करता था, कहता था— भाई, मुझे क्या रोग हो गया है?

"अच्छा, ऐसा है तो फिर ईश्वर में निष्ठा कहाँ हुई?— गाँव को जाते समय बैलगाड़ी के पास डाकुओं की भाँति लाठियाँ हाथ में लिए कितने सारे मनुष्य आ गए! मैं देवताओं के नाम लेने लगा। किन्तु कभी तो कहता राम, कभी दुर्गा, कभी ॐ तत्सत्— जो भी लग जाए।"

(मास्टर के प्रति)— "अच्छा, क्यों इतना अधैर्य है मुझे?"

मास्टर— आप तो सर्वदा ही समाधिस्थ रहते हैं— आपने भक्तों के लिए थोड़ा–सा मन शरीर के ऊपर रखा हुआ है, इसीलिए— शरीर–रक्षा के लिए कभी–कभी अधीर हो जाते हैं।

श्रीरामकृष्ण— हाँ, केवल ज़रा–सा मन शरीर के ऊपर है,— वह भी भक्ति और भक्त लेकर रहने के लिए।

[नुमाइश (Exhibition)–दर्शन का प्रस्ताव— ठाकुर की चिड़ियाघर–दर्शन की बात]

मणिलाल मल्लिक एग्जिबीशन (नुमाइश) की बातें कर रहे हैं।

'यशोदा कृष्ण को गोद में लिए हुए हैं— बड़ी सुन्दर मूर्त्ति है'— सुनकर ठाकुर की आँखों में जल आ गया है। उस वात्सल्यरस की प्रतिमा यशोदा की बात सुनकर ठाकुर को उद्दीपन हुआ है,— जभी रो रहे हैं।

मणिलाल— आपको असुख है,— नहीं तो आप एक बार जाकर देख आते— गढ़ के मैदान की प्रदर्शनी।

श्रीरामकृष्ण *(मास्टर आदि के प्रति)*— मैं जाकर समस्त देख नहीं सकूँगा! एक–आध कुछ देखकर ही बेहोश हो जाऊँगा— फिर और कुछ देखना नहीं होगा। चिड़ियाघर दिखाने ले गए थे। सिंह–दर्शन करके ही मैं समाधिस्थ हो गया था!— ईश्वरी के वाहन को देखकर ईश्वर का उद्दीपन हो गया— तब और जानवरों को कौन देखे!— सिंह देखकर ही लौट आया था। जभी तो

यदुमल्लिक की माँ ने एक बार कहा, एग्जिबीशन (प्रदर्शनी) में इनको ले चलो— और फिर बोली, नहीं!

मणिमल्लिक पुराने ब्रह्मज्ञानी हैं। वयस प्राय: 65 हो गई है। ठाकुर उनके ही भाव में बातों के बहाने उनको उपदेश दे रहे हैं।

(पूर्वकथा— जयनारायण पण्डित-दर्शन— गौरी पण्डित)

श्रीरामकृष्ण— जयनारायण पण्डित खूब उदार था। जाकर देखा— सुन्दर भाव है। लड़के सब बूट पहने हुए थे; अपने-आप बोला— मैं काशी जाऊँगा। जो कहा था, वही अन्त में किया। काशी में वास— और काशी में ही देहत्याग हुआ।*

"आयु हो जाने पर गृहस्थी से इसी प्रकार चले जाकर ईश्वर-चिन्तन करना अच्छा है। क्या कहते हो?"

मणिलाल— हाँ, संसार (गृहस्थी) का झँझट अच्छा नहीं लगता!

श्रीरामकृष्ण— गौरी स्त्री की पुष्पाँजलि द्वारा पूजा किया करता था। सब स्त्रियाँ ही भगवती का एक-एक रूप हैं।

(मणिलाल के प्रति)— "अपनी वही कहानी इन्हें सुनाओ जी।"

मणिलाल *(सहास्य)*— कई जन नौका द्वारा गंगा पार कर रहे थे। एक पण्डित ने अपनी विद्या (पढ़ाई) का खूब परिचय दिया। 'मैंने नाना शास्त्र पढ़े हैं,— वेद— वेदान्त— षड्दर्शन।' किसी से पूछा— 'तुम वेदान्त जानते हो?' वह बोला, 'जी नहीं।' 'तुम सांख्य, पातञ्जल जानते हो?'— 'जी नहीं।' 'दर्शन-वर्शन कुछ भी नहीं पढ़ा?'— 'जी नहीं।'

"पण्डित सगर्व बातें कर रहा था, वह व्यक्ति चुप बैठा था। इसी समय भयंकर तूफान आया— नौका डूबने लगी। वह व्यक्ति बोला, 'पण्डित जी,

---

* श्रीरामकृष्ण ने 1869 से पहले पण्डित को देखा था। पण्डित जयनारायण का श्री काशीगमन 1869, जन्म 1804, काशीप्राप्ति 1873 ईसवी।

आप तैरना जानते हैं?' पण्डित बोला— 'नहीं'। वह बोला, 'मैं सांख्य, पातञ्जल नहीं जानता, किन्तु तैरना जानता हूँ'।''

(ईश्वर ही वस्तु और सब अवस्तु— लक्ष्यभेद)

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— नाना शास्त्र जानने से क्या होगा! भवनदी पार होना जानना ही प्रयोजनीय है। ईश्वर ही वस्तु हैं और सब अवस्तु।

''लक्ष्यभेद के समय द्रोणाचार्य ने अर्जुन से पूछा, 'तुम क्या-क्या देखते हो?— इन राजाओं को क्या तुम देखते हो?' अर्जुन बोले— 'ना'। 'मुझे देखते हो?'— 'ना'।— 'वृक्ष देखते हो?'— 'ना'। 'वृक्ष के ऊपर पक्षी देखते हो?'— 'ना'। 'तो फिर क्या देखते हो?'— 'केवल पक्षी की आँख'।

''जो केवल पक्षी की आँख ही को देखता है, वही लक्ष्य बींध सकता है।

''जो केवल देखता है, ईश्वर ही वस्तु है और सब अवस्तु, वही है चतुर। अन्य खबरों से हमें क्या मतलब? हनुमान ने कहा था, मैं तिथि, नक्षत्र इतना नहीं जानता— केवल राम-चिन्तन करता हूँ।''

(मास्टर के प्रति)— ''कुछ पंखे यहाँ के लिए खरीद दिओ।''

(मणिलाल के प्रति)— ''अजी, तुम एक बार इनके (मास्टर के) पिता के पास जाना। भक्त देखकर (उन्हें) उद्दीपन होगा।''

द्वितीय परिच्छेद

(श्रीयुक्त मणिलाल आदि के प्रति उपदेश— नर-लीला)

श्रीरामकृष्ण अपने आसन पर बैठे हुए हैं। मणिलाल आदि भक्तगण फर्श पर बैठे हुए ठाकुर का मधुर कथामृत-पान कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण *(मास्टर के प्रति)*— इस हाथ के टूटने के बाद एक विशेष भारी अवस्था बदल रही है। नर-लीला ही केवल अच्छी लग रही है।

"नित्य और लीला। नित्य— वही अखण्ड सच्चिदानन्द।

"लीला— ईश्वर-लीला, देव-लीला, नर-लीला, जगत-लीला।"

(तू सच्चिदानन्द— वैष्णवचरण को शिक्षा— ठाकुर का रामलीला-दर्शन)

"वैष्णवचरण कहता था, नर-लीला में विश्वास हो जाने पर पूर्ण ज्ञान होगा। तब सुनता नहीं था। अब देखता हूँ, ठीक है। वैष्णवचरण मनुष्य के कोमल भाव— प्रेमभाव की छवि देखना— पसन्द करता था।"

(मणिलाल के प्रति)— "ईश्वर ही मनुष्य बनकर लीला करते हैं— वे ही मणिमल्लिक हुए हैं। सिख (गुरु) शिक्षा देते हैं— तू सच्चिदानन्द है।

"कभी-कभी अपने स्वरूप (सच्चिदानन्द) को देखकर मनुष्य अवाक् हो जाता है, और आनन्द में तैरने लगता है— अचानक अपना जन देखकर जैसे हो जाता है। *(मास्टर के प्रति)* उस दिन गाड़ी में आते-आते बाबूराम को देखकर जैसे हुआ था।

"शिव जब स्वस्वरूप को देखते, तब 'मैं कौन!' 'मैं कौन!' कहकर नृत्य करते थे।

"अध्यात्म (रामायण) में यही बात ही है। नारद ने कहा, 'हे राम, जितने पुरुष हैं सब तुम हो, जितनी स्त्रियाँ हैं सब सीता ही हैं'।

"रामलीला में जो सजे (बने) थे, उन्हें देखकर बोध हुआ कि नारायण ही इन सब मनुष्यों का रूप रखकर रह रहे हैं! असली-नकली समान बोध हुआ।

"कुमारी-पूजन क्यों करते हैं? समस्त स्त्रियाँ भगवती का एक-एक रूप हैं। शुद्धात्मा कुमारी में भगवती का अधिक प्रकाश होता है।"

(असुख में ठाकुर क्यों अधीर— ठाकुर की बालक और भक्त की अवस्था)

(मास्टर के प्रति)— "असुख में क्यों मैं अधीर हो जाता हूँ? मुझे बालक के स्वभाव में रखा हुआ है। बालक का सब कुछ है माँ के ऊपर निर्भर।

''दासी का लड़का बाबू के लड़के के साथ लड़ाई करते-करते बोल देता है, मैं माँ से कह दूँगा।''

(राधाबाजार में सुरेन्द्र के द्वारा फोटो खिंचवाना— 1881 ईसवी)

''राधाबाजार में मुझे छवि खिंचवाने के लिए ले गए। उस दिन राजेन्द्रमित्र के घर जाने की बात थी— केशवसेन और सब आवेंगे, सुना था। मोटी-मोटी कुछ बातें कहूँगा, यह निश्चय किया था। राधाबाजार जाकर सब भूल गया! तब कहा था!— माँ, तू ही बोलना! मैं और क्या बोलूँगा?''

(पूर्वकथा—कुँवरसिंह— रामलाल की माँ— कुमारी-पूजा)

''मेरा ज्ञानी का स्वभाव नहीं है। ज्ञानी अपने को बड़ा देखता है— कहता है, मुझे फिर रोग!

''कुँवरसिंह ने कहा, 'तुम्हें अभी तक भी देह के लिए चिन्ता है?'

''मेरा स्वभाव यही है— मेरी माँ सब जानती हैं। राजेन्द्रमित्र के घर में वे बातें करती हैं। वे बातें ही 'वाणी' है। सरस्वती के ज्ञान की एक किरण के निकट एक हजार पण्डित किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो जाते हैं।

''भक्त की अवस्था में— विज्ञानी की अवस्था में— रखे हुए हैं। जभी राखाल आदि के संग मजाक करता हूँ। ज्ञानी की अवस्था में रखने पर वैसा नहीं हो पाता।

''इस अवस्था में देखता हूँ माँ ही सब होकर रह रही हैं। सर्वत्र उनको देखता हूँ!

''काली-मन्दिर में देखा, माँ ही होकर रह रही हैं— दुष्ट व्यक्ति पर्यन्त— भागवत पण्डित के भाई पर्यन्त।

''रामलाल की माँ को डाँटने गया, फिर डाँट न सका। देखा, उनका ही एक रूप है! माँ को कुमारी के भीतर देखता हूँ, इसीलिए तो कुमारी-पूजा करता हूँ।

''मेरी औरत (भक्तों की श्री श्री माँ सारदा) पैरों पर हाथ फेर देती है,— उसके बाद फिर मैं नमस्कार करता हूँ।

''तुम लोग मेरे पैरों में हाथ देकर नमस्कार करते हो,— हृदय के रहते हुए पाँव में हाथ कौन देता था!— वह किसी को पाँव छूने नहीं देता था।

''इस अवस्था में रखा हुआ है, इसीलिए नमस्कार लौटाना होता है।

''देखो, दुष्ट व्यक्ति तक को भी तो छोड़ नहीं सकता।— तुलसी सूखी हो, छोटी हो, भगवान–सेवा में लगेगी ही।''

द्वादश खण्ड

ठाकुर श्रीरामकृष्ण दक्षिणेश्वर-मन्दिर में राखाल, राम, नित्य, अधर, मास्टर, महिमा आदि भक्तों के संग

प्रथम परिच्छेद

(श्रीरामकृष्ण असुख में अधीर क्यों ? विज्ञानी की अवस्था)

ठाकुर श्रीरामकृष्ण मध्याह्न की सेवा के बाद राखाल, राम आदि भक्तों के संग में बैठे हुए हैं। शरीर पूरी तरह स्वस्थ नहीं है— अब भी हाथ में चपटियाँ बँधी हुई हैं। आज रविवार है, 23 मार्च 1884 ईसवी; 11वाँ चैत्र, 1290 (बंगला) साल।

अपने को असुख है,— किन्तु ठाकुर ने आनन्द की हाट लगा रखी है। दल के दल भक्त आ रहे हैं। सर्वदा ही ईश्वरवाणी-प्रसंग में— आनन्द। कभी कीर्त्तनानन्द, कभी अथवा ठाकुर समाधिस्थ होकर ब्रह्मानन्द-भोग कर रहे हैं। भक्तगण अवाक् होकर देखते हैं। ठाकुर बातें कर रहे हैं।

(नरेन्द्र का विवाह-सम्बन्ध— नरेन्द्र 'दलपति')

राम— आर० मित्र की कन्या के संग नरेन्द्र का सम्बन्ध हो रहा है। बहुत-सा रुपया देगा, कहा है।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— वैसा ही एक 'दलपति'-शलपति हो सकता है। वह जिस तरफ जाएगा उसी तरफ ही कुछ न कुछ बड़ा हो जाएगा।

ठाकुर ने नरेन्द्र की बात को अधिक नहीं उठने दिया।

(राम के प्रति)— "अच्छा, असुख हो जाने पर मैं इतना अधीर क्यों हो जाता हूँ? कभी इससे पूछता हूँ कैसे ठीक होगा। कभी उससे पूछता हूँ।

"बात क्या है? या तो सब पर ही विश्वास करना चाहिए, या फिर किसी का भी नहीं।

"वे ही डॉक्टर और कविराज हुए हैं। तभी तो सब चिकित्सकों पर ही विश्वास करना चाहिए। उन्हें मनुष्य समझने से विश्वास नहीं होता।

(पूर्वकथा— शम्भुमल्लिक और हलधारी की बीमारी)

"शम्भु को घोर विकार हुआ— सर्वाधिकारी ने देखकर कहा, दवाई की गर्मी है।

"हलधारी ने हाथ दिखाया, डॉक्टर ने कहा, 'आँखें देखूँ;— ओह! प्लीहा (तिल्ली) हुई है।' हलधारी ने कहा, 'प्लीहा-श्लीहा कहीं भी कुछ नहीं है।'

"मधु डॉक्टर की औषध अच्छी है।"

राम— औषध से उपकार नहीं होता। किन्तु वह प्रकृति की बहुत सहायता करती है।

श्रीरामकृष्ण— औषध से उपकार न होता तो अफीम से बाह्य (टट्टियाँ) बन्द क्यों हो जाती हैं?

(केशवसेन की बात— 'सुलभ समाचार' में ठाकुर के विषय में छपवाना)

राम केशव के शरीर-त्याग की बात कर रहे हैं।

राम— आपने तो ठीक कहा था,— बसराई गुलाब (बढ़िया गुलाब) के पौधे की माली जड़ खोल देता है,— शिशिर (ओस, हिम) लगने से और भी तेजी से पौधा बढ़ता है। सिद्धवचन तो फला है!

श्रीरामकृष्ण— भाई मैं क्या जानूँ, इतना हिसाब नहीं किया; तुम लोग ही कहते हो।

राम— उन्होंने आपके विषय में ('सुलभ समाचार' में) छाप दिया था।

श्रीरामकृष्ण— छाप देना! यह क्या! अभी छपवाना क्यों?— मैं खाता-पीता रहता हूँ; और कुछ नहीं जानता।

"केशवसेन से मैंने कहा, क्यों छपवाया? वह बोला, तुम्हारे पास लोग आवें, इसलिए।"

(लोकशिक्षा ईश्वर की शक्ति द्वारा— हनुमानसिंह की कुश्ती का दर्शन)

(राम आदि के प्रति)— "मनुष्य की शक्ति द्वारा लोकशिक्षा नहीं होती। ईश्वर की शक्ति के बिना अविद्या जय नहीं की जाती।

"दो जन कुश्ती लड़े थे— हनुमानसिंह और एक पंजाबी मुसलमान। मुसलमान तो खूब हृष्ट-पुष्ट था! कुश्ती के दिन, और उससे पहले पन्द्रह दिनों तक उसने मांस-घी खूब खाया! सबने सोचा यही जीतेगा। हनुमानसिंह— शरीर पर मैली धोती— कई दिन से कम-कम खाकर, महावीर का नाम जपने लगा। जिस दिन कुश्ती हुई, उस दिन बिल्कुल उपवास रखा। सब ने सोचा था, यह निश्चय ही हारेगा। किन्तु वही जीता। जिसने पन्द्रह दिन तक खूब खाया, वही हारा।

"छापने-छपवाने से क्या होगा?— जो लोकशिक्षा देंगे उनकी शक्ति ईश्वर के पास से आएगी। फिर त्यागी बिना हुए लोकशिक्षा नहीं होती।"

(बाल्य— कामारपुकुर में लाहाओं की बाड़ी में साधुओं से पाठ-श्रवण)

"मैं मूर्खोत्तम।" *(सब का हास्य)*।

एक जन भक्त— तो फिर आपके मुख से वेद-वेदान्त— उसके अतिरिक्त और भी कितना क्या-क्या— निकलता क्यों है?

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— किन्तु बचपन में लाहाओं के वहाँ पर (कामारपुकुर में) साधु लोग जो पढ़ते थे, मैं समझ सकता था। किन्तु थोड़ा-थोड़ा छूट जाता। कोई पण्डित आकर यदि संस्कृत में बातें करता है तो समझ सकता हूँ,

किन्तु स्वयं संस्कृत में बातें नहीं कह सकता।''

(पाण्डित्य क्या जीवन का उद्देश्य है ? मूर्ख और ईश्वर-कृपा)

''उन्हें प्राप्त करना ही जीवन का उद्देश्य है। लक्ष्य बींधने के समय अर्जुन बोले— मैं और कुछ भी नहीं देख पा रहा हूँ,— केवल पक्षी का चक्षु देख रहा हूँ— राजाओं को भी नहीं देख रहा,— वृक्ष भी नहीं देखता, पक्षी तक को भी नहीं देख रहा।

''उनको प्राप्त करने से ही हुआ— संस्कृत चाहे नहीं जानता।

''उनकी कृपा पण्डित, मूर्ख, सब बच्चों के ही ऊपर है— जो उनको पाने के लिए व्याकुल होते हैं। बाप का सबके ऊपर समान स्नेह है।

''बाप के पाँच बेटे हैं,— दो-एक लड़के 'बाबा' कहकर पुकार सकते हैं। और फिर कोई केवल 'बा' ही कहकर पुकारता है,— कोई फिर 'पा' कहकर पुकारता है,— पूरा उच्चारण नहीं कर सकता। जो 'बाबा' कहता है, उसके ऊपर क्या बाप का अधिक प्यार होगा?— जो 'पा' कहता है उसकी अपेक्षा? पिता (बाबा) जानता है— ये नन्हें बच्चे हैं, 'बाबा' ठीक नहीं बोल सकते!''*

(ठाकुर श्रीरामकृष्ण का नर-लीला में मन)

''इस हाथ के टूटने पर एक और ही अवस्था बदलती जा रही है— नर-लीला की ओर मन बढ़ रहा है। वे ही मनुष्य होकर खेल रहे हैं।

''मिट्टी की प्रतिमा में उनकी पूजा है, फिर मनुष्य में नहीं होगी?

''एक सौदागर लंका के निकट जहाज डूब जाने से लंका के किनारे तैरता हुआ आ गया था। विभीषण की आज्ञा से उस व्यक्ति को उनके पास ले जाया गया। 'आहा! यह तो मेरे रामचन्द्र जैसी वही नर-रूप मूर्त्ति है।' यह कहकर विभीषण आनन्द में विभोर हो गए और उस व्यक्ति को वसन-भूषण

---

* See Maxmuller's Hibbert Lectures.

पहनाकर उसकी पूजा और आरती करने लगे।

"इस कथा को जब मैंने पहली बार सुना, तब मुझे जो आनन्द हुआ था, कहा नहीं जा सकता।"

(पूर्वकथा— वैष्णवचरण— फुलुईश्यामबाजार के कर्त्ताभजाओं की कथा)

"वैष्णवचरण से पूछने पर वह कहता था, जो जिसको पसन्द करता है, उसे ही इष्ट मान लेने से भगवान में शीघ्र ही मन जाता है। 'तू किसको पसन्द करता है?' 'अमुक पुरुष को।' 'तब तो उसको ही अपना इष्ट समझ।' उस गाँव में (कामारपुकुर, श्यामबाजार में) मैंने कहा, 'इस प्रकार का मेरा मत नहीं है। मेरा मातृभाव है।' देखा, जो बड़ी-बड़ी बातें करते हैं, वे ही फिर व्यभिचार करते हैं। औरतों के पूछने पर कि हमारी क्या मुक्ति नहीं होगी; मैंने कहा— होगी, यदि एकजन को भगवान मानकर निष्ठ रहे। पाँच मर्दों के साथ रहने से न होगी।"

राम— केदारबाबू शायद कर्त्ताभजाओं के यहाँ गए थे?

श्रीरामकृष्ण— वह पाँच तरह के फूलों का मधु आहरण करता है।

(हलधारी का पिता— मेरा पिता— वृन्दावन में लौटती गोष्ठदर्शन में भाव)

(राम, नित्यगोपाल आदि के प्रति)— "ये ही मेरे इष्ट हैं, यह विश्वास सोलह आना हो जाने पर— उनका लाभ— दर्शन हो जाता है।

"पहले के लोगों का खूब विश्वास था। हलधारी के पिता का कैसा विश्वास था!

"लड़की के घर जा रहे थे। रास्ते में बेलफूल और बेलपत्ते बड़े सुन्दर हुए हुए हैं देखकर, भगवान की सेवा के लिए बहुत-से लेकर, दो तीन कोस पथ से अपने घर लौट आए।

"राम-लीला (गीतिनाटिका) हो रही थी। कैकेयी ने राम को बनवास में जाने के लिए कहा। हलधारी का बाप यात्रा सुनने के लिए गया था—

एकदम खड़ा हो गया!— जो कैकयी बना था, उसके पास आकर 'पामरी!' (पापिन)— यह बात कहकर दीवे से उसका मुख जलाने लगा।

"स्नान करने के बाद जब जल में खड़े होकर— रक्तवर्णं चतुर्मुखम्— इत्यादि बोलकर ध्यान करता, तब आँखों से जल बहने लगता!

"मेरे बाबा (पिता) जब खड़ाऊँ पहनकर सड़क पर चलते तो दुकानदार खड़े हो जाते। कहते, वे सामने आ रहे हैं।

"जब हालदारपुकुर में स्नान करते, लोग साहस करके नहाने के लिए नहीं जाते। खबर लेते, 'क्या वे स्नान कर गए हैं?'

"रघुबीर! रघुबीर! कहते, और उनकी छाती रक्तवर्ण हो जाती।

"मेरा भी उसी प्रकार होता। वृन्दावन में लौटती गोष्ठ (गौओं का दल) देखकर, भाव में शरीर उसी प्रकार का हो गया था।

"उस समय के लोगों का खूब विश्वास था। ऐसी बात भी सुनने में आती है कि काली-रूप में वे (भगवान) नाच रहे हैं और साधक तालियाँ बजा रहे हैं!"

(पञ्चवटी का हठयोगी)

पञ्चवटी के कमरे में एक हठयोगी आए हैं। एंड़ेदे के कृष्णकिशोर के पुत्र रामप्रसन्न तथा और भी कई लोग उस हठयोगी की बड़ी भक्ति करते हैं। किन्तु उनकी अफीम और दूध में महीने में पच्चीस रुपयों का खर्चा हो जाता। रामप्रसन्न ने ठाकुर के पास आकर कहा था, 'आप के यहाँ तो अनेक भक्त आते हैं, यदि कहने-बोलने से कुछ दें— ताकि हठयोगी के लिए कुछ रुपये मिलें।

ठाकुर ने कई-एक भक्तों से कहा— "पञ्चवटी में हठयोगी को देख आओ, कैसा व्यक्ति है।"

द्वितीय परिच्छेद

(ठाकुरदादा और महिमाचरण के प्रति उपदेश)

'ठाकुरदादा' ने दो-एक मित्रों के संग आकर ठाकुर को प्रणाम किया। वयस 27-28 होगी। बराहनगर में वास है। ब्राह्मण पण्डित के लड़के,— कथकता*-अभ्यास कर रहे हैं। गृहस्थी कन्धे पर पड़ी हुई है,— वैराग्य होने के कारण कुछ दिन लापता हो गए थे। अब भी साधन-भजन करते हैं।

श्रीरामकृष्ण— तुम क्या पैदल आए हो ? घर कहाँ है ?

ठाकुरदादा— जी हाँ; बराहनगर में घर है।

श्रीरामकृष्ण— यहाँ पर क्या प्रयोजन था ?

ठाकुरदादा— जी, आपका दर्शन करने आया हूँ, उनको पुकारता हूँ— बीच-बीच में अशान्ति क्यों हो जाती है ? दो-चार दिन अच्छे आनन्द में जाते हैं, उसके बाद फिर अशान्ति क्यों ?

(कारीगर; मन्त्र में विश्वास; हरिभक्त; ज्ञान के दो लक्षण)

श्रीरामकृष्ण— समझ गया, ठीक नहीं पड़ रहा। कारीगर दाँत पर दाँत बिठा देता है, वैसा होने पर भी कहीं थोड़ा-सा अटकता है।

ठाकुरदादा— जी, इसी प्रकार की अवस्था हो गई है।

श्रीरामकृष्ण— मन्त्र लिया है ?

ठाकुरदादा— जी, हुआ है।

श्रीरामकृष्ण— मन्त्र में विश्वास है ?

ठाकुरदादा के बन्धु कहते हैं, ये सुन्दर गाना गा सकते हैं। ठाकुर कह रहे

---

* कथकता = प्राचीन कथा का संगीत आदि के साथ व्याख्यान; कथक या पौराणिक का काम— Professional practice of narrating scriptural and mythological stories. कथकठाकुर = a professional narrator of scriptural and mythological stories.

हैं— एक गाना तो गाओ जी। ठाकुरदादा गा रहे हैं—

प्रेम गिरि-कन्दरे, योगी होये रहिबो।
आनन्दनिर्झर पाशे योगध्याने थाकिबो॥

तत्त्वफल आहरिये ज्ञान-क्षुधा निवारिये,
वैराग्य-कुसुम दिये श्रीपादपद्म पूजिबो।
मिटाते विरह-तृषा कूप जले आर जाबो ना,
हृदय-करंग भरे शान्ति-वारि तुलिबो।
कभु भाव शृङ्ग पोरे, पदामृत पान करे,
हासिबो कांदिबो (आबार) नाचिबो गाइबो।

[भावार्थ— प्रेमगिरि की कन्दरा में योगी होकर रहूँगा। आनन्दनिर्झर के निकट योगध्यान में रहूँगा। तत्त्वफल संग्रह करके ज्ञान-क्षुधा हटाकर वैराग्य-कुसुम द्वारा श्री पादपद्मों की पूजा करूँगा। विरह-तृष्णा को मिटाने के लिए कुएँ के जल के लिए नहीं जाऊँगा, हृदय-रूप कमण्डल भरकर शान्ति-जल उठाऊँगा। कभी भाव-शिखर पर चढ़कर चरणामृत-पान कर, हँसूँगा, रोऊँगा और नाचूँगा, गाऊँगा।]

श्रीरामकृष्ण— आहा, सुन्दर गाना! आनन्द-निर्झर! तत्त्वफल! हसूँगा, रोऊँगा, नाचूँगा, गाऊँगा!

"तुम्हें भीतर से ऐसे गाने अच्छे लगते हैं— और फिर क्या?

"संसार में रहने से ही सुख-दु:ख होता है— एक आध बार अशान्ति होती है।

"काजल के कमरे में रहने से देह पर कालस तो लगेगी ही।"

ठाकुरदादा— अच्छा,— अब क्या करूँ— बतला दें।

श्रीरामकृष्ण— ताली बजाकर सुबह शाम हरिनाम करोगे,— 'हरिबोल', 'हरिबोल', 'हरिबोल' बोल-बोलकर।

"और एक बार आना,— मेरा हाथ थोड़ा ठीक हो जाए।"

महिमाचरण ने आकर ठाकुर को प्रणाम किया।

(महिमा के प्रति)— "आहा, इन्होंने एक विशेष सुन्दर गाना गाया है।— गाओ तो जी एक बार फिर वही गाना।"

ठाकुरदादा ने फिर दोबारा गाया, 'प्रेम गिरि-कन्दरे' इत्यादि।

गान समाप्त हो जाने पर ठाकुर महिमाचरण से कह रहे हैं— तुम वही श्लोक एक बार बोलो तो— हरि भक्ति की वाणी।

महिमाचरण नारदपञ्चरात्र से वही श्लोक बोल रहे हैं—

अन्तर्बहिर्यदि हरिस्तपसा ततः किम्।
नान्तर्बहिर्यदि हरिस्तपसा ततः किम्॥
आराधितो यदि हरिस्तपसा ततः किम्।
नाराधितो यदि हरिस्तपसा ततः किम्॥[1]

श्रीरामकृष्ण— वह भी बोलो— 'लभ लभ हरिभक्तिम्'। महिमाचरण बोल रहे हैं—

विरम विरम ब्रह्मन् किं तपस्यासु वत्स।
व्रज व्रज द्विज शीघ्रं शंकरं ज्ञानसिन्धुम्॥
लभ लभ हरिभक्तिं वैष्णवोक्तां सुपक्वाम्।
भवनिगडनिबन्धच्छेदनीं कर्तरीञ्च॥[1]

श्रीरामकृष्ण— शंकर हरिभक्ति देंगे।

महिमा— पाशमुक्तः सदा शिवः।

श्रीरामकृष्ण— लज्जा, घृणा, भय, संकोच— ये सब पाश[2] हैं; क्या कहते हो?

महिमा— जी, हाँ, गोपन करने की इच्छा, प्रशंसा में कुण्ठित (लज्जित) होना।

श्रीरामकृष्ण— ज्ञान के दो लक्षण हैं। प्रथम कूटस्थ बुद्धि। हजार दुःख-कष्ट, विपद-विघ्न चाहे हों— निर्विकार रहता है, जैसे लोहार की निहाई, जिसके ऊपर लोहा रखकर हथौड़े के द्वारा पीटा जाता है। और दूसरा, पुरुषार्थ, खूब तेज (रोख)। काम-क्रोध मेरा अनिष्ट करते हैं तो उनका एकदम त्याग! कछुआ यदि हाथ-पाँव भीतर समेट लेता है तो चार टुकड़े कर देने पर भी फिर बाहर नहीं करेगा।

1 अर्थ पीछे पृष्ठ 114 पर देखें।

2 पाश आठ हैं— लज्जा, घृणा, भय, कुल, शील, मान, जुगुप्सा (निन्दा, बुराई), शंका।

(तीव्र, मन्द और मर्कट वैराग्य)

(ठाकुरदादा आदि के प्रति)— ''वैराग्य दो प्रकार का है— तीव्र वैराग्य और मन्द वैराग्य। मन्द वैराग्य— हो रहा है, होगा— धीमा तिताला। तीव्र वैराग्य— शानित छुरे की धार— मायापाश कच्-कच् करके काट देता है।

''कोई किसान कई दिन से काट रहा है किन्तु तालाब का जल खेत में नहीं आता! मन में तेज नहीं है! और फिर कोई दो-चार दिन बाद ही प्रतिज्ञा करता है— आज लाकर ही छोड़ूँगा। नहाना-खाना सब बन्द। सारा दिन परिश्रम करके सन्ध्या के समय जब जल कल-कल करके आने लगा, तब आनन्द। तत्पश्चात् घर में जाकर स्त्री से कहता है,— दे, अब तेल दे; नहाऊँगा। नहा-खाकर निश्चिन्त होकर निद्रा।

''एक व्यक्ति की स्त्री ने कहा, 'अमुक व्यक्ति को बड़ा वैराग्य हुआ है, तुम्हारा कुछ भी नहीं हुआ!' जिसे वैराग्य हुआ था, उसकी सोलह स्त्रियाँ थीं। वह एक-एक स्त्री करके उनका त्याग कर रहा था।

''पति स्नान करने जा रहा था, अँगोछा कन्धे पर। बोला, 'पगली! वह व्यक्ति त्याग नहीं कर सकेगा,— थोड़ा-थोड़ा करके क्या त्याग होता है! मैं त्याग कर सकूँगा। यह देख,— मैं चला!'

''घर का प्रबन्ध आदि बिना किए— उसी अवस्था में— कन्धे पर अँगोछा रखे— घर-त्याग करके चला गया।— इसी का नाम है तीव्र वैराग्य।

''और एक प्रकार का वैराग्य है— उसे कहते हैं मर्कट वैराग्य। गृहस्थी की ज्वाला में जलकर गेरुआ लेकर काशी चला गया। अनेक दिन संवाद नहीं। फिर एक चिट्ठी आ गई— 'तुम लोग चिन्ता मत करना, मुझे यहाँ पर एक काम मिल गया है।'

''संसार की ज्वाला तो है ही!— औरत हठी, बीस रुपये महीना वेतन, लड़के का अन्नप्राशन कर नहीं पाता, लड़के पढ़ा नहीं पाता— घर टूटा हुआ, छत से जल चूता है,— मरम्मत के लिए पैसा नहीं।

''इसीलिए तो मैं छोकरों के आने पर पूछता हूँ, तेरे कौन-कौन हैं?

(महिमा के प्रति)— "तुम लोगों को गृहस्थी छोड़ने का क्या प्रयोजन? साधुओं को कितना कष्ट! किसी की स्त्री ने कहा, तुम संसार त्याग करोगे— क्यों? आठ घरों में फिर-फिरकर भिक्षा करनी पड़ेगी, उसकी अपेक्षा एक घर से ही खाना पा लेते हो, अच्छा तो है।

"सदाव्रत खोजते-खोजते साधु को तीन कोस दूर के रास्ते पर जाना पड़ता है। देखा है, जगन्नाथ-दर्शन करके— सीधे रास्ते से साधु आता है; सदाव्रत के लिए उसको सीधा मार्ग छोड़ना पड़ता है।

"यह तो अच्छा है— किले में से युद्ध। मैदान में खड़े होकर युद्ध करने से अनेक असुविधाएँ हैं। विपद! देह पर गोले-गोलियाँ आ गिरती हैं!

"किन्तु कुछ दिन निर्जन में जाकर, ज्ञान प्राप्त करके, संसार में आकर रहना चाहिए। जनक ज्ञान-लाभ करके संसार में थे। ज्ञान के बाद जहाँ पर ही रहो, उससे क्या?"

महिमाचरण— महाशय, मनुष्य क्यों विषय में मुग्ध हो जाता है?

श्रीरामकृष्ण— क्योंकि उनको प्राप्त बिना किए विषय में रहता है। उनको प्राप्त कर लेने पर फिर मुग्ध नहीं होता। बरसाती कीड़ा यदि एक बार प्रकाश देख लेता है,— तब फिर उसको अन्धकार अच्छा नहीं लगता।

(ऊर्ध्वरेता, धैर्यरेता और ईश्वर-लाभ— संन्यासी के कठिन नियम)

"उन्हें पाने के लिए वीर्य धारण करना होता है।

"शुकदेव आदि ऊर्ध्वरेता हैं। इनका रेत:पात कभी नहीं हुआ।

"और एक है धैर्यरेता। पहले रेत:पात हुआ है, किन्तु उसके बाद वीर्यधारण। बारह वर्ष धैर्यरेता होने पर विशेष शक्ति पैदा हो जाती है। भीतर एक नूतन नाड़ी होती है, उसका नाम है मेधा नाड़ी। इस नाड़ी के हो जाने पर सब स्मरण रहता है— सब जान सकता है।

"वीर्यपात से बलक्षय हो जाता है। स्वप्नदोष में जो निकल जाता है, उसमें दोष नहीं। वह भात (खाद्य पदार्थ) के गुण से हो जाता है। वह समस्त

निकल जाने पर भी जो रहता है, उससे ही कार्य हो जाता है। किन्तु स्त्री-संग करना उचित नहीं।

"अन्त में जो बचता है, वह खूब रिफाइन (refine, सूक्ष्म) होकर रहता है। लाहाओं के घर में गुड़ की हाँडियाँ रखी हुई थीं,— हाँडियों के नीचे एक-एक छिद्र कर देते हैं, तत्पश्चात् एक वर्ष बाद देखा; सब में दाने बन गए हैं— मिश्री जैसे। रस जो निकलना था, वह छिद्र द्वारा बाहर निकल गया।

"संन्यासी के लिए स्त्री का एकदम त्याग है। तुम लोगों का जो हो गया है, उसमें दोष नहीं।

"संन्यासी तो स्त्री का चित्र तक भी नहीं देखेगा। साधारण व्यक्ति वैसा नहीं कर सकता। सा रे गा मा पा धा नी। 'नी' पर अधिक देर नहीं रहा जाता।

"संन्यासी के लिए वीर्यपात बड़ा ही खराब है। जभी उन्हें सावधानी से रहना चाहिए— ताकि स्त्रीरूप-दर्शन भी न हो। भक्त स्त्री हो तो भी वहाँ से हट जाएगा। स्त्रीरूप देखना भी खराब है। जाग्रत अवस्था में न भी हो, स्वप्न में वीर्यपात हो जाता है।

"संन्यासी जितेन्द्रिय होने पर भी लोकशिक्षा के लिए स्त्रियों के संग आलाप नहीं करेगा। भक्त स्त्री होने पर भी अधिक देर आलाप नहीं करेगा।

"संन्यासी की होती है निर्जला एकादशी। और भी दो प्रकार की एकादशी है। फल-मूल खाकर,— और लुचि छक्का (पूरी-तरकारी) खाकर। *(सब का हास्य)*।

"पूरी-तरकारी के संग में शायद दो रोटी दूध में भीग रही हैं।" *(सब का हास्य)*।

(सहास्य)— "तुम लोग निर्जला एकादशी नहीं कर सकोगे।"

(पूर्वकथा— कृष्णकिशोर की एकादशी— राजेन्द्रमित्र)

"कृष्णकिशोर को देखा था, एकादशी में पूरी-तरकारी खाई। मैंने हृदु से

कहा— हृदु, मेरी इच्छा कृष्णकिशोर की एकादशी करने की हो रही है। *(सब का हास्य)*। वही एक दिन की। खूब पेट भरकर खा लिया। उसके अगले दिन फिर कुछ और नहीं खा सका।'' *(सब का हास्य)*।

जो कुछ भक्त पञ्चवटी में हठयोगी को देखने गए थे, वे लौट आए हैं। श्रीरामकृष्ण उनसे कह रहे हैं—

''क्यों जी, कैसा देखा? अपने गज से माप तो लिया?''

ठाकुर ने देख लिया, भक्तों में से प्राय: कोई भी हठयोगी को रुपया देने के लिए राजी नहीं है।

श्रीरामकृष्ण— साधु को रुपया देना पड़े तो फिर वह अच्छा नहीं लगता।

''राजेन्द्रमित्र— आठ सौ रुपया महीना वेतन— प्रयाग में कुम्भमेला देखने के लिए आया था। मैंने पूछा— 'क्यों जी, मेले में कैसे-कैसे सब साधु देखे?' राजेन्द्र बोले— 'कहाँ, वैसा साधु नहीं देखने में आया। एक चाहे देखा था, किन्तु वे भी रुपया लेते हैं।

''मैं सोचता हूँ कि साधुओं को कोई रुपया-पैसा नहीं देगा तो वे कैसे खावेंगे? यहाँ पर पेला (भेंट) नहीं देना पड़ती, तभी तो सब आते हैं। मैं सोचता हूँ; आहा, वे लोग रुपये को बड़ा प्यार करते हैं! उसे ही लिए रहें।''

ठाकुर थोड़ा विश्राम कर रहे हैं। एकजन भक्त छोटी खाट पर उत्तर की ओर बैठकर उनकी पदसेवा कर रहे हैं। ठाकुर भक्त को धीरे-धीरे कह रहे हैं—

''जो निराकार हैं, वे ही साकार हैं। साकार रूप भी मानना चाहिए। कालीरूप-चिन्तन करते-करते साधक काली-रूप में ही दर्शन पाता है। उसके पश्चात् देखता है कि वही रूप अखण्ड में लीन हो गया। जो अखण्ड सच्चिदानन्द हैं, वे ही काली हैं।''

तृतीय परिच्छेद

[महिमा का पाण्डित्य— मणिसेन, अधर और मीटिंग (meeting)]

ठाकुर पश्चिम के गोल बरामदे में महिमा आदि के संग हठयोगी की बातें कर रहे हैं। रामप्रसन्न भक्त कृष्णकिशोर का पुत्र है, जभी ठाकुर उससे स्नेह करते हैं।

श्रीरामकृष्ण— रामप्रसन्न केवल उसी प्रकार करके हो-हो करता फिरता है। उस दिन यहाँ पर आकर बैठ गया— एक भी बात नहीं की। प्राणायाम करके नाक दबाए रहा; खाने को दिया, नहीं खाया। और एक दिन बुलाकर बिठाया। वह पैर के ऊपर पैर रखकर बैठ गया, काप्तेन की ओर पैर करके। उसकी माँ का दु:ख देखकर रोता हूँ।

(महिमा के प्रति)— ''उसी हठयोगी की बात तुमसे कहने के लिए कहा था। साढ़े छ: आना दिन का खर्च है। इधर अपने-आप नहीं कहेगा।''

महिमा— बोलने से सुनता है कौन? *(ठाकुर और सब का हास्य)*।

ठाकुर कमरे में आकर अपने आसन पर बैठे हैं। श्रीयुक्त मणिसेन (जिनकी पेनेटी में बाड़ी है) दो-एक बन्धुओं के संग आए हैं और ठाकुर के हाथ टूटने के विषय में पूछताछ कर रहे हैं। उनके संगियों में एक डॉक्टर हैं।

ठाकुर डॉक्टर प्रताप मजुमदार की औषध सेवन कर रहे हैं। मणिबाबू के संगी डॉक्टर ने उनकी व्यवस्था (चिकित्सा) का अनुमोदन नहीं किया। ठाकुर उनसे कह रहे हैं, ''वह (प्रताप) तो मूर्ख नहीं है, तुम ऐसी बात क्यों उसके लिए कहते हो?''

इसी समय लाटु ऊँचे स्वर से कह रहे हैं, शीशी गिरकर टूट गई।

मणि (सेन) हठयोगी की बात सुनकर कह रहे हैं— हठयोगी किसे कहते हैं? 'हट्' (hot) माने तो गरम है।

मणिसेन के डॉक्टर के सम्बन्ध में ठाकुर ने भक्तों से पीछे कहा— ''उसको जानता हूँ। यदुमल्लिक से मैंने कहा था, यह तुम्हारा डॉक्टर तो

निरा खोखला है— अमुक डॉक्टर से भी मोटी बुद्धि है।''

(श्रीयुक्त मास्टर के साथ एकान्त में बातें)

सन्ध्या अभी नहीं हुई। ठाकुर अपने आसन पर बैठे हुए मास्टर के साथ बातें कर रहे हैं। वे खाट के पास पापोश (पायदान) पर पश्चिमास्य हुए बैठे हैं। इधर महिमाचरण पश्चिम के गोल बरामदे में बैठकर मणिसेन के डॉक्टर के साथ उच्च स्वर में शास्त्रालाप कर रहे हैं। ठाकुर अपने आसन से सुन रहे हैं और ईषत् हँसकर मास्टर से कह रहे हैं—

''वही (श्लोक) झाड़ रहा है! रजोगुण! रजोगुण में कुछ पाण्डित्य दिखाने, लैक्चर देने की इच्छा होती है। सत्त्वगुण अन्तर्मुख होता है,— और गोपन रहता है। किन्तु आदमी है खूब! ईश्वरकथा में इतना उल्लास!''

अधर ने आकर प्रणाम किया तथा मास्टर के पास बैठ गए।

श्रीयुक्त अधरसेन डिप्टी मैजिस्ट्रेट हैं, आयु 30 वर्ष होगी। काफी दिनों से सारा दिन ऑफिस का परिश्रम करने के बाद ठाकुर के पास प्राय: नित्य सन्ध्या के बाद आते हैं। उनका घर कलकत्ता के शोभाबाजार बेनेटोला में है। अधर कई दिन आए नहीं थे।

श्रीरामकृष्ण— क्यों जी, इतने दिन क्यों नहीं आए?

अधर— जी, बहुत से कामों में फँस गया था। स्कूलों की सभाओं तथा और-और मीटिंगों में जाना पड़ा।

श्रीरामकृष्ण— मीटिंग, स्कूल इत्यादि में एकदम ही भूल गए थे।

अधर *(विनीत भाव से)*— जी, सब कुछ दबा पड़ा था। आपका हाथ कैसा है?

श्रीरामकृष्ण— यह देखो, अभी ठीक नहीं हुआ। प्रताप की औषध खा रहा था।

कुछ क्षण पीछे ठाकुर हठात् अधर से कह रहे हैं—

''देखो यह सब अनित्य हैं— मीटिंग, स्कूल, ऑफिस— ये सब अनित्य हैं।

ईश्वर ही वस्तु हैं और सब अवस्तु। समस्त मन द्वारा उनकी ही आराधना करना उचित है।''

अधर चुप हैं।

''ये समस्त अनित्य हैं। शरीर अभी-अभी है, अभी नहीं। जल्दी-जल्दी उनको पुकार लेना चाहिए।*

''तुम लोगों को सब त्याग करने की जरूरत नहीं है। कछुए की भाँति संसार में रहो। कछुआ स्वयं जल में चरता हुआ टहलता रहता है;— किन्तु अण्डे सूखे में किनारे पर रखता है। उसका सारा मन वहाँ पर पड़ा रहता है जहाँ अण्डे होते हैं।

''काप्तेन का सुन्दर स्वभाव हो गया है। जब पूजा करने बैठता है, बिल्कुल एक ऋषिवत्!— इधर कर्पूर की आरती; सुन्दर स्तव-पाठ करता है। पूजा करके जब उठता है, जैसे आँखों पर च्यूँटियों ने काट लिया है (सूजी हुई)! और सर्वदा गीता, भागवत इत्यादि पाठ करता है। मैंने दो-एक अंग्रेज़ी शब्द बोले थे, उस पर नाराज़ हो गया। बोला— अंग्रेज़ी पढ़ा हुआ व्यक्ति भ्रष्टाचारी होता है!''

कुछ देर बाद अधर अति विनीत भाव में कह रहे हैं—

''आपका हमारे घर अनेक दिन से जाना नहीं हुआ। बैठक में (संसार की) गन्ध हो गई है, और जैसे सर्वत्र अन्धकार।''

भक्त की यह बात सुनकर ठाकुर का स्नेह-सागर जैसे उथला पड़ रहा है। अचानक दण्डायमान होकर भाव में अधर और मास्टर के मस्तक और हृदय स्पर्श करके आशीर्वाद किया। और सस्नेह कह रहे हें,

''मैं तुमको नारायण देख रहा हूँ! तुम ही मेरे अपने लोग हो!''

अब महिमाचरण कमरे में आकर बैठ गए।

---

* अधर ने कुछ मास पीछे ही देह त्याग की।

श्रीरामकृष्ण *(महिमा के प्रति)*— धैर्यरेता की बात तब जो कही थी आपने, वह ठीक है। वीर्य धारण बिना किए इन सब (उपदेशों) की धारणा नहीं होती।

''किसी ने चैतन्यदेव से कहा, इनको (भक्तों को) इतना उपदेश देते हो, फिर वैसी उन्नति वे लोग क्यों नहीं कर पाते? वे बोले— ये लोग स्त्री-संग करके सब अपव्यय कर देते हैं।— जभी धारणा नहीं कर सकते! फूटी हुई कलसी में जल रखने से वह धीरे-धीरे निकल जाता है।''

महिमा आदि भक्तगण चुप हैं। कुछ क्षण पश्चात् महिमाचरण कह रहे हैं—

''ईश्वर के पास हमारे लिए प्रार्थना करें— जिससे हम में वह शक्ति हो जाए।''

श्रीरामकृष्ण— अब भी सावधान होओ! आषाढ़ मास का जल चाहे रोक सकना कठिन है किन्तु जल बहुत-सा तो निकल गया है!— अब बाँध लगाने पर ठहर जाएगा।

त्रयोदश खण्ड

ठाकुर श्रीरामकृष्ण दक्षिणेश्वर-मन्दिर में जन्मोत्सव-दिवस पर
विजय, केदार, राखाल, सुरेन्द्र आदि भक्तों के संग

प्रथम परिच्छेद

(पञ्चवटी तले जन्मोत्सव के दिन विजय आदि भक्तों के संग में)

ठाकुर श्रीरामकृष्ण पञ्चवटी के नीचे पुरातन वटवृक्ष के चबूतरे के ऊपर विजय, केदार, सुरेन्द्र, भवनाथ, राखाल आदि अनेक भक्तों के संग दक्षिणास्य हुए बैठे हैं। कई एक भक्त चबूतरे के ऊपर बैठे हुए हैं। अधिकांश ही चबूतरे के नीचे चारों ओर खड़े हुए हैं। समय एक का होगा। रविवार, 25 मई, 1884 ईसवी; 13वाँ ज्येष्ठ; 1291 (बंगला) साल, शुक्ला प्रतिपदा।

ठाकुर का जन्मदिन फाल्गुन मास की शुक्ल पक्ष की द्वितीया तिथि है। किन्तु उनके हाथ में कष्ट होने के कारण इतने दिन तक जन्मोत्सव नहीं हुआ। अब काफी स्वस्थ हो गए हैं। जभी आज भक्तगण आनन्द करेंगे। सहचरी गाना गाएँगी। सहचरी प्रवीणा (वृद्धा) हो गई हैं किन्तु प्रसिद्ध कीर्त्तनी हैं।

मास्टर ठाकुर को उनके कमरे में न पाकर पञ्चवटी में आकर देखते हैं कि भक्तगण सहास्यवदन— आनन्द में अवस्थान कर रहे हैं। ठाकुर वृक्ष के नीचे चबूतरे के ऊपर जो बैठे हुए हैं, उन्होंने देखा नहीं, अथच ठाकुर के ठीक सम्मुख आकर वे खड़े हुए हैं। वे घबराकर पूछते हैं, वे कहाँ हैं? यह बात सुनकर सबने उच्च हास्य किया। हठात् सम्मुख

ठाकुर का दर्शन करके, मास्टर ने अप्रस्तुत (हक्का-बक्का) होकर उन्हें भूमिष्ठ होकर प्रणाम किया। देखा, ठाकुर के बायीं ओर केदार (चैटर्जी) एवं विजय (गोस्वामी) चबूतरे के ऊपर बैठे हुए हैं। ठाकुर हैं दक्षिणास्य।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य, मास्टर के प्रति)*— देखो, किस प्रकार दोनों जनों को (केदार और विजय को) मिला दिया है।

श्री वृन्दावन से माधवी लता लाकर ठाकुर ने पञ्चवटी में 1868 ईसवी में रोपण की थी। आज माधवी अच्छी बड़ी हो गई है। छोटे-छोटे लड़के चढ़कर झूल रहे हैं, नाच रहे हैं— ठाकुर आनन्द से देख रहे हैं और कह रहे हैं—

''बन्दर के बच्चे का भाव है। गिरने पर भी छोड़ता नहीं।''

सुरेन्द्र चबूतरे के नीचे खड़े हुए हैं। ठाकुर सस्नेह कह रहे हैं—

''तुम ऊपर आओ ना! इस प्रकार (पाँव झुलाना, लटकाना) सुन्दर होगा।''

सुरेन्द्र ऊपर जाकर बैठ गए। भवनाथ को जामा (कुरता, कमीज) पहने बैठा देखकर सुरेन्द्र कहते हैं,

'क्यों रे विलायत जाएगा क्या?'

ठाकुर हँस रहे हैं और कह रहे हैं—

''हम लोगों का विलायत ईश्वर के पास है!''

ठाकुर भक्तों के साथ नाना विषयों पर बातें कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण— मैं बीच-बीच में धोती फेंककर, आनन्दमय होकर फिरता था। शम्भु एक दिन कहने लगे, 'अरे ओ, तुम जभी नंगे होकर टहलते हो कि खूब आराम लगता है! मैंने भी एक दिन करके देखा था।'

सुरेन्द्र— ऑफिस से आकर जामा चपकन (कमीज, अचकन) खोलते समय कहता हूँ— माँ, तुमने कितने बन्धनों में बाँध रखा है!

(सुरेन्द्र का ऑफिस— संसार, अष्टपाश और तीन गुण)

श्रीरामकृष्ण— अष्टपाश द्वारा बन्धन है। लज्जा, घृणा, भय, जाति-अभिमान, संकोच, गोपन की इच्छा— ये सब बन्धन हैं।

ठाकुर गाना गा रहे हैं—

गान— आमि ओई खेदे खेद करी श्यामा।
तुमि माता थाकते आमार जागा घरे चुरि॥
मने करि तोमार नाम करि, किन्तु समये पासरि।
आमि बुझेछि जेनेछि, आशय पेयेछि ए सब तोमारि चातुरी॥
किछु दिले ना पेले ना, निले ना खेलेना से दोष कि आमारि।
यदि दिते पेते, निते खेते, दिताम खाओ याताम तोमारि॥
यश, अपयश, सुरस, कुरस सकल रस तोमारि।
(ओगो) रसे थेके रसभंग केनो करो रसेश्वरी॥
प्रसाद बोले मन दियेछो, मनेरे आँखि ठारि।
(ओ मा) तोमार सृष्टि दृष्टि पोड़ा मिष्टि बोले घुरि॥*

गान— श्यामा मा उड़ाच्चो घुड़ि (भव संसार बाज़ार माझे)
(ओई जे) आशा वायु भरे उड़े, बाँधा ताहे माया दड़ि॥
काक गण्डि मण्डि गांथा, पंजरादि नाना नाड़ी।
घुड़ि स्वगुणे निर्माण करा, कारिगिरी बाड़ाबाड़ि॥

---

* माँ, मुझे यही बड़ा खेद है कि तुम जैसी माता के रहते हुए और मेरे जागते हुए भी मेरे घर में डाका पड़ रहा है। बहुत बार सोचता हूँ तुम्हारा नाम करूँ, करूँ, किन्तु समय आने पर भूल जाता है। मैंने समझ लिया है, जान लिया है तथा मुझे हृदय में बोध हो गया है कि यह सब तुम्हारी ही चातुरी है। तुमने मुझे दिया नहीं, तो तभी तुम्हें नहीं मिला। तुमने लिया नहीं, तो, खाया नहीं। यह दोष क्या मेरा है ? यदि तुम ने मुझे दिया होता, तो तुम अवश्य प्राप्त करतीं और तुम्हें मैं देता और खिलाता। यश, अपयश, सुरस, कुरस सब ही रस तो तुम्हारे ही हैं। हे रसेश्वरी! तुम इन रसों में रहकर रस-भंग क्यों करती हो? रामप्रसाद कहते हैं कि तुम ने मन तो दिया है किन्तु मन को अपनी आँख का इशारा कर दिया है। तभी तो यह दग्ध संसार नाशवान होते हुए भी शाश्वत जैसा मीठा लगने लगा है और मैं घूम रहा हूँ।

विषये मेजेछो मांजा, कर्कशा होयेछे दड़ि।
घुड़ि लक्षेर दुटा एकटा काटे, हेसे देओ मा हात चापड़ि॥
प्रसाद बोले दक्षिणा बातासे घुड़ि जाबे उड़ि।
भव संसार समुद्रपारे पड़वे गिये ताड़ाताड़ि॥[1]

"माया-रस्सी अर्थात् स्त्री-पुत्र। विषयों का माँझा चढ़ाने से रस्सी सख़्त हो गई है। विषय है— कामिनी-काञ्चन।"

गान— भवे आसा खेलते पाशा, बड़ो आशा करेछिलाम।
आशार आशा भांगा दशा, प्रथमे पंजुड़ि पेलाम।
पो'बार आठार षोल, युगे युगे एलाम भाल,
(शेषे) कचे बारो पेये मागो, पंजा छक्काय बद्ध होलाम!
छ'दुइ आठ, छ'चार दश, केउ नय मा आमार बश;
खेलाते ना पेलाम यश, एबार बाजी भोर होइलो।[2]

"पञ्जा अर्थात् पञ्चभूत। पञ्जे, छक्के में बंदी होना अर्थात् पञ्चभूत और छः रिपुओं के बस में होना। 'छ, तिन, नये फाँकि दिबो (छः, तीन, नौ को धोखा देना)।' छः को धोखा देना अर्थात् छः शत्रुओं के बस में न होना। तीन को धोखा देना अर्थात् तीन गुणों के अतीत होना।

"सत्त्व, रज, तम तीन गुणों ने ही मनुष्य को बस में कर रखा है। तीनों

---

1 ओ श्यामा माँ! तुम संसार के भरे बाज़ार में गुड्डी उड़ा रही हो। गुड्डियाँ आशारूप वायु भरकर मायारूप डोर से बँधी हुई हैं। वे खूब ऊँची उड़ रही हैं। उनके फ्रेम, मानव-पिंजर, नाना कागज़ों और लेही से जुड़े हुए हैं तथा अपने तीनों गुणों से बने हुए हैं। किन्तु इनकी यह सब कारीगरी दिखावे के लिए है। पतंग की डोर पर आपने संसारीपन का माँजा लगा दिया है ताकि एक-एक धागा अधिक तेज़ और पक्का हो जाए। लाखों पतंगों, गुड्डियों में से एक-दो ही कटती हैं और उन्हें देखकर आप हँसती हुई तालियाँ बजाती हैं। रामप्रसाद कहते हैं, दक्षिण-पवन में कटी हुई गुड्डी उड़ी जा रही है और वह तुरन्त ही संसार-समुद्र के पार गिर जाएगी।

2 इस भव-संसार में पासा खेलने आना है। बड़ी-बड़ी आशाएँ की थीं। आशा की आशा ही टूटी दशा है, प्रथम मुझे पंजा मिला। पौ'बारह, अठारह, सोलह जिस तरह आते हैं, युग-युग में मैं भी आता रहा। माँ, (अन्त में) कच्चे बारह मिले, मैं पंजे, छक्के में बद्ध हो गया! छः दो आठ, छः चार दस, माँ ये मेरे बस की बात नहीं है। इस खेल में कोई यश भी नहीं मिला, अब की बार तो खेलते-खेलते भोर (सुबह) हो गई है।

भाई हैं; सत्त्व हो तो रज को पुकार सकता है, रज हो तो तम को बुला सकता है। तीनों गुण ही चोर हैं। तमोगुण विनाश करता है, रजोगुण बद्ध करता है, सत्त्व गुण बन्धन तो चाहे खोलता है; किन्तु ईश्वर के पास तक नहीं जा सकता।''

विजय *(सहास्य)*— सत्त्व भी चोर ही है ना!

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— ईश्वर के पास ले जा नहीं सकता, किन्तु पथ दिखला देता है।

भवनाथ— वाह! कैसी बढ़िया बात!

श्रीरामकृष्ण— हाँ, यह खूब ऊँची बात है।

भक्तगण ये सब बातें सुनकर आनन्द कर रहे हैं।

द्वितीय परिच्छेद

(विजय, केदार आदि के प्रति कामिनी-काञ्चन के सम्बन्ध में उपदेश)

श्रीरामकृष्ण— बन्धन का कारण है कामिनी-काञ्चन। कामिनी-काञ्चन ही संसार है। कामिनी-काञ्चन ही ईश्वर को देखने नहीं देते।

यह कहकर ठाकुर ने अपना अँगोछा लेकर अपना मुख ढक लिया, और कह रहे हैं—

''अब मुझे तुम देख सकते हो?— यही आवरण है! इस कामिनी-काञ्चन के आवरण के जाने पर ही चिदानन्द-लाभ होता है।

''देखो ना— जिसने औरत का सुख छोड़ा है, उसने तो जगत-सुख त्याग दिया है। ईश्वर है उसके अति निकट।''

कोई बैठा हुआ, कोई खड़ा हुआ निःशब्द यह कथा सुन रहा है।

(केदार, विजय आदि के प्रति)— ''स्त्री-सुख जिसने त्याग किया है, उसने जगत-सुख त्याग किया है।— यह कामिनी-काञ्चन ही आवरण है। तुम

लोगों की तो इतनी बड़ी-बड़ी मूँछें हैं, किन्तु तुम लोग इसी में ही पड़े हुए हो! बोलो! मन-मन में विवेचना करके देखो।''

विजय— जी, यह है तो सत्य ही।

केदार अवाक् हुए चुप हैं। ठाकुर कह रहे हैं—

''सब को ही देखता हूँ, स्त्री के बस में हैं! काप्तेन के घर पर गया था;— उसके घर होकर राम के घर जाऊँगा। जभी काप्तेन से कहा, 'गाड़ी-भाड़ा दो'। काप्तेन ने अपनी स्त्री से कहा। वह स्त्री भी वैसी ही— 'क्या हुआ', 'क्या हुआ' करने लगी। अन्त में काप्तेन ने कहा कि वे लोग (रामहर) ही दे देंगे। गीता, भागवत, वेदान्त सब उसके भीतर हैं। *(सब का हास्य)*।

''रुपया-पैसा सब औरत के हाथ में है, और कहा जाता है, 'मैं तो दो रुपए भी अपने पास नहीं रख सकता— कैसा मेरा स्वभाव है!'

''बड़े बाबू के हाथ में अनेक काम हैं, किन्तु काम नहीं देता। किसी ने कहा, 'गुलाबी को पकड़ो, तब ही काम होगा।' गुलाबी बड़े बाबू की रखैल है।''

[पूर्वकथा— फोर्ट (किला)-दर्शन— स्त्री और 'कलमबाड़ा रास्ता']

''पुरुष लोग जान ही नहीं सकते कि कितना नीचे उतर गए हैं।

''किले में जब गाड़ी द्वारा पहुँच गया तब बोध हुआ जैसे साधारण रास्ते से आया हूँ। उसके बाद देखता हूँ कि चार मञ्जिल नीचे आ गया हूँ— कलमबाड़ा (sloping) रास्ता। जिस पर भूत चढ़ जाता है, वह जान ही नहीं सकता कि मुझे भूत ने पकड़ा हुआ है। वह सोचता है, मैं ठीक हूँ।''

विजय *(सहास्य)*— ओझा मिल जाने पर वह झाड़ देता है।

श्रीरामकृष्ण ने उस बात का अधिक उत्तर नहीं दिया। केवल बोले— ''वह ईश्वर की इच्छा।''

वे फिर स्त्रियों के सम्बन्ध में बातें कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण— जिससे भी पूछता हूँ, वही कहता है, जी हाँ, मेरी स्त्री भली है। एकजन की भी स्त्री मन्दी नहीं! *(सब का हास्य)*।

"जो कामिनी-काञ्चन लेकर रहते हैं, वे नशे में कुछ जान ही नहीं सकते। जो शतरंज के मोहरों से खेलते हैं, वे अनेक समय नहीं जान पाते कि चाल ठीक है। किन्तु जो अलग रहकर देखते हैं, वे बहुत-कुछ समझ सकते हैं।

"स्त्री मायारूपिणी है। नारद राम का स्तव करने लगे— 'हे राम, जितने पुरुष हैं तुम्हारे अंश से हैं; तुम्हारी मायारूपिणी सीता के अंश से हैं जितनी स्त्रियाँ हैं। और कोई वर नहीं माँगता— बस यही करो कि जिस प्रकार तुम्हारे पादपद्मों में शुद्धाभक्ति हो, और जैसे तुम्हारी जगत-मोहिनी माया में मुग्ध न होऊँ!"

(गिरीन्द्र, नगेन्द्र आदि के प्रति उपदेश)

सुरेन्द्र के छोटे भाई गिरीन्द्र और उनके भतीजे नगेन्द्र आदि आए हैं। गिरीन्द्र ऑफिस के काम में नियुक्त हैं। नगेन्द्र वकालत के लिए तैयार हो रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण *(गिरीन्द्र के प्रति)*— तुम लोगों से कहता हूँ— तुम लोग संसार में आसक्त मत होना। देखो, राखाल को ज्ञान-अज्ञान बोध हो गया है,— सत्-असत् विचार हो गया है।— अब उससे कहता हूँ, 'घर में जा; कभी-कभी यहाँ पर आ गया, दो दिन ठहर गया।'

"और तुम लोग परस्पर प्यार से रहना— जभी मंगल होगा। और आनन्द होगा। यात्रा (गीतिनाटक) वाले यदि एक सुर में गाते हैं तो ही यात्रा अच्छी होती है, और जो सुनते हैं उन्हें भी आह्लाद होता है।

"ईश्वर में अधिक मन रखकर, थोड़े-से मन से संसार का काम करोगे।

"साधु का मन ईश्वर में बारह आने[1],— और काम में चार आने[2] होता

1 बारह आने = 75 पैसे— 75%   2 चार आने = 25 पैसे— 25%

है। साधु का ईश्वर की वाणी में ही अधिक ध्यान होता है। साँप की पूँछ कुचली जाने पर रक्षा नहीं!— शायद पूँछ पर उसको अधिक आघात लगता है।''

(पञ्चवटी में सहचरी का कीर्त्तन— हठात् मेघ और तूफान)

ठाकुर झाउतले पर जाने के समय सींथी के गोपाल को छतरी की बात कह गए। गोपाल ने मास्टर से कहा— 'वे कह गए हैं, छतरी को कमरे में रख आने के लिए।' पञ्चवटी-तल पर कीर्त्तन का आयोजन हुआ। ठाकुर आकर बैठ गए हैं। सहचरी गाना गा रही हैं। भक्त लोग चारों ओर कोई बैठे हैं, कोई खड़े हुए हैं।

गत कल शनिवार, अमावस्या हो चुकी। ज्येष्ठ मास। आज बीच-बीच में बादल आ रहा था। हठात् आँधी आ गई। ठाकुर भक्तों के संग अपने कमरे में लौट आए। कीर्त्तन कमरे में ही होगा, स्थिर हुआ।

श्रीरामकृष्ण *(सींथी के गोपाल के प्रति)*— क्यों जी, छतरी लाए हो?
गोपाल— जी, नहीं। गाना सुनते-सुनते भूल गया!

छतरी पञ्चवटी में पड़ी हुई है; गोपाल जल्दी से लेने गए।

श्रीरामकृष्ण— मैं जो इतना ऐलोमेलो (विशृङ्खल, अव्यवस्थित, असम्बद्ध) हूँ, तो भी इतना अधिक नहीं।

''राखाल ने एक जगह निमन्त्रण की बात पर 13 की जगह 11 (तारीख) कह दी।

''और गोपाल— गौओं का पाल! *(सब का हास्य)*।

''वही जो एक सुनारों की कहानी है— एक जन कहता है 'केशव', एक कहता है 'गोपाल', एकजन कहता है, 'हरि' और एक कहता है 'हर'। उस गोपाल का अर्थ है गौओं का पाल (समूह)!'' *(सब का हास्य)*।

सुरेन्द्र गोपाल को लक्ष्य करके आनन्द में कह रहे हैं—
'कान्हा कहाँ?'

तृतीय परिच्छेद

(विजय आदि भक्तों के संग संकीर्त्तनानन्द में—
सहचरी का गौरांग-संन्यास गान)

कीर्त्तनी 'गौर-संन्यास' गा रही हैं और बीच-बीच में आखर* दे रही हैं—

(नारी हेरबे ना!) (से जे संन्यासीर धर्म!)
(जीवेर दुःख घुचाइते); (नारी हेरिबे ना!)
(नइले वृथा गौर अवतार!)

[संन्यासी नारी को नहीं देखेगा, वह संन्यासी का धर्म है। संन्यासी जीव का दुःख दूर करने आया है। नारी को नहीं देखेगा। नहीं तो गौर-अवतार वृथा है।]

ठाकुर गौरांग के संन्यास की वाणी सुनते-सुनते खड़े होकर समाधिस्थ हो गए हैं। तुरन्त भक्तों ने गले में पुष्पमालाएँ पहना दीं। भवनाथ और राखाल ठाकुर को पकड़े हुए हैं कि पीछे गिर न जाएँ। ठाकुर उत्तरास्य हैं। विजय, केदार, राम, मास्टर, मनोमोहन, लाटु आदि भक्तगण मण्डलाकार उनको घेरकर खड़े हुए हैं। साक्षात् गौरांग आकर क्या भक्तों के संग में हरिनाम-महोत्सव कर रहे हैं!

(श्री कृष्ण अखण्ड सच्चिदानन्द— और फिर जीव-जगत— सराट-विराट)

थोड़ी-थोड़ी समाधि भंग हो रही है। ठाकुर सच्चिदानन्द कृष्ण के साथ बातें कर रहे हैं। 'कृष्ण' यह शब्द एक-एक बार उच्चारण कर रहे हैं। और फिर कभी-कभी नहीं कर पा रहे हैं। कह रहे हैं— कृष्ण! कृष्ण! कृष्ण! सच्चिदानन्द!— कहाँ, तुम्हारा रूप आजकल नहीं देखता! अब तुम्हें अन्तर-बाहर देखता हूँ— जीव, जगत, चौबीस तत्त्व, सब ही तुम! मन बुद्धि सब ही तुम! गुरु के प्रणाम में है—

अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम्।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः॥

---

* आखर = कीर्त्तन में जो पद मूल संगीत के साथ जोड़े जाते हैं।

''तुम ही अखण्ड— तुम ही फिर चराचर व्याप्त करके रह रहे हो! तुम ही आधार, तुम ही आधेय। प्राणकृष्ण! मनकृष्ण! बुद्धिकृष्ण! आत्माकृष्ण! प्राण हे गोबिन्द मम जीवन!''

विजय भी आविष्ट हुए हैं। ठाकुर कह रहे हैं,

''बाबू, क्या तुम भी बेहोश हो गए हो?''

विजय *(विनीत भाव से)*— जी, ना।

कीर्त्तनी फिर और गा रही हैं— 'आँचल प्रेम!' कीर्त्तनी ने ज्यों ही आखर दिया— 'सदाइ हियार माझे राखिताम, ओ हे प्राणबन्धु हे।' (अरे ओ प्राणबन्धु, मैं तुम्हें सदा ही हृदय में रखता था।) ठाकुर फिर दोबारा समाधिस्थ!— भवनाथ के कन्धे पर वही भग्न हाथ है।

किञ्चित् बाहरी चेतन होने पर, कीर्त्तनी फिर आखर देती हैं— 'जिसने तुम्हारे लिए सब त्याग किया है, उसे क्या इतना दुःख?'

ठाकुर ने कीर्त्तनी को नमस्कार किया। वे बैठकर गान सुन रहे हैं— बीच-बीच में भावाविष्ट हो रहे हैं। कीर्त्तनी चुप हो गई। ठाकुर बातें कर रहे हें।

(प्रेम में देह व जगत भूलना— ठाकुर का भक्तसंगे नृत्य और समाधि)

श्रीरामकृष्ण *(विजय आदि भक्तों के प्रति)*— प्रेम किसको कहते हैं? ईश्वर में जिसे प्रेम होता है— जैसे चैतन्यदेव— उसको जगत तो भूल जाएगा ही, और फिर देह जो इतनी प्रिय है, यह तक भूल जाएगी।

प्रेम हो जाने से क्या होता है, ठाकुर गाना गाकर समझा रहे हैं—

हरि बोलिते धारा बेये पड़बे (से दिन कबे बा होबे)
(अंगे पुलक होबे) (संसार वासना जाबे)
(दुर्दिन घुचे सुदिन होबे) (कबे हरिर दया होबे)

[भावार्थ— हरि कहते हुए आँखों से धारा बह जाएगी वह दिन कब होगा।

अंगों में पुलक होगा, संसार-वासना चली जाएगी। बुरे दिन समाप्त होकर सुदिन होंगे, कब हरि की दया होगी?]

ठाकुर खड़े हो गए हैं और नृत्य कर रहे हैं। भक्तगण संग-संग नाच रहे हैं। ठाकुर ने मास्टर की बाँह खींचकर मण्डल के भीतर ले लिया।

नृत्य करते-करते फिर समाधिस्थ। चित्रार्पितवत् खड़े हुए हैं! केदार समाधि भंग करने के लिए स्तव कर रहे हैं—

हृदयकमलमध्ये निर्विशेषं निरीहम्।
हरिहरविधिवेद्यं योगिभिर्ध्यानगम्यम्॥
जनममरण भीतिभ्रंशि सच्चित्स्वरूपम्।
सकलभुवनबीजं ब्रह्मचैतन्यमीडे॥*

क्रमशः समाधि भंग हो गई। ठाकुर ने आसन ग्रहण कर लिया है और नाम कर रहे हैं— ॐ सच्चिदानन्द! गोबिन्द! गोबिन्द! गोबिन्द! योगमाया!— भागवत-भक्त-भगवान!

कीर्त्तन और नृत्यस्थल की धूलि ठाकुर ले रहे हैं।

चतुर्थ परिच्छेद

(संन्यासी का कठिन व्रत— संन्यासी और लोकशिक्षा)

ठाकुर गंगा के किनारे गोल बरामदे में बैठे हुए हैं। विजय, भवनाथ, मास्टर, केदार आदि भक्तगण हैं। ठाकुर एक-एक बार कह रहे हैं— 'हा कृष्णचैतन्य!'

श्रीरामकृष्ण *(विजय आदि भक्तों के प्रति)*— कमरे में क्योंकि खूब हरि-नाम हुआ है— तभी कीर्त्तन खूब जम गया।

---

* [भावार्थ— मैं समस्त ब्रह्माण्ड के बीजस्वरूप ब्रह्म चैतन्य की वन्दना करता हूँ, जो हृदयकमल के मध्य शोभायमान हैं, गुणरहित हैं, निर्विशेष हैं, ब्रह्मा-विष्णु-महेश के लिए ज्ञेय हैं, योगियों के द्वारा ध्यानगम्य हैं, जन्म-मृत्यु के भय को नष्ट करने वाले हैं तथा सत्-चित् स्वरूप हैं।]

भवनाथ— उस पर फिर संन्यास की कथा।

श्रीरामकृष्ण— 'आहा! कैसा भाव है!'

यह कहकर गान पकड़ लिया—

प्रेमधन बिलाय गोराराय।
प्रेम कलसे कलसे ढाले तबु ना फुराय!
चाँद निताई डाके आय! आय! चाँद, गौर डाके आय!
(ऐ) शान्तिपुर डुबु डुबु नदे भेसे जाय।*

(विजय आदि के प्रति)— "कीर्त्तन में सुन्दर कहा है—

'संन्यासी नारी हेरबे ना। एइ संन्यासीर धर्म।' कैसा भाव!"

विजय— जी, हाँ।

श्रीरामकृष्ण— संन्यासी को देखकर ही तो सब सीखेंगे— जभी इतना कठिन नियम है! नारी का चित्र तक भी संन्यासी नहीं देखेगा।— ऐसा कठिन नियम!

"काला बकरा माँ की सेवा के लिए बलि दिया जाता है— किन्तु ज़रा-सा भी घाव रहने पर नहीं देते। रमणी-संग तो करेगा नहीं— स्त्रियों के संग आलाप तक भी नहीं करेगा।"

विजय— छोटे हरिदास ने भक्त स्त्री के संग आलाप किया था। चैतन्यदेव ने हरिदास को त्याग दिया था।

(पूर्वकथा— श्रीरामकृष्ण के नाम में मारवाड़ी का रुपया और मथुर का जमीन लिख देने का प्रस्ताव)

श्रीरामकृष्ण— संन्यासी के लिए कामिनी और काञ्चन ऐसे हैं जैसे सुन्दरी के लिए उसके शरीर की बकरे की-सी गंध! वैसी गंध रहने के कारण सौन्दर्य वृथा है।

---

* [भावार्थ— प्रेमधन बाँट रहे हैं गौर राय; कलसी, कलसी प्रेम उंडेल रहे हैं, तब भी समाप्त नहीं होता। प्यारा चाँद निताई पुकारता है, आओ-आओ चाँद, प्रिय गौर पुकार रहा है, आओ-आओ— इस शान्ति-नगर में उथल-पुथल मच रही है।]

"मारवाड़ी ने मेरे नाम पर रुपया लिख देना चाहा; मथुर ने जमीन लिखकर देना चाहा;— उसे ले नहीं सका।

"संन्यासी का बड़ा ही कठिन नियम है। जब साधु-संन्यासी बनता है,— तब बिल्कुल साधु-संन्यासी की भाँति काम करना होगा। थियेटर में नहीं देखते!— जो राजा बनता है वह राजा ही बनता है, जो मन्त्री बनता है वह मन्त्री ही बनता है।

"एक बहुरूपिया त्यागी साधु बना था। बाबू लोग उसे एक थैली रुपया देने लगे। वह 'ऊँहु' करके चला गया,— रुपया छुआ तक भी नहीं। किन्तु थोड़ी देर बाद शरीर-हाथ-पाँव धो, अपने कपड़े पहनकर आ गया। बोला, 'क्या दे रहे थे, अब दो।' जब साधु बना हुआ था, तब रुपया छू नहीं सका। अब चार आने देने से भी हो जाता है।

"किन्तु परमहंस-अवस्था में बालक हो जाता है। पाँच वर्ष के बालक को स्त्री-पुरुष ज्ञान नहीं होता। किन्तु लोकशिक्षा के लिए सावधान होना चाहिए।"

(श्रीयुक्त केशवसेन के द्वारा लोकशिक्षा क्यों नहीं हुई ?)

श्रीयुक्त केशवसेन कामिनी-काञ्चन के भीतर थे। जभी लोकशिक्षा में बाधा हुई। ठाकुर यही बात कह रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण— ये (केशव)— समझ गए ?

विजय— जी, हाँ।

श्रीरामकृष्ण— इधर-उधर दोनों को रखने गए, वैसा विशेष कुछ न कर सके।

(श्री चैतन्यदेव ने क्यों संसार-त्याग किया ?)

विजय— चैतन्यदेव ने नित्यानन्द से कहा, 'निताई, मैं यदि संसार त्याग नहीं करता, तो फिर लोगों का भला नहीं होगा, सब ही मेरी देखा-देखी संसार करना चाहेंगे।— कामिनी-काञ्चन-त्याग करके हरि के पादपद्मों में समस्त मन देने की कोई चेष्टा नहीं करेगा।'

श्रीरामकृष्ण— चैतन्यदेव ने लोकशिक्षा के लिए संसार–त्याग किया था।

"साधु–संन्यासी अपने मंगल के लिए कामिनी–काञ्चन का त्याग करेगा। और फिर निर्लिप्त होकर भी, लोकशिक्षा के लिए अपने पास कामिनी–काञ्चन नहीं रखेगा। न्यासी— संन्यासी— जगद्‌गुरु। उसको देखकर ही तो लोगों को चैतन्य होगा!"

सन्ध्या प्राय: आ गई। भक्तगण क्रमश: प्रणाम करके विदा ले रहे हैं। विजय केदार से कह रहे हैं— 'आज सुबह (ध्यान के समय) आपको देखा था;— देह पर हाथ लगाने लगा— कोई नहीं था।'

चतुर्दश खण्ड

ठाकुर श्रीरामकृष्ण दक्षिणेश्वर-मन्दिर में सुरेन्द्र, भवनाथ, राखाल, लाटु, मास्टर, अधर आदि भक्तों के संग

प्रथम परिच्छेद

(श्रीयुक्त बाबूराम, राखाल, लाटु, निरंजन, नरेन्द्रादि का चरित)

ठाकुर श्रीरामकृष्ण दक्षिणेश्वर-मन्दिर में अपने कमरे में भक्तों के संग बैठे हुए हैं। सन्ध्या हो गई है, इसीलिए जगन्माता का नाम और चिन्तन कर रहे हैं। कमरे में राखाल, अधर, मास्टर तथा और भी दो-एक जन भक्त हैं।

आज शुक्रवार है— ज्येष्ठ की कृष्णा द्वादशी; 20 जून, 1884 ईसवी। पाँच दिन पश्चात् रथयात्रा होगी।

कुछ क्षण पश्चात् ठाकुर-मन्दिरों में आरती आरम्भ हुई। अधर आरती देखने गए। ठाकुर मणि के साथ बातें कर रहे हैं और आनन्द में मणि की शिक्षा के लिए भक्तों की बातें कर रहे हैं—

श्रीरामकृष्ण— अच्छा, बाबूराम की क्या पढ़ने की इच्छा है?

"बाबूराम से कहा, 'तू लोकशिक्षा के लिए पढ़।' सीता के उद्धार के पश्चात् विभीषण राज्य करने के लिए राजी नहीं हुआ। राम ने कहा, 'तुम मूर्खों की शिक्षा के लिए राज्य करो। नहीं तो फिर वे लोग कहेंगे, विभीषण ने राम की सेवा की है, उसे क्या लाभ हुआ?— राज्यलाभ देखकर खुश होंगे।'

"तुम से कहता हूँ, उस दिन देखा— बाबूराम, भवनाथ और हरीश,

इनका प्रकृति-भाव है।

"बाबूराम को देखा— देवी-मूर्ति— गले में हार, सखी संग। उसने स्वप्न में कुछ पाया है, उसकी देह शुद्ध है। थोड़ा-सा भी कुछ कर लेने से ही उसका हो जाएगा।

"बात क्या है, जानते हो? देह-रक्षा की असुविधा हो रही है। उसके आकर रहने से अच्छा हो। इन लोगों का स्वभाव कुछ और प्रकार का होता जा रहा है। नोटो (लाटु) चढ़ा ही रहता है (सर्वदा भाव में रहता है)। धीरे-धीरे लीन जो होने वाला है।

"राखाल का ऐसा स्वभाव हो रहा है कि उसको मुझे ही जल देना पड़ता है। (मेरी) सेवा वह विशेष कुछ नहीं कर सकता।

"बाबूराम और निरञ्जन— इन्हें छोड़ और कहाँ छोकरे हैं?— यदि और कोई आएगा तो बोध हो रहा है, वह उपदेश लेगा, चला जाएगा।

"किन्तु खींच-खाँचकर जबरदस्ती आने के लिए नहीं कहता, घर में हँगामा हो सकता है। *(सहास्य)* मैं जब कहता हूँ 'चला आ ना रे' तब सुन्दर कहता है— 'आप ले आइए ना!' राखाल को देखकर रोता है। कहता है, वह बढ़िया है।

"राखाल अब घर के लड़के की भाँति है; जानता हूँ, अब वह आसक्त नहीं होगा। कहता है 'वह सब अलोना लगता है!' उसकी स्त्री यहाँ पर आई थी— 14 वर्ष वयस्। यहाँ से कोन्नगर गई। उन्होंने उसको (राखाल को) कोन्नगर जाने के लिए कहा। वह नहीं गया। कहता है— आमोद-प्रमोद अच्छा नहीं लगता।

"निरञ्जन तुम्हें कैसा लगता है?"

मास्टर— जी, चेहरा अच्छा है!

श्रीरामकृष्ण— ना, केवल चेहरा नहीं, सरल है। सरल होने से ईश्वर को सहज ही पा लिया जाता है। सरल होने से उपदेश से शीघ्र काम होता है। जोती हुई समतल जमीन, कंकर, पत्थर कुछ नहीं, बीज पड़ते ही वृक्ष हो जाता

है और शीघ्र फल हो जाता है।

"निरञ्जन विवाह नहीं करेगा। तुम क्या कहते हो,— कामिनी-काञ्चन ही बद्ध करते हैं ?"

मास्टर— जी, हाँ।

श्रीरामकृष्ण— पान-तम्बाकू छोड़ने से क्या होगा ? कामिनी-काञ्चन-त्याग ही त्याग है।

"भाव में देखा था, यद्यपि वह नौकरी करता है तथापि उसको किसी दोष ने स्पर्श नहीं किया। माँ के लिए काम कर रहा है, उसमें दोष नहीं है।

"कर्मचारी क्लर्क जेल में गया— बद्ध हो गया— बेड़ियाँ पहनीं— और फिर मुक्त हो गया। मुक्त होने के बाद क्या वह थेई-थेई करके नाचेगा ? वह फिर दोबारा क्लर्की ही करेगा। तुम्हारी तो कमाने की इच्छा नहीं है। किन्तु उन लोगों को खिलाना-पहनाना। वह नहीं होगा तो वे लोग कहाँ जाएँगे ?"

मणि— कोई (जिम्मेदारी) ले तो छोड़ा जाए।

श्रीरामकृष्ण— वही तो बात। अब यह भी करो, वह भी करो।

मणि— समस्त त्याग कर सकना है भाग्य!

श्रीरामकृष्ण— वही तो बात है ! किन्तु जैसा संस्कार होता है। तुम्हारा थोड़ा-सा कर्म बाकी है। उतना वह हो जाने पर ही शान्ति होगी— तब तुम्हें छोड़ देंगे। हस्पताल में नाम लिखवा लेने पर सहज में नहीं छोड़ते। रोग के पूरी तरह हट जाने पर ही छोड़ते हैं।

"भक्त यहाँ पर जो आते हैं— दो श्रेणी के हैं। एक क्लास कहती है, मेरा उद्धार करो, हे ईश्वर! और एक क्लास है, वे अन्तरंग हैं; वे यह बात नहीं कहते। उनको तो दो बातें जान लेने से ही हो जाएगा; प्रथम मैं (श्रीरामकृष्ण) कौन हूँ ? उसके बाद, वे कौन हैं— मेरे साथ (उनका) क्या सम्बन्ध है ?

"तुम इसी शेष क्लास के हो। वैसा न होता तो इतना सब कुछ करता..."

**(नरेन्द्र, राखाल, निरञ्जन का पुरुष-भाव;
बाबूराम, भवनाथ का प्रकृति-भाव)**

''भवनाथ, बाबूराम— इनका प्रकृति-भाव है। हरीश लड़कियों के कपड़े पहनकर सोता है। बाबूराम कहता है, वही भाव ही अच्छा लगता है। तभी तो मेल हुआ। भवनाथ का भी वही भाव है। नरेन्द्र, राखाल, निरञ्जन, इनका लड़कों वाला भाव है।''

[हाथ टूटने का अर्थ— सिद्धाई (miracles) और श्रीरामकृष्ण]

''अच्छा, हाथ टूटने का क्या अर्थ है? पहले एक बार भावावस्था में दाँत टूट गया था, अब की बार भावावस्था में हाथ टूट गया।''

मणि को चुप देखकर ठाकुर स्वयं ही कह रहे हैं—

''हाथ टूटा है समस्त अहंकार निर्मूल करने के लिए! अब और अपने भीतर 'मैं' को खोज नहीं पाता। खोजते हुए देखता हूँ, वे ही रह रहे हैं। अहंकार एकदम बिना गए उनको प्राप्त नहीं किया जाता।

''चातक को देखो— धरती पर वासा है, किन्तु कितना ऊपर चढ़ जाता है!

''अच्छा, काप्तेन कहता है, मछली खाते हो, इसी कारण सिद्धियाँ नहीं आईं।

''कभी-कभी शरीर काँप जाता है कि कहीं ये शक्तियाँ न आ जाएँ। अब यदि सिद्धियाँ होती हैं, तो यहाँ पर डॉक्टरखाना (हस्पताल) बन जाएगा। लोग आकर कहेंगे— हमारा रोग चंगा कर दो।— सिद्धियाँ क्या अच्छी हैं?''

मास्टर— जी, नहीं। आपने तो कहा है, अष्ट सिद्धियों में से एक के भी रहने से भगवान को नहीं पाया जाता।

श्रीरामकृष्ण— ठीक कहते हो! जो हीनबुद्धि हैं वे ही सिद्धियाँ चाहते हैं!

''जो व्यक्ति बड़े मनुष्य के पास से कुछ माँग लेता है, उसकी फिर इज्जत नहीं होती! वह उस व्यक्ति को उसी गाड़ी पर नहीं चढ़ने देता;— और

यदि चढ़ने भी देता है तो बैठने नहीं देता। जभी तो निष्काम भक्ति, अहेतुकी भक्ति— सबसे अच्छी है।''

(साकार-निराकार दोनों ही सत्य— भक्त का घर ठाकुर का अड्डा)

''अच्छा, साकार-निराकार दोनों ही सत्य हैं, क्या कहते हो? निराकार पर मन बहुत देर नहीं रखा जाता— इसलिए भक्त के लिए साकार है।

''काप्तेन सुन्दर कहता है— पक्षी खूब ऊपर चढ़ता है, जब थक जाता है, तब फिर डाल पर आकर विश्राम करता है। निराकार के पश्चात् साकार है।

''तुम्हारे अड्डे पर एक बार जाना होगा। भाव में देखा था, अधर का घर, सुरेन्द्र का घर, बलराम का घर— ये सब मेरे अड्डे हैं।

''किन्तु उन लोगों के यहाँ पर न आने से मुझे कोई सुख-दुख नहीं है।''

(भक्तों के संग में लीला तक जादूगर का खेल— चण्डी— दया ईश्वर की)

मास्टर— जी, वह कैसे होगा? सुख-बोध होने से ही तो दुःख रहता है। आप तो सुख-दुख के अतीत हैं।

श्रीरामकृष्ण— हाँ, और मैं देखता हूँ,— जादूगर और जादूगर का खेल। जादूगर ही सत्य है। उनका खेल सब अनित्य है— स्वप्न की भाँति।

''जब चण्डी सुना करता था, तब इसका बोध हुआ था। अभी शुम्भ-निशुम्भ का जन्म हुआ। और फिर कुछ क्षण पश्चात् सुना कि विनाश हो गया।''

मास्टर— जी, मैं कालना में गंगाधर के साथ जहाज में जा रहा था। जहाज का धक्का लगकर एक नौका बीस-पच्चीस लोगों सहित डूब गई। स्टीमर की तरंगों के फेन की भाँति जल में सब मिल गए।

''अच्छा, जो खेल देखता है, क्या उसमें दया रहती है?— उसे क्या कर्तृत्व बोध रहता है?— कर्तृत्व बोध रहेगा तभी तो दया रहेगी।''

श्रीरामकृष्ण— वह एक साथ ही सब देखता है,— ईश्वर, माया, जीव, जगत।

"वह देखता है कि माया (विद्या माया, अविद्या माया), जीव, जगत— हैं, अथच नहीं हैं। जब तक अपनी 'मैं' है, तब तक वे भी हैं। ज्ञान रूपी तलवार के द्वारा काट देने पर फिर कुछ भी नहीं है। तब अपनी 'मैं' तक भी जादूगर का जादू बन जाता है!"

मणि चिन्तन कर रहे हैं। श्रीरामकृष्ण कह रहे हैं—

"कैसा है, जानते हो?— जैसे पच्चीस तह पंखड़ियों वाला फूल। एक बार में काटना!

"कर्तृत्व! राम! राम!— शुकदेव, शंकराचार्य, इन्होंने विद्या का 'मैं' रखा हुआ था। दया मनुष्य की नहीं, दया ईश्वर की है। विद्या के मैं के भीतर ही दया है, विद्या का 'मैं' वे ही हुए हैं।"

(अतिगुह्य कथा— कालीब्रह्म— आद्याशक्ति का इलाका, कल्कि अवतार)

"किन्तु हजार जादू देखो, तब भी सब है उनके ही 'आण्डरे' under— (अधीन) भाग नहीं सकता। तुम स्वाधीन नहीं हो। वे जैसा करवाते हैं, वैसा ही करना होगा। उन्हीं आद्याशक्ति के ब्रह्मज्ञान देने से ही तब ब्रह्मज्ञान होता है— तब फिर जादूगर का खेल देखा जाता है। नहीं तो नहीं।

"जब तक थोड़ा-सा भी 'मैं' रहता है, तब तक उसी आद्याशक्ति का इलाका है। उनके 'आण्डरे'— उनको छोड़कर जा नहीं सकता।

"आद्याशक्ति की सहायता से अवतार-लीला होती है। उनकी शक्ति से अवतार अवतार होता है। अवतार तभी कार्य करते हैं। समस्त माँ की शक्ति होती है।

"काली-मन्दिर के पहले वाले खजाञ्ची से कोई कुछ अधिक रकम माँगता था तो वह कह देता था, 'दो-तीन दिन के बाद आना, मालिक से पूछूँगा।'

''कलियुग के अन्त में कल्कि अवतार होगा। ब्राह्मण का लड़का होगा— जो कुछ भी नहीं जानता होगा— हठात् घोड़ा और तलवार आ जाएगी—''

(केशवसेन की माता और भगिनी— धात्री भुवनमोहिनी)

अधर आरती देखकर आकर बैठ गए हैं। धात्री (धाई) भुवनमोहिनी बीच-बीच में ठाकुर के दर्शन करने आती हैं। ठाकुर सब की वस्तु खा नहीं सकते— विशेषत: डॉक्टर की, कविराज की, धाई की। घोर कष्ट देकर भी वे लोग रुपया लेते हैं, इसीलिए उनकी चीज़ें नहीं ले सकते।

श्रीरामकृष्ण *(अधर आदि के प्रति)*— भुवन आई थी। पच्चीस बम्बइया आम और सन्देश, रसगुल्ले लाई थी। मुझ से बोली, आप एक आम खाएँगे? मैंने कहा— मेरा पेट भारी है। और सचमुच ही देखो ना, थोड़ी-सी कचौरी और सन्देश खाने से ही पेट किस प्रकार का हो गया है!

''केशवसेन की माँ और बहन आई थीं। तभी फिर थोड़ा-सा नाचा था। क्या करूँ!— उन्हें भारी शोक हुआ है।''

पञ्चदश खण्ड

बलराम-मन्दिर में रथ की पुनर्यात्रा में भक्तों के संग

प्रथम परिच्छेद

(ठाकुर श्रीरामकृष्ण और सर्वधर्म-समन्वय)

ठाकुर श्रीरामकृष्ण बलराम के बैठकखाने में भक्तों की मजलिस जुटाकर बैठे हैं। आनन्दमय मूर्त्ति!— भक्तों के साथ बातें कर रहे हैं।

आज पुनर्यात्रा है। बृहस्पतिवार, आषाढ़ की शुक्ला दशमी; 3 जुलाई, 1884 ईसवी। श्रीयुक्त बलराम के मकान पर श्री श्री जगन्नाथ की सेवा है, एक छोटा रथ भी है। जभी उन्होंने ठाकुर को पुनर्यात्रा के उपलक्ष्य में निमन्त्रित किया है। यह छोटा रथ बाहर के घर के दोतल के चकमिलान (चौकोर या आयताकार आँगन के चारों ओर के कमरे) के बरामदे में खींचा जाएगा। पिछली 25 जून, (1884) बुधवार को श्री श्री रथयात्रा के दिन, ठाकुर श्रीयुक्त ईशान मुखोपाध्याय के ठनठनिया के मकान पर निमन्त्रित होकर आए थे।[1] उसी दिन ही शाम को कॉलेज स्ट्रीट में भूधर के घर में पण्डित शशधर के साथ प्रथम मिलन हुआ था। तीन दिन हुए, गत सोमवार को शशधर उनके दक्षिणेश्वर के काली-मन्दिर में दूसरी बार दर्शन करने गए थे।[2]

ठाकुर के आदेश से बलराम ने शशधर को आज निमन्त्रित किया है। पण्डित हिन्दू धर्म की व्याख्या करके लोकशिक्षा देते हैं। जभी क्या श्रीरामकृष्ण

---

1 श्री श्रीरामकृष्ण कथामृत, प्रथम भाग, एकादश खण्ड।

2 श्री श्रीरामकृष्ण कथामृत, तृतीय भाग, नवम खण्ड।

उनके भीतर शक्ति–संचार करने के लिए इतने उत्सुक हो रहे हैं?

ठाकुर भक्तों के साथ बातें कर रहे हैं। पास में राम, मास्टर, बलराम, मनोमोहन, कई एक छोकरे भक्त, बलराम के पिता आदि बैठे हुए हैं। बलराम के पिता अति निष्ठावान वैष्णव हैं। वे प्राय: वृन्दावन-धाम में स्वप्रतिष्ठित कुञ्ज में एकाकी वास करते हैं और श्री श्री श्यामसुन्दर-विग्रह की सेवा की देखरेख करते हैं। श्री वृन्दावन में वे समस्त दिन देवताओं की सेवा लेकर ही रहते हैं। कभी श्री चैतन्यचरितामृत आदि भक्ति–ग्रन्थ पढ़ते हैं। कभी–कभी भक्ति–ग्रन्थ लेकर उसकी प्रतिलिपि करते हैं। कभी बैठे–बैठे स्वयं फूलों की माला गूँथते हैं। कभी वैष्णवों को निमन्त्रण देकर उनकी सेवा करते हैं। ठाकुर के दर्शन करने के लिए बलराम ने उनको पत्र पर पत्र लिखकर कलकत्ता बुलाया है।

'सब धर्मों में ही साम्प्रदायिक भाव है; विशेषत: वैष्णवों के मध्य; भिन्न मतों के लोग परस्पर विरोध करते हैं, समन्वय करना नहीं जानते'— ये ही बातें ठाकुर भक्तों से कर रहे हैं।

(बलराम के पिता के प्रति सर्वधर्म–समन्वय का उपदेश। भक्तमाल; श्रीभागवत— पूर्वकथा— मथुर के निकट वैष्णवों का कट्टरपन और शाक्तों की निन्दा)

श्रीरामकृष्ण *(बलराम के पिता आदि भक्तों के प्रति)*— वैष्णवों का एक ग्रन्थ भक्तमाल है। सुन्दर पुस्तक है,— भक्तों की ही सब बातें हैं। किन्तु एक घेये (एकसुरी)। एक स्थान पर भगवती को विष्णु मन्त्र दिलाकर ही तब छोड़ा।

"मैंने वैष्णवचरण की बहुत बड़ाई करके उसे सेजोबाबू के पास बुलवाया। सेजोबाबू ने बड़े यत्न से खातिर की— चाँदी के बर्तन निकलवाकर जलपान खिलाने तक। उसके बाद सेजोबाबू के सामने कहता है कि— 'हमारा केशवमन्त्र बिना लिए कुछ भी नहीं होगा!' सेजोबाबू शाक्त, भगवती के उपासक! मुख लाल हो गया। और मैं फिर वैष्णवचरण की देह दबाता हूँ!

"श्रीमद्भागवत— उसमें भी शायद उसी प्रकार की बातें हैं, 'केशवमन्त्र बिना लिए भवसागर पार होना ऐसा है जैसे कुत्ते की पूँछ पकड़कर महासमुद्र

पार होना।' सब मतों के लोग अपने-अपने मत को ही बड़ा कर गए हैं।

"शाक्त भी वैष्णवों को छोटा करने की चेष्टा करते हैं। श्रीकृष्ण भवनदी के कर्णधार हैं, पार कर देते हैं— शाक्त कहते हैं,— 'वह तो ठीक ही है, माँ राजराजेश्वरी हैं— क्या वे स्वयं आकर पार करेंगी ?— इसी कृष्ण को ही रख दिया है पार करने के लिए।" *(सब का हास्य)*।

(पूर्वकथा— ठाकुर का जन्मभूमि-दर्शन 1880 *— फुलुई श्यामबाजार में जुलाहे वैष्णवों का अहंकार— समन्वय उपदेश)

"अपने-अपने मत को लेकर फिर अहंकार भी कितना! वहाँ ग्राम में, श्यामबाजार आदि स्थानों पर जुलाहे हैं। अनेक ही वैष्णव हैं, उनकी बड़ी-बड़ी बातें! कहते हैं, ये कौन-से विष्णु को मानते हैं ? पाता विष्णु! (अर्थात् जो पालन करते हैं!)— उन्हें हम छूते भी नहीं! कौन-सा शिव ? हम आत्माराम शिव, आत्मारामेश्वर शिव को मानते हैं। कोई कहता है, 'तुम लोग समझा दो ना कि कौन-सा हरि मानते हो।' उस पर कोई कहता है— 'नहीं, हम ही फिर क्यों बतावें, वहाँ से ही हो जाए।' इधर कपड़ा बुनते जाते हैं, और ऐसी बड़ी-बड़ी बातें करते हैं।"

[लालाबाबू की रानी कात्यायनी की मुसाहब (सेविका) रति की माँ का कट्टरपन]

"रति की माँ, रानी कात्यायनी की मुसाहब (सहचरी);— वैष्णवचरण के दल की स्त्री, कट्टर वैष्णवी थी। यहाँ पर खूब आना-जाना करती थी। भक्ति कौन देखता है! ज्यों ही मुझे माँ काली का प्रसाद खाते देखा, झट भाग गई।

"जिसने समन्वय किया है, वह ही मनुष्य है। अनेक ही एकघेये (कट्टर) होते हैं। मैं किन्तु देखता हूँ— सब एक। शाक्त, वैष्णव, वेदान्त मत

---

* श्रीरामकृष्ण ने 1880 ईसवी में अन्तिम बार जन्मभूमि-दर्शन के समय फुलुई श्यामबाजार में हृदय के संग शुभागमन करके नटवर गोस्वामी, ईशानमल्लिक, सदय बाबाजी आदि भक्तों के साथ संकीर्त्तन किया।

सब ही उसी एक को लेकर हैं। जो निराकार, वे ही हैं साकार, उनके ही नाना रूप हैं।

'निर्गुण मेरा बाप, सगुण महतारी,
काको निन्दों काको बन्दों, दोनों पल्ले भारी।'

"वेद में जिनकी बात है, तन्त्र में उन्हीं की वाणी है, पुराण में भी उन्हीं की कथा है— उसी एक सच्चिदानन्द की कथा। जिनका नित्य है, उन्हीं की लीला है।

"वेद में कहा है, ॐ सच्चिदानन्द ब्रह्म। तन्त्र में कहा है, ॐ सच्चिदानन्दः शिवः— शिवः केवलः— केवलः शिवः। पुराण में कहा है, ॐ सच्चिदानन्दः कृष्णः। उसी एक सच्चिदानन्द की बात ही वेद, पुराण, तन्त्र में है। और वैष्णवशास्त्र में भी है,— कृष्ण ही काली हुए थे।"

द्वितीय परिच्छेद

(ठाकुर श्रीरामकृष्ण की परमहंस अवस्था— बालकवत्-उन्मादवत्)

ठाकुर बरामदे की ओर थोड़ा-सा जाकर कमरे में लौट आए। बाहर जाते समय श्रीयुक्त विश्वम्भर की कन्या ने उनको नमस्कार किया था, उसकी वयस् 6-7 वर्ष होगी। ठाकुर के कमरे में वापस आ जाने पर लड़की उनके साथ बातें करती है। उसके साथ और भी दो-एक समवयस्क लड़के-लड़कियाँ हैं।

विश्वम्भर की कन्या *(ठाकुर श्रीरामकृष्ण के प्रति)*— मैंने तुम्हें नमस्कार किया था, देखा भी नहीं।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— कहाँ, देखा नहीं।

कन्या— तो फिर ठहरो, फिर नमस्कार करूँ;— ठहरो, इस पाँव को करूँ।

ठाकुर हँसते-हँसते बैठ गए और भूमि तक सिर झुकाकर कुमारी को प्रति-नमस्कार किया। ठाकुर ने लड़की को गाना गाने के लिए कहा। लड़की ने कहा— 'कसम से, गाना नहीं जानती!'

उसको दोबारा अनुरोध करने पर कहती है, 'कसम खा लेने पर फिर कहना चाहिए?' ठाकुर उन्हें लेकर आनन्द कर रहे हैं और गाना सुना रहे हैं। प्रथम केलया का गान, उसके बाद

'आय लो तोर खोँपा बेँधेदि, तोर भातार एले बोलबे कि!'
[आ री तेरा जूड़ा बाँध दूँ, तेरा पति आएगा तो क्या कहेगा?]

बच्चे और भक्तगण गाना सुनकर हँस रहे हैं।

(पूर्वकथा— जन्मभूमि-दर्शन* 1869-70, बालक शिवराम का चरित्र— सिहोड़ में हृदय के घर दूर्गापूजा— ठाकुर की उन्मादकाल में लिंगपूजा)

श्रीरामकृष्ण *(भक्तों के प्रति)*— परमहंस का स्वभाव बिल्कुल पाँच वर्ष के बालक के जैसा होता है— सब चैतन्यमय देखता है।

"जब मैं उस देश में (कामारपुकुर में) था, रामलाल के भाई (शिवराम) की तब 3-4 वर्ष वयस् थी,— तालाब के किनारे पर फतिंगा पकड़ रहा था। पत्ते हिलते हैं, फिर कहीं पत्तों का पीछे शब्द हो, तभी पत्तों से कहता है 'चुप्! मैं फतिंगा पकड़ूँगा! तूफान (आँधी) वर्षा हो रही है, वह मेरे साथ कमरे में है, बिजली चमकती है,— तब भी वह द्वार खोल-खोल कर बाहर जाना चाहता है। डाँटने पर फिर बाहर नहीं गया, झाँक-झाँक कर एक-एक बार देखता है, विद्युत को,— और कहता है, 'चाचा! फिर और चकमक ठोक रहा है'।

"परमहंस बालकवत् होता है— अपना पराया नहीं, जागतिक सम्बन्ध का बन्धन नहीं। रामलाल का भाई एक दिन कहता है, 'तुम चाचा हो या फूफा?'

"बालक की भाँति परमहंस की गतिविधियों का हिसाब नहीं होता। सब ब्रह्ममय देखता है— कहाँ जा रहा है— कहाँ चल रहा है— हिसाब नहीं। रामलाल का भाई हृदय के घर दुर्गा-पूजा देखने गया था। हृदय के घर से

---

* श्रीयुक्त शिवराम का जन्म— 18वाँ चैत्र, 1272 (बंगला) साल, होली की पूर्णिमा के दिन (30 मार्च, 1866 ईसवी)— ठाकुर के इस बार जन्मभूमि-दर्शन के समय वयस् तीन-चार वर्ष अर्थात् 1869-70 ईसवी।

अकेला अपने-आप किसी तरफ चला गया। चार वर्ष का बालक देखकर पथ के लोग पूछने लगे, तू कहाँ से आया है? वह कुछ नहीं बता सका। केवल कहा— 'चाला'। अर्थात् जहाँ आठ चाला (आठ छप्परों वाले) घर में पूजा हो रही है। जब पूछा, 'किस के घर से आया है?' तब केवल कहा— 'दादा'।

"परमहंस की फिर और उन्माद की अवस्था होती है। जब उन्माद हुआ, शिवलिंग समझकर अपने ही लिंग की पूजा करता था। जीवन्तलिंग-पूजा। और फिर एक मोती पहना देता। अब नहीं कर सकता।"

[प्रतिष्ठा (1855) के पश्चात् पूर्णज्ञानी पागल के संग मिलन]

"दक्षिणेश्वर के मन्दिर की प्रतिष्ठा के कुछ दिन पश्चात् एक जन पागल आया था,— पूर्णज्ञानी। फटा जूता, हाथ में बाँस की टहनी— एक हाथ में आम के पौधे का कुल्हड़; गंगा में डुबकी लगाकर निकल आया, कोई सन्ध्या-पूजा नहीं, अण्टी में जो था वही खा लिया। उसके बाद काली-मन्दिर में जाकर स्तव करने लगा। मन्दिर काँप उठा था! हलधारी तब काली-मन्दिर में था। अतिथिशाला में उन्होंने उसको भात नहीं दिया— उस पर भ्रूक्षेप नहीं। पत्तलें इकट्ठी करके (उनमें से) खाने लगा— जहाँ पर कुत्ते आदि खाते हैं। बीच-बीच में कुत्तों को हटाकर स्वयं खाने लगा,— उसे कुत्तों ने कुछ नहीं कहा। हलधारी पीछे-पीछे गया था, और पूछा था, 'तुम कौन! तुम क्या पूर्णज्ञानी?' तब उसने कहा था, 'मैं पूर्णज्ञानी! चुप!'

"मैंने हलधारी से जब यह सारी बात सुनी, तो मेरी छाती गुर-गुर करने लग गई, और हृदय को कसकर पकड़ लिया था। माँ से कहा, 'माँ, तो फिर मेरी भी क्या यही अवस्था होगी?' हम देखने गए— हम से खूब ज्ञान की बातें कीं— अन्य लोगों के आने पर पागलपन। जब चला गया, हलधारी काफी दूर तक संग में गया था। फाटक पार होने पर हलधारी से कहा था, 'तुझ से और क्या कहूँ? इस पोखरी (छोटी नाली) के जल और गंगाजल में जब कोई भेदबुद्धि नहीं रहेगी तब जानोगे पूर्णज्ञान हो गया है।' उसके पश्चात् खूब हन् हन् (जल्दी-जल्दी) करके चला गया।"

तृतीय परिच्छेद

(पाण्डित्य की अपेक्षा तपस्या का प्रयोजन— साध्य-साधना)

ठाकुर श्रीरामकृष्ण मास्टर के साथ बातें कर रहे हैं। भक्तगण भी पास बैठै हैं।

श्रीरामकृष्ण *(मास्टर के प्रति)*— शशधर तुम्हें कैसे लगते हैं ?

मास्टर— जी, बढ़िया।

श्रीरामकृष्ण— खूब बुद्धिमान्, हैं ना ?

मास्टर— जी, पाण्डित्य खूब सुन्दर है।

श्रीरामकृष्ण— गीता का मत है— जिसको बहुत लोग जानते हैं और मानते हैं, उसके भीतर ईश्वर की शक्ति है। किन्तु उसका थोड़ा-सा काम बाकी है।

"केवल पाण्डित्य से क्या होगा, कुछ तपस्या का प्रयोजन है— कुछ साध्य-साधना की आवश्यकता है।

(पूर्वकथा— गौरी पण्डित और नारायण शास्त्री की साधना— बेलघर के बागान में केशव से साक्षात् 1875— काप्तेन का आगमन 1875-76)

"गौरी पण्डित ने साधन किया था। जब स्तव करता, 'हो रे रे निरालम्ब लम्बोदर!'— तब पण्डितगण केंचुए बन जाते।

"नारायण शास्त्री भी केवल पण्डित नहीं, उसने साध्य-साधना की है।

"नारायण शास्त्री पच्चीस वर्ष निरन्तर पढ़ा था। सात वर्ष न्याय पढ़ा था— तब भी 'हर, हर' कहते-कहते भाव होता। जयपुर के राजा ने सभा-पण्डित बनाना चाहा था। उसने वह काम स्वीकार नहीं किया। दक्षिणेश्वर में प्राय: आकर रहता। वशिष्ठ आश्रम में जाने की भारी इच्छा थी,— वहाँ पर तपस्या करेगा। जाने की बात मुझ से प्राय: ही कहता। मैंने उसको वहाँ पर जाने से मना किया।— तब कहने लगा 'क्या पता' किस दिन मर जाऊँ, साधन कब करूँगा— डुग्गी कब फट जाएगी!' बहुत जिद्दमजिद्दी (हठ) के पश्चात् मैंने जाने के लिए कहा था।

"सुनता हूँ, कोई-कोई कहता है कि नारायण शास्त्री ने शायद शरीर-त्याग कर दिया है, तपस्या करते हुए शायद भैरव ने चाँटा मारा था। और फिर कोई-कोई कहता है, बचा हुआ है— अभी हम लोग उसको रेल में चढ़ाकर आए हैं।

"केशवसेन को मिलने से पहले नारायण शास्त्री से कहा था, तुम एक बार जाओ, देख आओ कैसा व्यक्ति है। वह देखकर आकर बोला, वह व्यक्ति जप में सिद्ध है। वह ज्योतिष जानता था— कहा, 'केशवसेन का भाग्य अच्छा है। मैंने संस्कृत में बातें कीं, उसने बंगला में बातें कीं।'

"तब मैं हृदय को साथ लेकर बेलघर के बागान में जाकर उसे (केशव से) मिला। देखते ही बोला था, 'इन्हीं की पूँछ झड़ी है,— ये जल में भी रह सकते हैं और धरती पर (सूखे में) भी रह सकते हैं।'

"मुझे परखने के लिए उसने तीन ब्रह्मज्ञानी काली-मन्दिर में भेजे थे। उनमें प्रसन्न भी था। रात-दिन मुझको देखेंगे, देखकर केशव को खबर देंगे। मेरे कमरे में रात को थे— केवल 'दयामय, दयामय' करने लगे, और मुझ से कहा— 'तुम केशवबाबू को पकड़ो तो फिर तुम्हारा भला होगा।' मैंने कहा, 'मैं साकार मानता हूँ।' तब भी 'दयामय, दयामय' करते हैं। तब मेरी एक दूसरी अवस्था हो गई। तब बोला, 'यहाँ से जा!' कमरे में किसी प्रकार भी रहने नहीं दिया। वे बरामदे में जाकर लेटे रहे।

"काप्तेन ने भी जिस दिन मुझे प्रथम देखा, उस दिन रात को रह गया।"

(माईकेल मधुसूदन*— नारायण शास्त्री के साथ बातें)

"नारायण शास्त्री जब थे, माईकेल आया था। मथुरबाबू का बड़ा लड़का द्वारिकाबाबू उसे अपने संग लाया था। मैगज़ीन के साहबों के साथ मुकदमा होने का प्रबन्ध हो रहा था। इसीलिए माईकेल को बुलाकर बाबुओं ने उससे

* श्री मधुसूदन कवि— जन्म सागर दाँड़ि 1824; इंग्लैण्ड अवस्थिति 1862-67; देहत्याग, 1873 में। ठाकुर के दर्शन 1868 के बाद हुए होंगे।

परामर्श किया था।

"दफ्तर के साथ बड़ा कमरा है। वहाँ पर माईकेल को देखा था। मैंने नारायण शास्त्री को बातें करने के लिए कहा। (माईकेल) संस्कृत में बातें अच्छी तरह नहीं कर सके। गलती होने लगी। तब भाषा (बंगाली) में बातें हुईं।

"नारायण शास्त्री ने कहा, 'तुमने अपना धर्म क्यों छोड़ा?' माईकेल ने पेट दिखाकर कहा, 'पेट के लिए छोड़ना पड़ा।'

"नारायण शास्त्री ने कहा, 'जो पेट के लिए धर्म छोड़ता है, उसके साथ क्या बात करूँ!' तब माईकेल ने मुझसे कहा, 'आप कुछ कहें।'

"मैंने कहा, न जाने क्यों मेरी कुछ भी बोलने की इच्छा नहीं हो रही है। मेरा मुख कोई जैसे दबाए हुए है।"

**(कामिनी-काञ्चन पण्डित की भी हीनबुद्धि कर देता है—
विषयी की पूजा आदि)**

ठाकुर के दर्शन करने के लिए चौधुरीबाबू के आने की बात थी।

मनोमोहन— चौधुरी नहीं आएँगे। उन्होंने कहा है, फरीदपुर का वह बांगाल (शशधर) आएगा— इसलिए मैं नहीं जाऊँगा!

श्रीरामकृष्ण— कैसी हीन बुद्धि!— विद्या का अहंकार, उस पर दूसरे पक्ष की स्त्री से विवाह किया है,— धरती को कसोरी समझता है!

चौधुरी ने एम०ए० पास किया हुआ है। प्रथम स्त्री की मृत्यु पर खूब वैराग्य हुआ था। ठाकुर के पास दक्षिणेश्वर प्रायः जाते रहते थे। उन्होंने फिर विवाह किया है। तीन-चार सौ रुपया महीना लेते हैं।

श्रीरामकृष्ण *(भक्तों के प्रति)*— इस कामिनी-काञ्चन में आसक्ति ने मनुष्य को हीनबुद्धि कर दिया है। हरमोहन जब प्रथम गया था, तब सुन्दर लक्षण थे। देखने के लिए मैं व्याकुल हो जाता। तब आयु 17-18 होगी। (अब) प्रायः बुलावा भेजता हूँ, फिर भी नहीं आता। अब औरत को लेकर अलग घर किया है। मामा के घर में था, अच्छा था। गृहस्थी का कोई झँझट नहीं था। अब

अलग घर बनाकर स्त्री के लिए रोज बाजार जाता है। *(सब का हास्य)*। उस दिन वहाँ पर (दक्षिणेश्वर) गया था। मैंने कहा, 'जा, यहाँ से चला जा— तुझे छूने से मेरा शरीर कैसा कर रहा है।'

कर्ताभजा चन्द्र (चैटर्जी) आए हैं। आयु 60–65 है। मुख में केवल कर्ता–भजाओं के श्लोक हैं। ठाकुर की पदसेवा करने जा रहे हैं। ठाकुर ने पाँव स्पर्श करने नहीं दिए। हँसकर बोले, 'अब तो बड़ी हिसाबी बातें कर रहे हो।' भक्त लोग हँसने लगे।

अब ठाकुर श्रीरामकृष्ण बलराम के अन्त:पुर में श्री श्री जगन्नाथ–दर्शन करने जा रहे हैं। अन्त:पुर में भक्त स्त्रियाँ उनका दर्शन करने के लिए व्याकुल हो गई हैं।

ठाकुर फिर दोबारा बैठकखाने में आ गए। सहास्यवदन हैं। बोले— "मैंने पैखाने के कपड़े उतारकर जगन्नाथ के दर्शन किए। और थोड़े–से फूल–टूल दिए।

"विषयियों की पूजा, जप, तप उसी समय का होता है। जो भगवान के अतिरिक्त कुछ नहीं जानते वे नि:श्वास के संग–संग उनका नाम करते हैं। कोई मन–मन में सर्वदा ही 'राम', 'ॐ राम' जप करते हैं। ज्ञानपथ के लोग भी 'सोऽहं' जप करते हैं। किसी–किसी की सर्वदा ही जिह्वा हिलती रहती है।

"सर्वदा ही स्मरण–मनन करना उचित है।"

चतुर्थ परिच्छेद

(बलराम का घर, शशधर आदि भक्तगण— ठाकुर की समाधि)

श्रीयुक्त शशधर ने दो एक बन्धुओं के साथ कमरे में प्रवेश किया और ठाकुर को प्रणाम करके बैठ गए।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— हम सब वर–वधु–शय्या सजा कर वधु–सखियों की भाँति जाग रहे हैं कि कब वर आएँ।

पण्डित हँस रहे हैं। भक्तों की मजलिस लगी है। बलराम के पिताजी उपस्थित हैं। डॉक्टर प्रताप भी आए हैं। ठाकुर फिर और बातें कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण *(शशधर के प्रति)*— ज्ञान के चिह्न हैं, प्रथम— शान्त स्वभाव! दूसरा— अभिमान शून्य स्वभाव। तुम्हारे दोनों लक्षण हैं।

''ज्ञानी के और भी कितने सारे लक्षण हैं। साधु के निकट त्यागी, कर्म-स्थल पर जैसे लैक्चर देने के समय— सिंहतुल्य, स्त्री के पास रसराज, रस-पण्डित। *(पण्डित तथा और सब का हास्य)*।

''विज्ञानी का स्वभाव अलग है। जैसे चैतन्यदेव की अवस्था— बालकवत्, उन्मादवत्, जड़वत्, पिशाचवत्।

''बालक की अवस्था के भीतर फिर हैं— बाल्य, पौगण्ड (किशोर), यौवन। पौगण्ड अवस्था में मज़ाक, हँसी। उपदेश देने के समय युवा के जैसा।''

पण्डित— कैसी भक्ति द्वारा उन्हें पाया जाता है?

(शशधर और भक्ति-तत्त्व-कथा— ज्वलन्त विश्वास चाहिए— वैष्णवों का दीनभाव)

श्रीरामकृष्ण— प्रकृति के अनुसार भक्ति तीन प्रकार की है! भक्ति का सत्त्व, भक्ति का रज, भक्ति का तम।

''भक्ति का सत्त्व— ईश्वर को ही पता लगे। ऐसा भक्त गोपन में प्यार करता है,— शायद मसहरी के भीतर ध्यान करता है, किसी को पता भी नहीं लगता। सत्त्व का सत्त्व— विशुद्ध सत्त्व हो जाने पर ईश्वर-दर्शन में फिर देर नहीं;— जैसे अरुणोदय होने पर पता लग जाता है कि सूर्योदय में अब देर नहीं है।

''भक्ति का रज जिनका होता है, उनकी थोड़ी इच्छा होती है— लोग देखें मैं भक्त हूँ। वह षोडश उपचार द्वारा पूजा करता है, गरद (सुच्चा रेशम) पहनकर मन्दिर में जाता है,— गले में रुद्राक्ष की माला,— माला में मोती,—

बीच-बीच में एक-एक सोने का रुद्राक्ष।

"भक्ति का तम— जैसे डाका पड़ रहा है वैसा भक्ति-भाव। डाकू ढेंकि (हथियार) लेकर डाका डालते हैं, आठ दरोगों का भी भय नहीं,— मुख में 'मारो! लूटो!' पागल की भाँति— 'हर, हर, हर! बम बम! जय काली!' कहते रहते हैं। मन में खूब जोर, ज्वलन्त विश्वास!

"शाक्तों का भी वैसा ही विश्वास होता है।— क्या, एक बार काली-नाम, दुर्गा-नाम लिया है— एक बार राम-नाम लिया है, मुझे फिर पाप!

"वैष्णवों का बड़ा दीन-हीन भाव होता है। जो केवल माला जपते हैं (बलराम के पिता को लक्ष्य करके), रो कर, कराहकर कहते हैं, 'हे कृष्ण! दया कर,— मैं अधम, मैं पापी!'

"ऐसा ज्वलन्त विश्वास चाहिए कि मैंने उनका नाम किया है, अब मुझे फिर पाप कैसा!— रातदिन हरि-नाम करता है और फिर कहता है— मैं पापी!"

बातें करते-करते ठाकुर प्रेम में उन्मत्त होकर गाना गा रहे हैं—

आमि दुर्गा दुर्गा बोले मा यदि मरि।
आखेरे ए दीने ना तारो केमने, जाना जाबे गो शंकरी॥
नाशि गो ब्राह्मण, हत्या करि भ्रूण सुरापानादि विनाशी नारी।
ए सब पातक ना भाबि तिलेक, (ओ मा) ब्रह्मपद निते पारि॥

[भावार्थ— माँ, यदि मैं दुर्गा-दुर्गा बोलता हुआ मरता हूँ तो तुम हे शंकरी! इस दीन को कैसे नहीं तारोगी, मैं समझ लूँगा। ब्राह्मणों का नाश, गर्भपात, मदिरापान, स्त्री-विनाश आदि इन सब पापों की मुझे तिल भर भी परवाह नहीं है, ओ माँ! मैं ब्रह्मपद ले सकता हूँ।]

गाना सुनकर शशधर रो रहे हैं।

ठाकुर फिर और गाना गा रहे हैं—

शिव संगे सदा रंगे आनन्दे मगना।
सुधा पाने ढल ढल किन्तु ढले पड़े ना (माँ)!
विपरीत रतातुरा, पदभरे काँपे धरा,
उभय पागलेर पारा, लज्जा भय आर माने ना (माँ)।

[भावार्थ— माँ शिव के संग सदा आनन्द में मस्त हैं। अमृत रूपी सुधा पीकर डगमगा तो रही हैं परन्तु गिरती नहीं हैं। प्रेम में आतुर हुई के पद उठाने से धरती काँपती है। दोनों का पागलों का घेरा है। लज्जा और भय कोई नहीं मानता।]

अब अधर के गायक वैष्णवचरण गा रहे हैं—

दुर्गा नाम जप सदा रसना आमार,
दुर्गमे श्रीदुर्गा बिने के करे निस्तार।
तुमि स्वर्ग तुमि मर्त्य तुमि से पाताल,
तोमा होते हरि ब्रह्मा द्वादश गोपाल।

दश महाविद्या माता दश अवतार,
एबार कोनरूपे आमाय करिते होबे पार।

चल अचल तुमि मा तुमि सूक्ष्मा स्थूल,
सृष्टि स्थिति प्रलय तुमि तुमि विश्वमूल।

त्रिलोकजननी तुमि त्रिलोकतारिणी,
सकलेर शक्ति तुमि (मा गो) तोमार शक्ति तुमि।[1]

[भावार्थ— अरी मेरी रसना! तुम दुर्गा-नाम सर्वदा जपो। इस दुर्गम में (कठिन मार्ग में) श्री दुर्गा के बिना कौन निस्तार करेगा? तुम ही स्वर्ग, मर्त्य, पाताल हो, तुम से ही हरि, ब्रह्मा, द्वादश गोपाल हुए हैं। दस महाविद्याएँ तुम्हीं हो माता, और हो दसों अवतार। अब की बार मुझे किस रूप में पार करना होगा? चल, अचल; सूक्ष्म, स्थूल; सृष्टि, स्थिति, प्रलय तुम ही हो और तुम्हीं विश्व की मूल हो। तुम्हीं त्रिलोकजननी और त्रिलोकतारिणी हो। सब की शक्ति तुम हो माँ, और अपनी शक्ति भी तुम स्वयं हो।]

गाने के ये कुछ चरण सुनकर ठाकुर भावाविष्ट हो गए हैं। गाना समाप्त होने पर ठाकुर ने स्वयं गाना आरम्भ किया—

यशोदा नाचातो श्यामा बोले नीलमणि,
सेरूप लुकाले कोथा करालबदनी।[2]

[भावार्थ— ओ माँ, यशोदा 'नीलमणि' कहकर तुम्हें नचाती है। हे करालवदनी श्यामा, वह रूप तुमने कहाँ छिपाया?]

---

1 परिशिष्ट-2 में पूरा गाना है।

2 पृष्ठ 313 पर पूरा गाना आया है।

वैष्णवचरण अब कीर्त्तन गा रहे हैं। 'सुबोल-मिलन'। जब गायक आखर दे रहे हैं (नया पद जोड़ रहे हैं)— 'रा बिना धा निकलता नहीं रे'!— ठाकुर समाधिस्थ हो गए।

शशधर प्रेमाश्रु विसर्जन कर रहे हैं।

पञ्चम परिच्छेद

(पुनर्यात्रा— रथ के सम्मुख भक्तों के संग में ठाकुर का नृत्य और संकीर्त्तन)

ठाकुर की समाधि भंग हुई। गाना भी समाप्त हुआ। शशधर, प्रताप, रामदयाल, राम, मनोमोहन, लड़के भक्त आदि बहुत-से जन बैठे हैं। श्रीरामकृष्ण मास्टर से कह रहे हैं, "तोमरा एकटा केउ खोंचा देओ ना" (तुम लोग उसे थोड़ा छेड़ो ना)— अर्थात् शशधर से कुछ पूछो।

रामदयाल *(शशधर के प्रति)*— ब्रह्म की रूप-कल्पना जिस शास्त्र में है, वह कल्पना किसने की है?

पण्डित— ब्रह्म स्वयं करते हैं,— मनुष्य की कल्पना नहीं है।

डॉ० प्रताप— क्यों रूप-कल्पना करते हैं?

श्रीरामकृष्ण— क्यों? वे किसी के संग परामर्श करके काम नहीं करते। उनकी खुशी, वे इच्छामय! वे क्यों करते हैं, इस खबर का हमें क्या प्रयोजन? बाग में आम खाने आए हो, आम खाओ; कितने वृक्ष, कितनी हजार डालें, कितने लाख पत्ते,— इस सब हिसाब का क्या काम? वृथा तर्क, विचार करने से वस्तु-लाभ नहीं होता।

डॉ० प्रताप— तब तो फिर और विचार नहीं करूँ?

श्रीरामकृष्ण— वृथा तर्क-विचार नहीं करोगे। किन्तु सत्-असत्-विचार करोगे— क्या नित्य है, क्या अनित्य। जैसे काम, क्रोध वा शोक आदि के समय।

पण्डित— वह अलग है। उसको विवेकात्मक विचार कहते हैं।

श्रीरामकृष्ण— हाँ, सत्-असत् विचार। *(सब चुप हैं)*।

(पण्डित के प्रति)— "पहले बड़े-बड़े लोग आया करते थे।"

पण्डित— क्या, बड़े (धनी) मनुष्य?
श्रीरामकृष्ण— ना, बड़े-बड़े पण्डित।

इसी बीच छोटा रथ बाहर के दुमंजिले के बरामदे में ऊपर लाया गया। श्री श्री जगन्नाथदेव, सुभद्रा और बलराम नाना रंगों के कुसुमों और पुष्प-मालाओं से सुशोभित हो रहे हैं एवं अलंकार और नए वस्त्र पीताम्बर पहने हुए हैं। बलराम की सात्त्विक पूजा है, कोई आडम्बर नहीं। बाहर के लोगों को पता भी नहीं है कि घर में रथ हो रहा है।

अब ठाकुर भक्तों के संग रथ के सम्मुख आ गए हैं। इसी बरामदे में ही रथ खींचा जाएगा। ठाकुर ने रथ की डोरी पकड़ी हुई है और कुछ क्षण खींचा। फिर गाना गाने लगे—

गान— नदे टलमल टलमल करे गौरांग प्रेमेर हिल्लोरे रे।
[गौर के प्रेम की हिल्लोल में सारा नदिया डगमगा रहा है।]

गान— जादेर हरि बोलते नयन झरे तारा तारा दुभाई एसेछे रे।*
[जिन दोनों के हरि बोलते-बोलते प्रेमाश्रु झरते हैं वे दो भाई आए हैं रे।]

ठाकुर नृत्य कर रहे हैं। भक्तगण भी उन्हीं के साथ नाच रहे हैं और गा रहे हैं। कीर्त्तनिया वैष्णवचरण ने दल के साथ गाने में और नृत्य में योगदान किया।

देखते-देखते समस्त बरामदा भर गया। स्त्रियाँ भी निकटस्थ कमरे में इस प्रेमानन्द को देख रही हैं। बोध हुआ, मानो श्रीवास-मन्दिर में श्री गौरांग भक्तों के संग हरि-प्रेम में मतवाले होकर नृत्य कर रहे हैं। मित्रों के साथ पण्डित भी रथ के सम्मुख यह नृत्य-गीत दर्शन कर रहे हैं।

अभी भी सन्ध्या नहीं हुई। ठाकुर बैठकखाने में फिर लौट आए और भक्तों के संग बैठ गए।

श्रीरामकृष्ण *(पण्डित के प्रति)*— इसका नाम है भजनानन्द। संसारी लोग

* पूरा गाना परिशिष्ट-2 में है।

विषयानन्द लेकर रहते हैं— कामिनी-काञ्चन का आनन्द। भजन करते-करते उनकी जब कृपा हो जाती है, तब वे दर्शन देते हैं— तब है ब्रह्मानन्द।

शशधर और भक्त लोग अवाक् होकर सुन रहे हैं।

पण्डित *(विनीत भाव से)*— जी, कैसी व्याकुलता होने पर मन की ऐसी सरस अवस्था होती है?

श्रीरामकृष्ण— ईश्वर-दर्शन करने के लिए प्राण जब छटपट करता है तब ऐसी व्याकुलता आती है। गुरु ने शिष्य से कहा, 'आओ तुम्हें दिखला दूँ, कैसा व्याकुल होने पर उनको पाया जाता है।' यह कह कर गुरु ने एक तालाब के निकट ले जाकर शिष्य को जल में डुबाकर पकड़े रखा। उठाने पर शिष्य से पूछा, 'तुम्हारा प्राण कैसा हो रहा था?' वह बोला, प्राण छटपट कर रहा था।

पण्डित— हाँ, हाँ। वह तो है ही! अब समझा हूँ।

श्रीरामकृष्ण— ईश्वर को प्यार करना, यही सार है। भक्ति ही सार। नारद ने राम से कहा, तुम्हारे पादपद्मों में जैसे शुद्धाभक्ति रहे; और जिस प्रकार तुम्हारी भुवनमोहिनी माया में मुग्ध न होऊँ। रामचन्द्र ने कहा, और कुछ वर ले लो। नारद बोले, और कुछ नहीं चाहिए,— केवल जिस प्रकार आपके पादपद्मों में भक्ति रहे।

पण्डित विदा लेंगे। ठाकुर बोले, इनके लिए गाड़ी मँगवा दो।

पण्डित— जी नहीं, हम ऐसे ही चले जाएँगे।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— वैसा क्या होता है— ब्रह्मा जांके ना पाय ध्याने (ब्रह्मा भी जिन्हें ध्यान में नहीं पाते)—

पण्डित— जाने का प्रयोजन तो नहीं था, किन्तु सन्ध्या आदि करना होगा।

(श्रीरामकृष्ण की परमहंस अवस्था और कर्म-त्याग— मधुर नामकीर्त्तन)

श्रीरामकृष्ण— माँ ने मेरे सन्ध्या आदि कर्म उठा दिए हैं। सन्ध्या आदि द्वारा देह-मन शुद्ध होता है। वह अवस्था अब और नहीं है।

यह कहकर ठाकुर ने गाने का पद (धूया) पकड़ लिया—

''शुचि-अशुचिरे लये दिव्य घरे कबे शुबि,
तादेर दुई सतीने पिरीत होले तबे श्यामा मारे पाबि!''*

[शुचि और अशुचि को लेकर दिव्य घर में कब सोऊँगा? इन दोनों सौतों में प्रीति होने पर ही मैं श्यामा माँ को पाऊँगा!]

शशधर ने प्रणाम करके विदा ली।

राम— मैं कल शशधर के पास गया था, आपने कहा था।

श्रीरामकृष्ण— कहाँ, मैंने तो नहीं कहा, किन्तु यह सुन्दर हुआ कि तुम गए थे।

राम— एक समाचार पत्र 'Indian Empire' के सम्पादक ने आपकी निन्दा की थी।

श्रीरामकृष्ण— चलो कर भी ली, तो उससे क्या?

राम— उसके बाद सुनिए। मेरी बातें सुनकर तो फिर मुझे छोड़ता ही नहीं था, आपकी बातें और भी सुनना चाहता रहा।

डॉक्टर प्रताप अब भी बैठे हुए हैं। ठाकुर कह रहे हैं— वहाँ पर (दक्षिणेश्वर) एक बार जाना— भुवन (धात्री) भाड़ा दे देगी, कह रही थी।

सन्ध्या हो गई। ठाकुर जगन्माता का नाम ले रहे हैं— राम-नाम, कृष्ण-नाम, हरि-नाम कर रहे हैं। भक्तगण नि:शब्द (चुपचाप) सुन रहे हैं। इतना सुमिष्ट नाम-कीर्त्तन है मानो मधु बरस रहा है। आज बलराम का घर मानो नवद्वीप हो गया है।

बाहर नवद्वीप, भीतर वृन्दावन।

आज रात को ही ठाकुर दक्षिणेश्वर की यात्रा करेंगे। बलराम उन्हें

---

* परिशिष्ट-2 में आए गाने 'आय मन बेड़ाते जाबि' की ये 7वीं और 8वीं पंक्तियाँ हैं।

अन्त:पुर में ले जा रहे हैं— जलपान करवाएँगे। इसी सुयोग से स्त्री भक्तगण भी उनका फिर दर्शन कर लेंगी।

इधर भक्तगण बाहर बैठकखाने में उनका इन्तजार कर रहे हैं और एकसंग संकीर्त्तन कर रहे हैं। ठाकुर ने बाहर आकर योग दिया। कीर्त्तन चल रहा है—

आमार गौर नाचे।
नाचे संकीर्त्तने, श्रीवास अंगने, भक्तगणसंगे॥
हरिबोल बोले बदने गोरा, चाय गदाधर पाने।
गोरार अरुण नयने, बहिछे सघने, प्रेमधारा हेम अंगे॥

ठाकुर आखर दे रहे हैं—

नाचे संकीर्त्तने (शचीर दुलाल नाचे रे)।
(आमार गोरा नाचे रे) (प्राणेर गोरा नाचे रे)

[भावार्थ— मेरा गोरा नाच रहा है। वे श्रीवास के आँगन में, संकीर्त्तन में, भक्तों के संग में नाच रहे हैं। गोरा मुख से तो 'हरिबोल' बोल रहा है किन्तु देख रहा है गदाधर के मुख को। गोरा के अरुण नयनों से सघन प्रेमधारा सुनहरी अंगों पर बह रही है। ठाकुर आखर दे रहे हैं— शची का दुलारा नाच रहा है भाई, संकीर्त्तन में मेरा गोरा नाच रहा है, प्राणों का गोरा नाच रहा है रे।]

षोडश खण्ड

दक्षिणेश्वर-मन्दिर में
मास्टर, राखाल, लाटु, बलराम, अधर, शिवपुर के भक्तों आदि के संग में

प्रथम परिच्छेद

(शिवपुर के भक्तों के संग योग-तत्त्व की बातें—
कुण्डलिनी और षट्चक्र भेद)

ठाकुर श्रीरामकृष्ण दक्षिणेश्वर-मन्दिर में दोपहर की सेवा के पश्चात् भक्तों के संग बैठे हुए हैं। समय दो का होगा।

शिवपुर से बाउलों का दल और भवानीपुर से भक्त आए हैं। श्रीयुक्त राखाल, लाटु, हरीश आजकल सर्वदा ही रहते हैं। कमरे में बलराम और मास्टर भी हैं।

आज रविवार है। 3 अगस्त, 1884 ईसवी, (20वाँ श्रावण)। शुक्ला द्वादशी; झूलनयात्रा का दूसरा दिन। गत कल ठाकुर सुरेन्द्र के घर गए थे,— वहाँ पर शशधर आदि भक्तों ने उनका दर्शन किया था।

ठाकुर शिवपुर के भक्तों को सम्बोधन करके बातें कर रहे हैं—

श्रीरामकृष्ण *(भक्तों के प्रति)*— कामिनी-काञ्चन में मन रहने से योग नहीं होता। साधारण जीव का मन लिंग, गुह्य और नाभि में रहता है। साध्य-साधना के बाद कुलकुण्डलिनी जाग्रत होती है। ईड़ा, पिङ्गला और सुषुम्ना नाड़ियाँ हैं;— सुषुम्ना के मध्य में छः पद्म हैं। सब के नीचे है मूलाधार। उसके पश्चात् स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, विशुद्ध और आज्ञा हैं। इन

सबको षड्चक्र कहते हैं।

"कुलकुण्डलिनी जाग्रत हो जाने पर मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर— ये सब पद्म क्रमश: पार करके हृदय के मध्य में अनाहत पद्म है,— वहाँ पर आकर अवस्थान करती है। तब लिंग, गुह्य, नाभि से मन हटकर, चैतन्य हो जाता है और ज्योति-दर्शन होता है। साधक अवाक् होकर ज्योति देखता है और कहता है, 'यह क्या!' 'यह क्या!'

"षड्चक्र-भेद हो जाने पर कुण्डलिनी सहस्रार पद्म में जाकर मिलित होती है। कुण्डलिनी के वहाँ चले जाने पर समाधि हो जाती है।

"वेदमत में इन सब चक्रों को— 'भूमि' कहते हैं। सप्तभूमि। हृदय— चतुर्थ भूमि है। अनाहत पद्म, द्वादश दल है।

"विशुद्ध चक्र है पञ्चम भूमि। यहाँ पर मन के चढ़ जाने पर केवल ईश्वर-कथा कहने और सुनने के लिए प्राण व्याकुल होता है। इस चक्र का स्थान है कण्ठ। षोडश दल पद्म। जिसका इस चक्र में मन आ गया है, उसके सामने विषय की बातें, कामिनी-काञ्चन की बातें होने पर उसे बड़ा कष्ट होता है। उस प्रकार की बातें सुनने पर वह वहाँ से उठकर चला जाता है।

"उसके बाद है षष्ठभूमि। आज्ञा चक्र— दो दल पद्म। यहाँ पर कुल कुण्डलिनी के आ जाने पर ईश्वर का रूपदर्शन होता है। किन्तु थोड़ी-सी ओट रहती है,— जैसे लालटैन के भीतर प्रकाश, लगता है प्रकाश को छू लिया है, किन्तु काँच व्यवधान होने के कारण छुआ नहीं जाता।

"तब फिर सप्तम भूमि। सहस्रार पद्म। वहाँ पर कुण्डलिनी के चले जाने पर समाधि हो जाती है। सहस्रार में सच्चिदानन्द शिव हैं। वे शक्ति के साथ मिलते हैं। शिव-शक्ति का मिलन।

"सहस्रार में मन के आ जाने पर समाधिस्थ हो जाता है। फिर बाह्य (बाहरी) ज्ञान नहीं रहता और वह देहरक्षा नहीं कर सकता। मुँह में दूध देने पर दूध निकल जाता है। इस अवस्था में रहने पर इक्कीस दिन में मृत्यु हो जाती है। काले पानी में चले जाने पर जहाज फिर लौटता नहीं।

"ईश्वर कोटि— अवतार आदि— इस समाधि की अवस्था से उतर

सकते हैं। वे भक्ति-भक्त लेकर रहते हैं, इसीलिए उतर सकते हैं। वे उनके भीतर 'विद्या का मैं', 'भक्त का मैं', लोकशिक्षा के लिए रख देते हैं। उनकी अवस्था— जैसे षष्ठ भूमि और सप्तम भूमि के बीच में बाच्खेला* है।

"समाधि के पश्चात् 'विद्या का मैं' कोई-कोई इच्छा करके ही रख लेते हैं। वह 'मैं' का बन्धन नहीं है,— रेखामात्र है।

"हनुमान ने साकार-निराकार-साक्षात्कार के बाद 'दास मैं' रखा हुआ था। नारद आदि— सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार, इन्होंने भी ब्रह्मज्ञान के पश्चात् 'दास-मैं' 'भक्त-मैं' रख छोड़ा था। ये जहाज जैसे हैं, निज भी पार जाते हैं, और फिर बहुत-से लोगों को पार ले जाते हैं।"

ठाकुर क्या इस प्रकार से अपनी अवस्था वर्णन कर रहे हैं? कह रहे हैं—

(परमहंस— निराकारवादी और साकारवादी। ठाकुर की ब्रह्मज्ञान के बाद भक्ति— नित्यलीला-योग)

"परमहंस— निराकारवादी और फिर साकारवादी होता है। निराकारवादी जैसे त्रैलंगस्वामी। ये लोग आप्तसारा होते हैं— अपना बन जाने से ही हुआ।

"ब्रह्मज्ञान के बाद भी जो लोग साकारवादी हैं, वे लोकशिक्षा के लिए भक्ति लेकर रहते हैं। जैसे कुम्भ के परिपूर्ण हो जाने पर, अन्य पात्र में जल को उँडेलता है।

"इन्होंने जो-जो साधनाएँ करके भगवान-लाभ किया है, वे समस्त बातें लोकशिक्षा के लिए बतलाते हैं,— उनके हित के लिए। जल पीने के लिए बड़े कष्टों से कुआँ खोदा— टोकरी-फावड़े लेकर। कूप हो जाने पर, कोई-कोई फावड़े तथा और-और (अन्य) यन्त्र कूप के भीतर ही फेंक देते हैं— अब और क्या प्रयोजन है! किन्तु कोई-कोई कन्धे पर रखे रखते हैं कि औरों का उपकार होगा।

---

* बाच्खेला= बाइच संकरी और बहुत लम्बी नावों को तेजी से चलाने की होड़।

"कोई छिपकर आम खाकर मुँह पोंछ लेता है। और कोई औरों को देकर खाता है— लोकशिक्षा के लिए और उनको आस्वादन कराने के लिए। (मैं) 'चीनी खाना पसन्द करता हूँ।'

"गोपियों को ब्रह्मज्ञान था। किन्तु वे ब्रह्मज्ञान नहीं चाहती थीं। वे कोई वात्सल्य-भाव में, कोई सख्य-भाव में, कोई मधुर-भाव में, कोई दासी-भाव में ईश्वर का सम्भोग करना चाहती थीं।"

(कीर्त्तनानन्द में— श्री गौरांग का नाम और माँ का नाम)

शिवपुर के भक्त गोपीयन्त्र (इकतारा) लेकर गाना गा रहे हैं। प्रथम गाने में कह रहे हैं, 'हम पापी, हमारा उद्धार करो।'

श्रीरामकृष्ण *(भक्तों के प्रति)*— भय देखकर— भय पाकर— भजना, प्रवर्तक का भाव है। उनको प्राप्त करने के गाने गाओ— आनन्द का गान। *(राखाल के प्रति)* नवीन नियोगी के घर में उस दिन कैसा गान कर रहे थे— 'हरि-नाम मदिराय मत्त होओ' (हरि-नाम की मदिरा में मस्त हो जाओ।)

"केवल अशान्ति की बातें अच्छी नहीं। उनको लेकर आनन्द, उनको लेकर मतवाला होना।"

शिवपुर के भक्त— जी, आपका एक-आध गाना नहीं होगा?

श्रीरामकृष्ण— मैं क्या गाऊँगा? अच्छा, जब होगा, गाऊँगा।

कुछ क्षण पश्चात् ठाकुर गाना गा रहे हैं। गाने के समय है ऊर्ध्वदृष्टि—

कौपीन दाओ कांगालवेशे ब्रजे जाई हे भारती।

[हे भारती, कौपीन दो; मैं कंगाल वेश में ब्रज में जाऊँगा।]

गान— गौर प्रेमेर ढेउ लेगेछे गाय।

तार हिल्लोले पाषण्ड-दलन ए ब्रह्माण्ड तलिये जाय॥

मने करि डूबे तलिये रइ,

गौरचाँदेर प्रेम-कुमीरे गिलेछे गो सई।

एमन व्यथार व्यथी के आर आछे

हात धरे टेने तोलाय॥

[भावार्थ— शरीर पर गौर (चैतन्य महाप्रभु) के प्रेम की लहरें लग गई हैं। उसकी हिल्लोलें पाषण्ड को दलन करती हुई ब्रह्माण्ड को डुबा रही हैं। मन करता है डूबकर तले में रह जाऊँ पर वहाँ भी अरि सखि, मेरे मन को गौर रूपी चाँद के प्रेम रूप मगरमच्छ ने निगल लिया है। क्या कोई इस व्यथा को जानने वाला दर्दी है जो हाथ पकड़ कर निकाल लेगा?]

गान— देखसे आय गौरवरण रूपखानि (गो सजनी)।
आल्तागोला दुधेर छाना माखा गोरार गाय,
(देखे भावेर उदय होय)।
कारिगर भांगड़, मिस्त्री वृषभानुनन्दिनी।

[भावार्थ— चलो देखने चलें गौरवर्ण रूप की सुन्दरता की खान को (अरी मेरी सखी)। आलता में दूध का पनीर घोलकर गौरांग के शरीर पर मला गया है। देख कर भाव उमड़ता है। कारीगर है भाँगड़ और मिस्त्री वृषभानुनन्दिनी।]

गान— डुब डुब डुब रूपसागरे आमार मन।
तलातल पाताल खुंजले पाबि रे प्रेम रत्न धन॥
खुंज् खुंज् खुंज् खुँज्ले पाबि हृदय माझे वृन्दावन।
दीप् दीप् दीप् ज्ञानेर बाति, ज्वलबे हृदे अनुक्षण॥
ड्यांग ड्यांग ड्यांग डांगाय डिंगे, चालाय आबार से कोन् जन।
कुबीर बोले शोन् शोन् शोन् भाबो गुरुर श्रीचरण॥

[भावार्थ— ओ मेरे मन, तू (श्री गुरु के) रूप-सागर में डूब जा, डूब जा, डूब जा। तलातल-पाताल खोजने से तुझे अपने हृदय में प्रेम-रत्न-धन मिलेगा। खूब खोज लेने पर ही तुझे हृदय में आनन्दधाम वृन्दावन प्राप्त हो जाएगा। तब हृदय में सदा ज्ञान की बत्ती जलती रहेगी। भला ऐसा कौन है जो धरती पर 'डांगा' (नाव) चलाएगा? 'कुबीर' कहते हैं, तू सदा श्री गुरु के श्रीचरणों का ही अनुध्यान कर।]

गौरांग के नाम के पश्चात् माँ का नाम कर रहे हैं—

(1) श्यामाधन कि सबाई पाय (कालीधन की सबाई पाय)
अबोध मन बोझे ना ए कि दाय।
शिवेरि असाध्य साधन मन-मजानो रांगा पाय॥

इन्द्रादि सम्पद सुख तुच्छ होय जे भावे माय॥
सदानन्द सुखे भासे, श्यामा यदि फिरे चाय।
योगीन्द्र मुनीन्द्र इन्द्र जे चरण ध्याने ना पाय॥
निर्गुणे कमलाकान्त तबु से चरण चाय!

[भावार्थ— श्यामा माँ-रूप-धन क्या सब को मिलता है (काली माँ-रूप-धन क्या सब को मिलता है)? अबोध मन समझता नहीं है कि यह क्या वस्तु है। मन लाल चरणों में लगा होने पर भी शिव के लिए ही यह साधन असाध्य है। इस माँ के भाव में होने पर इन्द्र आदि की सम्पद तुच्छ है। माँ श्यामा यदि मुड़कर देख लेती हैं तो मुख सदानन्द में रहता है। योगीन्द्र, मुनीन्द्र, इन्द्र जिन चरणों का ध्यान नहीं पा सकते, निर्गुणी कमलाकान्त किन्तु यही चरण चाहता है।]

(2) मजलो आमार मन-भ्रमरा श्यामापद-नीलकमले,
श्यामापद—नीलकमले, कालीपद— नीलकमले।
जतो विषयमधु तुच्छ होलो कामादि कुसुम सकले,
चरण कालो, भ्रमर कालो, कालोय कालो मिशे गेलो।
ताय पञ्चतत्त्व, प्रधानमत्त, रंग देखे भंग दिले।
कमलाकान्तेर मने, आशापूर्ण एतो दिने।
सुख दुःख समान होलो, आनन्द-सागर उथले।

[भावार्थ— नीलकमल जैसे श्यामा के चरणों में, काली के चरणों में मेरा मन-भ्रमर रम गया। संसार की कामना-वासना आदि पुष्पों का विषयरूप मधु अब तुच्छ प्रतीत हो रहा है। काली के काले चरणों में मनरूपी काले भौंरे के बैठने से दोनों काले मिलकर एक हो गए, और भुलाने वाली पाँच तत्त्व रूपी अविद्या माया इस तमाशे को देखकर भाग गई। कमलाकान्त (कवि) के मन की आशाएँ इतने दिनों बाद आज पूर्ण हुईं। आनन्द-समुद्र में उथल-पुथल होने से सुख-दुःख समान हो गए।]

(3) श्यामा मा कि कल करेछे, काली मा कि कल करेछे,
चौद्द पोया कलेर भितरि, कत रंग देखातेछे।
आपनि थाकि कलेर भितरि, कलघुराय धरे कलडुरि;
कल बोले आपनि धुरि, जाने ना के घुरातेछे॥

जे कले जेनेछे तारे, कल होते होबे ना तारे,
कोनो कलेर भक्ति डोरे आपनि श्यामा बाँधा आछे।

[भावार्थ— श्यामा माँ ने कैसी कल (मशीन) बना दी है। चौदह पाव (3½ हाथ) की कल के भीतर कितने रंग, तमाशे दिखाती है। अपने-आप इस कल के भीतर रहकर कल की डोरी पकड़कर कल को घुमा रही है। कल कहती है मैं अपने-आप चल रही हूँ। वह नहीं जानती कौन चला रहा है। जिस कल ने उसको जान लिया है, उसको फिर मशीन नहीं बनना होगा, क्योंकि किसी-किसी कल की भक्ति-डोर से श्यामा स्वयं ही बँधी हुई हैं।]

द्वितीय परिच्छेद

(ठाकुर की समाधि और जगन्माता के साथ बातें— प्रेम-तत्त्व)

यह गाना गाते-गाते ठाकुर समाधिस्थ हो गए। भक्तगण सब निःस्तब्ध होकर दर्शन कर रहे हैं। कुछ क्षण पश्चात् थोड़ा प्रकृतिस्थ होकर माँ के संग बातें कर रहे हैं।

''माँ ऊपर से (सहस्रार से?) यहाँ पर उतर आओ!— क्यों जलाती हो!— चुप करके बैठो।

''माँ! जिसका जो (संस्कार) है, वही तो होगा!— मैं फिर उन्हें क्या कहूँ? विवेक-वैराग्य बिना कुछ नहीं होता।

''वैराग्य अनेक प्रकार का है। एक प्रकार है मर्कट वैराग्य— संसार की ज्वाला से जलकर वैराग्य!— वह वैराग्य अधिक दिन नहीं रहता। और ठीक-ठीक वैराग्य— सब है, किसी का अभाव नहीं, अथच सब मिथ्या बोध होता है।

''वैराग्य एकदम नहीं होता। समय बिना हुए नहीं होता। किन्तु एक बात है— सुन रखना अच्छा है। समय जब होगा तब मन में होगा— वह! वही सुना था!

''और एक बात है। ऐसी सब बातें सुनते-सुनते विषयवासना थोड़ी-

थोड़ी करके कम होती है। मद का नशा कम करने के लिए थोड़ा–थोड़ा चावल का जल पीना होता है। तब फिर धीरे–धीरे नशा हटता रहता है।

"ज्ञान–लाभ के अधिकारी बड़े ही कम हैं। गीता में कहा है, हजारों लोगों में से कोई एक उन्हें जानने की इच्छा करता है। और फिर जो जानने की इच्छा करते हैं, उनमें से उसी प्रकार हजारों लोगों में से कोई एक जान पाता है।"

तान्त्रिक भक्त— 'मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चित् यतति सिद्धये' इत्यादि।

श्रीरामकृष्ण— संसार में आसक्ति जितनी ही कम होगी, उतना ही ज्ञान बढ़ेगा। कामिनी–काञ्चन में आसक्ति।

(साधु-संग, श्रद्धा, निष्ठा, भक्ति, भाव, महाभाव, प्रेम)

"प्रेम सब का नहीं होता। गौरांग (चैतन्य) का हुआ था। जीव का भाव हो सकता है— बस इतना तक ही। ईश्वरकोटि का— जैसे अवतार आदि का— प्रेम होता है। प्रेम हो जाने पर जगत मिथ्या तो बोध होगा ही, फिर शरीर जो इतना प्यार करने की वस्तु है, वह भी भूल जाता है!

"पारसी पुस्तक (हाफिज़ की) में है, चमड़े के भीतर मांस, मांस के भीतर हाड़, हाड़ के भीतर मज्जा, उसके बाद और भी कितना क्या–क्या है! सबसे भीतर है प्रेम!

"प्रेम में कोमल, नरम, हो जाता है। प्रेम में कृष्ण त्रिभंग हुए हैं।

"प्रेम हो जाने पर सच्चिदानन्द को बाँधने के लिए रस्सी मिल जाती है। जब भी देखना चाहेगा, रस्सी पकड़कर खींच लेने से ही देख लेगा। जब पुकारेगा तब पाएगा।

"भक्ति पकने पर भाव होता है। भाव होने पर सच्चिदानन्द को सोचने से अवाक् हो जाता है। जीव का यहीं तक है। और फिर भाव पकने पर है महाभाव,— प्रेम। जैसे कच्चा आम और पक्का आम।

"शुद्धाभक्ति ही सार है और सब मिथ्या!

"नारद के स्तव करने पर राम ने कहा, तुम वर माँगो। नारद ने माँगी शुद्धाभक्ति। और कहा, 'राम, जिस तरह तुम्हारी भुवनमोहिनी माया में मुग्ध न होऊँ'! राम बोले, वह तो हुआ, और कुछ वर लो। नारद बोले, और कुछ नहीं चाहता, केवल भक्ति!

"यह भक्ति कैसे होती है? प्रथम साधु-संग करना चाहिए। साधु-संग करने से ईश्वरीय विषय में श्रद्धा होती है। श्रद्धा के बाद निष्ठा, ईश्वर की कथा के बिना और कुछ सुनने की इच्छा नहीं होती; उनका ही काम करने की इच्छा होती है।

"निष्ठा के बाद है भक्ति। फिर है भाव,— महाभाव, प्रेम— वस्तु-लाभ।

"महाभाव, प्रेम, अवतार आदि का होता है।

"संसारी जीव का ज्ञान, भक्त का ज्ञान और अवतार का ज्ञान समान नहीं है।

"संसारी जीव का ज्ञान जैसे प्रदीप का प्रकाश,— केवल कमरे के भीतर ही दिखाई देता है। इस ज्ञान से खाना-पीना, घर चलाना, शरीर-रक्षा, सन्तान पालना इत्यादि ही होता है।

"भक्त का ज्ञान, जैसे चाँद का आलोक। भीतर-बाहर दिखाई देता है, किन्तु बहुत दूर की वस्तु या बहुत छोटी वस्तु नहीं दिखाई देती।

"अवतार आदि का ज्ञान जैसे सूर्य का आलोक। भीतर-बाहर, छोटा-बड़ा— वे सब देख लेते हैं।

"यद्यपि संसारी (गृहस्थी) जीव का मन गदला जल तो चाहे होता है, किन्तु निर्मली डालकर फिर दोबारा साफ हो सकता है। विवेक-वैराग्य है निर्मली।"

अब ठाकुर शिवपुर के भक्तों के साथ बातें कर रहे हैं।

(ईश्वरकथा सुनने का प्रयोजन— 'समय-सापेक्ष'— ठाकुर की सहजावस्था)

श्रीरामकृष्ण— आप लोगों की कुछ जिज्ञासा हो तो कहो।

भक्त— जी, सब कुछ तो सुना है।

श्रीरामकृष्ण— सुन रखना भला है, किन्तु समय बिना हुए होता नहीं।

"जब खूब ज्वर हो तो कुनीन देने से क्या होगा? फीवर मिक्सचर देकर पाखाना आदि हो जाने पर कुछ ज्वर कम हो जाने पर तब कुनीन देनी चाहिए। और फिर किसी-किसी का वैसे ही उतर जाता है, कुनीन ना भी देने से हो जाता है।

"बच्चे ने सोने के समय कहा था, 'माँ मुझे जब हगने की हाजत होगी तब उठा देना।' माँ ने कहा, 'बेटा, मुझे उठाना नहीं पड़ेगा, हागा ही तुम्हें उठा देगा।'

"किसी भक्त के संग नौका में यहाँ पर कोई-कोई आते हैं, देखता हूँ। ईश्वरीय बातें उन्हें अच्छी नहीं लगतीं। केवल मित्र के शरीर को दबाते हैं, 'कब चलोगे, कब चलोगे?' जब बन्धु किसी प्रकार भी नहीं उठता, तब कहता है, तो फिर मैं उतनी देर तक नौका में जाकर बैठता हूँ।

"जिनका प्रथम मनुष्य जन्म है, उन्हें भोग की आवश्यकता होती है। बहुत-सा कार्य न किया हुआ हो तो चैतन्य नहीं होता।"

ठाकुर झाउतले जाएँगे। गोल बरामदे में मास्टर से कहते हैं—

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— अच्छा, मेरी कैसी अवस्था है?

मास्टर *(सहास्य)*— जी, ऊपर से तो आपकी सहजावस्था है— भीतर गम्भीर (गहरी) है।— आपकी अवस्था को समझना बड़ा कठिन है।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— हाँ; जैसे फ्लोर (floor, पक्का फर्श), लोग ऊपर का ही देखते हैं, फर्श के नीचे कितना कुछ है, नहीं जानते।

चाँदनी के घाट पर बलराम आदि कई एक भक्त कलकत्ता जाने के लिए नौका में चढ़ रहे हैं। समय, चार बज गए हैं। भाटा पड़ रहा है, उस पर दक्षिण की हवा है। गंगावक्ष तरंगमालाओं से विभूषित है।

बलराम की नौका बागबाजार की ओर जा रही है, मास्टर काफी देर से देख रहे हैं।

नौका के अदृश्य हो जाने पर वे फिर दोबारा ठाकुर के पास आ गए।

ठाकुर पश्चिम के बरामदे से उतर रहे हैं— झाउतले जाएँगे। उत्तर-पश्चिम में सुन्दर मेघ हो गए हैं। ठाकुर कह रहे हैं, वर्षा होगी क्या, छतरी ले आओ ज़रा। मास्टर छतरी ले आए। लाटु भी संग में हैं।

ठाकुर पञ्चवटी में आ गए हैं। लाटु से कह रहे हैं,

"तू कमजोर क्यों होता जा रहा है?"

लाटु— कुछ खा नहीं सकता।

श्रीरामकृष्ण— केवल क्या वही बात है— समय (मौसम) खराब है— और अधिक ध्यान करता है शायद?

ठाकुर मास्टर के साथ बातें कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण *(मास्टर के प्रति)*— तुम्हारे पर वही भार रहा। बाबूराम से कहोगे, राखाल के जाने पर बीच-बीच में एक-दो दिन आकर रहेगा। वैसा न होने पर मेरा मन खराब होगा।

मास्टर— जो आज्ञा, मैं कहूँगा।

सरल होने पर ईश्वर को प्राप्त किया जाता है। ठाकुर पूछ रहे हैं, बाबूराम सरल हैं कि नहीं!

(झाउतला और पञ्चवटी में श्रीरामकृष्ण का सुन्दर रूप-दर्शन)

ठाकुर झाउतले से दक्षिणास्य होकर आ रहे हैं। मास्टर और लाटु पञ्चवटी-तल में उत्तरास्य खड़े हुए देख रहे हैं।

ठाकुर के पीछे नवीन मेघ गगनमण्डल सुशोभित करके जाह्नवी-जल में प्रतिबिम्बित हो रहा है— उससे गंगाजल कृष्णवर्ण दिखाई दे रहा है।

ठाकुर आ रहे हैं— जैसे साक्षात् भगवान देह धारण करके मर्त्यलोक में भक्तों के लिए हरि के चरण कमलों से निकली कलुषविनाशिनी गंगा

के तीर पर विचरण कर रहे हैं! साक्षात् वे उपस्थित हैं।— इसीलिए क्या वृक्ष, लता, गुल्म (झाड़ी), उद्यानपथ, देवालय, देवप्रतिमा, सेवकगण, द्वारपालगण, प्रत्येक धूलिकण इतने मधुर हो रहे हैं!

तृतीय परिच्छेद

(नबाई चैतन्य, नरेन्द्र, बाबूराम, लाटु, मणि, राखाल, निरञ्जन, अधर)

ठाकुर अपने कमरे में आकर बैठ गए हैं। बलराम आम लाए थे! ठाकुर श्रीयुक्त राम चाटुज्ये से कह रहे हैं— अपने लड़के के लिए आम ले जाओ। कमरे में श्रीयुक्त नबाई चैतन्य बैठे हैं। वे लाल धोती पहनकर आए हैं।

उत्तर के लम्बे बरामदे में ठाकुर हाजरा के साथ बातें कर रहे हैं। ब्रह्मचारी ने हरिताल-भस्म ठाकुर के लिए दी थी।— वही बातें हो रही हैं।

श्रीरामकृष्ण— ब्रह्मचारी की औषध मुझे खूब लगती है— व्यक्ति ठीक है।

हाजरा— किन्तु बेचारा संसार (गृहस्थी) में पड़ गया है, क्या करे! कोन्नगर से नबाई चैतन्य आए हैं। किन्तु गृहस्थी होकर लाल धोती पहने हैं!

श्रीरामकृष्ण— क्या कहूँ! फिर मैं देख रहा हूँ ईश्वर स्वयं ही ऐसे-ऐसे मनुष्य-रूप धारण करके रह रहे हैं। तब किसी को कुछ नहीं कह पाता।

ठाकुर फिर दोबारा कमरे में आ गए हैं। हाजरा के साथ नरेन्द्र की बात कर रहे हैं।

हाजरा— नरेन्द्र फिर मुकदमे में पड़ गया है।

श्रीरामकृष्ण— शक्ति नहीं मानता। देह धारण करने पर शक्ति माननी चाहिए।

हाजरा— कहता है, मैं मान लूँ तो सभी मानेंगे,— तो उसे कैसे मानूँ?

श्रीरामकृष्ण— इतनी दूर (अधिक) अच्छा नहीं है। अब शक्ति के इलाके में आया है। जज साहब तक जब साक्षी देते हैं, उन्हें साक्षी के बॉक्स

(कटहरे) में आकर खड़ा होना पड़ता है।''

ठाकुर मास्टर से कह रहे हैं—

''तुमसे नरेन्द्र मिला नहीं?''

मास्टर— जी, आजकल नहीं मिला।

श्रीरामकृष्ण— एक बार मिलो ना— और गाड़ी करके यहाँ लाओ। *(हाजरा के प्रति)*— ''अच्छा, यहाँ के संग उसका क्या सम्बन्ध है?''

हाजरा— आपकी सहायता पाएगा।

श्रीरामकृष्ण— भवनाथ? संस्कार न हों तो क्या यहाँ इतना आता?

''अच्छा, हरीश, लाटु— केवल ध्यान करते हैं;— वह कैसा है?

हाजरा— हाँ, केवल ध्यान करना क्या है? आपकी सेवा करें तो एक बात भी है।

श्रीरामकृष्ण— होगा!— उनके जाने पर फिर और कोई आएगा।

(मणि के प्रति नाना उपदेश— श्रीरामकृष्ण की सहजावस्था)

हाजरा कमरे में से चले गए। अभी भी सन्ध्या में देर है। ठाकुर कमरे में बैठे हुए मणि के साथ एकान्त में बातें कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण *(मणि के प्रति)*— अच्छा, मैं भावावस्था में जो बोलता हूँ, उससे क्या लोगों को आकर्षण होता है?

मणि— जी, खूब होता है।

श्रीरामकृष्ण— लोग क्या सोचते हैं? भावावस्था में देखने से कुछ बोध होता है?

मणि— बोध होता है, एक आधार में ज्ञान, प्रेम, वैराग्य— उसके ऊपर सहजावस्था। भीतर से कितने जहाज़ चले गए, तब भी सहज! उस अवस्था को अनेक लोग ही समझ नहीं सकते— किन्तु दो-चार जन उससे ही आकृष्ट होते हैं।

श्रीरामकृष्ण— घोषपाड़ा के मत में ईश्वर को 'सहज' कहते हैं। और कहते हैं, सहज हुए बिना 'सहज' को नहीं पहचाना जाता।

(श्रीरामकृष्ण और अभिमान और अहंकार । 'मैं यन्त्र वे यन्त्री')

श्रीरामकृष्ण *(मणि के प्रति)*— अच्छा, मेरा अभिमान है ?

मणि— जी, तनिक-सा है। शरीर-रक्षा और भक्ति-भक्त के लिए,— ज्ञानोपदेश के लिए। उसे भी आपने प्रार्थना करके रखा हुआ है।

श्रीरामकृष्ण— मैंने नहीं रखा; उन्होंने ही रख दिया है। अच्छा, भावावेश के समय क्या होता है ?

मणि— आपने तब कहा था, षष्ठभूमि में मन के चढ़ जाने पर ईश्वरीय रूप-दर्शन होता है। उसके पश्चात् जब बातें करते हैं, तब पञ्चम भूमि पर मन उतर आता है।

श्रीरामकृष्ण— वे ही सब कहते हैं। मैं कुछ भी नहीं जानता।

मणि— जी, इसीलिए ही तो है इतना आकर्षण!

**(Why all scriptures, all religions are true—
श्रीरामकृष्ण और विरुद्ध शास्त्रों का समन्वय)**

मणि— जी, शास्त्र में दो प्रकार से कहा है। एक पुराण के मत में कृष्ण को चिदात्मा, राधा को चित्‌शक्ति कहा है। और एक पुराण में कृष्ण को ही काली— आद्याशक्ति कहा है।

श्रीरामकृष्ण— देवी पुराण का मत है।— इस मत में काली ही कृष्ण हुए हैं।

''वैसा चाहे हो ही!— वे अनन्त, पथ भी अनन्त।''

यह बात सुनकर मणि अवाक् होकर कुछ क्षण चुप किए रहे।

मणि— वह समझ गया। आप जैसे कहते हैं, छत पर चढ़ने की बात। जिस किसी भी उपाय से चढ़ पाने से ही मतलब है— रस्सी, बांस या किसी भी उपाय से।

श्रीरामकृष्ण— इतना ही जो समझ गए हो, यही ईश्वर की दया है। ईश्वर की कृपा बिना हुए संशय नहीं जाता।

"बात तो विशेष यही है, किसी प्रकार जिससे उनके ऊपर भक्ति हो— प्यार हो। नाना पकड़ने का क्या काम? एक पथ से जाते-जाते यदि उनके ऊपर प्यार हो जाता है, तो बस उसी से सब हुआ। प्यार होने पर ही उन्हें प्राप्त किया जाएगा। उसके पश्चात् यदि प्रयोजन होगा, तो वे सब समझा देंगे— सब पथों की खबर बता देंगे। ईश्वर के ऊपर प्यार आने से ही हुआ— नाना विचारों का प्रयोजन नहीं? आम खाने आए हो, आम खाओ; कितनी डालें, कितने पत्ते, इन सब के हिसाब की कोई जरूरत नहीं। हनुमान का भाव— 'मैं वार, तिथि, नक्षत्र नहीं जानता— एक राम-चिन्तन करता हूँ'।"

(संसार-त्याग और ईश्वर-लाभ। भक्त का संचय अथवा यदृच्छालाभ ?)

मणि— अब ऐसी इच्छा होती है कि कर्म खूब कम हो जाएँ, और ईश्वर की ओर खूब मन दूँ।

श्रीरामकृष्ण— आहा! उसके अतिरिक्त और क्या!

"किन्तु ज्ञानी निर्लिप्त होकर संसार में रह सकता है!"

मणि— जी, किन्तु निर्लिप्त होने के लिए विशेष शक्ति चाहिए।

श्रीरामकृष्ण— हाँ, वह तो चाहिए। किन्तु शायद तुमने (संसार) माँगा था।

"कृष्ण श्रीमती के हृदय में ही थे, किन्तु इच्छा हुई, तभी मनुष्यरूप में लीला हुई।

"अब प्रार्थना करो, ताकि यह सब कम हो जाए।

"फिर मन से त्याग होने से ही हुआ।"

मणि— वह (उनके लिए) जो बाहर का त्याग नहीं कर सकते। ऊँची श्रेणी के लिए एकदम त्याग— मन से त्याग और बाहर से त्याग।

ठाकुर चुप हैं।— फिर बातें करते हैं।

श्रीरामकृष्ण— वैराग्य की बातें तब कैसी सुनीं?

मणि— जी, हाँ।

श्रीरामकृष्ण— वैराग्य माने क्या है, बताओ तो ज़रा सुनूँ?

मणि— वैराग्य माने केवल संसार से विराग नहीं है। ईश्वर में अनुराग और संसार से विराग।

श्रीरामकृष्ण— हाँ, ठीक बोले हो।

"संसार में रुपये का प्रयोजन तो चाहे है, किन्तु उसके लिए इतनी चिन्ता, भावना मत करो। यदृच्छा लाभ— यही अच्छा है। संचय के लिए इतनी चिन्ता न करो। जो उनको मन-प्राण समर्पण करते हैं,— जो उनके भक्त हैं— शरणागत हैं, वे इतना नहीं सोचते। यत्र आय, तत्र व्यय। एक ओर से रुपया आता है, और एक ओर से खर्च हो जाता है। इसका नाम है यदृच्छालाभ— गीता में यह है।"

(श्रीयुक्त हरिपद, राखाल, बाबूराम, अधर आदि की बातें)

ठाकुर हरिपद की बात कह रहे हैं—

"हरिपद उस दिन आया था"।

मणि *(सहास्य)*— हरिपद कथकता जानता है। प्रह्लाद-चरित्र, श्री कृष्ण की जन्म-कथा— ये सब सुन्दर सुर से कहता है।

श्रीरामकृष्ण— निश्चय! उस दिन उसके चक्षु देखे, जैसे चढ़े हुए हैं। कहा था,— तू क्या खूब ध्यान करता है? तब वह सिर नीचे किए रहा। मैंने तब कहा, इतना नहीं रे!

सन्ध्या हो गई। ठाकुर माँ का नाम और चिन्तन कर रहे हैं।

कुछ क्षण पश्चात् देव-मन्दिर में आरती आरम्भ हो गई। श्रावण शुक्ला द्वादशी। झूलन-उत्सव का दूसरा दिन। चाँद उदित हो गए हैं। मन्दिर, मन्दिर-प्राङ्गण, उद्यान,— आनन्दमय हो गए हैं। रात के आठ हो गए। कमरे में ठाकुर बैठे हैं। राखाल और मास्टर भी हैं।

श्रीरामकृष्ण *(मास्टर के प्रति)*— बाबूराम कहता है, 'संसार!— ओ रे बाबा'!

मास्टर— और सुनो बात। बाबूराम संसार का क्या जानता है?

श्रीरामकृष्ण— हाँ, वह तो निश्चय ही। निरञ्जन को देखा है तुम ने?—

खूब सरल है!

मास्टर— जी, हाँ। उसका चेहरा ही आकर्षित करता है। आँखों का भाव भी कैसा है!

श्रीरामकृष्ण— केवल आँखों का भाव नहीं— समस्त। उसका विवाह करेंगे, बताता था,— उस पर उसने कहा, मुझे डुबाते क्यों हो? *(सहास्य)* हाँ जी, लोग कहते हैं, (दिन भर) परिश्रम के बाद पत्नी के पास जाकर बैठने पर तो खूब आनन्द होता है।

मास्टर— जी, जो उस भाव में हैं, उन्हें तो ऐसा होना ही है।

(राखाल के प्रति, सहास्य)— एग्ज़ामिन (परीक्षण) हो रहा है— leading question (प्रमुख प्रश्न)।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— माँ कहती है, लड़के को एक पेड़ के नीचे कर दूँ तो बचूँ! धूप में झुलस कर पेड़तले बैठ जाएगा।

मास्टर— जी, तरह-तरह के माँ-बाप हैं। मुक्त बाप बेटों का विवाह नहीं करता। यदि करता है तब तो वह बड़ा मुक्त हुआ!

(ठाकुर का हास्य)।

(अधर और मास्टर का काली-दर्शन। अधर की चन्द्रनाथ तीर्थ और सीताकुण्ड की कहानी)

श्रीयुक्त अधरसेन ने कलकत्ते से आकर भूमिष्ठ होकर प्रणाम किया। थोड़ा बैठकर काली-दर्शन के लिए काली-मन्दिर में गए।

मास्टर ने भी काली-दर्शन किया। तत्पश्चात् चाँदनी के तट पर आकर गंगा के किनारे बैठ गए। गंगा का जल ज्योत्स्ना में झक्-झक् कर रहा है। अभी-अभी ज्वार आई थी। मास्टर निर्जन में बैठकर ठाकुर का अद्भुत चरित्र-चिन्तन कर रहे हैं— उनकी अद्भुत समाधि-अवस्था, मुहुर्मुहुः भाव,— प्रेमानन्द,— अविश्रान्त ईश्वर-कथा प्रसंग,— भक्तों के ऊपर अकृत्रिम स्नेह— बालक का चरित्र— ये सब स्मरण कर रहे हैं। और सोच रहे हैं— ये कौन हैं— क्या ईश्वर भक्तों के लिए देह धारण

करके आए हैं ?

अधर, मास्टर ठाकुर के कमरे में लौट आए हैं। अधर चट्टोग्राम में काम के लिए थे। वे चन्द्रनाथ तीर्थ और सीताकुण्ड की बातें कर रहे हैं।

अधर— सीताकुण्ड के जल में अग्नि–शिखा जिह्वा की भाँति लक्–लक् करती है।

श्रीरामकृष्ण— यह कैसे होता है ?

अधर— जल में फोसफोरस (phosphorus) है।

श्रीयुक्त राम चैटर्जी कमरे में आए हैं। ठाकुर अधर से उनकी सुख्याति कर रहे हैं और कह रहे हैं— 'राम है, जभी तो हमें इतनी चिन्ता नहीं करनी पड़ती। हरीश, लाटु आदि को बुला–बुलाकर खिला देता है। वे शायद कहीं अकेले–अकेले ध्यान कर रहे होते हैं। वहाँ से राम उन्हें पुकार–पुकुर कर ले आता है।

सप्तदश खण्ड

ठाकुर श्रीरामकृष्ण श्रीयुक्त अधर के घर में नरेन्द्रादि भक्तों के संग

प्रथम परिच्छेद

(नरेन्द्रादि भक्तसंगे कीर्त्तनानन्द में— समाधिमन्दिर में)

ठाकुर श्रीरामकृष्ण अधर के घर की बैठक में भक्तों के संग बैठे हुए हैं। बैठक दोतल पर है। श्रीयुक्त नरेन्द्र, दोनों भाई मुखर्जी, भवनाथ, मास्टर, चुनीलाल, हाजरा आदि भक्तगण उनके पास बैठे हुए हैं। समय तीन का होगा। आज शनिवार है, 22वाँ भाद्र, 1291 (बंगला) साल; 6 सितम्बर, 1884 ईसवी। कृष्णा प्रतिपदा तिथि।

भक्तगण प्रणाम कर रहे हैं। मास्टर के प्रणाम कर लेने पर ठाकुर अधर से कह रहे हैं— 'निताई डॉक्टर नहीं आएगा?'

श्रीयुक्त नरेन्द्र गाना गाएँगे, उसका आयोजन हो रहा है। तानपुरा बाँधते समय उसकी तार टूट गई। ठाकुर कह रहे हैं, अरे क्या कर लिया! नरेन्द्र बायाँ तबला बाँध रहे हैं। ठाकुर कह रहे हैं, तेरा बाँधना जैसे गाल पर चाँटा मार रहा है!

कीर्त्तन के हिस्सों के गाने के सम्बन्ध में बातें हो रही हैं। नरेन्द्र कह रहे हैं,— 'कीर्त्तन में ताल सम् इत्यादि नहीं हैं,— इसीलिए इतना popular

है— लोग पसन्द करते हैं।'

श्रीरामकृष्ण— यह क्या कहता है! करुण है, जभी लोग इतना पसन्द करते हैं!

नरेन्द्र गाना गा रहे हैं—

गान— सुन्दर तोमारि नाम दीन-शरण हे,
बरिषे अमृतधार, जुड़ाय श्रवण ओ प्राणरमण हे।

गम्भीर विषाद राशि निमेषे विनाशे,
जखनि तव नाम सुधा श्रवणे परशे,
हृदय मधुमय तव नाम गाने,
हाये हे हृदयनाथ, चिदानन्द घन हे॥

[भावार्थ— हे दीनशरण, आपका नाम सुन्दर है। उससे अमृत-धारा बरसती है। हे प्राणरमण, ज्योंहि आपके नाम की सुधा का कानों में प्रवेश होता है, त्यों ही निमेष में गम्भीर विषाद का ढेर विनष्ट हो जाता है। तुम्हारे नाम के गाने से हृदय मधुमय हो जाता है और हे हृदयनाथ, चित्त आनन्दपूर्ण हो जाता है।]

गान— जाबे कि हे दिन आमार विफले चलिये।
आछि नाथ दिवानिशि आशापथ निरखिये॥
तुमि त्रिभुवन नाथ, आमि भिखारी अनाथ।
केमने बोलिबो तोमाय, ऐशो हे मम हृदये॥
हृदय-कुटीर-द्वार, खुले राखि अनिबार॥
कृपा करि एक बार ऐशे कि जुड़ाबे हिये॥

[भावार्थ— क्या मेरे दिन सब व्यर्थ ही चले जाएँगे? हे नाथ, मैं रात-दिन आशापथ को निरखता रहता हूँ। तुम त्रिभुवन के नाथ हो और मैं भिखारी, अनाथ हूँ। किस प्रकार आप से कहूँ कि मेरे हृदय में आओ। अपने हृदय-कुटीर का द्वार हर समय खुला रखे हुए हूँ। कृपा करके एक बार आकर उसे शान्त करें।]

श्रीरामकृष्ण *(हाजरा के प्रति, सहास्य)*— प्रथम यही गाना गाया था!

नरेन्द्र के और भी दो-एक गाने गाने के पश्चात् वैष्णवचरण गाते हैं—

चिनिबो केमने हे तोमाय (हरि),
ओ हे बंकुराय भुले आछो मथुराय।
हातीचड़ा जोड़ापरा, भुलेछो कि धेनुचरा,
ब्रजेर माखन चुरि करा, मने किछु होय।

[भावार्थ— हे हरि, तुम्हें कैसे पहचानूँगा? अरे ओ बाँकुरे! मथुरा में आकर तुम हाथी पर चढ़े हो, शाही पोशाक पहने हो, क्या तुम भूल गए हो कि तुम धेनु चराया करते थे? क्या तुम्हें ब्रज का माखन चोरी करना कुछ याद आता है?]

श्रीरामकृष्ण— 'हरि हरि बोल रे वीणे' यह एक बार हो जाए ना!

वैष्णवचरण गा रहे हैं—

हरि हरि बोल रे वीणे!
श्री हरिर चरण बिने परम तत्त्व आर पाबिने॥
हरिनामे ताप हरे, मुखे बोलो हरे कृष्ण हरे,
हरि यदि कृपा करे तबे भबे आर भाविने।
वीणे एक बार हरि बोल, हरि नाम बिने नाशि सम्बल,
दास गोबिन्द कय, दिन गेलो, अकूले जेनो भासिने॥

[भावार्थ— अरी वीणा, हरि-हरि बोल। श्री हरि के चरण बिना परम तत्त्व नहीं पाएगी। हरि-नाम (त्रय) ताप हर लेता है। तू हरे कृष्ण हरे गाती जा। श्रीहरि यदि कृपा करेंगे, फिर भवचिन्ता नहीं रहेगी। वीणे, एक बार हरि बोल; हरि-नाम बिना सहारा नहीं है। दास गोबिन्द कहता है, दिन चले गए, (अब तो) अथाह समुद्र में मत बहो।]

(ठाकुर की मुहुर्मुहुः समाधि और नृत्य)

गाना सुनते-सुनते ठाकुर श्रीरामकृष्ण भावाविष्ट होकर कह रहे हैं— आहा! आहा! हरि, हरि बोलो!

यह बात कहते-कहते ठाकुर समाधिस्थ हो गए। भक्तगण चारों ओर बैठे हुए हैं और दर्शन कर रहे हैं। कमरा लोगों से परिपूर्ण हो गया

है।

कीर्त्तनिये ने वह गान समाप्त करके नूतन गाना पकड़ लिया—

श्री गौरांग सुन्दर नव नटवर, तपत काञ्चन काय।

कीर्त्तनिया जब गाते हैं 'हरिप्रेमेर बन्ये भेसे जाय' (हरि के प्रेम की बाढ़ में तैरता जा रहा है), ठाकुर खड़े होकर नृत्य करने लगे। और फिर बैठकर बाहें फैलाकर आखर दे रहे हैं—

(एक बार हरि बोल रे)।

ठाकुर आखर देते-देते भावाविष्ट हो गए और सिर नीचा करके समाधिस्थ हो गए। तकिया सामने है। उसके ऊपर सिर लुढ़क गया है।

कीर्त्तनिया फिर और गा रहे हैं—

'हरिनाम बिने आर कि धन आछे संसारे,
बोल मधाई मधुर स्वरे।'
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥

गान— हरि बोले आमार गौर नाचे।
नाचे रे गौरांग आमार हेमगिरिर माझे।
रांगा पाये सोनार नूपुर रुणु झुनु बाजे॥
थेको रे बाप नरहरि थेको गौरेर पाशे।
राधार प्रेमे गड़ा तनु धूलाय पड़े पाछे॥
बामेते अद्वैत आर दक्षिणे निताई।
तार माझे नाचे आमार चैतन्य गोसाँई॥

[भावार्थ— हरि बोल कर मेरा 'गौर' नाचता है। मेरा गौरांग हेमगिरि के बीच में नाचता है। लाल चरणों में सोने के नूपुर रुणु-झुनु बजते हैं। हे पिता नरहरि, ठहरो, गौर के पास आप रहो। राधा के प्रेम से गढ़ा हुआ शरीर धूलि में पड़ा मिलता है। बायें अद्वैतानन्द जी तथा दायें नित्यानन्द जी हैं। उसके बीच में मेरा गोसांई चैतन्य नाचता है।]

ठाकुर फिर उठे और आखर देकर नाच रहे हैं—

प्रेमे मातोयारा होये रे! (प्रेम में मतवाला होकर रे!)

वह अपूर्व नृत्य देखकर नरेन्द्रादि भक्तगण और स्थिर नहीं रह सके, सब के सब ही ठाकुर के संग में नाचने लगे।

नाचते-नाचते ठाकुर एक-एक बार समाधिस्थ हो रहे हैं। तब अन्तर्दशा है, मुख में एक भी बात नहीं। शरीर समस्त स्थिर है। भक्तगण तब उनको घेरकर नाच रहे हैं।

कुछ क्षण पश्चात् ही अर्धबाह्य दशा— चैतन्यदेव की जिस प्रकार हुआ करती,— वैसे ही ठाकुर सिंह-विक्रम से नृत्य कर रहे हैं। तब भी मुँह में बात नहीं— प्रेम में उन्मत्तप्राय!

अब कुछ-कुछ प्रकृतिस्थ हो रहे हैं— तुरन्त एक बार आखर दे रहे हैं।

आज अधर का बैठकखाना श्रीवास का आँगन हो गया है। हरि-नाम की धुन सुनकर राजपथ के असंख्य लोग जमा हो गए हैं।

भक्तों के संग में अनेक क्षण नृत्य करने के पश्चात् ठाकुर ने फिर आसन ग्रहण किया। अभी भी भावावेश है। उसी अवस्था में नरेन्द्र से कह रहे हैं— वही गा ना,— 'आमाय दे मा पागल करे।'

ठाकुर की आज्ञा पाकर नरेन्द्र गाना गा रहे हैं—

आमाय दे मा पागल करे (ब्रह्ममयी)।
आर काज नाई ज्ञान विचारे॥

तोमार प्रेम सुरा पाने करो मातोयारा।
ओ मा भक्त चित्तहरा डुबाओ प्रेमसागरे॥

तोमार ए पागला गारदे, केहो हासे केहो कांदे,
केहो नाचे आनन्द भरे।
ईसा मूसा श्री चैतन्य, ओ मा प्रेमेर भरे अचैतन्य,
हाय कबे होबो मा धन्य, (ओ मा) मिशे तार भितरे॥

स्वर्गेते पागलेर मेला, जेमन गुरु तेमनि चेला,
प्रेमेरखेला के बुझते पारे।
तुई प्रेमे उन्मादिनी, ओ मा पागलेर शिरोमणि,

प्रेमधने करो मा धनी, कांगाल प्रेमदासेरे ॥

[भावार्थ— ब्रह्ममयी माँ, मुझे पागल कर दो। ज्ञान-विचार का अब और काम नहीं है। अपनी प्रेम की सुरा-पान में मतवाला बना दो। अरी माँ, भक्त के चित्त को हरने वाली, मुझे प्रेम-सागर में डुबो दो। तुम्हारे इस पागलों के जेलखाने में कोई हँसता है, कोई रोता है, कोई आनन्द से गद्गद् हो कर नाचता है।

श्री ईसा, श्री मूसा, श्री चैतन्य, ओ माँ प्रेम से भर कर अचैतन्य हैं। हाय, तुम्हारे में मिलकर मैं कब धन्य होऊँगा? स्वर्ग में पागलों का मेला लगा हुआ है, जैसा गुरु है वैसे ही चेले हैं, प्रेम का खेल कौन समझ सकता है?

ओ माता, तुम प्रेम में उन्मादिनी हो, पागलों की शिरोमणि हो। हे माँ, मुझ कंगाल प्रेमदास को प्रेमधन से धनवान बना दो।]

श्रीरामकृष्ण— और वह भी 'चिदानन्द सिन्धुनीरे।'

नरेन्द्र गा रहे हैं—

चिदानन्द सिन्धुनीरे प्रेमानन्देर लहरी।
महाभाव रसलीला कि माधुरी मरि मरि॥
महायोगे समुदाय एकाकार होइलो।
देशकाल व्यवधान भेदाभेद घुचिलो॥
एखन आनन्दे मातिया दुबाहु तुलिया, बोल रे मन हरि हरि॥

[भावार्थ— चित्तरूपी आनन्द के समुद्र-जल में प्रेमानन्द की लहरें चल रही हैं। महाभाव की रसलीला की माधुरी में मैं मरा-मरा हो रहा हूँ। महायोग में समस्त समुदाय एकाकार हो गया है। देशकाल का व्यवधान (बाधा) और भेद-अभेद समाप्त हो गया है। अब आनन्द में मतवाला होकर दोनों बाहें उठाकर अरे मन! हरि, हरि बोल।]

श्रीरामकृष्ण *(नरेन्द्र के प्रति)*— और 'चिदाकाशे?'— नहीं, वह तो बड़ा लम्बा है, क्या नहीं? अच्छा, थोड़ा-सा आहिस्ते-आहिस्ते।

नरेन्द्र गा रहे हैं—

गान— चिदाकाशे होलो पूर्ण प्रेमचन्द्रोदय हे।
उथलिलो प्रेमसिन्धु कि आनन्दमय हे।
(जय दयामय, जय दयामय, जय दयामय)

चारिदिके झलमल करे भक्त ग्रहदल,
भक्तसंगे भक्तसखा लीलारसमय हे।
(जय दयामय, जय दयामय, जय दयामय)
स्वर्गेर दुयार खुलि, आनन्द-लहरी तुलि;
नवविधान बसन्त समीरण बय,
फूटे ताहे मन्द-मन्द लीलारस प्रेमगंध,
घ्राणे योगीवृन्द योगानन्दे मत्त होए हे।
(जय दयामय, जय दयामय, जय दयामय)
भवसिन्धु-जले, विधान-कमले, आनन्दमयी विराजे,
आवेशे आकुल, भक्त अलिकुल, पिये सुधा तार माझे।
देखो-देखो मायेर प्रसन्न वदन चित्त विनोदन भुवन-मोहन।
पदतले दले-दले साधुगण, नाचे गाय तारा होइये मगन;
किवा अपरूप आहा मरि मरि, जुड़ाइलो प्राण दरशन करि
प्रेमदासे बोले सबे पाये धरि, गाओ भाई मायेर जय॥

[भावार्थ—अरे, चिदाकाश में पूर्ण चन्द्रोदय हुआ है। उससे प्रेम-सिन्धु उथल-पुथल कर रहा है। अरे, यह कैसा आनन्दमय है! (जय दयामय, जय दयामय, जय दयामय।) चारों ओर भक्त रूपी ग्रह झिलमिलाते हैं। भक्तों के सखा (ईश्वर) भक्तों के संग लीला में रसमय हो रहे हैं। (जय दयामय, जय दयामय, जय दयामय।) स्वर्गद्वार खोल कर, आनन्द की लहरें उठाकर 'नवविधान' रूपी वसन्त-समीर बह रहा है और लीलारस की प्रेमगन्ध उससे फूट रही है जिससे योगीवृन्द योगानन्द में मत्त हुए हैं। (जय दयामय, जय दयामय, जय दयामय।) संसार-समुद्र के जल में, 'विधान' रूपी कमल पर आनन्दमयी विराजती हैं। आवेश में आकुल भक्त रूपी अलिकुल उसमें सुधापान कर रहे हैं। माँ का भुवनमोहन, चित्तविनोदन प्रसन्नवदन देखो, देखो! माँ के पदतले दल के दल साधुगण मग्न होकर नाचते हैं, गाते हैं। आहा! कितना अपरूप कि दर्शन पाकर जाय-जाय प्राण लौट आय। प्रेमदास सबके पाँव पकड़ कर बोलता है— 'गाओ भाई, माँ की जय'।]

श्रीरामकृष्ण— और वही— 'हरिरस मदिरा?'

नरेन्द्र— हरि-रस-मदिरा पिए मम मानस मातो रे।
एक बार लुटइ अवनीतल, हरि-हरि बोलि काँदो रे।
(गति कर कर बोले)।

गम्भीर निनादे हरिनामे गगन छाओ रे।
नाचो हरि बोले दुबाहु तुले, हरिनाम बिलाओ रे।
(लोकेर द्वारे-द्वारे)।
हरि प्रेमानन्दरसे अनुदिन भासो रे,
गाओ हरिनाम, होओ पूर्णकाम; नीच वासना नाशो रे॥

[भावार्थ— ऐ मेरे मानस (मन)! तू हरि-रस-मदिरा पीकर मस्त हो जा। एक बार धरती पर लोट-पोट होकर, हरि-हरि कहते हुए रो रे! (गति करो, गति करो कह-कहकर) हरि-नाम के गम्भीर निनाद (ध्वनि-गर्जन) को गगन में छा दो। दोनों बाहें उठाकर हरि बोलकर नाचो, और हरि-नाम वितरण करो (लोगों के द्वार-द्वार पर जाकर)। रात-दिन तुम हरि के प्रेमानन्द के रस में तैरो और हरि-नाम गाओ तथा पूर्णकाम हो जाओ, नीच वासना का नाश हो जाए।]

ठाकुर आखर दे रहे हैं—

प्रेमे मत्त होये हरि हरि बोलि काँद रे।
भावे मत्त होए, हरि-हरि बोलि काँद रे॥

[भावार्थ— हरिरस-मदिरा पीकर अरे मेरे मन, मस्त हो जा। धरती पर लोटकर हरि-हरि कहते हुए क्रन्दन कर। प्रेम में मस्त होकर हरि-हरि बोलकर रो। भाव में मस्त होकर हरि-हरि कहकर क्रन्दन कर।]

ठाकुर और भक्तगण थोड़ा विश्राम कर रहे हैं। नरेन्द्र धीरे-धीरे ठाकुर से कह रहे हैं— आप वही गाना एक बार गाएँगे?

श्रीरामकृष्ण कह रहे हैं— 'मेरा गला तो कुछ बैठ गया है।' कुछ क्षण पश्चात् ठाकुर फिर नरेन्द्र से कहते हैं— 'कौन सा?'

नरेन्द्र— 'भुवनरञ्जन रूप'।

ठाकुर आहिस्ते-आहिस्ते गा रहे हैं—

भुवनरञ्जन रूप नदे गौर के आनिलो रे (अलका आवृत्त मुख)
(मेघेर गाये बिजली) (आन हेरिते श्याम हेरि)

[भुवनरञ्जन रूप गौर को नदिया में कौन लाया है भाई? केश-लटों से मुख ढका हुआ है, मेघों में बिजली है। देखने के लिए

लाओ तो, तनिक श्याम (भगवान्) को देखूँ।]

ठाकुर और एक गाना गा रहे हैं—

श्यामेरे नागाल पेलुम ना लो सई।
आमि कि सुखे आर घरे रई॥
श्याम यदि मोर होतो माथार चूल।
यतन करे बांधतुम बेणी सई, दिये बकुल फूल॥
(केशव-केश यतने बांधतुम सई) (केउ नक्ते पारतो ना सई)
(श्याम कालो आर केश कालो) (कालोय कालोय मिशे जेतो गो।)
श्याम यदि मोर बेशर होइतो, नाशा माझे सतत रहितो,—
(अधर चांद अधरे र'त सई।) (जा हबार नय, ता मने होयगो)
(श्याम केनो बेशर होबे सई ?)।
श्याम यदि मोर कंकण होतो, बाहु माझे सतत रहितो।
(कंकण नाड़ा दिये चले जेतुम सई) (बाहु नाड़ा दिये)
(श्याम कंकण हाते दिये, चले जेतुम सई) (राजपथे)

[भावार्थ— श्याम की खोज नहीं मिली हे सखी! मैं क्या घर में खुशी से रह रही हूँ? श्याम यदि मेरे सिर के केश होते तो यत्न (प्यार) से हे सखी, मैं बकुल के फूल उसमें लगाकर वेणी बना लेती (केशव रूप केशों को यत्न से बाँध लेती, कोई देख भी नहीं सकता था। श्याम काले हैं और केश भी काले हैं। काले में काला मिल जाता री सखी!)

श्याम यदि मेरी नाक की बेसर (नथ) होते, नाक के बीच सतत रहते। अधर (होंठ) चाँद है, होठों में लाल रंग वही है। जो होने वाला नहीं है, मन में वही हो रहा है। श्याम क्यों बेसर होगा मेरी सखी?)

श्याम यदि मेरा कंगन होते तो सर्वदा बाँह में रहते। (अरी सखी, मैं कंगन हिलाते हुए जाती, बाँह झटकते हुए जाती। श्याम रूप कंगन हाथ में पहनकर राजपथ पर चली जाती)।]

द्वितीय परिच्छेद

(भावावस्था में अन्तर्दृष्टि— नरेन्द्रादि को निमन्त्रण)

गाना समाप्त हो गया। नरेन्द्र, भवनाथ आदि भक्तों के संग ठाकुर बातें कर रहे हैं। सहास्य कहते हैं,

"हाजरा नाचा था।"

नरेन्द्र *(सहास्य)*— जी हाँ, थोड़ा-थोड़ा।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— थोड़ा-थोड़ा!

नरेन्द्र *(सहास्य)*— तोंद और एक वस्तु नाची थी।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— वह तो अपने-आप ही हिलती-डुलती है, बिना हिलाए भी अपने-आप हिलती है। *(सब का हास्य)*।

शशधर जिस घर में हैं, उसी घर में ठाकुर का निमन्त्रण होने की बात हो रही है।

नरेन्द्र— घर वाला खिलाएगा?

श्रीरामकृष्ण— सुना है उसका स्वभाव अच्छा नहीं— लुच्चा है।

नरेन्द्र— जभी जिस दिन शशधर के साथ प्रथम मेल हुआ था— उसके छुए हुए जल के गिलास से आपने जल नहीं पिया था। आपने कैसे जाना कि व्यक्ति का स्वभाव भला नहीं है।

(पूर्वकथा— सिहोड़ में हृदय के घर में हाजरा और वैष्णव के संग में)

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— हाजरा और एक को जानता है,— उस गाँव में— सिहोड़ में— हृदय के घर में।

हाजरा— वह एक वैष्णव है— मेरे साथ दर्शन करने गया था। ज्योंहि वह जाकर बैठा, त्योंहि (आप) उसकी ओर पीठ फेर कर बैठ गए।

श्रीरामकृष्ण— (मौसी) के साथ खराब था,— पीछे सुना। *(नरेन्द्र के प्रति)* पहले तू कहता था मेरी अवस्था तो सब मन की भूल (hallucination) है।

नरेन्द्र— कौन जाने! अब तो बहुत देख लिया है,— सब मिलता है!

नरेन्द्र कह रहे हैं, ठाकुर भावावस्था में व्यक्ति का अन्तर-बाहर समस्त देख पाते हैं— इस बात को उन्होंने अनेक बार मिलाकर देख लिया है।

(ठाकुर श्रीरामकृष्ण और भक्त का जाति-विचार— caste)

ठाकुर और भक्तों की सेवा के लिए अधर ने बहुत आयोजन किया है। वे अब उन लोगों को बुला रहे हैं।

महेन्द्र और प्रियनाथ, दो मुखर्जी भाइयों से ठाकुर कह रहे हैं, 'क्यों जी, तुम लोग खाने के लिए नहीं जाओगे?'

वे विनीत भाव से कह रहे हैं— 'जी, हमें रहने दें।'

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— ये लोग सब ही तो कर रहे हैं, केवल इतने में ही संकोच!

"किसी के ससुर और जेठ का नाम हरि और कृष्ण था। अब हरि नाम तो करना ही होगा।— किन्तु 'हरे कृष्ण' कहना नहीं है। इसलिए वह जप करती है—

फरे फृष्ट फरे फृष्ट, फृष्ट फृष्ट फरे फरे।
फरे राम फरे राम, राम राम फरे फरे॥"

अधर जाति के सुवर्णवणिक् हैं। जभी ब्राह्मण भक्त कोई उनके घर में प्रथम-प्रथम आहार करते हुए इतस्तत: (इधर-उधर, टालमटोल) करते थे। कुछ दिन पश्चात् जब उन्होंने देख लिया, स्वयं ठाकुर श्रीरामकृष्ण वहाँ पर खाते हैं, तब उनका वहम टूटा।

रात के प्राय: नौ बज गए हैं। नरेन्द्र, भवनाथ आदि भक्तों के संग ठाकुर ने आनन्द से भोजन ग्रहण किया।

अब बैठक में आकर विश्राम कर रहे हैं— दक्षिणेश्वर लौटने की तैयारी हो रही है।

आगामी कल रविवार को दक्षिणेश्वर में ठाकुर के आनन्द के लिए मुखर्जी भाइयों ने कीर्त्तन का आयोजन किया है। श्यामदास कीर्त्तनिया गाना गाएँगे। श्यामदास के पास राम अपने घर में कीर्त्तन सीखते हैं।

ठाकुर नरेन्द्र को कल दक्षिणेश्वर जाने के लिए कह रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण *(नरेन्द्र के प्रति)*— कल जाएगा— क्यों?

नरेन्द्र— अच्छा, चेष्टा करूँगा।

श्रीरामकृष्ण— वहाँ चाहे तो खाना न खाना।

''ये भी (मास्टर) जाकर चाहे न खावें। *(मास्टर के प्रति)*— तुम्हारा असुख अब ठीक हो गया?— अब पथ्य तो नहीं लेते?''

मास्टर— जी नहीं— मैं भी जाऊँगा।

नित्यगोपाल वृन्दावन में हैं। चुनीलाल कई दिन हुए वृन्दावन से लौट आए हैं। ठाकुर उनसे नित्यगोपाल का संवाद ले रहे हैं। ठाकुर दक्षिणेश्वर जाएँगे। मास्टर ने भूमिष्ठ होकर उनके श्री पादपद्मों में मस्तक के द्वारा स्पर्श करके प्रणाम किया।

ठाकुर सस्नेह उनसे कह रहे हैं, ''तो फिर जाना।''

(नरेन्द्रादि के प्रति, सस्नेह)— ''नरेन्द्र, भवनाथ, जाइयो।''

नरेन्द्र, भवनाथ आदि भक्तों ने उन्हें भूमिष्ठ होकर प्रणाम किया। उनके अपूर्व कीर्त्तनानन्द और कीर्त्तन में भक्तों के संग अपूर्व नृत्य स्मरण करते-करते सब अपने-अपने गृहों को लौटे।

आज है भाद्र की कृष्णाप्रतिपदा। रात्रि ज्योत्स्नामयी— जैसे हँस रही है। ठाकुर श्रीरामकृष्ण भवनाथ, हाजरा आदि भक्तों के संग गाड़ी में दक्षिणेश्वर की ओर जा रहे हैं।

अष्टादश खण्ड

ठाकुर श्रीरामकृष्ण दक्षिणेश्वर-मन्दिर में राम, बाबूराम, मास्टर, चुनी, अधर, भवनाथ, निरञ्जन आदि भक्तों के संग

प्रथम परिच्छेद

(श्रीमुख-कथित चरितामृत— घोषपाड़ा और कर्ताभजाओं का मत)

ठाकुर श्रीरामकृष्ण दक्षिणेश्वर-मन्दिर में उसी कमरे में अपने आसन पर छोटी खाट पर भक्तों के संग बैठे हुए हैं। समय ग्यारह का होगा, अभी तक उनकी सेवा (भोजन) नहीं हुई।

गत कल शनिवार को ठाकुर ने श्रीयुक्त अधरसेन के घर में भक्तों के संग में शुभागमन किया था। हरिनाम-कीर्त्तन-महोत्सव करके सब का धन्यवाद किया था। आज यहाँ पर श्यामदास का कीर्त्तन होगा। ठाकुर का कीर्त्तनानन्द देखने के लिए अनेक भक्तों का समागम हो रहा है।

प्रथम बाबूराम, मास्टर, श्रीरामपुर के ब्राह्मण, मनोमोहन, भवनाथ, किशोरी; तत्पश्चात् चुनीलाल, हरिपद आदि; क्रमशः मुखर्जी दोनों भाई, राम, सुरेन्द्र, तारक, अधर, निरञ्जन आए। लाटु, हरीश और हाजरा आजकल दक्षिणेश्वर में ही रहते हैं। श्रीयुक्त रामलाल माँ काली की सेवा करते हैं और ठाकुर की देखरेख करते हैं। श्रीयुक्त राम चक्रवर्ती विष्णु-मन्दिर की सेवा करते हैं। वे भी बीच-बीच में आकर ठाकुर की देखरेख करते हैं। लाटु, हरीश ठाकुर की सेवा करते हैं। आज रविवार है, भाद्रकृष्णा

द्वितीया तिथि, 7 सितम्बर, 1884; 23वाँ भाद्र, 1291 (बंगला) साल।

मास्टर के आकर प्रणाम कर लेने के बाद ठाकुर बोले— ''क्या नरेन्द्र नहीं आया?''

नरेन्द्र उस दिन नहीं आ पाए। श्रीरामपुर के ब्राह्मण रामप्रसाद के गानों की पुस्तक लाए हैं और उसी पुस्तक में से बीच-बीच में गाना पढ़कर ठाकुर को सुना रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण *(ब्राह्मण के प्रति)*— भाई, पढ़ते क्यों नहीं?

ब्राह्मण— 'बसन परो, माँ बसन परो, माँ बसन परो।' (वस्त्र पहनो माँ)।

श्रीरामकृष्ण— ऐसे गाने रहने दो, बिल्कुल कोरा! ऐसे पढ़ो जिस से भक्ति हो।

ब्राह्मण— के जाने काली केमन षड्दर्शन न पाए दर्शन।*

[कौन जानता है कि काली कैसी हैं, छह दर्शनों ने भी उनका दर्शन नहीं पाया।]

(ठाकुर की 'दरदी'— परमहंस, बाउल और साँई)

श्रीरामकृष्ण *(मास्टर के प्रति)*— कल अधरसेन के घर भावावस्था में एक तरफ के पैर में दर्द हो गया था। इसीलिए तो बाबूराम को ले जाता हूँ। दरदी (सहृदय है)!

यह कहकर ठाकुर गाना गा रहे हैं—

मनेर कथा कइबो कि सइ कइते माना।
दरदी नइले प्राण बाँचे ना॥

मनेर मानुष होय जे जना,
नयने तार जाय गो चेना,
से दु एक जना; से जे रसे भासे प्रेमे डोबे,
कच्छे रसेर बेचा केना। (भावेर मानुष)
मनेर मानुष, मिलबे कोथा, बगले तार छेंड़ा काँथा;
ओ से कयना गो कथा;
भावेर मानुष उजान पथे, करे आनागोना।
(मनेर मानुष, उजान पथे करे आनागोना)।

* परिशिष्ट-2 में पूरा गाना है।

[भावार्थ— मन की बात क्यों कहूँ री सखी! बात कहनी मना है। दरदी बिना मिले प्राण नहीं बचता। जो मन का मनुष्य होता है, वह उसके नयनों द्वारा पहचाना जाता है। वैसे तो दो-एक जन ही होते हैं जो प्रेम-रस में तैरते-डूबते रहते हैं। कहते हैं रस को बेचना क्यों? (भाव का मनुष्य) मन का मनुष्य मिलेगा कहाँ, उसकी बगल में फटा चिथड़ा रहता है। वह बातें नहीं करता। भाव वाला मनुष्य उजान पथ पर (ऊँचाई की ओर) आना-जाना करता है। मन का मनुष्य उजान पथ पर ही आना-जाना करता है)।]

बाउलों के ऐसे ही गाने होते हैं। फिर और भी है—

दरवेश दाँड़ारे, साधेर करोया धारी,
दाँड़ारे तोर रूप नेहारी!

[अरे करवे वाले (कमण्डलधारी) दरवेश (फकीर)! ठहर जा, तनिक खड़ा रह, तेरा रूप निहार लूँ!]

''शाक्तमत के सिद्ध को कौल कहते हैं। वेदान्तमत में कहते हैं परमहंस। बाउल वैष्णवों के मत में साँई। 'साँइयेर पर आर नाइ!' (साँई के पश्चात् और नहीं है!)

''बाउल सिद्ध हो जाने पर साँई हो जाता है। तब सब अभेद। अर्धेक माला गो-हाड़ की, अर्धेक माला तुलसी की।

''हिन्दु का नीर— मुसलमान का पीर।''

(अलख, हवा की खबर, पैठे (चक्र), रस का काज, खोला नामा)

''साँइगण कहते हैं— अलख! अलख! वेदमत में कहते हैं ब्रह्म; वे कहते हैं अलख। जीवों के लिए कहते हैं— अलख से आता है, अलख में जाता है; अर्थात् जीवात्मा अव्यक्त से आता है, उसी में लय हो जाता है!

''वे कहते हैं, हवा की खबर जानते हो?

''अर्थात् कुलकुण्डलिनी का जागरण होने पर इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना— इनके भीतर से जो महावायु चढ़ती है, उसकी खबर है!

''पूछता है, किस पैठे में हो?— छटा पइठे— षड्चक्र।

''यदि कहता है पञ्चम में है, उसका अर्थ है विशुद्ध चक्र में मन चढ़ गया है।''

(मास्टर के प्रति)— ''तब निराकार-दर्शन। जैसे गाने में है।''

यह बोलकर ठाकुर कुछ सुर करके कहते हैं— 'तदूर्ध्वेते आछे मागो अम्बुजे आकाश। से आकाश रुद्ध होले सकलि आकाश।'

[उसके ऊपर है माँ, कमल में आकाश रूप। उस आकाश के रुद्ध हो जाने पर सब ही आकाश रहता है।]

(पूर्वकथा— बाउल और घोषपाड़ा के कर्ताभजाओं का आगमन)

''एक बाउल आया था। उससे मैंने कहा, 'तुम्हारा रस का कार्य सब हो गया है?— खोला उतर आया है?' रस को जितनी आग की आँच देगा, उतना ही रस रिफाइन (शुद्ध) होगा। प्रथम गन्ने का रस— फिर गुड़— उसके पश्चात् शरबत— तब फिर चीनी— फिर मिश्री— आला (चीनी का लड्डू), यह सब। क्रमश: और भी रिफाइन (शुद्ध) होता है।

''खोला कब उतरेगा? अर्थात् साधन शेष कब होगा?— जब इन्द्रियाँ जय हो जाएँगी— जैसे जोंक के ऊपर चूना लगाने से जोंक अपने आप झड़कर गिर जाएगी— इन्द्रियाँ उसी प्रकार शिथिल हो जाएँगी। रमणीर संगे थाके न करे रमण (रमणी के संग रहकर रमण नहीं।)

''वे अनेक लोग राधातन्त्र के मत से चलते हैं। पञ्चतत्त्वों को लेकर साधन करते हैं। पृथ्वी-तत्त्व, जल-तत्त्व, अग्नि-तत्त्व, वायु-तत्त्व, आकाश-तत्त्व— मल, मूत्र, रज, बीज (वीर्य) इत्यादि तत्त्वों के द्वारा। यह साधन बड़ा गंदा साधन है; जैसे पायखाने के भीतर से घर के मध्य प्रवेश करना!

''एक दिन मैं दालान में खा रहा था। एक घोषपाड़ा के मत का व्यक्ति आ गया। आकर कहता है, 'तुम खा रहे हो, या किसी को खिला रहे हो?' अर्थात् जो सिद्ध हो जाता है; वह देखता है कि अन्तर में भगवान हैं।

''जो इस मत में सिद्ध हो जाते हैं, वे अन्य मत के व्यक्ति को 'जीव'

कहते हैं। विजातीय व्यक्ति की उपस्थिति में बातें नहीं करेंगे। कहते हैं,— यहाँ पर 'जीव' है।''

(पूर्वकथा— जन्मभूमि-दर्शन; सरी पाथर की बाड़ी में हृदु के संग)

''उस गाँव में इस मत के एक जन को देखा है। वह सरी (सरस्वती) पाथर— स्त्री है। इस मत के लोग परस्पर के घरों में खाते हैं, किन्तु अन्य मत के लोगों के घर में नहीं खाते। मल्लिकों ने सरी पाथर के घर में जाकर खाया, किन्तु हृदय के घर में नहीं खाया। कहते हैं, वे लोग 'जीव' हैं। *(हास्य)*।

''मैं एक दिन उसके घर में हृदय के संग टहलते हुए चला गया था। सुन्दर तुलसी-वन बनाया हुआ था। उड़द की दाल, मुरमुरा दिया; थोड़ा-सा खाया। हृदय ने बहुत खा लिया,— फिर असुख हुआ!

''वे सिद्धावस्था को सहजावस्था कहते हैं। एक श्रेणी के लोग हैं, वे 'सहज' 'सहज' करके चिल्लाते हैं। सहजावस्था के दो लक्षण कहते हैं। प्रथम— कृष्णगंध शरीर पर नहीं रहेगी। दूसरी— पद्म के ऊपर भौंरा बैठेगा, किन्तु मधु-पान नहीं करेगा। 'कृष्णगंध' नहीं,— इसका अर्थ है ईश्वर का भाव समस्त अन्तर में (होगा),— बाहर कोई चिह्न नहीं,— हरिनाम तक भी मुख में नहीं। और दूसरे का अर्थ है, कामिनी में आसक्ति नहीं— जितेन्द्रिय।

''वे ठाकुर-पूजा, प्रतिमा-पूजा इत्यादि लाइक (पसन्द) नहीं करते; जीवन्त मनुष्य चाहते हैं। जभी तो उनकी एक श्रेणी के लोगों को कर्ताभजा कहते हैं, अर्थात् जो कर्ता को— गुरु को— ईश्वर-ज्ञान में भजते हैं,— पूजा करते हैं।''

द्वितीय परिच्छेद

(श्रीरामकृष्ण और सर्वधर्म-समन्वय)

(Why all scriptures— all religions are true)

श्रीरामकृष्ण— देखते हो, कितने प्रकार के मत हैं! मत, पथ। अनन्त मत, अनन्त पथ!

भवनाथ— तब उपाय क्या है?

श्रीरामकृष्ण— एक को कस कर पकड़ना पड़ता है। छत पर जाना हो तो पक्की सीढ़ियों से चढ़ा जाता है, एक बाँस की सीढ़ी से चढ़ा जाता है, रस्सी की सीढ़ी से चढ़ा जाता है; एक टुकड़ा रस्सी से, एक टुकड़े बाँस से चढ़ा जाता है। किन्तु इस पर थोड़ा-सा पाँव, उस पर थोड़ा-सा पाँव देने से नहीं होता। एक को दृढ़ता से पकड़ना पड़ता है। ईश्वर-लाभ करना हो तो एक पथ जोर करके पकड़ना चाहिए।

"और सब मतों को एक-एक पथ मानकर जानेगा। मेरा ठीक पथ है, और सबका मिथ्या है, इस प्रकार का बोध नहीं होना चाहिए। विद्वेष भाव नहीं होना चाहिए।"

('मैं किस पथ का हूँ?' केशव, शशधर और विजय का मत)

"अच्छा, मैं किस पथ का हूँ? केशवसेन कहता था, आप हमारे ही मत के हैं,— निराकार में आ रहे हैं। शशधर कहता,— ये हमारे हैं। विजय (गोस्वामी) भी कहता, ये हमारे मत के व्यक्ति हैं।"

ठाकुर क्या यह बतला रहे हैं कि मैं सब पथों द्वारा ही भगवान के निकट पहुँच चुका हूँ— इसीलिए सब पथों की खबर जानता हूँ? और सकल धर्मों के लोग मेरे पास आकर शान्ति पाएँगे?

ठाकुर पञ्चवटी की ओर मास्टर आदि दो एक भक्तों के संग जा रहे हैं— मुख धोएँगे। समय बारह, अब बाढ़ आएगी— यह सुनकर ठाकुर पञ्चवटी के पथ पर थोड़ी-सी प्रतीक्षा करते हैं।

(भाव, महाभाव का गूढ़ तत्त्व— गंगा का ज्वार-भाटा दर्शन)

भक्तों से कह रहे हैं— "ज्वार-भाटा कैसा आश्चर्य है!

"किन्तु एक (बात) देखो,— समुद्र के निकट नदी के भीतर ज्वार-भाटा है। समुद्र से बहुत दूर होने पर एक जैसा हो जाता है। इसका क्या अर्थ है?— यही भाव आरोप करो। जो ईश्वर के खूब निकट हैं, उनके भीतर ही भक्ति, भाव इत्यादि होते हैं, और दो-एक जन को (ईश्वरकोटियों को) महाभाव, प्रेम— इत्यादि होते हैं।"

(मास्टर के प्रति)— "अच्छा, ज्वार-भाटा क्यों होता है?"

मास्टर— अंग्रेज़ी ज्योतिष शास्त्र में कहते हैं कि सूर्य और चन्द्र के आकर्षण से ऐसा होता है।

यह कह कर मास्टर धरती पर रेखाएँ खींचकर पृथ्वी, चन्द्र और सूर्य की गति दिखा रहे हैं। ठाकुर थोड़ा-सा देखकर ही कह रहे हैं—

"रहने दे, इससे मेरा माथा झन्-झन् करता है!"

बात करते-करते बाढ़ की आवाज़ आने लगी। देखते-देखते जल के बढ़ने का शब्द होने लगा। ठाकुर-मन्दिर की तट-भूमि को आघात करते-करते बाढ़ उत्तर की ओर चली गई।

ठाकुर एक दृष्टि से देख रहे हैं। दूर नौका को देखकर बालक की न्यायीं कह उठे—

"देखो, देखो, उस नौका का फिर क्या होता है!"

ठाकुर मास्टर के साथ बातें करते-करते पञ्चवटी-मूल में आ गए। एक छतरी साथ है, उसे पञ्चवटी के चबूतरे पर रख दिया।

नारायण को साक्षात् नारायण की भाँति देखते हैं, इसीलिए बहुत प्यार करते हैं। नारा'ण स्कूल में पढ़ता है, अब उसकी ही बात कह रहे हैं।

(मास्टर को शिक्षा, रुपये का सद्‌व्यवहार— नारायण के लिए चिन्ता)

श्रीरामकृष्ण *(मास्टर के प्रति)*— नारा'ण का कैसा स्वभाव है, देखा है? सबके संग मिल सकता है— लड़के, बूढ़े, सबके साथ! विशेष शक्ति बिना हुए ऐसा नहीं होता। और सब ही उसको पसन्द करते हैं। अच्छा, वह क्या ठीक सरल है?

मास्टर— जी, खूब सरल लगता है।

श्रीरामकृष्ण— तुम्हारे वहाँ पर क्या जाता है?

मास्टर— जी, दो-एक बार गया था।

श्रीरामकृष्ण— एक रुपया तुम उसको दोगे? या काली को कहूँ?

मास्टर— जी, बहुत अच्छा, मैं ही दे दूँगा।

श्रीरामकृष्ण— अच्छा है; ईश्वर पर जिन्हें अनुराग है, उन्हें देना भला (अच्छा) है। रुपये का सद्‌व्यवहार होता है। सारा संसार में देने से क्या होगा?

''किशोरी के लड़के-बच्चे हो गए हैं। कम वेतन है— चलता नहीं।''

ठाकुर मास्टर से कह रहे हैं,—

''नारा'ण कह रहा था, किशोरी को किसी कार्य में लगवा देगा। नारा'ण को एक बार याद करवा दिओ।''

मास्टर पञ्चवटी में खड़े हैं। ठाकुर कुछ क्षण पश्चात् झाउतले से लौट आए। मास्टर से कह रहे हैं,— ''बाहर एक मादुर बिछाने के लिए कह दो तो। मैं कुछ देर बाद आ रहा हूँ,— थोड़ा लेटूँगा।''

ठाकुर कमरे में पहुँचकर कहते हैं—

''तुम लोगों को किसी को भी छाता लाना याद नहीं है। *(सब का हास्य)*। चञ्चल, जल्दबाज व्यक्ति के पास ही वस्तु हो तो भी दिखती नहीं। एक व्यक्ति किसी के घर में (तम्बाकू सुलगाने की) टिकिया लेने गया, किन्तु हाथ में लालटेन जल रही है!

''एक जन अँगोछा खोजते-खोजते फिर देखता है कि कन्धे पर ही है!''

(ठाकुर की मध्याह्न-सेवा और बाबूराम आदि सांगोपांग)

ठाकुर के लिए माँ काली का अन्न-प्रसाद लाया गया। ठाकुर सेवा (प्रसाद ग्रहण) करेंगे। समय है प्राय: एक। वे आहार के पश्चात् थोड़ा विश्राम करेंगे। भक्तगण तब भी सब कमरे में बैठे हुए हैं। समझाकर कहने पर बाहर जाकर बैठे। हरीश, निरञ्जन, हरिपद भोजन-घर में जाकर प्रसाद पाएँगे। ठाकुर हरीश से कह रहे हैं, अपने लिए आमसत्त्व (अमावट) ले जा।

ठाकुर थोड़ा विश्राम कर रहे हैं। बाबूराम को कहते हैं,— बाबूराम, ज़रा (मेरे) पास आएगा? बाबूराम ने कहा, मैं पान बना रहा हूँ।

श्रीरामकृष्ण कह रहे हैं— छोड़ दे पान बनाना।

ठाकुर विश्राम कर रहे हैं। इधर बकुलतले और पञ्चवटीतले कई भक्त बैठे हुए हैं,— मुखर्जी हर, चुनीलाल, हरिपद, भवनाथ, तारक। तारक श्री वृन्दावन से अभी लौटे हैं। भक्तगण उनसे वृन्दावन की बातें सुन रहे हैं। तारक नित्यगोपाल के साथ इतने दिन वृन्दावन में थे।

तृतीय परिच्छेद

(भक्तों के संग में संकीर्त्तनानन्द में— भक्तों के संग में नृत्य)

ठाकुर ने कुछ विश्राम किया है। श्यामदास माथुर सम्प्रदाय को लेकर कीर्त्तन गा रहे हैं— नाथ दरशसुखे इत्यादि। कीर्त्तनिये गा रहे हैं—

'नाथ दरशसुखे' इत्यादि—

"सुखमय सायर, मरुभूमि भेलो।
जलद नेहारइ, चातकी मरि गेलो।"

[रेगिस्तान का सुखमय सागर बनावटी है। बादल को देखते हुए चातकी मर गई है।]

श्रीमती की ऐसी विरह-दशा सुनकर ठाकुर भावाविष्ट हो रहे हैं। वे छोटी खाट के ऊपर अपने आसन पर हैं। बाबूराम, निरञ्जन, राम,

मनोमोहन, मास्टर, सुरेन्द्र, भवनाथ आदि भक्तगण फर्श पर बैठे हुए हैं। किन्तु गाना भली प्रकार जम नहीं रहा है।

कोन्नगर के नबाई चैतन्य को ठाकुर ने कीर्त्तन करने के लिए कहा। नबाई मनोमोहन के चाचा हैं। पैन्शन लेकर कोन्नगर के गंगातीर पर भजन-साधन करते हैं। प्रायः ठाकुर का दर्शन करने आते हैं।

नबाई उच्च संकीर्त्तन कर रहे हैं। ठाकुर आसन त्याग करके नृत्य करने लगे। तभी नबाई और भक्तगण उनको घेरकर नृत्य और कीर्त्तन करने लगे। कीर्त्तन सुन्दर जम गया। महिमाचरण तक ठाकुर के संग में नृत्य कर रहे हैं।

कीर्त्तनान्ते ठाकुर अपने आसन पर बैठ गए। हरि-नाम के पश्चात् अब आनन्दमयी माँ का नाम कर रहे हैं। ठाकुर भाव में मस्त होकर माँ का नाम कर रहे हैं। नाम करने के समय ऊर्ध्वदृष्टि है।

गान— गो आनन्दमयी होये माँ आमाय निरानन्द करो ना।
ओ माँ ओ दूटि चरण बिने आमार मन, अन्य किछु आर जाने ना॥
तपन-तनय आमाय मन्द कय कि बोलिबो ताय बोलो ना।
भवानी बोलिये भवे जाबो चले, मने छिलो एई बासना।
अकूल पाथारे डुबाबि आमारे (ओ माँ) स्वपनेओ तातो जानि ना॥
आमि अहर्निशि श्रीदुर्गा नामे भासि, तबु दुःख राशि गेलो ना।
एबार यदि मरि ओ हरसुन्दरी तोर दुर्गानाम आर केओ लोबे ना।

[भावार्थ— ओ माँ, आनन्दमयी होकर आप मुझे निरानन्द मत करो। तुम्हारे दो चरणों के बिना मेरा मन और कुछ नहीं जानता। तपन-तनय (यमराज) मुझे बुरा कहता है। मैं उसे क्या कहूँ, आप बता दो। मन में मेरे तो यही वासना थी कि भवानी कहते हुए मैं संसार, भव-सागर में चलता चलूँगा। आप मुझे अकूल/अथाह समुद्र में डुबो देंगी— ऐसा तो माँ स्वप्न में भी नहीं जानता था। मैं रात-दिन श्रीदुर्गा-नाम में तैर रहा हूँ, तब भी दुःख-राशि नहीं गई। अब की बार यदि मैं मरता हूँ तो हे हरसुन्दरी! तेरा दुर्गा नाम फिर कोई नहीं लेगा।]

गान— भाविले भावेर उदय होय।
जेमन भाव, तेमनि लाभ, मूल से प्रत्यय।
जे जन कालीर भक्त जीवन्मुक्त नित्यानन्दमय॥

काली पद सुधाह्रदे चित्त जदि रय।
पूजा होम जप बलि किछुइ किछु नय॥

[भावार्थ— चिन्तन से 'भाव' का उदय होता है। अरे जैसा भाव, वैसा लाभ, मूल है वही प्रत्यय (विश्वास)। जो काली के भक्त हैं, वे जीवन्मुक्त हैं और नित्य आनन्द में रहते हैं। काली-चरण रूपी सुधा-सरोवर में चित्त यदि रमे (यदि चित्त डूबा रहे) तो पूजा-होम-जप-बलि— ये कुछ भी नहीं हैं।]

गान— तोदेर ख्यापार हाट बाजार मा (तारा)।
कबो गुणेर कथा कारो माँ तोदेर॥
गज बिने गो आरोहणे फिरिस कदाचार।
मणि-मुक्ता फेले परिस् गले नरशिर हार॥
श्मशाने-मशाने फिरिस् कारो बा धारिस् धार।
रामप्रसादके भवघोरे करते हबे पार॥

[भवार्थ— हे माँ तारा, तेरा तो पागलों का हाट बाजार है। तेरे गुणों की बातें मैं किससे कहूँ? हाथी की सवारी छोड़कर तुम बैल के ऊपर चढ़कर दुराचारी की तरह फिरती रहती हो। मणि-मुक्ताएँ फेंककर गले में नरशिर-हार (मुण्डमाला) पहनती हो। श्मशान-मशान में फिरती रहती हो, किसी की परवाह नहीं करती। रामप्रसाद कहते हैं— मुझे भवचक्र से पार करना होगा।]

गान— गया-गंगा प्रभासादि काशी-कांची केबा चाय।
काली काली बोले आमार अजपा यदि फुराय॥
त्रिसन्ध्या जे बोले काली, पूजा सन्ध्या से कि चाय।
सन्ध्या तार सन्धाने फिरे कभु संधि नाहि पाय॥
दया व्रत दान आदि आर किछु ना मने लय।
मदनेर यागयज्ञ ब्रह्ममयीर रांगा पाय॥
काली नामेर एतो गुण केबा जानते पारे ताय।
देवादिदेव महादेव जार पंचमुखे गुण गाय॥

[भावार्थ— काली-नाम निरंतर लेता हुआ यदि मेरा शरीर छूट जाए तो काशी, कांची, प्रभास, गया, गंगा आदि की कोई चाह नहीं होती। जो व्यक्ति त्रिसन्ध्या काली का नाम लेता रहता है, उसको सन्ध्या-वन्दना की चाह नहीं रहती। स्वयं

सन्ध्या उस व्यक्ति की तलाश में रहती है, पर कभी भी मिलने का अवसर नहीं पाती, क्योंकि नाम से वह कभी खाली नहीं रहता। जप, यज्ञ, पूजा, हवन आदि में उसकी रुचि नहीं रहती। मदन (कवि) का यागयज्ञ तो सब ब्रह्ममयी के रक्त चरण ही हैं। जिस काली-नाम का गुणगान स्वयं देवादिदेव महादेव पाँच मुखों से किया करते हैं, उस नाम का रहस्य भला कौन जान सकता है ?]

गान— आपनाते आपनि थेको मन, जेयो नाको कारू घरे।
जा चाबि ता बोसे पाबि, खोंजो निज अन्तः पुरे।
परम धन ओई परशमणि, जा चाबि ता दिते पारे।
कतो मणि पड़े आछे, चिन्तामणिर नाच दुयारे॥

[भावार्थ— अरे मन, तुम अपने में आप स्वयं रहो, किसी और के घर में मत जाओ। अपना अन्तःपुर (भीतर) खोजो। जो चाहोगे, सब वहाँ पर ही मिल जाएगा। अरे भाई, परम धन तो वही स्वयं पारस मणि हैं। जो चाहोगे, वही वे दे सकते हैं। उन चिन्तामणि के द्वार पर तो ढेरों ही मणि पड़े हुए हैं।]

गान— मजलो आमार मन-भ्रमरा श्यामापद नीलकमले।
श्यामापद नीलकमले, कालीपद नीलकमले!
यतो विषय मधु तुच्छ होलो कामादि कुसुम सकले॥
चरण कालो भ्रमर कालो, कालय कालो मिशे गेलो।
पंच तत्त्व, प्रधान मत्त, रंग देखे भंग दिलो॥
कमलाकान्तेर मने, आशापूर्ण ऐतोदिने।
तार सुख-दुःख समान होलो आनन्द-सागर उथले॥

[भावार्थ— श्यामा के नीलकमल जैसे चरणों में, काली के चरणों में मेरा मन-भ्रमर रम गया। संसार की कामना, वासना आदि पुष्पों का विषयरूपी मधु अब तुच्छ प्रतीत हो रहा है। काली के काले चरणों में मनरूपी काले भौंरे के बैठने से दोनों काले मिलकर एक हो गए, और भुलाने वाली पाँच तत्त्व रूपी अविद्या माया इस तमाशे को देखकर भाग गई। कमलाकान्त (कवि) के मन की आशाएँ इतने दिनों बाद आज पूर्ण हुईं। आनन्द-समुद्र में उथल-पुथल होने से सुख-दुःख समान हो गए।]

गान— यतने हृदये रेखो आदरिणी श्यामा मा के,
मन तुई देख, आर आमि देखि, आर जेनो केउ नाहि देखे।

कामादिरे दिये फाँकि, आय मन विरले देखि,
रसनारे संगे राखि, शे जेनो मा बोले डाके।
(माझे माझे शे जेनो मा बोले डाके)
कुरुचि कुमंत्री जतो, निकट होते दिओ नाको,
ज्ञान नयने प्रहरी रेखो, शे जेनो सावधाने थाके।
(खूब जेनो सावधाने थाके)॥

[भावार्थ— आदरिणी श्यामा माँ को बड़े यत्न से हृदय में रखो। हे मन, तू देख और मैं देखूँ और कोई उसे जैसे न देख पावे। काम आदि को चकमा देकर हे मन! आ चल, अकेले में देखूँ। रसना को संग में रखूँगा, ताकि वह माँ-माँ कह कर पुकारती रहे। (बीच-बीच में वह जैसे माँ-माँ कहकर पुकारती रहे।) अरे मन, कुरुचि आदि जितने बुरे मन्त्री हैं, उन्हें निकट न आने देना। ज्ञान-नयनों को पहरेदार रखो ताकि वे सावधान रहें।]

ठाकुर इस गाने को गाते-गाते खड़े हो गए। माँ के प्रेम में उन्मत्तप्राय हैं! 'आदरिणी श्यामा माँ को हृदय में रखो' यह बात जैसे भक्तों के लिए बार-बार बोल रहे हैं।

ठाकुर इस समय मानो सुरापान में मस्त हो गए हैं। नाचते-नाचते फिर और गा रहे हैं—

गान— माँ कि आमार कालो रे!
कालो रूपे दिगम्बरी, हृदिपद्म करे आलो रे!

[मेरी माँ क्या काली हैं भाई? वे काले रूप में दिगम्बरी होकर हृदय-कमल को आलोकित कर रही हैं।]

ठाकुर गाते-गाते बहुत डगमगा रहे हैं, देखकर निरञ्जन उनको पकड़ने के लिए गए। ठाकुर ने मृदु स्वर में ''ज्याई! शाला छूँसने'' (हट साले, छू मत) कहकर मना कर रहे हैं। ठाकुर नाच रहे हैं, देखकर भक्त खड़े हो गए। ठाकुर मास्टर का हाथ पकड़कर कह रहे हैं— ''ज्याई शाला नाच'' (जा साले नाच!)

(वेदान्तवादी महिमा का प्रभुसंग, संकीर्त्तन में नृत्य और ठाकुर का आनन्द)

ठाकुर अपने आसन पर बैठे हुए हैं। भाव में गर्गर (पूरे भरकर) मतवाले हैं।

भाव कुछ उपशम होने पर कह रहे हैं— ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ काली! और फिर कह रहे हैं, तम्बाकू पिऊँगा। भक्तों में से अनेक ही खड़े हुए हैं। महिमाचरण खड़े हुए ठाकुर को पंखा झल रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण *(महिमा के प्रति)*— आप लोग बैठ जाइए।

"आप वेद में से थोड़ा-सा कुछ सुनाओ।"

महिमाचरण आवृत्ति कर रहे हैं— 'जय जज्वमान' इत्यादि।

और फिर महानिर्वाणतन्त्र में से स्तव आवृत्ति कर रहे हैं—

ॐ नमस्ते सते ते जगत्कारणाय, नमस्ते चिते सर्वलोकाश्रयाय।
नमोऽद्वैततत्त्वाय मुक्तिप्रदाय, नमो ब्रह्मणे व्यापिने शाश्वताय॥
त्वमेकं शरण्यं त्वमेकं वरेण्यं, त्वमेकं जगत्कारणं विश्वरूपम्।
त्वमेकं जगत्कर्त्तृपातृप्रहर्त्तृ, त्वमेकं परं निष्कलं निर्विकल्पम्॥
भयानां भयं भीषणं भीषणानां, गतिः प्राणिनां पावनं पावनानाम्।
महोच्चैः पदानां नियन्तृ त्वमेकं, परेषां परं रक्षकं रक्षकानाम्॥
वयन्त्वां स्मरामो वयन्त्वाम्भजामो, वयन्त्वां जगत्साक्षिरूपं नमामः।
सदेकं निधानं निरालम्बमीशं, भवाम्भोधिपोतं शरण्यं ब्रजामः॥

[भावार्थ—ॐ, जगत के उस शाश्वत कारण को, मेरा प्रणाम। चित् शक्ति रूप उस समस्त ब्रह्माण्ड के आश्रय को मेरा प्रणाम। मुक्ति प्रदान करने वाले उस अद्वैत तत्त्व को प्रणाम। सर्वव्यापक तथा शाश्वत ब्रह्म को प्रणाम। तुम्हीं एकमात्र शरण लिए जाने के योग्य तथा वरेण्य हो। तुम्हीं विश्वरूप जगत के कारण हो, उसके सृष्टि-पालन-संहारकर्त्ता हो, निष्कल एवं निर्विकल्प हो। तुम भय के भी भय, भीषण के भी भीषण, पवित्रों के भी पवित्रकर्त्ता और सभी प्राणियों के गन्तव्य हो। उच्च पदासीनों के तुम्हीं नियन्ता हो, तुम परे से भी परे और रक्षकों के भी रक्षक हो। हम तुम्हारा स्मरण-भजन करते हैं। जगत के साक्षीस्वरूप, तुम्हें हम नमन करते हैं। भव-समुद्र के लिए तरणी-स्वरूप, एकमात्र सत्-स्वरूप, सभी के आश्रयदाता, हम आपकी शरण में आए हैं।]

ठाकुर ने हाथ जोड़कर स्तव सुना। पाठ के अन्त में भक्तिपूर्ण नमस्कार

किया। भक्तों ने भी नमस्कार किया।

अधर ने कलकत्ता से आकर ठाकुर को प्रणाम किया।

श्रीरामकृष्ण *(मास्टर के प्रति)*— आज खूब आनन्द हुआ! महिम चक्रवर्ती इधर आ रहा है (मेरी ओर झुक रहा है)। हरि-नाम में कैसा आनन्द देखा, क्या नहीं?

मास्टर— जी, हाँ।

महिमाचरण ज्ञान-चर्चा करते हैं। उन्होंने आज हरि-नाम किया है, और कीर्त्तन के समय नृत्य किया है— इसलिए ठाकुर को आह्लाद हो रहा है।

सन्ध्या आगतप्राय। भक्तों में बहुतों ने क्रमश: ठाकुर को प्रणाम करके विदा ग्रहण की।

चतुर्थ परिच्छेद

(प्रवृत्ति या निवृत्ति— अधर का कर्म— विषयी की उपासना और चाकरी)

सन्ध्या हो गई है। फरास (सेवक) दक्षिण के लम्बे बरामदे और पश्चिम के गोल बरामदे में प्रकाश-दीप जला गया है। ठाकुर के कमरे में प्रदीप जलाना हो गया है और धूप-धूना दे दिया गया है। कुछ क्षण पश्चात् चाँद उदित हुए। मन्दिर-प्रांगण, उद्यानपथ, गंगातीर, पञ्चवटी, वृक्षशीर्ष, ज्योत्स्ना से हँसने लगे।

ठाकुर अपने आसन पर आविष्ट होकर माँ का नाम और चिन्तन कर रहे हैं।

अधर आकर बैठ गए हैं। कमरे में मास्टर और निरञ्जन भी हैं। ठाकुर अधर के साथ बातें कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण— क्यों जी, तुम अब आए हो? कितना कीर्त्तन, नाच हो गया है। श्यामदास— राम के उस्ताद का कीर्त्तन हुआ था। किन्तु मुझे उतना अच्छा नहीं लगा, उठने की इच्छा भी नहीं हुई। उस व्यक्ति के विषय में पीछे सुना। गोपीदास की बदली ने बताया— मेरे सिर पर जितने केश हैं उतनी उपपत्नियाँ

की हैं। *(सबका हास्य)*। तुम्हारा काम नहीं बना?

अधर डिप्टी हैं, तीन सौ रुपया वेतन पाते हैं। कलकत्ता की म्युनिसिपेलिटी के वाइस-चेयरमैन के काम के लिए दरखास्त की थी— वेतन हजार रुपया महीना। काम के लिए अधर कलकत्ते के बड़े-बड़े व्यक्तियों के साथ मिले थे।

(निवृत्ति ही भली— नौकरी के लिए हीनबुद्धि विषयी की उपासना)

श्रीरामकृष्ण *(मास्टर और निरञ्जन के प्रति)*— हाजरा ने कहा था— अधर का काम हो जाएगा, तुम थोड़ा माँ से कहो। अधर ने भी कहा था। मैंने माँ से थोड़ा-सा कहा था,— 'माँ, यह तुम्हारे पास आता-जाता है, यदि हो सकता हो तो हो जाए ना।' किन्तु उसी के संग माँ से कह दिया था,— 'माँ, कैसी हीनबुद्धि! ज्ञान-भक्ति न माँगकर तुम्हारे से यह सब माँगता है!'

(अधर के प्रति)— "क्यों हीनबुद्धि वाले लोगों के पास इतना आना-जाना किया? इतना देखा, सुना! सात काण्ड रामायण पढ़ ली। फिर पूछता है, सीता किसकी पत्नी है! अमुक मल्लिक हीनबुद्धि है। मेरे माहेश जाने की बात पर चलती नौका का बन्दोबस्त किया था,— और घर जाते ही हृदय से बोलता— हृदु, गाड़ी रख ली है ना?"

अधर— गृहस्थ चलाना हो तो यह सब बिना किए नहीं चलता। आपने भी तो मना नहीं किया?

[उन्माद के पश्चात् महीना (वेतन) हस्ताक्षर करवाने के लिए खजाञ्ची के आह्वान की बात]

श्रीरामकृष्ण— निवृत्ति ही अच्छी है— प्रवृत्ति अच्छी नहीं। इस अवस्था के पश्चात् मेरे वेतन के लिए हस्ताक्षर करवाने के लिए (मुझे) बुलवाया था— जैसे सब लोग ही खजाञ्ची के पास जाकर दस्तखत करते हैं। मैंने कहा— मैं वैसा नहीं कर सकूँगा। मुझे वह नहीं चाहिए। तुम्हारी इच्छा हो तो और किसी को दे दो।

"एक ईश्वर का दास हूँ।— फिर और किसका दास होऊँगा?

"मेरे खाने को देर हो जाती है, देखकर मल्लिक ने एक रुपये महीने पर एक रसोइया लगा दिया था। तब लज्जा हुई। जैसे ही वह बुलाने को भेजता, उसी समय भागना पड़ता।— अपने-आप जाऊँ, वह और बात है।

"हीनबुद्धि लोगों की उपासना! संसार (गृहस्थ) में ऐसा ही होता है— और भी कितना कुछ?"

(पूर्वकथा— उन्माद के बाद ठाकुर की प्रार्थना— सन्तोष)

"ऐसी अवस्था ज्यों ही हुई, भाँति-भाँति का देखकर, त्यों ही माँ से कहा— माँ, यहाँ से ही मोड़ फिरा दो!— सुधामुखीर रान्ना— आर ना, आर ना— खेये पाय कान्ना। (चन्द्रबदनी का भोजन— खाकर क्रन्दन— और नहीं और नहीं।)" *(सब का हास्य)*।

(बाल्य— कामारपुकुर में ईश्वर घोषाल डिप्टी-दर्शन-कथा)

"जिसका कार्य कर रहे हो, उसका ही करो। लोग पचास रुपए, एक सौ रुपये के लिए लालायित हैं। तुम तीन सौ रुपया पा रहे हो। उस गाँव में मैंने डिप्टी को देखा था— ईश्वर घोषाल। सिर पर ताज था— सब थर-थर काँपते थे। बचपन में देखा था। डिप्टी क्या छोटा होता है जी!

"जिसका काम कर रहे हो, उसी का करो। एकजन की नौकरी करने से ही मन खराब हो जाता है, फिर और पाँच जनों की!"

(नौकरी की निन्दा, शम्भु व मथुर के धन का आदर— नरेन्द्र हैडमास्टर)

"एक स्त्री ने एक मुसलमान के ऊपर आसक्त होकर उसके साथ बातें करने के लिए उसे बुलाया था। मुसलमान साधु व्यक्ति था, वह बोला— मैं पिशाब करूँगा, मैं अपना बदना (लोटा, बर्तन) लेने जा रहा हूँ। स्त्री ने कहा— वह यहाँ पर ही हो जाएगा, मैं अभी बदना दे दूँगी। वह बोला— वैसा नहीं होगा।

मैंने जिस बदना के निकट एक बार लज्जा त्याग की है, वही बदना ही व्यवहार करूँगा,— अब फिर नए बदना के निकट निर्लज्ज नहीं होऊँगा। यह कहकर वह चला गया। औरत को भी अकल आ गई। वह बदना का मतलब समझ गई— उपपति।''

''नरेन्द्र पिता के शरीर-त्याग के पश्चात् बड़े ही कष्ट में पड़े हैं। माँ और भाइयों के भरणपोषण के लिए कार्य खोजते हैं। विद्यासागर के बौ-बाजार स्कूल में कुछ दिन हैडमास्टर का काम किया।''

अधर— अच्छा, नरेन्द्र काम करेगा कि नहीं?

श्रीरामकृष्ण— हाँ— वह करेगा। माँ और भाई हैं।

अधर— अच्छा, नरेन्द्र का पचास रुपए में चलता है; एक सौ रुपए में भी चलता है। नरेन्द्र एक सौ रुपए के लिए चेष्टा करेगा कि नहीं?

श्रीरामकृष्ण— विषयी लोग धन का आदर करते हैं, सोचते हैं, ऐसी वस्तु और नहीं होगी। शम्भु ने कहा, 'यह समस्त विषय उनके पादपद्मों में दे जाऊँगा, यही इच्छा है।' वे क्या विषय चाहते हैं? वे चाहते हैं— ज्ञान, भक्ति, विवेक, वैराग्य।

''गहने चोरी के समय सेजोबाबू ने कहा— 'अरे भगवान! तुम गहनों की रक्षा नहीं कर पाए? हंसेश्वरी ने देखो, कैसे रक्षा की थी!'

(संन्यासी का कठिन नियम— मथुर का भूसम्पत्ति देने का परामर्श)

''सेजोबाबू ने कहा था, एक भूसम्पत्ति मेरे नाम लिख देगा। मैंने काली-मन्दिर से सुना— सेजोबाबू और हृदे एक साथ परामर्श कर रहे थे। मैंने आकर सेजोबाबू से कहा— देखो, ऐसा विचार मत करो! उससे मेरी भारी हानि होगी!''

अधर— जैसा आप कह रहे हैं, सृष्टि में ऐसे हद है, छः या सात ही हुए हैं।

श्रीरामकृष्ण— क्यों, त्यागी के अतिरिक्त क्या है? ऐश्वर्य-त्याग करने पर ही लोग उन्हें जान पाते हैं। ऐसे भी हैं कि लोग उन्हें नहीं भी जानते। क्या पश्चिम (पंजाब, उत्तर प्रदेश) में नहीं हैं?

अधर— कलकत्ते में एक को जानता हूँ— देवेन्द्र ठाकुर (टैगोर)।

श्रीरामकृष्ण— क्या कहते हो! उसने जो भोग किया है, ऐसा किसने किया है!— जब सेजोबाबू के संग उसके घर में गया था, देखा, छोटे-छोटे बच्चे कई हैं— डॉक्टर आया हुआ है, औषध लिखकर दे रहा है। जिसके आठ लड़के और फिर लड़कियाँ हैं, यदि वह ईश्वर-चिन्तन नहीं करेगा तो कौन करेगा? इतना ऐश्वर्य भोग करने पर यदि ईश्वर-चिन्तन नहीं करता तो लोग कहते धिक्कार!

निरञ्जन— द्वारकानाथ ठाकुर (टैगोर) का सब उधार उन्होंने शोध किया था।

श्रीरामकृष्ण— रहने दे वे सब बातें! और मत जला! क्षमता रहते हुए भी जो बाप का ऋण शोध नहीं करता, वह भी क्या फिर मनुष्य है?

"किन्तु गृहस्थी लोग एकदम डूबे रहते हैं, उनकी तुलना में वह बहुत अच्छा है— उन्हें शिक्षा होगी।

"ठीक-ठीक त्यागी भक्त और संसारी भक्त में बड़ा अन्तर है। ठीक-ठीक संन्यासी— ठीक-ठीक त्यागी भक्त— मधुमक्खीवत् होता है। मधुमक्खी फूल के अतिरिक्त और किसी पर नहीं बैठेगी। मधुपान के अतिरिक्त और कुछ पान नहीं करेगी। अन्य संसारी भक्त मक्खीवत् हैं— सन्देश पर बैठती है और फिर सड़े घाव पर भी बैठती है। कभी तो ईश्वर के भाव में सुन्दर रहता है और फिर कामिनी-काञ्चन लेकर मस्त हो जाता है।

"ठीक-ठीक त्यागी भक्त चातक की भाँति होता है। चातक स्वाती नक्षत्र के मेघ के जल के अतिरिक्त और कुछ नहीं पीएगा! सात समुद्र, नदी भरपूर! वह अन्य जल नहीं पीएगा! कामिनी-काञ्चन स्पर्श नहीं करेगा! कामिनी-काञ्चन पास नहीं रखेगा, पीछे आसक्ति न हो जाए!"

पञ्चम परिच्छेद

(चैतन्यदेव, ठाकुर श्रीरामकृष्ण और लोकमान्य)

अधर— चैतन्य ने भी भोग किया था।

श्रीरामकृष्ण *(हैरान होकर)*— क्या भोग किया था?

अधर— इतना बड़ा पण्डित! कितना मान!

श्रीरामकृष्ण— औरों के लिए मान है। उनके लिए कुछ नहीं।

"तुम मुझे मानते हो और निरञ्जन मानता है, मेरे लिए एक है— सच कहता हूँ। एक रुपयेवाला व्यक्ति हाथ में रहेगा, ऐसा मेरे मन में नहीं होता। मनोमोहन ने कहा— सुरेन्द्र कहता है, राखाल इनके पास रहता है, शिकायत होती है। मैंने कहा, अरे कौन सुरेन्द्र? उसकी सतरंजी (दरी) और तकिया यहाँ पर है। और वह रुपये देता है?"

अधर— दस रुपये महीना शायद देते हैं?

श्रीरामकृष्ण— दस रुपये में दो महीने होते हैं। भक्त लोग यहाँ पर रहते हैं— वह भक्त-सेवा के लिए देता है। वह उसका पुण्य है, मेरा क्या? मैं जो राखाल, नरेन्द्र को प्यार करता हूँ, वह क्या अपने किसी लाभ के लिए है?

मास्टर— माँ के प्यार-वत्।

श्रीरामकृष्ण— माँ तो तब भी, नौकरी करके खिलाएगा, इस कारण बहुत कुछ करती है। मैं जो इन्हें प्यार करता हूँ, साक्षात् नारायण देखता हूँ!— कहने में नहीं।

(ठीक-ठीक त्यागी का भार ईश्वर लेते हैं— 'अनन्याश्चिन्तयन्तः')

श्रीरामकृष्ण *(अधर के प्रति)*— सुनो! दीपक के जलाने पर बरसाती कीड़ों का अभाव नहीं होता! उनको पा लेने पर वे सब जुगाड़ कर देते हैं— कोई भी अभाव नहीं रखते। उनके हृदय में आ जाने पर सेवा करने वाले अनेक जन आ जुटते हैं।

"एक छोकरा संन्यासी किसी गृहस्थ के घर में भिक्षा माँगने गया था।

वह आजन्म संन्यासी था। संसार के विषय में कुछ नहीं जानता था। गृहस्थ की एक युवती लड़की ने आकर भिक्षा दी। संन्यासी ने युवती की माँ से कहा, माँ, इसकी छाती पर क्या फोड़े हुए हैं? लड़की की माँ बोली, 'नहीं बेटा! इसके पेट से बच्चा होगा, इसलिए ईश्वर ने स्तन बना दिए हैं— उन्हीं स्तनों का दूध बच्चा पिएगा।' संन्यासी ने तब कहा, 'तब तो फिर क्या चिन्ता? मैं फिर क्यों भिक्षा माँगूँ?' जिन्होंने मुझे बनाया है, वे मुझे खाना देंगे।

"सुनो! जो उपपति के लिए सब त्याग करके आई है, वह नहीं कहेगी?— साले, तेरी छाती पर बैठूँगी और खाऊँगी!"

(तोतापुरी की कहानी— राजा की साधु-सेवा— श्रीकाशी के दुर्गा-मन्दिर के निकट नानकपंथियों के मठ में ठाकुर का महन्त-दर्शन— 1868 ईसवी)

"न्याँगटा (तोतापुरी) ने बताया, किसी एक राजा ने साधुओं को सोने के थालों और सोने के गिलासों में भोजन खिलाया था। काशी के मठ में देखा था, महन्त का कितना मान है— बड़े-बड़े हिन्दुस्तानी सेठ हाथ जोड़कर खड़े हुए थे, और कहते थे, क्या आज्ञा है!

"ठीक-ठीक साधु— ठीक-ठीक त्यागी सोने का थाल भी नहीं चाहता, मान भी नहीं चाहता। किन्तु ईश्वर उनके लिए कोई भी अभाव नहीं रखते! उनको पा लेने पर जो-जो प्रयोजनीय होता है, सब जुगाड़ कर देते हैं। *(सब निःशब्द)*।

"आप तो हाकिम हैं— क्या बोलूँगा!— जो भला समझो, वही करो। मैं मूर्ख हूँ।"

अधर *(सहास्य, भक्तों से)*— ये मुझे एग्जामिन कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— निवृत्ति अच्छी है। देखो ना, मैंने हस्ताक्षर नहीं किए थे। ईश्वर ही वस्तु है और सब अवस्तु!

हाजरा आकर भक्तों के पास फर्श पर बैठ गए। हाजरा कभी-कभी 'सोऽहं, सोऽहं' करते हैं। लाटु आदि भक्तों से कहते हैं, उनकी पूजा

करने से क्या होता है!— उनकी ही वस्तु उनको ही देना। एक दिन नरेन्द्र से भी उन्होंने यही बात कही थी।

श्रीरामकृष्ण *(हाजरा के प्रति)*— लाटु से मैंने कहा था, कौन किसकी भक्ति करता है?

हाजरा— भक्त अपने-आप अपने को ही पुकारता है।

श्रीरामकृष्ण— वह तो खूब ऊँची बात है। राजा बलि को वृन्धावली ने कहा था, तुम ब्राह्मण को क्या धन दोगे?

"तुम जो कहते हो, उसी इतने-से के लिए ही तो साधन-भजन— उनका नाम, गुणगान किया जाता है।

"अपने ही भीतर अपने को देख लिया जाए तो सब हो गया! उसी को तो देख पाने के लिए ही साधना है। और उसी साधना के लिए ही शरीर है। जब तक स्वर्ण-प्रतिमा की ढलाई नहीं हो जाती, तब तक मिट्टी के साँचे का प्रयोजन रहता है। प्रतिमा के बन जाने पर मिट्टी का साँचा फेंक दिया जाता है। ईश्वर-दर्शन हो जाने पर शरीरत्याग कर दिया जा सकता है।

"वे केवल अन्तर में ही नहीं हैं। अन्तर-बाहर हैं। काली-मन्दिर में माँ ने मुझको दिखलाया सब ही चिन्मय हैं!— माँ ही सब बनी हुई हैं!— प्रतिमा, मैं, कोशा, कुशी, चुमकी (लुटिया), चौकठ, मार्बल पत्थर (संगमरमर);— सब चिन्मय!

"इसी का तो साक्षात्कार करने के लिए ही उनको पुकारना— साधन, भजन करना— उनका नाम-गुण-कीर्त्तन है। इसी के लिए ही तो उनकी भक्ति करना है। वे लोग (लाटु आदि) वैसे ही हैं— अभी तक इतनी उच्च अवस्था नहीं हुई है। वे लोग भक्ति (प्यार) लिए हुए हैं। उन्हें (सोऽहं इत्यादि) और कुछ मत बोल।"

पक्षी जैसे बच्चों की पंख फैलाकर रक्षा करता है, दयामय गुरुदेव ठाकुर श्रीरामकृष्ण उसी प्रकार से भक्तों की रक्षा कर रहे हैं।

अधर और निरञ्जन जलपान करने बरामदे में गए। जलपान करके कमरे में लौट आए। मास्टर ठाकुर के निकट फर्श पर बैठे हुए हैं।

(चार पास ब्राह्म छोकरे की बात— इनके साथ फिर और तर्क-विचार)

अधर *(सहास्य)*— हम लोगों की इतनी बातें हो गईं, ये (मास्टर) तो कुछ भी नहीं बोले।

श्रीरामकृष्ण— केशव के दल का चार पास एक छोकरा (वरदा?) मेरे साथ पूरी तरह से तर्क कर रहा है, देखकर (केशव) केवल हँसते रहे और बोले, "इनके साथ भी फिर तर्क!" केशवसेन के वहाँ पर उसे एक बार और देखा था— किन्तु वैसा चेहरा नहीं था।

श्रीयुक्त राम चक्रवर्ती— विष्णु-मन्दिर के पुजारी— ठाकुर के कमरे में आए। ठाकुर कह रहे हैं—

"देखो राम! तुमने क्या दयाल को मिश्री की बात कही थी? नहीं, नहीं, उसे कहने की आवश्यकता नहीं है। बहुत बातें हो चुकी हैं।"

(ठाकुर का रात्रि का आहार— 'सबकी वस्तु खा नहीं सकता')

ठाकुर का रात का आहार माँ काली के प्रसाद की एक-दो लुचि (पूरी) और थोड़ा-सा सूजी का पायस है। ठाकुर फर्श पर आसन पर सेवा करने (आहार के लिए) बैठे हैं। निकट मास्टर बैठे हुए हैं, लाटु भी कमरे में हैं। भक्त 'सन्देश' आदि मिठाई लाए थे। एक सन्देश को स्पर्श करके ठाकुर लाटु से कह रहे हैं—

"यह किस साले का सन्देश है?"— कहते ही सूजी की पायस की बाटी में से नीचे फेंक दिया! *(मास्टर और लाटु के प्रति)* वह मैं सब जानता हूँ। वही आनन्द चैटर्जियों का छोकरा लाया है— जो घोषपाड़ा की औरत के पास जाता है।

लाटु— यह गजा (खाजा, मिठाई) दूँ?

श्रीरामकृष्ण— किशोरी लाया है?

लाटु— यह आपको चलेगी?

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— हाँ।

मास्टर अंग्रेज़ी पढ़े हुए व्यक्ति हैं। ठाकुर उनसे कह रहे हैं,

''सब की वस्तु मैं खा नहीं सकता। तुम यह सब मानते हो?''

मास्टर— जी, धीरे–धीरे सब मानना पड़ेगा।

श्रीरामकृष्ण— हाँ।

ठाकुर पश्चिम की ओर के गोल बरामदे में हाथ धोने के लिए गए। मास्टर हाथ पर जल डाल रहे हैं।

शरत्काल। चन्द्र उदय होने से निर्मल आकाश और भागीरथीवक्ष झक्–झक् करता है। भाटा पड़ा है— भागीरथी दक्षिणवाहिनी हैं। मुख धोते–धोते मास्टर से कह रहे हैं, ''तो फिर नारायण को रुपया दोगे?''

मास्टर— जो आज्ञा, दूँगा नहीं तो क्या?

ऊनविंश खण्ड

ठाकुर दक्षिणेश्वर-मन्दिर में नरेन्द्रादि भक्तों के संग

प्रथम परिच्छेद

(ज्ञान-अज्ञान के पार हो जाओ— शशधर का शुष्क ज्ञान)

ठाकुर श्रीरामकृष्ण मध्याह्न-सेवा (आहार) के पश्चात् दक्षिणेश्वर-मन्दिर में भक्तों के संग कमरे में विश्राम कर रहे हैं। आज नरेन्द्र, भवनाथ आदि भक्त कलकत्ता से आए हैं। दोनों भाई मुखर्जी, ज्ञानबाबू, छोटे गोपाल, बड़े काली आदि— ये लोग भी आए हैं। कोन्नगर से तीन-चार भक्त आए हैं। राखाल श्री वृन्दावन में बलराम के साथ हैं। उन्हें ज्वर हो गया था— संवाद आया है। आज रविवार है, 14 सितम्बर, 1884 ईसवी; कृष्णा दशमी तिथि, 30वाँ भाद्र, 1291 (बंगला) साल।

नरेन्द्र पितृवियोग के पश्चात् माँ और भाइयों के लिए बड़े ही चिन्तित हो गए हैं। वे कानून (Law) की परीक्षा के लिए तैयारी करेंगे।

ज्ञानबाबू ने चार पास कर ली हैं और सरकारी कार्य करते हैं। वे 10-11 बजे आए।

श्रीरामकृष्ण *(ज्ञानबाबू की ओर देखकर)*— क्यों जी, हठात् ज्ञानोदय हुआ?

ज्ञान *(सहास्य)*— जी, बड़े भाग्य से ज्ञानोदय होता है।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— तुम ज्ञान होकर अज्ञान क्यों हुए हो? अरे समझ गया, जहाँ पर ज्ञान है वहाँ पर ही अज्ञान है! वशिष्ठ ऋषि इतने ज्ञानी होते हुए

भी पुत्रशोक में रोए थे। इसलिए तुम ज्ञान-अज्ञान के पार हो जाओ। अज्ञान-काँटा पाँव में चुभ गया है— उसे निकालने के लिए ज्ञान-काँटा आवश्यक है। तत्पश्चात् निकाल लेने पर दोनों को ही फेंक दिया जाता है।

(निर्लिप्त गृहस्थ— ठाकुर की जन्मभूमि में बढ़इयों की स्त्रियों का कार्यदर्शन)

"यह संसार धोखे की टट्टी है— ज्ञानी कहता है। जो ज्ञान-अज्ञान के पार हैं, वे कहते हैं 'मजे की कोठी'! वे देखते हैं, ईश्वर ही जीव-जगत, चौबीस तत्त्व— सब बने हुए हैं!

"उनको प्राप्त कर लेने पर संसार किया जा सकता है। तब निर्लिप्त हो सकता है। वहाँ गाँव में बढ़इयों की स्त्रियों को देखा है— ढेंकी (धान से चावल निकालने का यन्त्र) से चिड़वा कूटती है। एक हाथ से धान हिलाती है, एक हाथ से बच्चे को स्तन पिलाती है— और फिर खरीदार के साथ बातें करती है,— 'तुम्हारी तरफ मेरे दो आने लेने बाकी हैं,— दाम देकर जाना।' किन्तु उसका बारह आना मन हाथ के ऊपर है, कहीं पीछे हाथ पर ढेंकी न पड़ जाए।

(बारह आने मन ईश्वर में रखकर चार आने से कार्य करना)

श्रीयुक्त पण्डित शशधर की बात भक्तों को बतला रहे हैं,

"देखा था— एकसुरा, केवल शुष्क ज्ञान-विचार लिए हुए है।

"जो नित्य में पहुँचकर लीला लेकर रहता है, और फिर लीला से नित्य में जा सकता है, उसी का ही पक्का ज्ञान है, पक्की भक्ति है।

"नारद आदि ब्रह्मज्ञान के पश्चात् भक्ति लिए हुए थे। इसी का नाम विज्ञान है।

"केवल शुष्क ज्ञान! वह जैसे फुच् करके चढ़ने वाली तुबड़ी (अनार, एक आतिशबाजी) है— थोड़ी देर फूल काटकर भस् करके फूट जाती है। नारद, शुकदेव आदि का ज्ञान जैसे बढ़िया तुबड़ी है। थोड़े से फूल काटकर

बन्द हो जाती है, और फिर नूतन फूल काटने लगती है— फिर बन्द हो जाती है— फिर और नए फूल काटती है! नारद, शुकदेव आदि का उनके ऊपर प्रेम हो गया था। प्रेम सच्चिदानन्द को पकड़ने की रस्सी है।''

(ठाकुर श्रीरामकृष्ण बकुलतले पर— झाउतले से भावाविष्ट)

मध्याह्न-सेवा के पश्चात् ठाकुर ने थोड़ा-सा विश्राम किया है।

बकुलतले के नीचे बैंच जैसा जो बैठने का स्थान है, वहाँ पर दो-चार जन भक्त बैठे हुए बातें कर रहे हैं— भवनाथ, दोनों मुखर्जी भाई, मास्टर, छोटे गोपाल, हाजरा आदि। ठाकुर झाउतले जा रहे हैं— वहाँ पर आकर एक बार बैठ गए।

हाजरा *(छोटे गोपाल से)*— इन्हें थोड़ा तम्बाकू पिलाओ।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— तुम पीओगे, तभी कह रहे हो। *(सब का हास्य)*।

मुखर्जी *(हाजरा से)*— आपने इनके पास रहकर बहुत सीखा है।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— ना, इनकी तो बाल्यकाल से ही ऐसी अवस्था है। *(सब का हास्य)*!

ठाकुर झाउतले से लौटकर आ रहे हैं— भक्तों ने देखा। भावाविष्ट हैं। मतवाले की न्यायीं चल रहे हैं। जब कमरे में पहुँचे, तब फिर प्रकृतिस्थ हुए।

द्वितीय परिच्छेद

(नारायण के लिए ठाकुर की चिन्ता— कोन्नगर के भक्तगण— श्रीरामकृष्ण की समाधि और नरेन्द्र का गान)

ठाकुर के कमरे में बहुत-से भक्त जमा हुए हैं। कोन्नगर के भक्तों में एक साधक अभी नए-नए आए हैं। आयु पचास के ऊपर। देखने से लगता है, भीतर खूब पाण्डित्य-अभिमान है। बातें करते-करते वे कहते हैं—

''समुद्र-मन्थन से पहले क्या चन्द्र नहीं था? इसका समाधान कौन करेगा?''

मास्टर *(सहास्य)*— ब्रह्माण्ड नहीं था जब, मुण्डमाला कहाँ से प्राप्त की?
साधक *(विरक्त होकर)*— वह बात अलग है।

कमरे के मध्य खड़े होकर ठाकुर मास्टर से हठात् कह रहे हैं, ''वह आया था— नारा'ण।''

नरेन्द्र बरामदे में हाजरा आदि के साथ बातें कर रहे थे— विचार के शब्द ठाकुर के कक्ष में से सुनाई दे रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण— खूब बोल सकता है! अब घर की चिन्ता में बहुत पड़ गया है।
मास्टर— जी, हाँ।
श्रीरामकृष्ण— विपद को सम्पद समझेगा, कहता था कि ना! क्या?
मास्टर— जी, मन का बल तो खूब है।
बड़े काली— किसमें कम है?

ठाकुर अपने आसन पर बैठे हुए हैं।

कोन्नगर के एक भक्त ठाकुर से कहते हैं—

महाशय, ये (साधक) आपको मिलने के लिए आए हैं— इन्हें कुछ पूछना है।

साधक देह और मस्तक उन्नत करके बैठे हुए हैं।

साधक— महाशय, उपाय क्या है?

(ईश्वर-दर्शन का उपाय, गुरु-वाक्य पर विश्वास— शास्त्र की धारणा कब)

श्रीरामकृष्ण— गुरु-वाक्य पर विश्वास। उनकी वाणी को पकड़-पकड़कर जाने से भगवान प्राप्त हो जाता है। जैसे सूत की 'खि' (छोर) पकड़-पकड़कर जाने से वस्तु-लाभ हो जाता है!
साधक— उनका क्या दर्शन किया जाता है?
श्रीरामकृष्ण— वे विषयबुद्धि के अगोचर हैं। कामिनी-काञ्चन में आसक्ति का लेश भी रहने से उन्हें प्राप्त नहीं किया जाता। किन्तु शुद्धमन-शुद्धबुद्धि के गोचर हैं— जिस मन में, जिस बुद्धि में आसक्ति का लेशमात्र नहीं। शुद्ध मन, शुद्ध बुद्धि और शुद्ध आत्मा— एक ही वस्तु है।

साधक— किन्तु शास्त्र में कहा है, 'यतो वाचो निवर्त्तन्ते अप्राप्य मनसा सह'— वे वाक्य, मन के अगोचर हैं।

श्रीरामकृष्ण— वह रहने दो। साधन (साधना) बिना किए शास्त्र का अर्थ नहीं समझ में आता। भाँग-भाँग कहने से क्या होगा? पण्डित लोग खूब श्लोक फड्र-फड्र करके बोलते हैं— किन्तु उससे क्या होगा? भाँग देह पर मलने से भी नशा नहीं होता— खानी पड़ती है।

"केवल बोल लेने से क्या होगा 'दूध में मक्खन है', 'दूध में मक्खन है'? दूध की दही जमाकर मन्थन करो— तभी तो होगा!"

साधक— मक्खन निकालना, यह सब तो शास्त्र की वाणी है।

श्रीरामकृष्ण— शास्त्र की वाणी बोलने से या सुन लेने से क्या होगा?— धारणा करनी चाहिए। पञ्जिका (जन्त्री) में लिखा है बीस आड़ा जल परन्तु जन्त्री दबाने से तनिक भी नहीं गिरता।

साधक— मक्खन निकालना— आपने निकाल लिया है?

श्रीरामकृष्ण— मैंने क्या किया है और क्या नहीं किया है, वह बात रहने दो। फिर ऐसी बात समझानी बड़ी कठिन है। कोई यदि पूछे कि घी खाने में कैसा है। उसका उत्तर है— जी, जैसा होता है घी, वैसा घी।

"ये सब जानने के लिए साधु-संग आवश्यक है। कौन-सी कफ की नाड़ी, कौन-सी पित्त की नाड़ी, कौन-सी वायु की नाड़ी है— यह जानने के लिए वैद्य के संग रहना आवश्यक है।"

साधक— कोई-कोई अन्य व्यक्ति के साथ रहने से परेशान हो जाता है।

श्रीरामकृष्ण— वह ज्ञान के बाद— भगवान-लाभ के पश्चात्। पहले साधु-संग नहीं चाहिए?

साधक चुप किए रहे।

साधक *(किञ्चित् बाद में, गरम होकर)*— आप उनको यदि जान पाए हैं तो बोलिए, प्रत्यक्ष ही हुआ हो या अनुभव में हुआ हो। इच्छा हो और बोल सकें तो बताइए, नहीं हो तो मत बताइए।

श्रीरामकृष्ण *(ईषत् हँसते-हँसते)*— क्या बोलूँ! केवल आभास ही बताया जाता है।

साधक— वही बताइए!

नरेन्द्र गाना गाएँगे। नरेन्द्र कह रहे हैं, पखावज नहीं लाया।

छोटे गोपाल— महिम (महिमाचरण) बाबू की है—

श्रीरामकृष्ण— नहीं, उसकी चीज लाने की जरूरत नहीं।

पहले कोन्नगर के एक भक्त ध्रुपद में गाना गा रहे हैं।

गाने के समय ठाकुर साधक की अवस्था एक-एक बार देख रहे हैं। गायक नरेन्द्र के साथ गाने-बजाने के सम्बन्ध में घोरतर तर्क कर रहे हैं।

साधक *(गायक के प्रति)*— तुम भी तो भाई कम नहीं! ऐसे तर्क का क्या प्रयोजन?

और एक व्यक्ति ने तर्क में योग दिया था। ठाकुर साधक से कह रहे हैं, ''आपने इन्हें तो कुछ नहीं डाँटा?''

श्रीरामकृष्ण कोन्नगर के भक्तों से कहते हैं,
''जी, लगता है आप लोगों के संग भी इसकी अच्छी नहीं बनती।''

नरेन्द्र गाना गा रहे हैं—

जाबे कि हे दिन आमार विफले चलिये,
आछि नाथ दिवानिशि आशापथ निरखिये।*

[क्या हमारे ये दिन विफल ही चले जाएँगे? हे नाथ, मैं रात-दिन आशापथ देख रहा हूँ।]

साधक गाना सुनते-सुनते ध्यानस्थ हो गए। ठाकुर तख्तपोश के उत्तर में दक्षिणास्य बैठे हुए हैं। समय 3-4 का होगा। पश्चिम की धूप आकर उनके (साधक के) शरीर पर पड़ रही है। ठाकुर ने शीघ्रता से एक छतरी

---

* पूरे गाने के लिए देखें इसी ग्रन्थ का सप्तदश खण्ड, प्रथम परिच्छेद, पृष्ठ 204

लेकर उसके पश्चिम की ओर रख दी, जिससे धूप साधक के शरीर पर न लगे।

नरेन्द्र गाना गा रहे हैं—

मलिन पंकिल मने केमने डाकिबो तोमाय।
पारे कि तृण पशिते ज्वलन्त अनल यथाय॥
तुमि पुण्येर आधार, ज्वलन्त अनलसम।
आमि पापी तृणसम, केमने पूजिबो तोमाय॥
शुनि तब नामेर गुणे, तरे महापापी जने।
लोइते पवित्र नाम काँपे हे मम हृदय॥
अभ्यस्त पापेर सेवाय, जीवन चलिया जाय।
केमने करिबो आमि पवित्र पथ आश्रय॥
ए पातकी नराधमे, तारो यदि दयाल नामे।
बल करे केशे धरे, दाओ चरणे आश्रय॥

[भावार्थ— मैं अपने मलिन, कीचड़ भरे मन से कैसे आपको पुकारूँ? क्या तिनका ज्वलन्त अग्नि में प्रवेश कर सकता है? तुम पुण्य के आधार हो, ज्वलन्त आग के समान हो। मैं पापी तृण के बराबर हूँ, कैसे तुम्हें पूजूँ? सुना है तुम्हारे नाम के प्रभाव से अनेक महापापी तर गए हैं। मेरा हृदय तो उस पवित्र नाम को लेते हुए काँपता है। पाप की सेवा का अभ्यस्त यह जीवन बीतता जा रहा है। किस प्रकार मैं पवित्र पथ का आश्रय लूँगा? आप यदि इस पापी नराधम को अपने दयाल नाम के गुण से तारते हो तो बलपूर्वक मुझे केशों से पकड़कर अपने चरणों में आश्रय दे दो।]

तृतीय परिच्छेद

(नरेन्द्र आदि को शिक्षा— 'वेद-वेदान्त में केवल आभास')

नरेन्द्र गाना गा रहे हैं—

सुन्दर तोमार नाम दीनशरण हे।
बरषे अमृतधार जुड़ाय श्रवण ओ प्राणरमण हे॥

गभीर विषाद राशि निमेषे विनाशे,
जखनि तव नाम सुधा श्रवणे परशे।
हृदय मधुमय तव नाम गाने,
होय हे हृदयनाथ चिदानन्द घन हे॥

[भावार्थ— हे दीनशरण, आपका नाम सुन्दर है। उससे अमृत-धारा बरसती है। हे प्राणरमण, ज्योंहि आपके नाम की सुधा का कानों में प्रवेश होता है, त्योंहि निमेष में गम्भीर विषाद का ढेर विनष्ट हो जाता है। तुम्हारे नाम के गाने से हृदय मधुमय हो जाता है और हे हृदयनाथ, चित्त आनन्दपूर्ण हो जाता है।]

नरेन्द्र ने ज्यों ही गाया— 'हृदय मधुमय तव नाम गाने' त्योंहि ठाकुर समाधिस्थ! समाधि के प्रारम्भ में हाथ की उँगली, विशेषत: अँगूठा स्पन्दित हो रहा है। कोन्नगर के भक्तों ने समाधि कभी नहीं देखी थी। ठाकुर चुप हो गए हैं, देखकर वे लोग उठने लगे।

भवनाथ— आप बैठिए ना। इनकी समाधि-अवस्था है।

कोन्नगर के भक्तों ने फिर दोबारा आसन ग्रहण किया। नरेन्द्र गा रहे हैं—

दिवानिशि करिया यतन हृदयेते र'चेछि आसन,
जगत्पति हे कृपा करि, सेथा कि करिबे आगमन।

[रात-दिन मेहनत करके हृदय में आसन बनाता है। हे जगत्पति, क्या आप कृपा करके वहाँ पर आएँगे?]

ठाकुर भावावेश में नीचे उतरकर नरेन्द्र के निकट धरती पर बैठ गए।

चिदाकाशे होलो पूर्ण प्रेम चन्द्रोदय हे।
उथलिलो प्रेम सिन्धु कि आनन्दमय हे॥
जय दयामय! जय दयामय! जय दयामय!

[हे (मन), चित्-आकाश में पूर्ण चन्द्र का उदय हो गया है, कैसा आनन्दमय प्रेमसिन्धु उथल पड़ा है! जय दयामय! जय दयामय! जय दयामय!]

'जय दयामय' यह नाम सुनकर ठाकुर खड़े हो गए और फिर समाधिस्थ!

काफी देर के पश्चात् कुछ प्रकृतिस्थ होकर फिर दोबारा धरती पर

मादुर (पतली चटाई) पर बैठ गए। नरेन्द्र ने गाना समाप्त कर लिया है, तानपुरा यथास्थान रख दिया गया। ठाकुर को अभी तक भावावेश है। भावावस्था में ही कह रहे हैं,

"यह क्या है माँ? बताओ तो ज़रा, मक्खन निकालकर मुख के निकट रखो। तालाब में चारा (मछलियों का मसाला) नहीं डालेगा— छिप (बंसी) लेकर नहीं बैठेगा— मछली पकड़कर उसके हाथ में दो! कैसा है हंगामा माँ! और विचार नहीं सुनूँगा, साले, विचार ले आए हैं— कैसा हंगामा है! झाड़ फेंकूँगा।

"वे हैं वेद-विधि के पार! वेद-वेदान्त, शास्त्र पढ़कर क्या उनको प्राप्त किया जाता है? *(नरेन्द्र के प्रति)* समझा तू? वेद में है केवल आभास।"

नरेन्द्र ने फिर दोबारा तानपुरा लाने के लिए कहा। ठाकुर बोले, "मैं गाऊँगा।" अभी भी भावावेश है— ठाकुर गा रहे हैं—

आमि ऐ (ऐई) खेदे खेद करि श्यामा।
तुमि माता थाकते आमार जागा घरे चुरि गो मा।[1]

[मैं इस खेद में चिन्तित हूँ माँ श्यामा कि तुम माता के रहते, मेरे जागते हुए, घर में चोरी हो रही है।]

"माँ! विचार क्यों करवाती हो?"

और फिर गा रहे हैं—

एबार आमि भालो भेवेछि, भालो भावीर काछे भाव शिखेछि।
घूम भेंगेछे आर कि घुमाइ योगे यागे जेगे आछि,
योगनिद्रा तोरे दिये मा, घुमेरे घुम पाडायेछि।[2]

[भावार्थ— अब की बार मैंने अच्छे भावी से भाव सीख लिया है। निद्रा टूट गई है, अब और क्या निद्रा करूँ, योग-यज्ञ में जगा हुआ हूँ। तुम्हारे द्वारा योगनिद्रा मिल गई है, नींद को नींद के मुहल्ले में भगा दिया है।]

ठाकुर कह रहे हैं— "मैं होश में हूँ।" अभी भी भावावस्था है।

---

1 पृष्ठ 147 पर पूरा गाना है।

2 परिशिष्ट-2 में पूरा गाना है।

सुरापान करि ना आमि, सुधा खाइ जय काली बोले।
मन-माताले माताल करे, मद माताले माताल बोले॥[1]

[मैं सुरा (मद) नहीं पीता, मैं तो जय काली बोलकर सुधा (अमृत) पीता हूँ। मन के मस्त हो जाने पर वह पागल कर देता है। किन्तु मद (शराब) के नशे वाले को मतवाला (शराबी) कहते हैं।]

ठाकुर ने कहा है, 'माँ, विचार और नहीं सुनूँगा।' नरेन्द्र गा रहे हैं—

(आमाय) दे मा पागल करे, आर काज नाइ ज्ञान विचारे।
तोमार प्रेमेर सुरा पाने कर मातोयारा,
ओ मा भक्त-चित्तहरा डुबाओ प्रेम सागरे।[2]

[हे माँ, मुझे पागल कर दे। अब ज्ञान-विचार का और कोई काम नहीं है। अपने प्रेम की सुरा पिलाकर मतवाला बना दो। ओ भक्त का चित्त हरने वाली माँ, मुझे प्रेम-सागर में डुबा दो।]

ठाकुर ईषत् हँसते-हँसते कह रहे हैं—

''दे माँ पागल करे! उन्हें ज्ञान विचार करके— शास्त्र विचार करके— नहीं प्राप्त किया जाता।''

कोन्नगर के गायक का ध्रुपद गान (कालोयाति) और रागिणी आलाप सुनकर प्रसन्न हुए हैं। विनीत भाव से गायक से कह रहे हैं,

''भाई, एक आनन्दमयी का नाम।''

गायक— महाशय! माफ करिएगा।

श्रीरामकृष्ण *(गायक से हाथ जोड़कर, प्रणाम करते-करते)*— ''नहीं भाई! केवल एक ही, जोर कर सकता हूँ!''

यह कहकर गोबिन्द अधिकारी की यात्रा (गीतिनाटक) में वृन्दा की उक्ति का कीर्त्तन गान गाकर कह रहे हैं—

राइ बोलिले बोलिते पारे! (कृष्णेरजन्य जेगे आछे!)
(सारा रात जेगे आछे!) (मान करिले करिते पारे!)

---

1 आगे पृष्ठ 444 पर पूरा गाना है।

2 पृष्ठ 207 पर पूरा गाना है।

[राधा बोल सकती है। (कृष्ण के लिए जगी हुई है।)
(सारी रात जगी रही है।) (मान कर सकती है।)]

"भाई! तुम ब्रह्ममयी के पुत्र हो।— वे घट-घट में रहती हैं! अवश्य कहूँगा। किसान ने गुरु से कहा था— 'मेरे यन्त्र लोबो।' (मार कर यन्त्र लूँगा)"।

गायक *(सहास्य)*— जूता मारकर।

श्रीरामकृष्ण *(श्रीगुरुदेव के उद्देश्य में प्रणाम करते-करते, सहास्य)*— इतनी दूर नहीं।

फिर और भावाविष्ट होकर कह रहे हैं—

"प्रवर्तक, साधक, सिद्ध, सिद्धों का सिद्ध;— तुम क्या सिद्ध हो, या सिद्धों के सिद्ध?— अच्छा, गाना करो।"

गायक रागिणी आलाप करके गाना गा रहे हैं— 'मन वारण!'

(शब्द ब्रह्म में आनन्द— 'माँ, मैं या तुम?')

श्रीरामकृष्ण *(आलाप सुनकर)*— बाबू! इससे भी आनन्द होता है, बाबू!

गाना समाप्त हो गया है। कोन्नगर के भक्तों ने प्रणाम करके विदा ली। साधक हाथ जोड़कर प्रणाम करके बोले,

"गोसाईं!— तो फिर चलता हूँ।"

ठाकुर अब भी भावाविष्ट हैं, माँ के साथ बातें कर रहे हैं—

"माँ! मैं या तुम? मैं क्या करूँ?— ना, ना, तुम।

"तुम ने विचार सुना, अथवा अब तक मैंने सुना? ना, मैं नहीं; तुम ने ही (सुना है)।"

(पूर्वकथा— साधु की ठाकुर को शिक्षा— तमोगुणी साधु)

ठाकुर प्रकृतिस्थ हो गए हैं। नरेन्द्र, भवनाथ, मुखर्जी दोनों भाई आदि

भक्तों के साथ बातें कर रहे हैं। उसी साधक की बातें—

भवनाथ *(सहास्य)*— किस प्रकार का व्यक्ति है?

श्रीरामकृष्ण— तमोगुणी भक्त है।

भवनाथ— श्लोक खूब बोल सकता है।

श्रीरामकृष्ण— मैंने एक व्यक्ति से कहा था— 'वह तो रजोगुणी साधु है— उसको सीधा-बीधा क्यों देना?' अन्य एक साधु ने मुझे शिक्षा दी,— ऐसी बात मत बोलो!— साधु तीन प्रकार के होते हैं— 'सत्त्वगुणी, रजोगुणी और तमोगुणी।' उस दिन से मैं सब प्रकार के साधुओं को मानता हूँ।

नरेन्द्र *(सहास्य)*— क्या, हाथी नारायण?— सब ही नारायण हैं।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— वे ही विद्या-अविद्या रूप में लीला कर रहे हैं। दोनों को ही मैं प्रणाम करता हूँ। चण्डी में है, 'वे लक्ष्मी हैं और फिर हतभाग्य के घर में अलक्ष्मी हैं! *(भवनाथ के प्रति)* यह बात क्या विष्णु पुराण में है?'

भवनाथ *(सहास्य)*— जी, यह मुझे पता नहीं है। कोन्नगर के भक्तगण आपकी समाधि-अवस्था को न समझकर उठकर जा रहे थे।

श्रीरामकृष्ण— किसने फिर कहा था— तुम लोग बैठो।

भवनाथ *(सहास्य)*— वह मैं था!

श्रीरामकृष्ण— बच्चे, तुम संघटित करने में जैसे हो, और फिर भगाने में भी वैसे ही हो।

गायक के संग नरेन्द्र का तर्क हुआ था,— वही बात होती है।

(Doctrine of non-resistance and Shree Ramakrishna नरेन्द्र के प्रति उपदेश— सत्त्व का तम— हरिनाम-माहात्म्य)

मुखर्जी— नरेन्द्र ने भी छोड़ा नहीं।

श्रीरामकृष्ण— जी नहीं, ऐसा तेज (रोख) चाहिए ही! इसे कहते हैं सत्त्व का तम। लोग जो कहेंगे क्या उसे सुनना ही होगा? वेश्या से क्या यह कहेगा, अच्छा जैसा चाहो तुम करो। तो क्या फिर वेश्या की बात सुननी पड़ेगी? मान करने पर एक सखी ने कहा था, 'श्रीमती (राधा) को अहंकार हो गया है।'

वृन्दा ने कहा, यह 'अहं' किसका है ?— यह उनका ही अहं है— कृष्ण के गर्व से गर्विणी।

अब हरिनाम-माहात्म्य की बातें होती हैं।

भवनाथ— हरि-नाम से मेरा शरीर मानो खाली (हल्का) हो जाता है।

श्रीरामकृष्ण— जो पाप हरण करते हैं वे ही हरि हैं। हरि त्रिताप हरण करते हैं।

"और चैतन्यदेव ने हरिनाम-प्रचार किया था— अतएव भला है। देखो, चैतन्यदेव कितने बड़े पण्डित, और वे अवतार थे। उन्होंने इस नाम का प्रचार किया था, अतएव अच्छा है। *(सहास्य)* किसान लोग निमन्त्रण खा रहे हैं— उनसे पूछा गया तुम लोग आमड़ा (खट्टा फल, hog plum) की चटनी (अम्बल) खाओगे ? वे बोले, यदि बाबूलोग खा रहे हैं तो फिर हमें भी दे दें। वे लोग सब खा गए हैं तब तो फिर अच्छी ही होगी। *(सब का हास्य)*।"

(शिवनाथ को मिलने की इच्छा— महेन्द्र का तीर्थयात्रा का प्रस्ताव)

ठाकुर शिवनाथ (शास्त्री) को देखने जाएँगे, इच्छा हुई है,— तभी मुखर्जी से कह रहे हैं,

"एक बार शिवनाथ को देखने जाऊँगा— तुम्हारी गाड़ी पर जाने से तो फिर भाड़ा (किराया) नहीं लगेगा!"

मुखर्जी— जो आज्ञा, तो फिर एक दिन निश्चित किया जाए।

श्रीरामकृष्ण *(भक्तों के प्रति)*— अच्छा, हमें क्या (वह) लाइक् (पसन्द) करेगा ? वे लोग (ब्राह्मभक्त) साकारवादियों की इतनी निन्दा करते हैं।

श्रीयुक्त महेन्द्र मुखर्जी तीर्थ-यात्रा करेंगे— ठाकुर को बता रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— यह कैसी बात है जी! प्रेम का अंकुर ना होते-होते जा रहे हो ? अंकुर होगा तब फिर वृक्ष होगा, तत्पश्चात् फल होगा। तुम्हारे संग सुन्दर कथावार्ता चल रही थी।

महेन्द्र— जी, कुछ इच्छा हो रही है घूम आऊँ। और फिर शीघ्र लौट आऊँगा।

चतुर्थ परिच्छेद

(नरेन्द्र की भक्ति— यदुमल्लिक के बागान में भक्तसंगे श्री गौरांग का भाव)

अपराह्ण हो गया है। समय पाँच का होगा। ठाकुर उठे। भक्तगण बागान में टहलते हैं। अनेक शीघ्र विदा लेंगे।

ठाकुर उत्तर के बरामदे में हाजरा के साथ बातें कर रहे हैं। नरेन्द्र आजकल गुहों के बड़े लड़के अन्नदा के पास प्राय: जाते हैं।

हाजरा— गुहों का लड़का अन्नदा, सुना था कि अच्छी कठोर (तपस्या) करता है। सामान्य-सामान्य कुछ खाकर रहता है। चार दिन के अन्तर से अन्न खाता है।

श्रीरामकृष्ण— क्या कह रहे हो? 'के जाने कोन् भेक से (वेश से) नारायण मिल जाए।'

हाजरा— नरेन्द्र ने आगमनी गाई।

श्रीरामकृष्ण *(उतावले होकर)*— कैसी?

किशोरी पास खड़ा है। ठाकुर ने कहा— तू ठीक है?

ठाकुर पश्चिम के गोल बरामदे में हैं। शरत्काल है। गेरुए रंग में रंगा हुआ एक फ्लैनल का कुरता पहन रहे हैं और नरेन्द्र से कहते हैं, ''तूने आगमनी गाई थी?'' गोल बरामदे से नीचे उतर कर नरेन्द्र के संग-संग गंगा के पुश्ते (embankment) के ऊपर आ गए। साथ में मास्टर हैं। नरेन्द्र गाना गा रहे हैं—

केमन करे परेर घरे, छिलि उमा बोलो मा ताई।
कत लोके कत बोले शुने प्राणे मरे जाइ॥
चिता भस्म मेखे अंगे, जामाइ बेड़ाय महारंगे।
तुइ नाकि मा ताराइ संगे— सोनार अंगे माखिस छाइ॥
केमने मा धैर्य धरे जामाइ नाकि भिक्षा करे।
एबार निते ऐले परे बोलबो उमा घरे नाइ॥

[भावार्थ— बेटी उमा, मुझे बताओ कि तुम उस दूसरे घर में कैसे थीं। कितने लोग कितनी ही बातें करते हैं, सुन-सुनकर प्राण निकलता है। शरीर पर चिता

की भस्म मलकर जमाईबाबू बड़े आनन्द में फिरते रहते हैं! क्या तू भी बेटी, उसके साथ अपने सोने-से अंग पर भस्म मलती है? कैसे मैं माँ होकर धैर्य धरूँ क्योंकि जमाई तो भिक्षा माँगकर खाता है। अबकी उनके लेने आने पर मैं कह दूँगी कि उमा घर पर नहीं है।]

ठाकुर खड़े होकर सुन रहे हैं। सुनते-सुनते भावाविष्ट हो गए।

अब भी थोड़ा-सा दिन है। सूर्यदेव पश्चिम गगन में दिखाई दे रहे हैं। ठाकुर भावाविष्ट हैं। उनके एक ओर उत्तरवाहिनी गंगा जी हैं— कुछ देर हुई ज्वार आई थी। पीछे पुष्प-उद्यान है। दायीं ओर नहबत और पञ्चवटी दिखाई दे रहे हैं। पास में नरेन्द्र खड़े हुए गाना गा रहे हैं।

सन्ध्या हो गई है। नरेन्द्रादि भक्तों ने प्रणाम करके विदा ली। कमरे में ठाकुर आ गए हैं और जगन्माता का नाम और चिन्तन कर रहे हैं।

श्रीयुक्त यदुमल्लिक पास के बागान में आज आए हैं। बागान में आने पर प्रायः किसी व्यक्ति को भेजकर ठाकुर को बुलवा लेते हैं। आज व्यक्ति भेजा है, ठाकुर को जाना होगा। श्रीयुक्त अधरसेन ने कलकत्ते से आकर ठाकुर को प्रणाम किया।

(भक्तों के संग श्रीयुक्त यदुमल्लिक के बागान में— श्री गौरांग का भाव)

ठाकुर श्रीयुक्त यदुमल्लिक के बाग में जाएँगे। लाटु से कह रहे हैं— लालटैन जला ले, अब चल।

ठाकुर लाटु के संग एकाकी जा रहे हैं। मास्टर संग हैं।

श्रीरामकृष्ण *(मास्टर के प्रति)*— तुम नारा'ण को क्यों नहीं लाए?

मास्टर— क्या मैं संग चलूँ?

श्रीरामकृष्ण— जाएगा? अधर-शधर सब हैं,— अच्छा आओ।

मुखर्जी हर रास्ते में खड़े हुए थे। ठाकुर मास्टर से कह रहे हैं,— इनमें से कोई जाएगा? *(मुखर्जियों के प्रति)* अच्छा, सुन्दर है, चलो। तब तो फिर उठकर शीघ्र आ सकूँगा।

(चैतन्य-लीला और अधर के कर्म की बात यदुमल्लिक के साथ)

ठाकुर यदुमल्लिक की बैठक में आ गए। सुसज्जित बैठक। कमरे और बरामदे में दीवालगिरि जल रही है। श्रीयुक्त यदुलाल छोटे-छोटे लड़कों को लेकर आनन्द से एक दो मित्रों के संग बैठे हैं। खानसामा आदि, कोई इन्तजार कर रहा है, कोई हाथ का पंखा लेकर पंखा झल रहा है। यदु ने हँसते-हँसते बैठे ही बैठे ठाकुर से बातें कीं और बहु दिन के परिचित-वत् व्यवहार करने लगे।

यदु गौरांग भक्त हैं। वे स्टार थियेटर में चैतन्य-लीला देख आए हैं। ठाकुर के साथ बातें करते हैं! बोले, चैतन्य-लीला नया अभिनय हो रहा है, बड़ा ही चमत्कारपूर्ण हुआ है।

ठाकुर आनन्द के साथ चैतन्यलीला की कथा सुन रहे हैं— बीच-बीच में यदु के एक छोटे लड़के का हाथ लेकर खेल रहे हैं। मास्टर और मुखर्जी भ्राता उनके पास बैठे हुए हैं।

श्रीयुक्त अधरसेन कलकत्ता म्युनिसिपैलिटी के वाइस-चेयरमैन के काम के लिए चेष्टा कर रहे थे। उस काम का वेतन एक हजार रुपया महीना था। अधर डिप्टी मैजिस्ट्रेट हैं— तीन सौ रुपया महीना वेतन पाते हैं। अधर की वयस तीस वर्ष है।

श्रीरामकृष्ण *(यदु के प्रति)*— कहाँ, अधर का काम तो नहीं हुआ?

यदु और उनके मित्र बोले—

अधर के काम की आयु तो नहीं गई।

कुछ क्षण पीछे यदु कह रहे हैं—

"तुम थोड़ा उनका नाम करो।"

ठाकुर गौरांग का भाव, गाने के बहाने (प्रसंग) से बता रहे हैं—

गान— आमार गौर नाचे!
नाचे संकीर्त्तने, श्रीवास-अंगने, भक्तगण संगे॥*

* पृष्ठ 184 पर पूरा गाना है।

गान— आमार गौर रतन। (मेरा गौर रत्न है)।

गान— गौर चाहे वृन्दावन पाने, धारा बहे दुनयने!
(भाव होवे वै कि रे) (भावनिधि श्री गौरांग रे)
(भावे हासे कांदे नाचे गाय) (बन देखे वृन्दाबन भावे)
(समुद्र देखे श्रीयमुना भावे) (गौर आपनार पाय आपनि धरे)
(जार अन्तः कृष्ण बहि गौर)।

[भावार्थ— श्री चैतन्यदेव वृन्दावन की ओर देख रहे हैं और उनके दोनों नयनों से प्रेमाश्रु-विसर्जन हो रहे हैं। (अरे भाव न होने के अतिरिक्त क्या है) (गौरांग तो भाव-समुद्र हैं) (भाव में वे हँसते, रोते, नाचते और गाते हैं।) (वन को देखकर वृन्दावन समझते हैं।) (समुद्र देखकर श्री यमुना जी सोचते हैं।) (गौर अपने पाँव पर आप ही (सिर) रख रहे हैं) (जिनके अन्तर में श्रीकृष्ण हैं और बाहर गौर हैं।)]

गाना— आमार अंग केनो गौर (ओ गौर होलो रे!)
कि करले रे धनी, अकाले सकाल कैले (कोइले)
अकालेते बरण धराले॥

एखन तो, गौर होते दिन, बाकि आछे!
एखन तो द्वापर लीला, शेष होय नाई!
एकि होलो रे! कोकिल मयूर, सकलइ गौर।
जे दिके फिराइ आँखि (एकि होलो रे)।
एकि, एकि, गौरमय सकल देखि॥

राइ बुझि मथुराय एलो, ताइ ते अंग गौर होलो!
धनी कुमुरिये पोका छिलो, ताइते आपनार वरण धराइलो।
एखनि जे अंग कालो छिलो, देखते-देखते गौर होलो।
राइ भेवे कि राइ होलाम (एकि रे)।
जे राधामन्त्र जप ना करे, राइ धनी कि आपनार बरण धराय तारे।
मथुराय आमि, कि नवद्वीपे आमि, किछु ठाओराते नारि रे।
एखनओ तो, महादेव अद्वैत होय नाइ (आमार अंग केनो गौर)।
एखनओ तो, बलाइ दादा निताइ होय नाइ,
विशाखा रामानन्द होय नाई।

एखनओ तो, ब्रह्माहरिदास होय नाइ,
एखनओ तो, नारद श्रीवास होय नाइ।
एखनओ तो, मा यशोदा शची होय नाइ।
एकाइ केनो आमि गौर
(जखन बलाइ दादा निताइ होय नाइ तखन)
तबे ताइ बुझि मथुराय ऐलो, ताइते कि अंग आमार गौर होलो।
(अतएव बुझि आमि गौर) एखन तो, पिता नन्द जगन्नाथ होय नाई।
एखन तो श्रीराधिका गदाधर होय नाई।
आमार अंग केनो गौर होलो॥

[भावार्थ— मेरा अंग गौर क्यों हो गया है, यह क्या हुआ है रे! हे धनी (सखी), यह क्या किया! बेसमय में सुबह कर दी, बेसमय में रंग कर दिया है। अभी तो दिन के श्वेत होने में समय है! अभी तो द्वापरलीला समाप्त नहीं हुई है। यह क्या हो गया है रे! कोयल-मोर सब सफेद हैं, जिधर दृष्टि फिराता हूँ। (यह क्या हो गया है रे!) यह क्या है, सबको गौरमय देख रहा हूँ। राइ (राधा) शायद मथुरा में आ गईं हैं, जभी तो अंग गौर हो गया है। धनी (राधा) तिलचट्टा थीं तभी तो अपना रंग पकड़वा दिया है। जो अंग काला था, अब वह देखते-देखते गौर हो गया है। राइ (राधा) की भावना करके क्या राइ (राधा) हो गया हूँ? (यह क्या है रे!)। जो राधामन्त्र जप नहीं करता, राइ धनी (राधा रानी) क्या उस को अपना वरण (रंग)पकड़वाती हैं? मैं मथुरा में हूँ या नवद्वीप में हूँ, मैं कुछ भी निश्चय नहीं कर पा रहा हूँ भाई! अभी तक भी तो महादेव अद्वैत नहीं बने हैं। (मेरा अंग क्यों गौर हो गया है!) अभी तक भी बलराम दादा निताई नहीं बने हैं, विशाखा रामानन्द नहीं हुईं, ब्रह्मा हरिदास नहीं हुए; नारद श्रीनिवास नहीं हुए; माँ यशोदा शची नहीं हुईं। मैं अकेला ही क्यों गौर हुआ हूँ? (जब बलाई दादा निताई नहीं हुए।) किन्तु जभी लगता है मैं मथुरा में आ गया हूँ, तभी तो मेरा अंग गौर हुआ है। (इसलिए मैं समझता हूँ मैं गौर हो गया हूँ) पर अभी तक भी पिता नन्द जगन्नाथ नहीं हुए हैं। श्रीराधिका गदाधर नहीं हुईं। मेरा अंग क्यों गौर हो गया है?]

पञ्चम परिच्छेद

[श्रीयुक्त राखाल के लिए चिन्ता— यदुमल्लिक— भोलानाथ का इजहार (गवाही)]

गाना समाप्त हो जाने पर दोनों मुखर्जी भाई उठे। ठाकुर भी साथ ही उठ गए। किन्तु भावाविष्ट हैं। कमरे के बरामदे में आकर एकदम समाधिस्थ होकर खड़े हैं। बरामदे में बहुत से दीये जल रहे हैं। बागान का दरबान भक्त व्यक्ति है। ठाकुर को कभी-कभी निमन्त्रण देकर सेवा करता है। ठाकुर समाधिस्थ होकर खड़े हुए हैं। दरबान आकर ठाकुर को पंखे से हवा कर रहा है। हाथ का बड़ा पंखा है।

बागान के गुमाश्ते श्रीयुक्त रतन ने आकर प्रणाम किया।

ठाकुर प्रकृतिस्थ हो गए हैं। नारायण! नारायण!— इस नाम को उच्चारण करके उनके साथ बातचीत की।

ठाकुर भक्तों के संग ठाकुरबाड़ी के सदर फाटक के निकट आ गए हैं। इसी समय मुखर्जी हर फाटक के पास प्रतीक्षा कर रहे हैं।

अधर ठाकुर को खोज रहे थे।

मुखर्जी *(सहास्य)*— महेन्द्रबाबू भागकर आ गए हैं।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य, मुखर्जी के प्रति)*— इसके साथ तुम लोग सर्वदा मिलते रहो और बातचीत करो।

प्रिय मुखर्जी *(सहास्य)*— ये अब हमारी मास्टरी करेंगे।

श्रीरामकृष्ण— गांजाखोर का स्वभाव है— गांजाखोर को देख लेने पर आनन्द मनाया करता है। अमीर (शरीफ आदमी) के आ जाने पर बात नहीं करता। किन्तु यदि कोई आवारा गांजाखोर आ जाता है तो शायद आलिंगन करेगा। *(सब का हास्य)*।

ठाकुर उद्यान पथ से पश्चिमास्य हुए अपने कमरे की ओर आ रहे हैं। मार्ग में कह रहे हैं,

''यदु खूब हिन्दु है। भागवत में से बहुत सी कहानियाँ कहता है।''

मणि काली-मन्दिर में आकर प्रणाम आदि करके चरणामृत पान कर रहे हैं। ठाकुर आ उपस्थित हुए— माँ का दर्शन करेंगे।

रात के प्राय: नौ। मुखर्जियों ने प्रणाम करके विदा ली। अधर और मास्टर जमीन पर बैठे हैं। ठाकुर अधर के साथ श्रीयुक्त राखाल की बातें करते हैं।

राखाल वृन्दावन में हैं— बलराम के साथ। पत्र से संवाद आया था, उनकी तबियत खराब हो गई है। दो-तीन दिन हुए ठाकुर राखाल के असुख को सुनकर इतने चिन्तित हो गए थे कि मध्याह्न की सेवा के समय 'क्या होगा!' कहकर हाजरा के निकट बालक की न्यायीं रो पड़े थे। अधर ने राखाल को रजिस्ट्री करवाकर चिट्ठी लिखी थी, किन्तु अभी तक इस चिट्ठी की प्राप्ति, स्वीकृति तक नहीं मिली।

श्रीरामकृष्ण— नारा'ण ने चिट्ठी पा ली है और तुम्हें चिट्ठी का जवाब नहीं मिला?

अधर— जी, अभी तक तो नहीं मिला।

श्रीरामकृष्ण— और मास्टर को भी लिखी है।

ठाकुर की चैतन्यलीला देखने जाने की बात हो रही है।

श्रीरामकृष्ण *(हँसते-हँसते, भक्तों के प्रति)*— यदु ने कहा था एक रुपये वाली जगह हो तो अच्छी दिखती है— सस्ती।

"एक बार हम लोगों को पेनेटी ले जाने की बात हुई थी— यदु ने हमें चलती नौका में चढ़ने के लिए कहा था! *(सब का हास्य)*।

"पहले वह ईश्वर की बात थोड़ी-थोड़ी सुना करता था। एक भक्त उसके पास यातायात किया करता था— अब वह और दिखाई नहीं देता। कितने ही मुसाहिब उसके निकट सर्वदा रहते हैं— वे ही और भी गड़बड़ कर देते हैं।

"बड़ा हिसाबी है— पहुँचते ही कहता है कितना भाड़ा?— मैं कहता हूँ, तुम्हें और सुनने की जरूरत नहीं है, तुम अढ़ाई रुपए देना— उस पर चुप रहता है और अढ़ाई रुपए ही देता है!" *(सब का हास्य)*।

भगवान-मन्दिर के दक्षिण की ओर पाखाना तैयार हुआ है। उसे लेकर ही यदुमल्लिक के साथ विवाद चलता है। पाखाने के निकट यदु का बाग है।

बागान के मुहर्रिर श्रीयुक्त भोलानाथ ने विचारपति के निकट इजहार (गवाही) दी थी। इजहार देने के पश्चात् उन्हें बड़ा भय हुआ है। उन्होंने ठाकुर को बता दिया था। ठाकुर ने कहा था— अधर डिप्टी मजिस्ट्रेट है, उसके आने पर उससे पूछूँगा। श्रीयुक्त राम चक्रवर्ती भोलानाथ को ठाकुर के पास अपने साथ लाया है और समस्त बता रहा है— 'इसको इजहार देकर भय हो रहा है' इत्यादि।

ठाकुर चिन्तित से होकर उठकर बैठ गए और अधर से समस्त बात बताने के लिए कहा। अधर समस्त सुनकर कहते हैं— वह कुछ भी नहीं है, थोड़ा-सा कष्ट होगा। ठाकुर की जैसे गुरुतर चिन्ता दूर हो गई।

रात हो गई है। अधर विदा लेंगे, प्रणाम किया।

श्रीरामकृष्ण *(मास्टर के प्रति)*— नारा'ण को लाओ।

विंश खण्ड

दक्षिणेश्वर में
महेन्द्र, राखाल, राधिका गोस्वामी आदि भक्तों के संग

प्रथम परिच्छेद

(महेन्द्र आदि को उपदेश— काप्तेन की भक्ति और पितामाता-सेवा)

श्रीरामकृष्ण दक्षिणेश्वर में काली-मन्दिर में उसी पूर्वपरिचित कमरे में भक्तों के संग हैं। शरत्काल है। शुक्रवार, 19 सितम्बर, 1884; चौथा आश्विन, 1291 (बंगला) साल— समय दो बजे का। आज भाद्र अमावस्या है— महालया*। श्रीयुक्त महेन्द्र मुखोपाध्याय और उनके भाई श्रीयुक्त प्रिय मुखोपाध्याय, मास्टर, बाबूराम, हरीश, किशोरी, लाटु कोई फर्श पर बैठे हैं, कोई खड़े हैं; अथवा कोई-कोई कमरे में यातायात कर रहे हैं। श्रीयुक्त हाजरा बरामदे में बैठे हुए हैं। राखाल बलराम के साथ वृन्दावन में हैं।

श्रीरामकृष्ण *(महेन्द्र आदि भक्तों के प्रति)*— कलकत्ता में काप्तेन (कप्तान) के घर में गया था। लौटते समय बहुत रात हो गई थी।

"काप्तेन का कैसा स्वभाव! कैसी भक्ति! छोटी धोती पहनकर आरती करता है। एक बार तीन बत्ती वाले प्रदीप से आरती करता है,— उसके

---

* महालया = शारदीय नवरात्रि की पिछली या आश्विन कृष्ण अमावस्या। (पितृ विसर्जन की तिथि)

पश्चात् फिर और एक बत्ती वाले प्रदीप से। और फिर कर्पूर की आरती।

''उस समय बातें नहीं होतीं। मुझे इशारा करके आसन पर बैठने के लिए कहा।

''पूजा करने के समय आँखों का भाव होता— ठीक जैसे बर्रे ने डंक मारा है!

''इधर तो गाना नहीं गा सकता। किन्तु सुन्दर स्तवपाठ करता है।

''अपनी माँ के पास नीचे बैठता है। माँ आसन के ऊपर बैठेगी।

''बाप अंग्रेज़ों का हवलदार है। युद्धक्षेत्र में एक हाथ में बन्दूक, और एक हाथ से शिव-पूजा करता है। खानसामा शिव बना-बना कर देता है। शिव-पूजा बिना किए जल नहीं पिएगा। छः हजार रुपया वार्षिक वेतन है।

''माँ को बीच-बीच में काशी भेज देता है। वहाँ पर बारह-तेरह जन माँ की सेवा के लिए रहते हैं। बहुत खर्चा है। वेदान्त, गीता, भागवत— काप्तेन को कण्ठस्थ हैं!

''वह कहता है, कलकत्ता के बाबुओं का म्लेच्छ-आचरण है।

''पहले हठयोग किया था— तभी मेरी समाधि या भावावस्था होने पर सिर पर हाथ फेर देता है।

''काप्तेन की पत्नी का फिर अलग देवता है, गोपाल। इस बार उतना कृपण नहीं देखा। वह भी गीता आदि जानती है। उनकी कैसी भक्ति!— मैं जहाँ पर खाऊँगा, वहाँ पर ही हाथ धुलाएँगे। लकड़ी का तिनका (दाँत कुरेदनी) तक देंगे।

''पाठा (बकरे) की चच्चड़ि (भुजिया) बनाती है,— काप्तेन कहता है, पन्द्रह दिन रह जाती है,— किन्तु उसकी पत्नी कहती है, 'नहीं, नहीं, सात रोज'। किन्तु स्वाद लगी। व्यंजन सब थोड़े-थोड़े देती।— मैं अधिक खाता हूँ— इसलिए आजकल मुझे अधिक देती है।

''तत्पश्चात् खाने के बाद, काप्तेन या उसकी पत्नी हवा करेगी।''

(जंगबहादुर के लड़कों का काप्तेन के संग आगमन 1875-76— नेपाली ब्रह्मचारिणी का गीतगोबिन्द-गान— 'मैं ईश्वर की दासी')

"किन्तु उनकी भारी भक्ति है, साधुओं का बड़ा सम्मान होता है। पश्चिम (पंजाब, उत्तर प्रदेश) के लोगों में साधु-भक्ति अधिक है। जंगबहादुर के लड़के और भतीजा कर्नल यहाँ पर आए थे। जब आए तो पतलून उतारकर आए थे और कितने डरते हुए आए थे।

"काप्तेन के संग उनके देश की एक लड़की आई थी। बड़ी भक्त थी,— विवाह नहीं हुआ था। 'गीतगोबिन्द-गाना'[1] उन्हें कण्ठस्थ था। उसका गाना सुनने के लिए द्वारिकाबाबू[2] हर आकर बैठ गए थे। मैंने कहा, ये सुनना चाहते हैं, भले व्यक्ति हैं। जब गीतगोबिन्द-गाना गाया गया तब द्वारिकाबाबू रूमाल से चक्षुओं का जल पोंछने लगा। विवाह क्यों नहीं किया, पूछने पर बोली, 'ईश्वर की दासी हूँ, अब और किस की दासी बनूँगी?' और सब ही उसको देवी कहकर खूब मानते हैं— जैसे शास्त्र में है।"

(महेन्द्र आदि के प्रति)— "आप लोग जो आते हो, उससे क्या कुछ उपकार हो रहा है? कुछ हो रहा है, सुनकर यह मन बड़ा अच्छा रहता है। *(मास्टर के प्रति)* यहाँ पर लोग क्यों आते हैं? (मैं) तो वैसे लिखना-पढ़ना भी नहीं जानता—"

मास्टर— जी, कृष्ण जब स्वयं सब गोपाल, गौवें आदि बन गए (ब्रह्मा के हरण करने के पश्चात्) तब गोपों की माताएँ नए गोपों को पाकर यशोदा के घर पर फिर नहीं आतीं। गौवें भी हम्बा-हम्बा शोर से उन्हीं नए बछड़ों के पीछे-पीछे चलने लगीं।

श्रीरामकृष्ण— उससे क्या हुआ?

मास्टर— ईश्वर स्वयं ही सब बन गए थे कि ना, तभी इतना आकर्षण हुआ। ईश्वर वस्तु रहने पर ही मन खिंचता है।

---

1 जयदेव द्वारा रचित 'गीतगोबिन्दम्'

2 द्वारिकाबाबू मथुर के ज्येष्ठ पुत्र थे— 1887 ईसवी में 40 वर्ष की वयस में मृत्यु हो गई— पौष 1284 (बंगला) साल। कप्तान प्रथम आए थे 1875-76 ईसवी में। अतएव यह गीतगोबिन्द-गाना 1875 और 1877 ईसवी के मध्य हुआ होगा।

(कृष्ण-लीला की व्याख्या— गोपी-प्रेम— वस्त्र-हरण का अर्थ)

श्रीरामकृष्ण— यह योगमाया का आकर्षण है— जादू कर देती है। राधिका सुबोल-वेश में, बछड़ा गोद में— जटिला के भय से जा रही थी; योगमाया के शरणागत हो जाने पर फिर जटिला ने भी आशीर्वाद दिया!

''हरि-लीला सब योगमाया की सहायता से होती है!

''गोपियों का प्यार— परकीया रति है। कृष्ण के लिए गोपियों का प्रेमोन्माद हुआ था। अपने पति के लिए इतना नहीं होता। यदि कोई कहता है, अरी तेरा पति आया है! तो कहती है, 'आया है तो आने दो,— वह खा लेगा फिर! किन्तु यदि पर-पुरुष की बात सुनती है कि,— रसिक, सुन्दर, रसपण्डित है,— तो भागी हुई देखने जाएगी,— और ओट से झाँक कर देखेगी।

''यदि मान भी लो कि उन्हें देखा नहीं है, उनके ऊपर कैसे गोपियों की तरह मन आकर्षित होगा? वह आकर्षण तो सुनने से भी होता है—

''ना जेने नाम शुने काणे मन गिये ताय लिप्त होलो।''

[बिना जाने कान से नाम सुनकर ही मन उसमें जाकर लिप्त हो गया है।]

एक भक्त— जी, वस्त्र-हरण का क्या मतलब है?

श्रीरामकृष्ण— अष्टपाश,— गोपियों के सब पाश चले गए थे, केवल लज्जा बाकी थी। इसलिए उन्होंने उस पाश को भी खत्म कर दिया। ईश्वर-लाभ हो जाने पर सब पाश चले जाते हैं।

(योगभ्रष्ट का भोगान्त होने पर ईश्वर-लाभ)

(महेन्द्र मुखुज्ये आदि भक्तों के प्रति)— ''ईश्वर के ऊपर सब की खैंच नहीं होती, आधार विशेष से होती है। संस्कार रहने से होती है। वह न होता तो बागबाजार में इतने लोग तो थे, केवल तुम लोग ही यहाँ पर क्यों आए? जंगलियों (बिना संस्कारवालों) का नहीं होता। मलय पर्वत की हवा लगने से सारे वृक्ष चन्दन हो जाते हैं; केवल शिमूल (सेमल), अश्वत्थ (पीपल), बट

और कई प्रकार के वृक्ष चन्दन नहीं होते।

''तुम लोगों को रुपए-पैसे का अभाव नहीं है। योगभ्रष्ट हो जाने पर भाग्यवान के घर में जन्म होता है— तब फिर दोबारा ईश्वर के लिए साधना करता है।''

महेन्द्र मुखुज्ये— क्यों योगभ्रष्ट हो जाता है?

श्रीरामकृष्ण— पूर्वजन्म में ईश्वर-चिन्तन करते-करते शायद हठात् भोग करने की लालसा हो गई थी। इस प्रकार होने से योगभ्रष्ट हो जाता है और अगले जन्म में उसी प्रकार का जन्म होता है।

महेन्द्र— तब फिर क्या उपाय है?

श्रीरामकृष्ण— कामना रहने पर, भोग रहने पर, मुक्ति नहीं। इसीलिए खाना-पहनना, रमण आदि सब कर लेगा। *(सहास्य)* तुम क्या कहते हो?— स्वदारा (अपनी स्त्री) से या परदारा (पराई स्त्री) से? *(मास्टर, मुखर्जी, ये लोग हँसते हैं।)*

द्वितीय परिच्छेद

श्रीमुख कथित चरितामृत— ठाकुर की नाना साध

(पूर्वकथा— प्रथम कलकत्ता में नाथों के बागान में— गंगास्नान)

श्रीरामकृष्ण— भोग-लालसा रहना अच्छा नहीं है। मैं इसीलिए तो जो-जो मन में उठता था, तुरन्त कर लिया करता था।

''बड़े बाजार के रंगीन सन्देश देखकर खाने की इच्छा हुई। उन्होंने ला दिए। खूब खा लिए,— फिर असुख हुआ।

''बचपन में एक दिन गंगा में नहाते समय, नाथों के बागान में, एक लड़के की कमर में सोने की करधनी (तगड़ी) देखी थी। इस अवस्था के पश्चात् करधनी पहनने की साध (इच्छा) हुई। उसे अधिक देर तो रख नहीं

पाया,— करधनी पहनकर भीतर से सड़सड़ (quick gliding movements as of reptiles) करके वायु ऊपर चढ़ने लगी— शरीर पर सोना छू गया था कि ना? तनिक देख कर ही उतार देनी पड़ी। नहीं तो फिर तोड़कर फेंकनी पड़ती।

"धनखाली का खइचुर[1] व खानाकुल कृष्णनगर का सरभाजा[2] (मलाई-गुजिया)— इन्हें भी खाने की अभिलाषा हुई थी।" *(सब का हास्य)*।

(पूर्वकथा— शम्भु राजनारायण का चण्डीश्रवण— ठाकुर की साधुसेवा)

"शम्भु का चण्डी-गान सुनने की इच्छा हुई थी। वह गाना सुनने के पश्चात् फिर राजनारायण की चण्डी सुनने की इच्छा हुई थी। वह भी सुनी।

"उस समय बहुत साधु आते थे। तब इच्छा हुई कि उनकी सेवा के लिए अलग से एक भण्डार हो। सेजोबाबू (मथुर) ने वैसा ही कर दिया। उसी भण्डार से साधुओं को सीदा, लकड़ी आदि दिया जाता।

"एक बार मन में हुआ कि खूब बढ़िया ज़री की पोशाक पहनूँगा तथा चाँदी की गुड़गुड़ी में तम्बाकू पिऊँगा। सेजोबाबू ने नया साज, गुड़गुड़ी सब भेज दी। पोशाक पहन ली, गुड़गुड़ी में नाना प्रकार से तम्बाकू खींचने लगा। एक बार इस तरह से, एक बार उस तरह से, ऊँचे से, नीचे से। तब बोला, 'मन! इसका नाम है चाँदी की गुड़गुड़ी में तम्बाकू पीना!' यह कहकर गुड़गुड़ी छूट गई। पोशाक तो थोड़ी देर पहन कर उतार दी— पाँव से मसलने लगा— और उसके ऊपर थू-थू करने लगा— बोला, इसका नाम है साज! इस पोशाक से रजोगुण होता है!"

---

1 खइचुर = a ball-shaped sweetmeat prepared by boiling coarsely powdered parched rice in sugar malt.

2 सरभाजा = a sweetmeat prepared by frying milk-film.

(वृन्दावन में राखाल और बलराम— पूर्वकथा— राखाल का प्रथम भाव 1881)

बलराम के साथ राखाल वृन्दावन में हैं। प्रथम-प्रथम वृन्दावन की बहुत प्रशंसा करके और वर्णन करके पत्र आदि दिया करते थे। मास्टर को पत्र लिखा था, 'यह बड़ा ही उत्तम स्थान है, आप आवें, मोर-मोरनी नृत्य करते हैं,— और नृत्यगीत है, सर्वदा ही आनन्द है।'— तत्पश्चात् राखाल को असुख हो गया है— वृन्दावन का ज्वर। ठाकुर सुनकर बहुत ही चिन्तित हैं। उनके लिए चण्डी के निकट मन्नत माँगी है। ठाकुर राखाल की बातें कर रहे हैं,

''यहाँ पर बैठकर पाँव दबाते-दबाते राखाल को प्रथम भाव हुआ था। एक भागवत का पण्डित इसी कमरे में बैठकर भागवत की कथा कह रहा था। वह समस्त कथा सुनते-सुनते राखाल बीच-बीच में सिहर उठने लगा; तत्पश्चात् एकदम स्थिर हो गया!

''दूसरी बार भाव बलराम के घर हुआ— भाव में लेट गया था।

''राखाल का साकार का घर है— निराकार की बात सुनकर उठ जाएगा।

''उसके लिए चण्डी को माना था। उसने तो सब घर-बार छोड़कर मेरे ऊपर निर्भर किया था! उसकी पत्नी के पास मैं ही उसको भेज दिया करता था— तनिक-सा भोग बाकी था।

''वृन्दावन से इन्हें (मास्टर को) लिखा था, यह अच्छी जगह है— मोर-मोरनी नृत्य करते हैं— अब मोर-मोरनी ने बड़ी ही मुश्किल में डाल दिया है!

''वहाँ पर बलराम के साथ है। आहा! बलराम का कैसा स्वभाव है! मेरे लिए उस देश (उड़ीसा में कोठार) में नहीं जाता। भाई ने महीना (जेबखर्च) बन्द कर दिया था और कहलवा दिया था, 'तुम यहाँ पर आकर रहो, व्यर्थ में क्यों इतना रुपया खर्च कर रहे हो।'— उसने वह बात नहीं सुनी,

कारण— मुझे देखेगा।

"कैसा स्वभाव!— रात-दिन केवल ठाकुर को लेकर है; मालीगण फूलों की मालाएँ गूँथेंगे! रुपया बचेगा, इस कारण वृन्दावन चार मास रहेगा। दो सौ रुपया महीना प्राप्त करता है।"

(पूर्वकथा— नरेन्द्र के लिए क्रन्दन— नरेन्द्र का प्रथम दर्शन 1881)

"लड़कों को क्यों प्यार करता हूँ?— इनके भीतर कामिनी-काञ्चन अभी तक भी प्रवेश नहीं किए हैं। मैं इन्हें नित्यसिद्ध देखता हूँ।

"नरेन्द्र जब प्रथम आया था— मैली एक चादर शरीर पर थी,— किन्तु आँखें, मुख देखकर बोध हुआ, भीतर कुछ है। तब अधिक गाने नहीं जानता था। दो एक गाने गाए— 'मन चल निज निकेतने,' और 'जाबे कि हे दिन आमार विफले चलिये।'

"जब आता था, तो कमरा-भरा लोग होते— किन्तु तो भी उसके मुख की ओर देखकर ही बातें कहता था। वह कहता, 'उनके संग भी बातें करो',— तब करता।

"यदुमल्लिक के बागान में रोता था,— उसको देखने के लिए पागल हो गया था। यहाँ पर भोलानाथ का हाथ पकड़ कर रोता। भोलानाथ ने कहा, 'एक कायस्थ के लड़के के लिए महाशय आपका इस प्रकार करना उचित नहीं है।' मोटा ब्राह्मण एक दिन हाथ जोड़ कर बोला, 'महाशय, वह तो सामान्य पढ़ा-लिखा है, उसके लिए आप इतने अधीर क्यों होते हैं?'

"भवनाथ और नरेन्द्र की जोड़ी है— दो जने जैसे स्त्री-पुरुष हों। जभी भवनाथ को नरेन्द्र के निकट रहने के लिए कहा था। उन दोनों का ही अरूप (निराकार) का घर है।"

(संन्यासी का कठिन नियम, लोकशिक्षार्थ त्याग— घोषपाड़ा के साधन की बात)

"मैं लड़कों को स्त्रियों के पास अधिक रहने या आना-जाना करने के लिए मना कर देता हूँ।

''हरिपद घोषपाड़े की एक औरत के पल्ले पड़ गया है। वह वात्सल्य-भाव करती है। हरिपद बालक है, कुछ नहीं समझता। ये लोग छोकरा देखकर इसी प्रकार करती हैं। सुना है कि हरिपद उसकी गोद में लेटता है। और वह हाथ से उसे खाना खिला देती है। मैं उसको कह दूँगा— वह सब अच्छा नहीं है। इसी वात्सल्य भाव से फिर और ताच्छल्य (तुच्छ, गन्दा) भाव हो जाता है।

''उन लोगों का आजकल पुरुष लेकर साधन है। वे मनुष्य को श्रीकृष्ण मानती हैं। वे कहती हैं 'रागकृष्ण'। गुरु पूछता है, 'तूने रागकृष्ण पा लिया है?' वह कहती है 'हाँ, पा लिया है।'

''उस दिन वह औरत आई थी। उसकी दृष्टि का भाव देखा था, कोई बहुत अच्छा नहीं था। उसके ही भाव में मैंने कहा था, 'हरिपद को लेकर— जैसा चाहो करो, किन्तु अन्यान्य भाव मत लाना।'

''छोकरों की साधना की अवस्था है। अब केवल त्याग। संन्यासी स्त्री का चित्रपट तक भी नहीं देखेगा। मैं उनसे कहता हूँ, स्त्री भक्त भी हो तो भी उनके साथ बैठकर बातें नहीं करोगे; खड़े-खड़े थोड़ी बात करोगे। सिद्ध हो जाने पर भी ऐसे ही करना चाहिए— अपनी सावधानी-जन्य और लोकशिक्षा-जन्य। मैं भी स्त्रियों के आने पर थोड़ी-सी देर पश्चात् कहता हूँ, तुम लोग जाकर देवता-दर्शन करो। उससे यदि नहीं उठतीं, स्वयं उठ जाता हूँ। मेरा (आचरण) देखकर फिर और सब भी सीखेंगे।''

(पूर्वकथा— फुलुइ श्यामबाजार-दर्शन 1880— अवतार का आकर्षण)

''अच्छा, ये ही जो सब लड़के आ रहे हैं, और तुम सब आ रहे हो, इसके क्या मायने हैं? इसके (अर्थात् मेरे) भीतर अवश्य कुछ है, वह न हो तो खैंच कैसे होती— क्यों आकर्षण होता?

''उस देश में जब हृदय के घर में (कामारपुकुर के निकट, सिओड़ में) था, तब श्यामबाजार ले गए थे। समझ लिया, वे गौरांग-भक्त हैं। गाँव में प्रवेश करने से पहले दिखा दिया था। गौरांग को देखा था! ऐसा आकर्षण

रहा— सात दिन, सात रात लोगों की भीड़ रही। केवल कीर्त्तन और नृत्य! दीवाल पर लोग! वृक्षों पर लोग!

"नटवर गोस्वामी की बाड़ी में था। वहाँ पर रात-दिन लोगों की भीड़ रहती। मैं फिर भागकर एक जुलाहे (ताँती) के घर सुबह बैठ जाता था। वहाँ पर भी फिर देखता हूँ, थोड़ी देर बाद सब पहुँच जाते। सब खोल (मृदंग), करताल लेकर जाते। और फिर 'ताकुटी! ताकुटी!' करते। खाना-पीना तीन बजे हुआ करता था।

"शोर हो गया, 'सात बार मरता है, सात बार जी जाता है', ऐसा व्यक्ति आया है! पीछे कहीं मुझे सदी-गर्मी न हो जाए, हृदय मैदान में खींचकर ले जाता;— वहाँ पर फिर और भी कीड़ियों की तरह (लोगों की) पंक्तियाँ! फिर और खोल, करताल।— ताकुटी! ताकुटी! हृदय बकता, और कहता, 'हमने क्या कभी कीर्त्तन नहीं सुना है?'

"वहाँ के गोसाईं लोग झगड़ा करने आए थे। सोचते थे, हम उनका पावना धन (चढ़ावा) लेने आए हैं। उन्होंने देख लिया, मैंने एक धोती क्या, एक टुकड़ा सूत भी नहीं लिया है। किसी ने कहा था 'ब्रह्मज्ञानी' है। इसीलिए गोसाईं लोग थाह लेने आए थे। एक ने पूछा, 'इनकी माला-तिलक क्यों नहीं हैं?' उनमें से ही एक व्यक्ति बोला, 'नारियल के पत्ते अपने-आप ही झड़ गए हैं'। 'नारियल के पत्ते' यह बात भी वहाँ पर ही सीखी थी। ज्ञान हो जाने पर उपाधि अपने आप झड़ पड़ती है।

"दूर के गाँवों से लोग आकर जमा हो जाते थे। वे रात को ठहरते। जिस घर में था, उसके आँगन में बहुत-सी औरतें सोई हुई थीं। हृदय पिशाब करने के लिए रात को बाहर जा रहा था, वे बोलीं 'यहाँ पर (आँगन में) ही कर लो।'

"आकर्षण किसे कहते हैं, वहाँ पर (श्यामबाजार में) ही समझा था। हरि-लीला में योगमाया की सहायता से आकर्षण होता है, जैसे जादू हो जाता है!"

तृतीय परिच्छेद

(ठाकुर श्रीरामकृष्ण और श्रीयुक्त राधिका गोस्वामी)

मुखर्जी भ्रातृ-द्वय आदि भक्तों के साथ बातें करते-करते प्राय: तीन बज गए हैं। श्रीयुक्त राधिका गोस्वामी ने आकर प्रणाम किया। उन्होंने ठाकुर श्रीरामकृष्ण के यही प्रथम दर्शन किए हैं। वयस लगभग तीस के मध्य होगी। गोस्वामी ने आसन ग्रहण किया।

श्रीरामकृष्ण— आप क्या अद्वैत वंश के हैं ?

गोस्वामी— जी, हाँ।

ठाकुर अद्वैत वंश सुनकर गोस्वामी को हाथ जोड़कर प्रणाम कर रहे हैं।

(गोस्वामी-वंश और ब्राह्मण पूजनीय— महापुरुष के वंश में जन्म)

श्रीरामकृष्ण— अद्वैत गोस्वामी वंश— उत्पत्ति स्थान (खानदान) का गुण होता ही है।

"नेक (बढ़िया) आम के वृक्ष पर बढ़िया आम ही होता है *(भक्तों का हास्य)*। खराब आम नहीं होता। फिर भी मिट्टी के गुण से थोड़ा छोटा-बड़ा होता है। आप क्या कहते हैं ?"

गोस्वामी *(विनीत भाव से)*— जी, मैं क्या जानूँ ?

श्रीरामकृष्ण— तुम जो भी कहो,— अन्य लोग क्यों छोड़ेंगे ?

"ब्राह्मण में हज़ार दोष रहें— किन्तु भरद्वाज गोत्र, शाण्डिल्य गोत्र के कारण वे सबके पूजनीय हैं। *(मास्टर के प्रति)* शंखचील की कहानी कहो तो!"

मास्टर चुप हैं, देखकर ठाकुर फिर और बातें कर रहे हैं—

श्रीरामकृष्ण— वंश में यदि महापुरुष जन्म लिए हुए हैं तो वे ही खींच लेंगे— हज़ार दोष चाहे रहें। जब गन्धर्वों ने कौरवों को बन्दी कर लिया था, युधिष्ठिर

ने जाकर उन्हें मुक्त करा दिया। जिस दुर्योधन ने इतनी शत्रुता की थी, जिसके कारण युधिष्ठिर का वनवास हुआ था, उसको ही मुक्त करा दिया!

"उसके अतिरिक्त भेष का भी आदर करना चाहिए। भेष देखकर सत्य वस्तु का उद्दीपन होता है। चैतन्यदेव ने गधे को भेष पहनाकर साष्टांग प्रणाम किया था।

"शंखचील को देखकर प्रणाम क्यों करते हैं? कंस के मारने जाने पर भगवती शंखचील होकर उड़ गई थी। इसीलिए अब भी शंखचील देख लेने पर सब प्रणाम करते हैं।"

[पूर्वकथा— चाणके में कुंवरसिंह द्वारा ठाकुर की पूजा— ठाकुर की राजभक्ति (loyalty)]

चाणके की पल्टन के भीतर अंग्रेज़ को आते देखकर सिपाहियों ने सलाम किया। कुंवरसिंह ने मुझे समझाया, 'अंग्रेज़ों का राज्य है, इसलिए अंग्रेज़ों को सलाम करना चाहिए।'

(गोस्वामी के निकट साम्प्रदायिकता की निन्दा— शाक्त और वैष्णव)

"शाक्तों का तन्त्र मत है। वैष्णवों का पुराण मत है। वैष्णव जो साधन करते हैं उसे प्रकाश करने में दोष नहीं है। तान्त्रिक का सब गोपन होता है। जभी तान्त्रिक का सब समझ में नहीं आता।

(गोस्वामी के प्रति)— "आप लोग अच्छे हैं, कितना जप करते हैं, कितना हरि-नाम करते हैं!"

गोस्वामी *(विनीत भाव से)*— जी, हम फिर क्या करते हैं! मैं अति अधम हूँ।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— दीनता अच्छी है। और एक है, 'मैं हरि-नाम करता हूँ, मेरा भी फिर पाप!' जो प्रतिदिन 'मैं पापी' 'मैं पापी' 'मैं अधम' 'मैं अधम' करता रहता है, वह वैसा ही हो जाता है। कैसा अविश्वास! उनका

नाम इतना किया है और फिर कहता है, 'पाप, पाप'!

गोस्वामी यह बात अवाक् होकर सुन रहे हैं।

(पूर्वकथा— वृन्दावन में वैष्णव का भेष ग्रहण— 1868 ईसवी)

श्रीरामकृष्ण— मैंने भी वृन्दावन में भेष लिया था;— पन्द्रह दिन रखा था। *(भक्तों के प्रति)* सब भावों में ही कुछ-कुछ दिन साधन किया करता, तभी शान्ति होती।

(सहास्य)— "मैंने सब तरह से किया है— सब पंथ ही मानता हूँ। शाक्तों को भी मानता हूँ, वैष्णवों को भी मानता हूँ, और फिर वेदान्तवादियों को मानता हूँ। यहाँ पर जभी तो सब मतों के लोग आते हैं। और सब ही सोचते हैं, ये हमारे मत के ही व्यक्ति हैं। आजकल के ब्रह्मज्ञानियों को भी मानता हूँ।

"किसी का एक रंग वाला बड़ा तसला था। तसले का अद्‌भुत गुण यह था कि जो व्यक्ति जिस रंग में कपड़ा रंगवाना चाहता, उसका कपड़ा उसी रंग में रंग जाता था।

"किन्तु एक चालाक व्यक्ति ने कहा, 'तुमने जिस रंग में रंगा है, मुझे वही रंग देना होगा।' *(ठाकुर तथा सबका हास्य)*।

"क्यों कट्टर होऊँगा? 'अमुक मत का व्यक्ति तब तो फिर नहीं आ सकेगा'— यह भय मुझे नहीं है। कोई आवे चाहे न आवे, मेरी बला से! 'यह व्यक्ति कैसे हाथ में रहेगा', ऐसा भी कुछ मेरे मन में नहीं है। अधरसेन ने बड़ी नौकरी के लिए माँ से कहने को कहा था, किन्तु उसका वह काम नहीं हुआ। वह यदि उसके कारण अपने मन में कुछ सोचता है, तो मेरी बला से।"

(पूर्वकथा— केशवसेन के घर में निराकार भाव— विजय गोस्वामी के साथ एँड़ेदा वालों के गदाधर* की पाटबाड़ी-दर्शन— विजय का चरित्र)

"और फिर केशवसेन के घर जाकर और एक भाव हुआ। वे लोग निराकार-

* एक प्रसिद्ध वैष्णव साधु।

निराकार करते हैं;— जभी भाव में कहा था, 'माँ, यहाँ पर मत आ, ये लोग तेरा रूप-शूप नहीं मानते।'

साम्प्रदायिकता के विरुद्ध ये सब बातें सुनकर गोस्वामी चुप रहे।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— विजय अब बढ़िया हो गया है।

''हरि-हरि बोलते-बोलते धरती पर गिर जाता है।

''चार बजे रात तक कीर्त्तन, ध्यान इत्यादि लिए रहता है। अब गेरुआ पहने है। ठाकुर-विग्रह देखते ही एकदम साष्टांग करता है।

''गदाधर की पाटबाड़ी में मेरे साथ गया— मैंने कहा, यहाँ पर वे ध्यान किया करते थे— तुरन्त उसी स्थान पर साष्टांग।

''चैतन्यदेव के चित्र के सम्मुख फिर साष्टांग!''

गोस्वामी— राधाकृष्ण मूर्त्ति के सम्मुख?

श्रीरामकृष्ण— साष्टांग! और आचारी खूब है।

गोस्वामी— अब समाज में लिया जा सकता है।

श्रीरामकृष्ण— वे लोग क्या कहेंगे, वह इतना नहीं सोचता।

गोस्वामी— ना, ऐसा होने पर तो समाज कृतार्थ होगा— ऐसे व्यक्ति को पाकर।

श्रीरामकृष्ण— मुझे खूब मानता है।

''उसे पाना ही कठिन है। आज ढाका में बुलावा, कल और एक स्थान पर बुलावा। सर्वदा व्यस्त रहता है।

''उनके समाज (साधारण ब्राह्मसमाज) में बड़ी गड़बड़ हो गई है।''

गोस्वामी— जी, क्यों?

श्रीरामकृष्ण— उससे कहते हैं, 'तुम साकारवादियों के साथ मिलते-जुलते हो!— तुम पौत्तलिक (मूर्त्तिपूजक) हो।'

''वह वैसे अति उदार और सरल है। सरल बिना हुए ईश्वर की कृपा नहीं होती।''

(मुखर्जी आदि को शिक्षा— गृहस्थ, 'आगे बढ़ो'— अभ्यासयोग)

अब ठाकुर मुखर्जियों के संग बातें कर रहे हैं। बड़े महेन्द्र व्यवसाय करते हैं, किसी की नौकरी नहीं करते। छोटे प्रियनाथ इञ्जीनियर थे। अब कुछ प्रबन्ध कर लिया है। नौकरी और नहीं करेंगे। बड़े की आयु 35/36 होगी। उनकी बाड़ी केदेटि ग्राम में है। कलकत्ते के बागबाजार में भी उनका अपना मकान 'बसंतवाटी' है।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— तनिक-सा उद्दीपन हो रहा है, इस कारण चुप करके मत रहो। आगे बढ़ो। चन्दन-काठ के बाद और भी है— चाँदी की खान, सोने की खान।

प्रिय *(सहास्य)*— जी, पाँव में बन्धन है— आगे बढ़ने नहीं देता।

श्रीरामकृष्ण— पाँव में बन्धन से क्या होगा?— मन की बात है।

"मन से ही बद्ध, मन से ही मुक्त होता है। दो मित्र थे— एक वेश्यालय में गया और दूसरा भागवत सुनने लगा। प्रथम सोचता है, मुझे धिक्कार है— मेरा मित्र तो हरिकथा सुन रहा है और मैं कहाँ पड़ा हूँ! और दूसरा सोचता है— मुझे धिक्कार है— मेरा मित्र तो कैसा आमोद-आह्लाद कर रहा है, और मैं साला कैसा मूर्ख हूँ! देखो, प्रथम मित्र को तो विष्णुदूत ले गए— वैकुण्ठ में। और दूसरे को यमदूत ले गए!"

प्रिय— मन तो मेरे वश में नहीं है।

श्रीरामकृष्ण— वह कैसी बात! अभ्यासयोग। अभ्यास करो, देखोगे मन को जिस ओर ले जाओगे, उसी ओर ही जाएगा।

"मन धोबी का धुला हुआ कपड़ा है। उसे लाल रंग में रंगवाने से लाल, नीले रंग से रंगवाने पर नीला होता है। जो रंग रंगवाओगे वही रंग हो जाएगा।

(गोस्वामी के प्रति)— "आपकी कोई बात है?"

गोस्वामी *(अति विनीत भाव से)*— जी नहीं, दर्शन हो गया है। और, बातें तो सब सुन ही रहा हूँ।

श्रीरामकृष्ण— देवताओं के दर्शन कीजिए।

गोस्वामी *(अति विनीत भाव से)*— थोड़ा-सा महाप्रभु का गुणानुकीर्त्तन... ।

ठाकुर श्रीरामकृष्ण गोस्वामी को गान सुना रहे हैं—

गान— आमार अंग केनो गौर होलो!*

[मेरा अंग गौर क्यों हो गया है!]

गान— गोरा चाहे वृन्दावन पाने, आर धारा बहे दु'नयने।

[गौर वृन्दावन की ओर देखता है और दोनों नयनों से धाराएँ बहती हैं।]

(भाव होबे बोइ कि रे!) (भावनिधि श्रीगौरांगेर)
(जार अन्तः कृष्ण बहिः गौर) (भावे हासे काँदे नाचे गाय)
(बन देखे वृन्दावन भावे) (समुद्र देखे श्री यमुना भावे)
(गोरा आपनार पा आपनि धरे)

[भावार्थ— भाव बिना हुए क्या है रे! श्री गौरांग भावनिधि (समुद्र) हैं। जिनके अन्दर कृष्ण, बाहर गौर हैं। वे भाव में हँसते-रोते, नाचते-गाते हैं। बन देखकर वृन्दावन समझते हैं और समुद्र देखकर श्री यमुना समझते हैं, गौर अपना पाँव स्वयं पकड़ते हैं।]

(श्रीयुक्त राधिका गोस्वामी को सर्वधर्म-समन्वय उपदेश)

गाना समाप्त हो जाने पर— ठाकुर बातें कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण *(गोस्वामी के प्रति)*— यह तो आप लोगों का (वैष्णवों का) हो गया और यदि कोई शाक्त या घोषपाड़ा के मत का आता है, तब क्या कहूँ?

''इसीलिए यहाँ पर सब भाव ही हैं, क्योंकि यहाँ पर सब प्रकार के लोग आएँगे; वैष्णव, शाक्त, कर्ताभजा, वेदान्तवादी और फिर अब के ब्रह्मज्ञानी।

''उनकी इच्छा से नाना धर्म, नाना मत हुए हैं।

''जभी तो उन्होंने जिस के पेट को जो सहन होता है उसको वही दिया

* पृष्ठ 255 पर पूरा गाना है।

है। माँ सब को मछली का पुलाव नहीं देती— सब का पेट नहीं सहता। जभी किसी को मछली का झोल बना देती है।

"जिस की जैसी प्रकृति, जिस का जैसा भाव, वह वही भाव लिए रहता है।

"बारोयारी (मुहल्ले के सम्मिलित उत्सव) में नाना मूर्त्तियाँ बनाते हैं,— और नाना प्रकार के लोग वहाँ जाते हैं। राधा-कृष्ण, हर-पार्वती, सीता-राम; भिन्न-भिन्न स्थान पर भिन्न-भिन्न मूर्त्ति रहती है, और प्रत्येक मूर्त्ति के पास लोगों की भीड़ हो जाती है। जो वैष्णव हैं, वे अधिक राधा-कृष्ण के पास खड़े रहकर देखते हैं। जो शाक्त हैं, वे हर-पार्वती के पास। जो राम-भक्त हैं, वे सीता-राम की मूर्त्ति के पास।

"किन्तु जिनका किसी भी देवता की ओर मन नहीं है, उनकी अलग बात है। वेश्या उपपति को झाड़ू मारती है,— सम्मिलित उत्सव में ऐसी मूर्त्तियाँ भी बनाते हैं। ऐसे लोग वहाँ पर खड़े 'हा' करके देखते हैं, और चिल्लाकर मित्र से कहते हैं, 'अरे ओ, यह सब क्या देख रहे हो? इधर आ। इस तरफ आ'।"

सब हँस रहे हैं। गोस्वामी ने प्रणाम करके विदा ग्रहण की।

चतुर्थ परिच्छेद

छोकरे भक्तों के संग आनन्द—
माँ काली की आरती का दर्शन और चँवर डुलाना

(माँ-बेटे की बातें— 'विचार क्यों करवाती हो?')

समय पाँच। ठाकुर पश्चिम के गोल बरामदे में हैं। बाबूराम, लाटु, दोनों भाई मुखर्जी, मास्टर आदि संग-संग आए हैं।

श्रीरामकृष्ण *(मास्टर आदि के प्रति)*— क्यों एकघेया (कट्टर) होऊँ? ये

लोग वैष्णव हैं और फिर कट्टर हैं, सोचते हैं हमारा मत ही ठीक है, और सब गलत हैं। जो बातें कही हैं, उसे (राधिका गोस्वामी को) खूब लगी हैं। *(सहास्य)* हाथी के सिर पर अंकुश मारना पड़ता है। क्योंकि उसके सिर पर कोष (कोमल अंग) रहता है। *(सब का हास्य)*।

ठाकुर अब छोकरों के साथ हँसी-मजाक करने लगे।

श्रीरामकृष्ण *(भक्तों के प्रति)*— मैं इन्हें (लड़कों को) केवल निरामिष ही नहीं देता। कभी-कभी आमिष धोया जल भी थोड़ा-थोड़ा-सा देता हूँ। वैसा न हो तो आएँगे क्यों?

मुखर्जी बरामदे में से चले गए। बागान में थोड़ा टहलेंगे।

श्रीरामकृष्ण *(मास्टर के प्रति)*— मैं जप... किया करता था। समाधि हो जाती थी, यह कैसा भाव?

मास्टर *(गम्भीर भाव से)*— जी, बड़ा अच्छा है।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— साधु! साधु!— किन्तु वे लोग (मुखर्जी) क्या सोचेंगे?

मास्टर— क्यों? कप्तान ने तो कहा था, आपकी बालक की अवस्था है। ईश्वर-दर्शन कर लेने पर बालक की अवस्था हो जाती है।

श्रीरामकृष्ण— और बाल्य, पौगण्ड (किशोर) और युवा। किशोर अवस्था में बकवास करता है, मुख से हो सकता है खेउड़ (गालियाँ, गन्दे गाने) ही निकलें। और युवा अवस्था में सिंह की न्यायीं लोकशिक्षा देता है।

"तुम चाहे उन्हें (मुखर्जियों को) समझा देना।"

मास्टर— जी, मुझे समझाना नहीं पड़ेगा। वे क्या फिर जानते नहीं?

श्रीरामकृष्ण छोकरों के साथ थोड़ा आमोद-आह्लाद करके एक भक्त से कह रहे हैं,

"आज अमावस्या है, माँ के मन्दिर में जाइयो!"

सन्ध्या के बाद आरती का शब्द सुनाई दे रहा है। ठाकुर बाबूराम से कह

रहे हैं—

''चल रे चल। काली-मन्दिर में!''

ठाकुर बाबूराम के संग जा रहे हैं— मास्टर भी संग हैं। हरीश को बरामदे में बैठे हुए देखकर ठाकुर कहते हैं, ''लगता है, इसे फिर भाव हुआ है।''

आँगन में से चलते-चलते श्री श्री राधाकान्त की आरती तनिक देखी। तत्पश्चात् माँ काली के मन्दिर की ओर चलने लगे। जाते-जाते हाथ उठाकर जगन्माता को पुकार रहे हैं— ''माँ! ओ माँ! ब्रह्ममयी!'' मन्दिर के सामने चबूतरे पर उपस्थित होकर माँ को भूमिष्ठ होकर प्रणाम कर रहे हैं। माँ की आरती हो रही है। ठाकुर ने मन्दिर में प्रवेश किया और चँवर डुलाने लगे।

आरती समाप्त हो गई। जो जन आरती देख रहे थे, सबने एकदम भूमिष्ठ होकर प्रणाम किया। ठाकुर श्रीरामकृष्ण ने भी मन्दिर के बाहर आकर प्रणाम किया। महेन्द्र मुखर्जी आदि भक्तों ने भी प्रणाम किया।

आज अमावस्या है। ठाकुर भावाविष्ट हो गए हैं। गर्गर (पूरी तरह) मतवाले हैं! बाबूराम का हाथ पकड़कर मतवाले की न्यायीं डगमगाते हुए अपने कमरे में लौटे।

कमरे के पश्चिम के गोल बरामदे में फराश (लैम्प आदि जलाने वाला सेवक) एक लैम्प जला गया है। ठाकुर उसी बरामदे में आकर थोड़ा बैठ गए। मुख में हैं 'हरि ॐ! हरि ॐ!' और तन्त्रोक्त नाना प्रकार के बीजमन्त्र।

कुछ क्षण पश्चात् ठाकुर कमरे में अपने आसन पर पूर्वास्य होकर बैठे हुए हैं। अब भी भाव 'पूर्ण' मात्रा में है।

दोनों भाई मुखर्जी, बाबूराम आदि भक्त फर्श पर बैठे हुए हैं।

(Origin of language— The philosophy of prayer)

ठाकुर श्रीरामकृष्ण भावाविष्ट होकर माँ के साथ बातें कर रहे हैं— कह रहे हैं—

''माँ, मैं बोलूँगाऽतब तुम करोगी— यह तो बात नहीं।

"बातें करना क्या है ?— यह केवल इशारे के अतिरिक्त और कुछ नहीं! कोई कहता है, 'मैं खाऊँगा,'— और फिर कोई कहता है, 'जा! मैं नहीं सुनूँगा।'

"अच्छा माँ! यदि कहता नहीं कि 'मैं खाऊँगा' तो फिर क्या जैसी भूख है वैसी ही भूख नहीं रहती? तुम से कहने पर ही तुम सुनोगी, और केवल भीतर से व्याकुल होने पर तुम नहीं सुनोगी,— वह तो कभी नहीं हो सकता।

"तुम तो जो हो वही हो— किन्तु फिर बोलता क्यों हूँ— प्रार्थना क्यों करता हूँ ?

"ओ! जैसा करवाती हो, वैसा ही करता हूँ।

"जा! सब गड़बड़ हो गई !— विचार क्यों करवाती हो!— "

ठाकुर ईश्वर के संग बातें कर रहे हैं।— भक्तगण अवाक् होकर सुन रहे हैं।

(संस्कार और तपस्या का प्रयोजन— भक्तों को शिक्षा— साधु-सेवा)

अब की बार भक्तों के ऊपर ठाकुर की दृष्टि पड़ी है।

श्रीरामकृष्ण *(भक्तों के प्रति)*— उनको प्राप्त करने के लिए संस्कार आवश्यक है। कुछ थोड़ा-सा किया हुआ होना चाहिए— तपस्या। वह इस जन्म में ही हो अथवा पूर्वजन्म में ही हो।

"द्रौपदी का जब वस्त्रहरण किया था, तब उनका व्याकुल क्रन्दन सुनकर भगवान ने दर्शन दिया। और बोले, 'तुमने यदि किसी को कभी भी वस्त्र-दान कर रखा है, उसे स्मरण करके देखो— तभी लज्जा निवारण होगी।' द्रौपदी बोली, हाँ, स्मरण आ गया। एक ऋषि स्नान कर रहे थे,— उनका कौपीन (लंगोट) बह गया था। मैंने अपनी आधी धोती फाड़कर उनको दे दी थी।' भगवान बोले— 'तो फिर तुम्हें अब भय नहीं।'

मास्टर ठाकुर के आसन के पूर्व की ओर पायदान पर बैठे हैं।

(मास्टर के प्रति)— "तुम इसे समझ गए हो ?"

मास्टर— जी, संस्कार की बात।

श्रीरामकृष्ण— एक बार कहो तो सुनूँ, क्या कहा है मैंने।

मास्टर— द्रौपदी नहाने गई थी इत्यादि। (हाजरा का प्रवेश)।

पञ्चम परिच्छेद

(हाजरा महाशय)

हाजरा महाशय यहाँ पर दो वर्ष से हैं। उन्होंने ठाकुर की जन्मभूमि कामारपुकुर के निकटवर्ती सिओड़ ग्राम में उनका प्रथम दर्शन किया था, 1880 ईसवी में। इसी ग्राम में ठाकुर के भान्जे, फुफेरी बहन हेमांगिनी देवी के पुत्र, श्रीयुक्त हृदय मुखोपाध्याय का वास है। ठाकुर उस समय हृदय के घर में ठहरे हुए थे।

सिओड़ के निकटवर्ती मरागोड़ ग्राम में है हाजरा महाशय का निवास। उनकी धन-सम्पत्ति, जमीन आदि कुछ है। स्त्री, सन्तान आदि है। एक प्रकार से चल रहा है। कुछ देना भी है, लगभग हजार रुपया।

यौवनकाल से ही उनका वैराग्य का भाव है— कहाँ साधु, कहाँ भक्त हैं, खोजते फिरते हैं। जब दक्षिणेश्वर के काली-मन्दिर में प्रथम आए थे और वहाँ पर रहना चाहा था तो ठाकुर ने उनका भक्तिभाव देखकर और गाँव का परिचित जानकर, वहाँ पर प्रयत्न करके अपने पास रख लिया था।

हाजरा का ज्ञानी का भाव है। वे ठाकुर के भक्तिभाव और छोकरों के लिए उनकी व्याकुलता को पसन्द नहीं करते। कभी-कभी उनको मन में महापुरुष समझते हैं। और फिर कभी सामान्य व्यक्ति समझते हैं।

उन्होंने ठाकुर के कमरे के दक्षिण-पूर्व के बरामदे में आसन किया हुआ है। उसी स्थान पर ही माला लेकर बहुत-सा जप करते हैं। राखाल आदि भक्तगण अधिक जप नहीं करते, इस कारण लोगों के निकट वे उनकी निन्दा करते हैं।

वे आचार के बड़े पक्षपाती हैं। आचार, आचार करके उन्हें एक तरह से शुचिबाई हो गई है। उनकी वयस 28 वर्ष होगी।

हाजरा महाशय ने कमरे में प्रवेश किया। ठाकुर फिर थोड़े भावाविष्ट हो गए हैं और बातें कर रहे हैं।

(ईश्वर क्या प्रार्थना सुनते हैं? ईश्वर के लिए क्रन्दन करो, सुनेंगे)

श्रीरामकृष्ण *(हाजरा के प्रति)*— तुम जो कर रहे हो, वह ठीक है, किन्तु ठीक-ठीक बैठता नहीं है।

''किसी की निन्दा मत करो— कीड़े तक की भी नहीं। तुम स्वयं ही तो सुनाते हो, लोमस मुनि की कहानी। जैसे भक्ति, प्रार्थना करोगे वैसे ही वह भी कहोगे— जैसे किसी की निन्दा न करूँ।''

हाजरा— (भक्ति) प्रार्थना करने पर वे सुनेंगे?

श्रीरामकृष्ण— एक— सौ— बार!— यदि ठीक हो— यदि आन्तरिक हो। विषयी व्यक्ति जैसे पुत्र या स्त्री के लिए रोता है, उसी प्रकार ईश्वर के लिए कहाँ क्रन्दन करता है?

(पूर्वकथा— स्त्री के असुख में कामारपुकुर-वासी का थर-थर कम्प)

''वहाँ पर किसी व्यक्ति की स्त्री को असुख हुआ था। हटेगा नहीं, यह सोचकर वह व्यक्ति थर-थर काँपने लगा— बेहोश हो गया और क्या!

''इस प्रकार ईश्वर के लिए कौन होता है!''

हाजरा ठाकुर के पाँव की धूल लेते हैं।

श्रीरामकृष्ण *(संकुचित होकर)*— ''यह सब क्या है?''

हाजरा— जिनके पास मैं रहता हूँ उनके पाँव की धूल नहीं लूँगा?

श्रीरामकृष्ण— ईश्वर को तुष्ट करो, सब ही तुष्ट हो जाएँगे। तस्मिन् तुष्टे जगत् तुष्टम्!— भगवान जब द्रौपदी की हाण्डी का साग खा कर बोले थे, मैं तृप्त हो

गया हूँ, तब जगत के सब जीव तृप्त हो गए, उथल-पुथल मच गई थी! मुनियों के खाने पर क्या जगत तुष्ट हो जाता,— क्या उथल-पुथल मच जाती ?

लोकशिक्षा के लिए कुछ कर्म करना चाहिए, ठाकुर ये बातें बता रहे हैं।

(पूर्वकथा— बटतले के साधु की गुरु-पादुका और शालग्राम-पूजा)

श्रीरामकृष्ण *(हाजरा के प्रति)*— ज्ञान-प्राप्ति के पश्चात् भी लोकशिक्षा के लिए पूजा आदि कर्म रखते हैं।

''मैं काली-मन्दिर जाता हूँ, और फिर कमरे के इन सब चित्रों को नमस्कार करता हूँ;— जभी तो सब करते हैं। तब फिर अभ्यास हो जाने पर यदि न करे तो मन हुस्-हुस् (खुचर-पुचर) करेगा।

''बटतले संन्यासी को देखा था। उसने आसन पर गुरु-पादुका रखी हुई थी। उसके ही ऊपर शालग्राम रखा हुआ था! और पूजा कर रहा था! मैंने पूछा, 'यदि इतना अधिक ज्ञान हो जाए तो फिर पूजा क्यों करना ?' संन्यासी बोला,— सब ही किया जा रहा है— इसे भी थोड़ा-सा कर लिया! कभी फूल को इस पाँव पर दे दिया, और फिर कभी एक फूल को उस पाँव पर दे दिया।'

''देह रहते कर्मत्याग नहीं होता— कीचड़ के रहते बुलबुला होगा ही*।''

(The three stages— शास्त्र, गुरुमुख, साधना; Goal प्रत्यक्ष)

(हाजरा से)— एक ज्ञान के रहने पर अनेक ज्ञान भी हैं। केवल शास्त्र पढ़कर क्या होगा ?

''शास्त्र में रेत और चीनी मिले रहते हैं— चीनी-चीनी लेना बड़ा ही कठिन है। इसलिए शास्त्र का मर्म साधु-मुख से, गुरु-मुख से सुनकर लेना

---

* न हि देहभृता शक्यं त्यक्तुम् कर्माण्यशेषतः।
यस्तु कर्मफलत्यागी स त्यागीत्यभिधीयते॥ (गीता— 18 : 11)

चाहिए। तब फिर ग्रन्थ का क्या प्रयोजन?

"चिट्ठी में खबर आई,— 'पाँच सेर सन्देश भेज देना, और एक रेलपाड़ की धोती भेज दो।' जब पत्र खो गया तब घबराकर चारों तरफ खोजता है। बहुत खोजने पर पत्र मिल गया, पढ़कर देखा, लिखा था,— 'पाँच सेर सन्देश और एक रेलपाड़ की धोती भेज दो।' तब पत्र को फिर दोबारा फेंक देता है। फिर इसका क्या प्रयोजन? अब तो सन्देश और धोती जमा करने का ही काम है।

(मुखर्जी, बाबूराम, मास्टर आदि भक्तों के प्रति)— "सब सन्धान पता करके तब फिर डुबकी लगाओ। तालाब के अमुक स्थान पर लोटा गिरा है, जगह का निश्चय करके उसी स्थान पर डुबकी लगानी चाहिए।

"शास्त्र का मर्म गुरु-मुख से सुनकर, तब फिर साधना करनी चाहिए। इस साधन का ठीक निश्चय होने पर ही तब प्रत्यक्ष दर्शन होता है।

"डुबकी लगा लेने पर ही तब ठीक-ठीक साधन होता है! बैठे-बैठे शास्त्र की बातें लेकर केवल विचार करने से क्या होगा? सब साले पथ में जाने की बातें ही केवल लेकर मरते हैं— मरो सालो, डुबकी लगाओ!

"यदि कहो कि डुबकी लगाने पर भी शार्क (shark) और मगरमच्छ का भय है, कामक्रोध आदि का भय है तो हल्दी लगाकर डुबकी मारो— वे निकट नहीं आ सकेंगे। विवेक-वैराग्य हल्दी है।"

षष्ठ परिच्छेद

पूर्वकथा— श्रीरामकृष्ण की पुराण, तन्त्र और वेदमत की साधना

(पञ्चवटी, बेलतला और चाँदनी में साधन— तोता से संन्यास ग्रहण—1866)

श्रीरामकृष्ण *(भक्तों के प्रति)*— उन्होंने मुझ से नाना रूपों में साधन करवा लिए हैं। प्रथम पुराण मत का— फिर तन्त्र मत का और फिर वेद मत का।

प्रथम पञ्चवटी में साधना किया करता था। तुलसी-कानन बनाकर— उसमें बैठ कर ध्यान किया करता था। कभी-कभी व्याकुल होकर 'माँ! माँ!' पुकारा करता था अथवा 'राम! राम!' किया करता था।

''जब 'राम! राम!' किया करता था तब हनुमान के भाव में कभी पूँछ लगा कर बैठ जाता! उन्माद की अवस्था थी। उस समय पूजा करते हुए रेशम (गरद) की धोती पहन कर आनन्द हुआ करता था— पूजा का ही आनन्द!

''तन्त्र मत की साधना बेलतले पर हुई। तब तुलसी का पौधा, सहिजन का फल— एक लगते थे!

''उस अवस्था में सारी रात की पड़ी हुई, दुर्गा माँ की झूठ (पहली रात माँ को लगाया भोग)— उसे पता नहीं साँप ने खाया है या किस ने खाया है— वही झूठ ही आहार होता था।

''कुत्ते के ऊपर चढ़कर उसके मुख में पूरी देकर खिलाया करता था, और स्वयं भी खाता था। सर्वं विष्णुमयं जगत।— जमीन पर इकट्ठे हुए जल से आचमन करता था; मैंने उस धरती पर तालाब से जल लाकर, डालकर आचमन किया था।

''अविद्या का नाश बिना किए नहीं होगा। मैं इसीलिए बाघ बना करता था— फिर अविद्या को खा लेता था।

''वेदमत के साधन के समय संन्यास लिया था। तब चाँदनी (दक्षिणेश्वर-मन्दिर का बराण्डा) में पड़ा रहा करता था— हृदय से कहता था— 'मैं संन्यासी हुआ हूँ, चाँदनी में भात खाऊँगा!''

(साधनकाल में नाना दर्शन और जगन्माता का वेदान्त, गीता के सम्बन्ध में उपदेश)

(भक्तों के प्रति)— ''धरना देकर पड़ गया! माँ से कहा, मैं मूर्ख हूँ, तुम मुझे जनवा दो— वेद, पुराण, तन्त्र— नाना शास्त्रों में क्या है?

''माँ बोली, वेदान्त का सार है— ब्रह्म सत्य, जगत मिथ्या। जिस

सच्चिदानन्द ब्रह्म की बात वेद में है, उन्हें तन्त्र में कहते हैं, सच्चिदानन्द शिव— और फिर उन्हें ही पुराण में कहते हैं, सच्चिदानन्द कृष्ण।

"गीता, गीता दस बार कहने से जो होता है, वही गीता का सार है। अर्थात् त्यागी, त्यागी!

"उनकी जब प्राप्ति हो जाती है, वेद, वेदान्त, पुराण, तन्त्र— कितने नीचे पड़े रहते हैं।

(हाजरा से) "तब ॐ उच्चारण नहीं किया जाता।— ऐसा क्यों होता है? समाधि से बहुत नीचे उतरे बिना ॐ उच्चारण नहीं कर सकता।

"प्रत्यक्ष दर्शन के बाद जो-जो अवस्थाएँ शास्त्र में हैं, वे सब (मेरी) हुई थीं। बालकवत्, पिशाचवत्, जड़वत्।

"और शास्त्र में जिस प्रकार से है, उसी प्रकार दर्शन भी होते थे।

"कभी आग के स्फुलिंग जगत भर में देखता था।

"कभी चारों ओर जैसे पारे की झील,— झक्-झक् कर रही है। और फिर कभी पिघली हुई चाँदी को देखता था।

"कभी देखता था मानो रंग-बिरंगी मशालें जल रही हैं!

"शास्त्र के संग एक (मेल) हो रहा है, इस से ही हुआ।"

(श्रीरामकृष्ण की अवस्था— नित्यलीला-योग)

"और फिर दिखलाया— वे ही जीव, जगत, चौबीस तत्त्व बने हुए हैं! छत पर चढ़कर फिर सीढ़ियों से उतरना। अनुलोम और विलोम।

"उह! कैसी अवस्थाओं में ही रखा!— एक अवस्था जाती तो और एक आ जाती। जैसे ढेंकी का पाट। एक ओर नीचा होता है तो दूसरी ओर ऊँचा हो जाता है।

"जब अन्तर्मुख समाधिस्थ— तब भी देखता हूँ उन्हें! और फिर जब बाहर के जगत में मन आ गया, तब भी देखता हूँ उन्हें।

"जब आरसी (दर्पण) की इस तरफ देखता हूँ तब भी वे! और फिर जब उल्टी पीठ देखता हूँ तब भी वे।"

दोनो भाई मुखर्जी, बाबूराम आदि भक्तगण अवाक् होकर सुन रहे हैं।

सप्तम परिच्छेद

(पूर्वकथा— शम्भुमल्लिक की अनासक्ति— महापुरुष का आश्रय)

श्रीरामकृष्ण *(मुखर्जी आदि से)*— काप्तेन की ठीक साधक की अवस्था है।

"ऐश्वर्य रहने से जो आसक्त होना ही होगा, ऐसा कुछ नहीं है। शम्भु (मल्लिक) कहता था, 'हृदु, मैं तो पोटला बाँधे बैठा हुआ हूँ!' मैं कहता, कैसी अलक्षणी बात कर रहे हो!— तब शम्भु ने कहा, 'नहीं, आप कहो कि जैसे सब छोड़कर उनके पास चला जाऊँ!'

"उनके भक्त को भय नहीं है। भक्त उनका आत्मीय (अपना जन) है। वे उन्हें खींच लेंगे। दुर्योधन हर के गन्धर्वों के पास बन्दी हो जाने पर युधिष्ठिर ने ही उद्धार किया। बोले, आत्मीय जनों की वैसी हालत होने से तो हम पर ही कलंक है।"

(ठाकुर-मन्दिर के ब्राह्मण और परिचारकगणों को भक्तिदान)

रात्रि के प्राय: नौ हो गए। दोनों भाई मुखर्जी कलकत्ता लौटने के लिए प्रस्तुत (तैयार) हो रहे हैं। ठाकुर ने उठकर थोड़ा कमरे और बरामदे में टहलते-टहलते विष्णु-मन्दिर में उच्च संकीर्त्तन होते हुए सुना। उनके पूछने पर एक भक्त बोले, उनके संग में लाटु और हरीश भी मिल गए हैं। ठाकुर बोले, "तभी तो!"

ठाकुर विष्णु-मन्दिर में आए। साथ-साथ भक्तगण भी आए। उन्होंने श्री श्री राधाकान्त को भूमिष्ठ होकर प्रणाम किया।

ठाकुर ने देखा कि ठाकुर-मन्दिर के ब्राह्मण— जो भोग पकाते हैं,

नैवेद्य बना देते हैं, अतिथियों को परोसते हैं और परिचारकगण, बहुत से इकट्ठे मिलकर नाम-संकीर्तन कर रहे हैं। ठाकुर ने थोड़ी देर खड़े होकर उनका उत्साहवर्धन किया।

आँगन में से लौटकर आते समय भक्तों से कह रहे हैं— ''देखो, इन सब में से कोई वेश्या के घर जाता है, कोई बर्त्तन माँजता है!''

कमरे में आकर ठाकुर अपने आसन पर फिर बैठ गए हैं। जो लोग संकीर्त्तन कर रहे थे, उन्होंने आकर ठाकुर को प्रणाम किया।

ठाकुर उनसे कहते हैं—

''रुपये के लिए जैसे पसीना बहाते हो, वैसे ही हरि-नाम करके नाच-गाकर पसीना बाहर करना (बहाना) चाहिए।

''मैंने सोचा था, तुम्हारे संग में नाचूँगा। जाकर देखा कि छौंक, तुड़का सब डल गया है— मेथी पर्यन्त। *(सब का हास्य)*— मैं और किस का सम्बरा (छौंक) दूँगा।

''तुम लोग बीच-बीच में हरि-नाम करने इसी प्रकार आओ।''

मुखर्जी आदि ने ठाकुर को प्रणाम करके विदा ग्रहण की।

ठाकुर के कमरे के ठीक उत्तर के छोटे बरामदे के पास मुखर्जियों की गाड़ी आकर खड़ी हो गई। गाड़ी पर बत्तियाँ जली हुई हैं।

(भक्त-विदा और ठाकुर का स्नेह)

ठाकुर उसी बरामदे के चौंतरे के ठीक उत्तर-पूर्व कोण में उत्तरास्य होकर खड़े हुए हैं। एक भक्त रास्ता दिखलाने के लिए प्रकाश ले आए हैं— भक्तों को चढ़ा देंगे।

आज अमावस्या— अन्धेरी रात।— ठाकुर के पश्चिम की ओर गंगा, सम्मुख नहबत, पुष्प-उद्यान और कोठी है, ठाकुर के दायीं ओर सदर फाटक को जाने का पथ है।

भक्तगण उनके चरणों में अवलुण्ठित हो (मस्तक टिकाकर) एक-एक करके गाड़ी पर चढ़ रहे हैं। ठाकुर एक जन भक्त से कहते हैं— ''ईशान को एक बार कहो न— उसके कर्म के लिए।''

गाड़ी में अधिक लोग देखकर, पीछे घोड़े को कष्ट न हो— ठाकुर कह रहे हैं, ''गाड़ी में इतने लोग क्या समा पाएँगे?''

ठाकुर खड़े हुए हैं। उसी भक्तवत्सल मूर्त्ति को देखते-देखते भक्तों ने कलकत्ता की यात्रा की।

एकविंश खण्ड

ठाकुर श्रीरामकृष्ण दक्षिणेश्वर-मन्दिर में लाटु, मास्टर, मणिलाल, मुखर्जी आदि भक्तों के संग

प्रथम परिच्छेद

(ब्राह्म मणिलाल को उपदेश— विद्वेषभाव dogmatism छोड़ो)

ठाकुर श्रीरामकृष्ण दक्षिणेश्वर-मन्दिर में भक्तों के संग में बैठे हुए हैं।

आज है बृहस्पतिवार, 2 अक्तूबर, 1884 ईसवी— 17वीं आश्विन 1291 (बंगला) साल। आश्विन शुक्ला द्वादशी-त्रयोदशी— श्री श्री विजयादशमी के दो दिन पश्चात्। गत कल ठाकुर ने कलकत्ता में अधर के घर में शुभागमन किया था। वहाँ पर नारा'ण, बाबूराम, मास्टर, केदार, विजय प्रभृति अनेक जन थे। ठाकुर ने वहाँ पर भक्तों के संग कीर्त्तनानन्द में नृत्य किया था।*

ठाकुर के पास आजकल लाटु, रामलाल, हरीश रहते हैं। बाबूराम भी कभी-कभी आकर रहते हैं। श्रीयुक्त रामलाल श्री श्री भवतारिणी की सेवा करते हैं। हाजरा महाशय भी हैं।

आज श्रीयुक्त मणिलाल मल्लिक, प्रिय मुखर्जी, उनका आत्मीय हरि, शिवपुर के एक ब्राह्मभक्त (दाढ़ीवाले); बड़ाबाजार, 12 नम्बर मल्लिकस्ट्रीट के मारवाड़ी भक्तगण— उपस्थित हैं। धीरे-धीरे दक्षिणेश्वर के कई छोकरे, सींती के महेन्द्र कविराज आदि भक्तगण आए हैं। मणिलाल

---

* कथामृत भाग-2 : 18 (पृष्ठ 229— संस्करण 2008)

पुराने ब्राह्मभक्त हैं।

श्रीरामकृष्ण *(मणिलाल आदि के प्रति)*— नमस्कार मन से ही अच्छा है। पाँव में हाथ देकर नमस्कार की क्या आवश्यकता है? फिर मानसिक नमस्कार करने से कोई कुण्ठित नहीं होगा (किसी को संकोच नहीं होगा)।

''मेरा ही धर्म ठीक है, और सबका मिथ्या, यह भाव अच्छा नहीं।

''मैं देखता हूँ वे ही सब कुछ होकर रह रहे हैं— मनुष्य, प्रतिमा, शालग्राम— सबके भीतर ही एक देखता हूँ। एक छोड़ दूसरा मैं नहीं देखता!

''अनेक ही सोचते हैं हमारा मत ठीक है, और सब गलत हैं— हम जीते हैं और सब हार गए हैं। किन्तु जो आगे बढ़ आए हैं, वे शायद, थोड़े-से कुछ के लिए अटक गए हैं! जो पीछे रह गए थे, वे तब (इतने में) आगे बढ़ गए। गोलकधाम के खेल में, अनेक ही आगे आ जाते हैं पर गिट्टी (प्रयोजन-अनुसार) पड़ती ही नहीं।

''हार-जीत उनके हाथ में है। उनका कार्य कुछ भी समझ में नहीं आता। देखो ना, डाब (कच्चा हरा नारियल) इतने ऊँचे पर रहता है, धूप पड़ती है, तब भी ठण्डी शक्ति (तासीर) है! इधर सिंघाड़ा जल में रहता है— गरम गुण है।

''मनुष्य का शरीर देखो। सिर जो मूल (जड़) है, वही ऊपर चला गया है।''

(श्रीरामकृष्ण, चार आश्रम, योग-तत्त्व— ब्राह्मसमाज और 'मनोयोग')

मणिलाल— अब हमारा क्या कर्त्तव्य है?

श्रीरामकृष्ण— कुछ भी करके उनके संग में योग करके रहना। दो पथ हैं— कर्मयोग और मनोयोग।

''जो गृहस्थ आश्रम में हैं, उनका योग कर्म के द्वारा होता है। ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ, संन्यास। संन्यासी काम्य कर्मों का त्याग करेंगे* किन्तु

* गीता— अध्याय 18 के श्लोक 2, 3 द्रष्टव्य।

नित्यकर्म कामनाशून्य होकर करेंगे। दण्ड-धारण, भिक्षा करना, तीर्थ-यात्रा, पूजा, जप इन सब कर्मों द्वारा उनके संग योग होता है।

"फिर जो कर्म ही करो, फल की इच्छा त्याग करके कामनाशून्य होकर, कर सकने पर उनके संग में योग हो जाता है।

"और एक पथ है मनोयोग। ऐसे योगी के बाहर के कोई चिह्न नहीं होते। अन्तर में योग रहता है। जैसे जड़भरत, शुकदेव। और भी कितने हैं— परन्तु इनका नाम प्रसिद्ध है! इनके शरीर के बाल, दाढ़ी— जैसे होते हैं वैसे ही रहते हैं।

"परमहंस-अवस्था में कर्म झड़ जाता है। स्मरण-मनन रहता है। सर्वदा ही मन का योग रहता है। यदि कर्म करता है तो वह लोकशिक्षा के लिए।

"कर्म के द्वारा ही योग हो, चाहे मन के द्वारा ही योग हो, भक्ति होने पर सब जाना जा सकता है।

"भक्ति से कुम्भक अपने-आप हो जाता है— एकाग्र मन होने पर ही वायु स्थिर हो जाती है, और वायु स्थिर होने से मन एकाग्र हो जाता है, बुद्धि स्थिर हो जाती है। जिसकी होती है, उसे स्वयं पता नहीं लगता।"

(पूर्वकथा— साधनावस्था में जगन्माता से प्रार्थना— भक्तियोग)

"भक्तियोग में सब प्राप्त हो जाता है। मैंने माँ से रोते-रोते कहा था, 'माँ, योगियों ने योग करके जो जाना है, ज्ञानियों ने विचार करके जो जाना है— मुझे जनवा दो— मुझे दिखला दो!' माँ ने मुझे सब दिखला दिया है। व्याकुल होकर उनके पास क्रन्दन करने से वे सब जनवा देती हैं। वेद, वेदान्त, पुराण, तन्त्र— इन सब शास्त्रों में क्या है, सब उन्होंने मुझे जनवा दिया है।"

मणिलाल— हठयोग ?

श्रीरामकृष्ण— हठयोगीगण देहाभिमानी साधु हैं। केवल नेति-धौति करते

हैं— केवल देह के लिए प्रयत्न करते हैं। उनका उद्देश्य आयु वृद्धि करना है। देह को लेकर ही रात-दिन सेवा— वह ठीक नहीं।

(मणिमल्लिक, संसारी और मन से त्याग— केशवसेन की बात)

''तुम लोगों का कर्त्तव्य क्या है ?— तुम लोग मन से कामिनी-काञ्चन त्याग करोगे। तुम लोग संसार को काकविष्ठा नहीं कह सकते।

''गोस्वामी गृहस्थ हैं, तभी मैंने उनसे कहा था, 'तुम लोगों के यहाँ ठाकुर (भगवान)-सेवा है, तुम लोग संसार-त्याग क्या करोगे? तुम लोग गृहस्थ को माया कहकर उठा नहीं सकते।

''गृहस्थियों का जो कर्त्तव्य है, चैतन्यदेव ने बता दिया था— जीव पर दया, वैष्णव-सेवा, नाम-संकीर्त्तन।

''केशवसेव ने कहा था,— 'अब तो वे 'दोनों ही करो' कहते हैं। एक दिन 'कुट' करके डंक मारेंगे।' वैसा नहीं है— क्यों डंक मारूँगा ?''

मणिमल्लिक— जभी डंक मारते हैं।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— क्यों? तुम तो वैसे ही (ठीक) हो— तुम्हें त्याग करने की क्या आवश्यकता है ?

द्वितीय परिच्छेद

(आचार्य का कामिनी-काञ्चन त्याग, जभी लोकशिक्षा का अधिकार— संन्यासी का कठिन नियम— ब्राह्म मणिलाल को शिक्षा)

श्रीरामकृष्ण— जिन के द्वारा वे लोकशिक्षा देंगे, उन्हें गृहस्थ-त्याग करना आवश्यक है। जो आचार्य हैं, उन्हें कामिनी-काञ्चन-त्यागी होना प्रयोजनीय है। वैसा बिना हुए उपदेश ग्राह्य नहीं होता। केवल भीतर से त्याग होने से नहीं होगा। बाहर का त्याग भी होना चाहिए, तभी लोकशिक्षा होती है। वैसा न होने पर लोग सोचेंगे ये भले ही कामिनी-काञ्चन-त्याग करने के लिए

कहते तो हैं, ये स्वयं भीतर-भीतर वह सब भोग करते हैं।

"एक कविराज (वैद्य) ने औषध देकर रोगी से कहा, तुम फिर एक दिन आओ, खाने-पीने की बात बता दूँगा। उस दिन उसके कमरे में कई हाँडियाँ गुड़ की थीं। रोगी का घर काफी दूर था। वह और एक दिन आकर मिला। कविराज ने कहा, 'खाना-पीना सावधानी से करना, गुड़ खाना अच्छा नहीं है।' रोगी के चले जाने पर किसी ने वैद्य से कहा, 'उसे इतना कष्ट देकर क्यों बुलाया? उसी दिन बताने से ही हो जाता!' वैद्य हँस कर बोला, 'उसका अर्थ है। उस दिन कमरे में गुड़ की अनेक हाँडियाँ थीं। उस दिन यदि कहता तो रोगी को विश्वास नहीं होता। वह सोचता उस के कमरे में जब इतनी हाँडियाँ गुड़ की हैं तो निश्चय ही ये कुछ-कुछ खाते हैं। तब तो फिर गुड़ इतनी बुरी वस्तु नहीं है।' आज मैंने गुड़ की हाँडियाँ छिपा दी हैं, अब विश्वास होगा।

"आदि समाज के आचार्य को देखा था। सुना था, दूसरी या तीसरी विवाहिता थी!— बड़े-बड़े लड़के!

"ऐसे ही तो सब आचार्य हैं! ये लोग यदि कहें, 'ईश्वर सत्य, और सब मिथ्या' तो कौन विश्वास करेगा!— इनका शिष्य जैसा होगा, समझ ही सकते हो!

"हेगो गुरु तार पेदो शिष्य! (हगने वाले गुरु का पादने वाला शिष्य!) संन्यासी भी यदि मन से त्याग करके, बाहर से कामिनी-काञ्चन लेकर रहे— तो उसके द्वारा लोकशिक्षा नहीं होती। लोग कहेंगे छिप-छिप कर 'गुड़' खाता है।"

(श्रीरामकृष्ण का काञ्चन-त्याग— कविराज के पाँच रुपए लौटाए)

"सींती का महेन्द्र (कविराज) रामलाल के पास पाँच रुपए दे गया था— मुझे पता नहीं लगा।

"रामलाल के बताने पर मैंने पूछा, किसको दिए हैं? उसने कहा, यहाँ के लिए। मैंने पहले तो सोचा, दूध का देना है; चलो इन्हें ही दे दिया जाएगा। ओ माँ! कुछ रात गए बेचैनी से उठ गया। छाती में मानो बिल्ली खरोंच रही

है! रामलाल से जाकर फिर दोबारा पूछा— 'तेरी चाची को दिए हैं क्या?' वह बोला, 'नहीं'। तब उससे कहा, 'तू अभी लौटाकर आ!' रामलाल ने उसके पश्चात् दूसरे दिन रुपए लौटा दिए।

"संन्यासी के पक्ष में रुपया लेना अथवा लोभ में आसक्त होना कैसा है, जानते हो? जैसे ब्राह्मण की विधवा ने बहुत समय निरामिष खाकर, ब्रह्मचर्य रखकर, वाग्मी उपपति कर लिया था! *(सब स्तम्भित)*।

"उस देश में भगी तेलिन के बहुत-से सामन्त शिष्य बन गए थे। शूद्रा को सब प्रणाम करते हैं, देखकर जमींदार ने एक दुष्ट व्यक्ति लगा दिया। उसने उसका धर्म नष्ट कर दिया— साधन-भजन सब मिट्टी हो गया। पतित संन्यासी भी उसी तरह का हो जाता है।"

(साधु-संग के पश्चात् श्रद्धा— केशवसेन और विजयकृष्ण गोस्वामी)

"तुम लोग गृहस्थ में हो, तुम लोगों के लिए सत्संग (साधु-संग) आवश्यक है।

"पहले साधु-संग, उसके पश्चात् श्रद्धा। साधु यदि उनका नाम-गुण अनुकीर्त्तन न करे, तो फिर कैसे लोगों को ईश्वर में श्रद्धा, विश्वास, भक्ति होगी? तीन पुरखों से अमीर जानकर ही तो लोग उसे मानेंगे?"

(मास्टर के प्रति)— "ज्ञान हो जाने पर भी सर्वदा अनुशीलन चाहिए। नागा कहता था, लोटा एक दिन माँज लेने से क्या होगा— पड़ा रहने पर फिर कालस (कलंक) लग जाएगी!

"तुम्हारे घर पर एक बार जाना होगा। तुम्हारे अड्डे का पता होने पर, वहाँ पर और भी भक्तों के संग मेल होगा। ईशान के पास एक बार जाना।"

(मणिलाल के प्रति)— "केशवसेन की माँ आई थी। उनके घर के छोकरों ने हरि-नाम किया। वह उनकी प्रदक्षिणा करके ताली बजाने लगी। देखा शोक में कातर नहीं हुई। यहाँ पर आकर एकादशी की माला लेकर जप करती है। सुन्दर भक्ति देखी।"

मणिलाल— केशवबाबू के पितामह रामकमल सेन भक्त थे। तुलसी-कानन में बैठकर नाम किया करते थे। केशव के बाप प्यारीमोहन भी भक्त वैष्णव थे।

श्रीरामकृष्ण— बाप वैसा न हो तो बेटा ऐसा नहीं होता। देखो ना, विजय की अवस्था।

"विजय के बाप भागवत पढ़ते-पढ़ते भाव में अज्ञान (बेहोश) हो जाते थे। विजय बीच-बीच में 'हरि! हरि!' बोल पड़ता है।

"आजकल विजय जो सब (ईश्वरीय रूप) दर्शन करता है, सब ठीक-ठीक करता है!

"साकार-निराकार की बात में विजय ने कहा— जैसे बहुरूपी का रंग— लाल, नीला, हरा भी होता है, और फिर कोई रंग भी नहीं। कभी सगुण, कभी निर्गुण।"

(विजय सरल— 'सरल होने पर ईश्वर-लाभ होता है')

"विजय अच्छा सरल है— खूब उदार, सरल न हो तो ईश्वर प्राप्त नहीं होते।

"विजय कल अधरसेन के घर पर गया था। वह मानो अपना ही घर है— सब ही जैसे अपने हैं।

"विषयबुद्धि बिना गए उदार, सरल नहीं होता।

यह कहकर ठाकुर गाना गाने लगे—

"अमूल्यधन पाबि रे मन होले खाँटि!"

[रे मन, शुद्ध हो जाने पर तू अमूल्य धन पाएगा।]

"मिट्टी बराबर (साफ) बिना हुए हँडी तैयार नहीं होती। भीतर रेत की कंकर रहने से हँडी फट जाती है। जभी कुम्हार पहले मिट्टी को सीधी (साफ) करता है।

"आरसी (शीशे) पर मैल पड़ी रहे तो मुख दिखाई नहीं देता। चित्तशुद्धि बिना हुए स्वस्वरूप-दर्शन नहीं होता।

''देखो ना, जहाँ पर अवतार हैं, वहाँ पर ही सरलता है। नन्दघोष, दशरथ, वसुदेव— ये सब सरल हैं।

''वेदान्त कहता है शुद्धबुद्धि बिना हुए ईश्वर को जानने की इच्छा नहीं होती। शेष जन्म अथवा बहुत तपस्या बिना हुए उदार, सरल नहीं होता।''

तृतीय परिच्छेद

(श्रीरामकृष्ण की बालक-अवस्था)

ठाकुर का पाँव थोड़ा-सा फूला-फूला बोध होने से वे बालक की न्यायीं चिन्तित हैं।

सींती के महेन्द्र कविराज ने आकर प्रणाम किया।

श्रीरामकृष्ण *(प्रिय मुखर्जी आदि भक्तों के प्रति)*— कल नारा'ण से कहा था, तू अपना पाँव दबाकर देख कि डोब (गढ़ा) पड़ता है कि नहीं। उसने दबाकर देखा— गढ़ा पड़ गया,— तब मैं बच गया।— *(मुखर्जी के प्रति)* तुम एक बार अपना पाँव दबाकर देखो तो, गढ़ा हुआ?

मुखर्जी— जी हाँ।

श्रीरामकृष्ण— आ: ! बच गया।

मणिमल्लिक— क्यों ? आप स्रोत के जल में नहाना। शोरा-फोरा (दवा) क्यों खाना ?

श्रीरामकृष्ण— ना जी, तुम लोगों के रक्त में जोर है,— तुम लोगों की बात अलग है!

''मुझे बालक की अवस्था में रखा हुआ है।

''घास के वन में एक दिन कुछ काट गया। मैंने सुन रखा था, साँप यदि दोबारा डंक मार दे, तो फिर वह विष खींच लेता है। जभी उस गड्ढे में हाथ दिए रहा। किसी ने आकर कहा— यह क्या कर रहे हो ?— साँप यदि उसी स्थान पर दोबारा डंक मारता है, तो फिर होता है। अन्य जगह पर काटने

से नहीं होता।

"सुना था— शरत् की हिम (ओस) अच्छी होती है,— कलकत्ता से गाड़ी में आते समय सिर बाहर निकाल कर हिम लगवाने लगा।" *(सब का हास्य)*।

(सींती के महेन्द्र के प्रति)— "तुम्हारा सींती का वही पण्डित अच्छा है— वेदान्त वागीश (वेदान्त वाक्य विशारद)। मुझे मानता है। जब मैंने कहा था, तुमने पढ़ा तो बहुत हुआ है किन्तु 'मैं अमुक पण्डित' यह अभिमान त्याग करो, तब उसे खूब आह्लाद हुआ।

"उसके साथ वेदान्त-वार्ता हुई।"

(मास्टर को शिक्षा— शुद्धात्मा, अविद्या, ब्रह्म, माया— वेदान्त विचार)

(मास्टर के प्रति)— "जो शुद्धआत्मा, वे निर्लिप्त। माया अथवा अविद्या उनमें है। इसी माया के भीतर तीन गुण हैं— सत्त्व, रज, तम। जो शुद्धआत्मा हैं उनमें ये तीन गुण रहते हैं, तो भी वे निर्लिप्त हैं। आग में यदि नीली टिकिया डाल दें, तो नीली शिखा दिखाई देती है; लाल टिकिया डाल दें, लाल शिखा दिखाई देती है। किन्तु आग का अपना कोई रंग नहीं है।

"जल में नीला रंग डाल दो, नीला जल हो जाएगा। और फिर फिटकरी डालने पर वही जल का ही रंग होगा।

"चाण्डाल मांस का बर्तन ले जा रहा था— उसने शंकराचार्य को छू दिया था। शंकराचार्य ने ज्योंहि कहा, मुझे छू लिया!— चाण्डाल ने कहा, 'ठाकुर, मैंने भी तुम्हें छुआ नहीं,— तुम ने भी मुझे छुआ नहीं! तुम शुद्धआत्मा— निर्लिप्त हो।'

"जड़-भरत ने भी ये ही सब बातें राजा रहुगण से कही थीं।

"शुद्धआत्मा निर्लिप्त और शुद्धआत्मा को देखा नहीं जाता। जल में लवण मिश्रित रहने पर लवण को चक्षु के द्वारा नहीं देखा जाता।

"जो शुद्धआत्मा हैं वे ही महाकारण हैं— कारण का कारण हैं।

स्थूल, सूक्ष्म, कारण, महाकारण। पञ्चभूत स्थूल। मन, बुद्धि, अहंकार सूक्ष्म हैं। प्रकृति अथवा आद्याशक्ति सबका कारण। ब्रह्म या शुद्धआत्मा कारण का कारण है।

''यही शुद्धआत्मा ही हम लोगों का स्वरूप है।

''ज्ञान किसे कहते हैं? इसी स्व-स्वरूप को जानना और उसमें मन रखना! यही शुद्धआत्मा को जानना है।''

(कर्म कितने दिन ?)

''कर्म कितने दिन ?— जितने दिन देह-अभिमान रहे; अर्थात् देह ही मैं हूँ— यह बुद्धि रहे। गीता में यही बात है। (गीता 18 : 11)

''देह में आत्मबुद्धि करने का नाम ही अज्ञान है।''

(शिवपुर के ब्राह्मभक्त के प्रति) आप क्या ब्राह्म हैं?

ब्राह्मभक्त— जी हाँ।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— मैं निराकार साधक की आँख, मुख देखकर समझ सकता हूँ। आप थोड़ी डुबकी लगाएँ। ऊपर तैरने पर रत्न नहीं प्राप्त होता। मैं साकार, निराकार सब मानता हूँ।

(मारवाड़ी भक्त और ठाकुर श्रीरामकृष्ण— जीवात्मा— चित्त)

बड़े बाजार के मारवाड़ी भक्तों ने आकर प्रणाम किया। ठाकुर उनकी बड़ाई करते हैं।

श्रीरामकृष्ण *(भक्तों के प्रति)*— आहा! ये जो भक्त हैं! सबका ठाकुरों, देवताओं के पास जाना— स्तव करना— प्रसाद पाना! अब की बार जिसे पुरोहित रखा था, वह तो भागवत का पण्डित है।

मारवाड़ी भक्त— 'मैं तुम्हारा दास' ऐसा जो कहता है, वही 'मैं' कौन है?

श्रीरामकृष्ण— लिंग शरीर अथवा जीवात्मा। मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार इन्हीं चारों को जोड़ने पर लिंग शरीर है।

मारवाड़ी भक्त— तो जीवात्मा क्या है?

श्रीरामकृष्ण— अष्टपाश-जड़ित आत्मा। और चित्त किसे कहते हैं? जो 'ओहो' कर उठता है।

(मारवाड़ी— मृत्यु के पश्चात् क्या होता है? माया क्या? 'गीता का मत')

मारवाड़ी भक्त— महाराज, मरने पर क्या होता है?

श्रीरामकृष्ण— गीता के मत में है, मरते समय जो भावना करेगा, वही होगा। भरत राजा हिरण सोचते हुए हिरण हो गए थे। जभी तो ईश्वर-प्राप्ति करने के लिए साधन चाहिए। रात-दिन उनका चिन्तन करने पर मरने के समय भी वही चिन्तन आएगा।

मारवाड़ी भक्त— अच्छा महाराज, विषय से वैराग्य क्यों नहीं होता?

श्रीरामकृष्ण— इसी का ही तो नाम है माया। माया से ही सत् असत् और असत् सत् बोध होता है।

"सत् अर्थात जो नित्य,— परब्रह्म। असत्— संसार, अनित्य।"

मारवाड़ी भक्त— शास्त्र पढ़ता है, किन्तु धारणा क्यों नहीं होती?

श्रीरामकृष्ण— पढ़ने से क्या होगा? साधना— तपस्या चाहिए। उनको पुकारो। 'भाँग-भाँग' बोलने से क्या होगा, कुछ खानी होती है।

"यह संसार काँटेदार पेड़ की भाँति है। हाथ लगाने से रक्त बहता है। यदि काँटेदार पेड़ लाकर, बैठे-बैठे बोलो, यह पेड़ जल गया है, तो वह क्या ऐसे ही जल जाएगा? ज्ञानाग्नि संग्रह करो। वही आग लगा दो, तभी तो जलेगा!

"साधन के समय थोड़ा परिश्रम करना चाहिए, तत्पश्चात् सहज पथ है। बैंक (किनारे) से हटाकर अनुकूल वायु में नौका छोड़ दो।"

(पहले माया का संसार त्याग, तत्पश्चात् ज्ञान-लाभ— ईश्वर-लाभ)

"जब तक माया के घर के भीतर है, तब तक माया-मेघ रहता है; तब तक

ज्ञान-सूर्य कार्य नहीं करता। माया-घर छोड़कर बाहर आकर खड़ा होने पर (कामिनी-काञ्चन-त्याग के पश्चात्) तब ज्ञान-सूर्य अविद्या का नाश करता है। घर के अन्दर लाने पर आतशी-शीशा कागज नहीं जलाता। घर के बाहर आकर खड़े होने पर, धूप शीशे पर पड़ती है,— तब कागज जल जाता है। और फिर मेघ रहने से आतशी शीशा कागज को नहीं जलाता। मेघ के हट जाने पर ही तब होता है।

''कामिनी-काञ्चन के घर से थोड़ा-सा हटकर खड़ा हो जाने पर और हटकर खड़े होकर थोड़ी साधना-तपस्या करने पर ही— तब मन का अन्धकार नष्ट होता है— अविद्या-अहंकार-मेघ हट जाता है— ज्ञान-लाभ होता है।

''और फिर कामिनी-काञ्चन ही है मेघ।''

चतुर्थ परिच्छेद

(पूर्वकथा— लक्ष्मीनारायण की दस हजार रुपये देने की बात पर श्रीरामकृष्ण का अचैतन्य होना— संन्यासी का कठिन नियम)

श्रीरामकृष्ण *(मारवाड़ी भक्त के प्रति)*— त्यागी का बड़ा कठिन नियम है। कामिनी-काञ्चन का सम्बन्ध लेशमात्र भी नहीं रहेगा। अपने हाथ में तो रुपया लेगा ही नहीं,— और फिर निकट भी रखने नहीं देगा।

''लक्ष्मीनारायण मारवाड़ी वेदान्तवादी था, यहाँ पर प्राय: आया करता था। बिछौना मैला देखकर बोला, मैं दस हजार रुपया लिख दूँगा, उसके सूद से तुम्हारी सेवा चलेगी।

''ज्योंहि वह बात कही, त्योंहि मानो लाठी खाकर बेहोश हो गया।

''चैतन्य होने पर उससे कहा कि तुम ऐसी बात यदि फिर मुख से कहोगे, तो फिर यहाँ पर और मत आना। मुझे रुपया छूना नहीं है, पास भी रखना नहीं है।

''वह बड़ा भारी सूक्ष्मबुद्धि था,— बोला, 'तो फिर आपका अभी भी

त्याज्य, ग्राह्य है। तब तो आप को ज्ञान नहीं हुआ।'

"मैंने कहा, भाई, मेरा इतना अधिक नहीं हुआ। *(सब का हास्य)*।

"लक्ष्मीनारायण ने तब हृदय के पास देना चाहा, मैंने कहा 'वैसा होगा तो मुझे कहना पड़ेगा, 'इसको दे, उसको दे।' नहीं देने से क्रोध होगा। रुपया पास रहना ही खराब है। वैसा नहीं होगा।

"आरसी (दर्पण) के पास वस्तु रहने से क्या प्रतिबिम्ब नहीं होगा?"

(श्रीरामकृष्ण और मुक्ति-तत्त्व— 'कलि में वेद-मत नहीं, पुराण-मत')

मारवाड़ी भक्त— महाराज, गंगा में शरीर त्याग करने पर ही तब फिर मुक्ति होगी?

श्रीरामकृष्ण— ज्ञान होने पर ही मुक्ति। जहाँ पर भी रहो— मरघट में ही मृत्यु हो या गंगातीर पर ही मृत्यु हो, ज्ञानी की मुक्ति होगी।

"फिर भी अज्ञानी के लिए गंगा-तीर है।"

मारवाड़ी भक्त— महाराज, काशी में मुक्ति क्यों होती है?

श्रीरामकृष्ण— काशी में मृत्यु होने पर शिव का साक्षात्कार होता है (शिव दर्शन देते हैं)। आकर कहते हैं, "मेरा जो यह साकार रूप है यह मायिक (माया का) रूप है— भक्तों के लिए मैं यह रूप धारण करता हूँ,— यह देख, मैं अखण्ड सच्चिदानन्द में मिल रहा हूँ! यह कहकर वह रूप अन्तर्धान हो जाता है।

"पुराण-मत में है, चाण्डाल की भी यदि भक्ति हो जाती है तो उसकी मुक्ति होगी। इस मत में नाम करने से ही हो जाता है। याग-यज्ञ, तन्त्र-मन्त्र— इन सब की आवश्यकता नहीं।

"वेदमत अलग है। ब्राह्मण बिना हुए मुक्ति नहीं होती। और फिर मन्त्र ठीक उच्चारण न होने से पूजा ग्रहण नहीं होती। याग-यज्ञ, मन्त्र-तन्त्र— सब विधि अनुसार करना होगा।"

(कर्मयोग बड़ा कठिन— कलि में भक्तियोग)

"कलिकाल में वेदोक्त कर्म करने का समय कहाँ?"

"इसलिए कलि में नारदीय भक्ति।

"कर्मयोग बड़ा कठिन है। निष्काम न कर सके तो बन्धन का कारण हो जाता है। उस पर फिर अन्नगत प्राण हैं— सब कर्म विधि-अनुसार करने का समय नहीं है। दशमूल पाचन सेवन करने लगो तो रोगी का इस ओर हो जाता है। इसीलिए फीवर मिक्सचर।

"नारदीय भक्ति है— उनका नाम-गुण-कीर्त्तन करना।

"कलि में कर्मयोग ठीक नहीं है,— भक्तियोग ही ठीक है।

"संसार में कर्मों का भोग जितने दिन है, उतने दिन भोग करो। किन्तु भक्ति, अनुराग चाहिए। उनका नाम-गुण-कीर्त्तन करने से कर्मों का क्षय होता है।

"कर्म चिरकाल तक नहीं करना पड़ता। उन पर जितनी शुद्धाभक्ति, प्रीति होगी, उतना ही कर्म कम होता जाएगा। उन्हें पा लेने पर कर्म-त्याग हो जाता है। गृहस्थ की बहू को जब गर्भ होता है तो सास कर्म कम कर देती है। बच्चा होने पर फिर कर्म करना नहीं पड़ता।"

(सत्यस्वरूप ब्रह्म! संस्कार रहने से ईश्वर के लिए व्याकुलता होती है)

दक्षिणेश्वर-ग्राम से कितने छोकरों ने आकर प्रणाम किया। वे आसन ग्रहण करके ठाकुर से प्रश्न कर रहे हैं। समय चार का होगा।

दक्षिणेश्वर-वासी छोकरे— महाशय, ज्ञान किसे कहते हैं?

श्रीरामकृष्ण— ईश्वर सत्, और समस्त असत्; इसी को जानने का नाम ज्ञान है।

"जो सत् हैं, उनका ही एक नाम ब्रह्म है, और एक नाम काल (महाकाल) है। तभी कहते हैं, 'काले कतो गेलो— कतो होलो रे भाई!' (काल में कितने चले गए— कितने समाप्त हो गए रे भाई!)

''काली— जो काल के साथ रमण करती हैं— आद्याशक्ति। काल और काली,— ब्रह्म और शक्ति— अभेद।

''वही सत्स्वरूप ब्रह्म नित्य हैं— तीनों कालों में हैं— आदि-अन्त रहित हैं। उनका मुख से वर्णन नहीं किया जाता। हद्द कहा जाता है,— वे हैं चैतन्यस्वरूप, आनन्दस्वरूप।

''जगत अनित्य, वे ही नित्य! जगत जादूस्वरूप। जादूगर ही सत्य! जादूगर का जादू अनित्य।''

छोकरे— जगत यदि माया— जादू है— यह माया क्यों नहीं जाती?

श्रीरामकृष्ण—संस्कार-दोष में माया नहीं जाती। बहु-जन्म इस माया के संसार में रह-रह कर माया सत्य बोध होती है।

''संस्कारों की कितनी क्षमता है, सुनो। एक राजा का लड़का पूर्वजन्म में धोबी के घर में जन्मा था। राजा का लड़का होकर जब खेल करता है, तब समवयसियों (साथियों) से कहता है, यह सब खेल रहने दो! मैं औंधा होकर लेटता हूँ, और तुम लोग मेरी पीठ पर हुस-हुस करके कपड़े कचारो (धोओ)।''

(संस्कारवान् गोबिन्दपाल, गोपालसेन, निरञ्जन, हीरानन्द— पूर्वकथा— गोबिन्द, गोपाल और ठाकुरों के लड़कों का आगमन— 1863-64)

''यहाँ पर अनेक छोकरे आते हैं,— किन्तु कोई-कोई ईश्वर के लिए व्याकुल हैं। वे संस्कार लेकर आए हैं।

''वे सब लड़के विवाह की बात पर आँ-आँ (जी-जी) करते हैं। विवाह की बात ही सोचते नहीं। निरञ्जन बचपन से ही कहता है— विवाह नहीं करूँगा।

''अनेक दिन हो गए हैं (बीस वर्ष से अधिक)। बराहनगर से दो छोकरे आया करते थे। एक का नाम गोबिन्दपाल और एक का नाम गोपालसेन। उनका बचपन से ही ईश्वर में मन था। विवाह की बात से आकुल हो जाते। गोपाल की भावसमाधि होती! विषयी को देखकर कुण्ठित (संकुचित) हो

जाता; जैसे बिलाव को देखकर चूहा कुण्ठित हो जाता है। जब ठाकुरों (Tagores) के लड़के इसी बागान में टहलने आए थे, तब कोठी के कमरे का द्वार बन्द कर लिया कि कहीं पीछे उन के संग बात न करनी पड़े।

''गोपाल को पञ्चवटीतले भाव हुआ था। भाव में मेरे पाँव में हाथ देकर कहा था, 'तब तो मैं जाता हूँ। मैं इस संसार में और रह नहीं सकता— आप को अभी बहुत देर है— मैं जाता हूँ।' मैं भी भावावस्था में बोला— 'फिर दोबारा आओगे!' वह बोला— 'अच्छा, फिर दोबारा आऊँगा।'

''कुछ दिन बाद गोबिन्द आकर मिला। मैंने पूछा, गोपाल कहाँ है? वह बोला, गोपाल (शरीरत्याग करके) चला गया है।

''अन्य छोकरे क्या करते हुए फिरते हैं!— कैसे रुपया हो,—बाड़ी,— गाड़ी,—पोशाक, फिर विवाह— इन्हीं के लिए व्यस्त (उतावले) हुए फिरते हैं। विवाह करेगा, पहले किसी तरह लड़की खोज लें। और फिर सुन्दर भी है कि नहीं, स्वयं देखने जाता है!

''एकजन मेरी बड़ी निन्दा करता है। बस यही कहता है, (मैं) छोकरों को प्यार करता हूँ। जिनके संस्कार हैं— शुद्धआत्मा, ईश्वरजन्य व्याकुल,— रुपये, देह-सुख इत्यादि की ओर मन नहीं— उन्हें ही मैं प्यार करता हूँ।

''जिसने विवाह कर लिया है, यदि ईश्वर में भक्ति रहे, तो फिर संसार में आसक्त नहीं होगा। हीरानन्द ने विवाह किया है। तो क्या हुआ? वह अधिक आसक्त नहीं होगा।''

हीरानन्द सिन्ध देशवासी, बी०ए० पास ब्राह्मभक्त हैं।

मणिलाल, शिवपुर के ब्राह्मभक्त, मारवाड़ी भक्तों और लड़कों ने प्रणाम करके विदा ग्रहण की।

पञ्चम परिच्छेद

(कर्मत्याग कब ? भक्त के निकट ठाकुर का अंगीकार)

सन्ध्या हो गई। दक्षिण के बरामदे और पश्चिम के गोल बरामदे में फराश (लैम्प जलाने वाला सेवक) आलोक कर गया। ठाकुर के कमरे में प्रदीप जला दिया गया और धूप-धूना दे दिया गया।

ठाकुर अपने आसन पर बैठकर माँ का नाम कर रहे हैं और माँ का चिन्तन कर रहे हैं। कमरे में मास्टर, श्रीयुक्त प्रिय मुखर्जी, उनके आत्मीय हरि फर्श पर बैठे हैं।

कुछ क्षण ध्यान-चिन्तन के पश्चात् ठाकुर फिर भक्तों के साथ बातें करते हैं। देव-मन्दिर की आरती में अब भी देर है।

(वेदान्त व श्रीरामकृष्ण— ॐकार व समाधि— 'तत्त्वमसि'— ॐ तत् सत्)

श्रीरामकृष्ण *(मास्टर के प्रति)*— जो निशिदिन उनका चिन्तन करता है, उसे सन्ध्या का क्या प्रयोजन है!

"त्रिसन्ध्या जे बोले काली पूजा-सन्ध्या से कि चाय।
सन्ध्या तार सन्धाने फेरे कभु सन्धि नाहि पाय॥
दया, व्रत, दान आदि आर किछु ना मने लय।
मदनेरइ याग-यज्ञ ब्रह्ममयीर रांगा पाय॥"*

[भावार्थ— जो हर समय काली (ईश्वर) का नाम उच्चरित करता है, उसे पूजा एवं सन्ध्या की क्या आवश्यकता? स्वयं सन्ध्या उसकी खोज में फिरती है, किन्तु कभी मेल नहीं होता। दया, व्रत, दानादि तब कुछ भी मन में नहीं लगते। 'मदन' के याग-यज्ञ तो ब्रह्ममयी के लाल चरण हैं।]

"सन्ध्या गायत्री में लय होती है, गायत्री ॐकार में लय होती है।

"एक बार ॐ बोलने से जब समाधि हो जाती है तब पक्का।

"ऋषिकेश में एक साधु सुबह-सुबह उठकर एक बड़े झरने के पास जाकर खड़ा हो जाता था। समस्त दिन उसी झरने को देखता और ईश्वर को

* 'गया-गंगा प्रभासादि' गाने का भाग— पूरा गाना पृष्ठ 225 पर है।

कहता— वाह, सुन्दर बनाया है! वाह, सुन्दर बनाया है! कैसा आश्चर्य! उसके लिए जप-तप नहीं। फिर रात होने पर कुटीर में चला जाता।

"उसे निराकार अथवा साकार इन सबके सोचने का ही फिर क्या प्रयोजन? निर्जन, गोपन में व्याकुल होकर रो-रो कर कहने से ही होता है— हे ईश्वर, तुम कैसे हो, वह मुझे दिखा दो!

"अन्तर में वे हैं। इसीलिए वेद में कहते हैं 'तत्त्वमसि' (वही तुम हो)। और बाहर भी वे। माया में दिखाते हैं, नाना रूप; किन्तु वस्तुत: वे ही *(सब होकर)* रह रहे हैं।

"इसीलिए सब नामरूप-वर्णन करने के पूर्व कहना चाहिए— ॐ तत् सत्।

"दर्शन करने पर एक प्रकार, शास्त्र पढ़कर और एक प्रकार। शास्त्र में आभास मात्र मिलता है। जभी कितने सारे शास्त्र पढ़ने का कोई प्रयोजन नहीं। उसकी अपेक्षा निर्जन में उनको पुकारना भला है।

"गीता समस्त न भी पढ़ने से चलता है। दस बार गीता-गीता बोलने से जो होता है वही गीता का सार है। अर्थात् 'त्यागी'। हे जीव, सब त्याग करके ईश्वर की आराधना कर— यही है गीता की सार वाणी।"

(श्रीरामकृष्ण का भवतारिणी का आरती-दर्शन और भावावेश)

ठाकुर भक्तों के संग में माँ काली की आरती देखते-देखते भावाविष्ट हो गए हैं और देवी-प्रतिमा के सम्मुख भूमिष्ठ होकर प्रणाम नहीं कर पा रहे हैं।

अति सावधानी से भक्तों के संग में अपने कमरे में लौटकर आसन पर बैठ गए हैं। अब भी भावाविष्ट हैं। भावावस्था में बातें करते हैं।

मुखर्जी के आत्मीय हरि की आयु अट्ठारह-बीस होगी। उनका विवाह हो गया है। आपातत: (फिलहाल) मुखर्जियों के घर में ही रहते हैं— काज-कर्म करेंगे। ठाकुर के ऊपर खूब भक्ति है।

(श्रीरामकृष्ण और मन्त्रग्रहण— भक्त के निकट श्रीरामकृष्ण का अंगीकार)

श्रीरामकृष्ण *(भावावेश में, हरि के प्रति)*— तुम अपनी माँ से पूछकर मन्त्र लेना।

(श्रीयुक्त प्रिय से) ''इसको (हरि) बोलकर भी नहीं दे सका, मन्त्र तो देता ही नहीं।

''तुम जो ध्यान-जप करते हो, वही करो।''

प्रिय— जो आज्ञा।

श्रीरामकृष्ण— और मैं इस अवस्था में कहता हूँ— बात पर विश्वास करो। देखो, यहाँ पर ढोंग-ढाँग नहीं है।

''मैंने भाव में कहा— माँ! यहाँ पर जो आन्तरिक आकर्षण से आएँगे, वे जैसे सिद्ध हो जाएँ।''

सींती के महेन्द्र कविराज बरामदे में बैठे हुए हैं। श्रीयुक्त रामलाल, हाजरा आदि के संग बातें कर रहे हैं। ठाकुर अपने आसन पर से उनको पुकार रहे हैं— 'महिन्दर'! 'महिन्दर'!

मास्टर जल्दी से जाकर कविराज को बुलाकर ले आए।

श्रीरामकृष्ण *(कविराज के प्रति)*— बैठो ना— थोड़ा सुनो।

कविराज किञ्चित् अप्रस्तुत (हड़बड़ाए) हुए से बैठ गए और ठाकुर की अमृतोपम वाणी सुनने लगे।

(नाना ढंग से सेवा— बलराम का भाव— गौरांग की तीन अवस्थाएँ)

श्रीरामकृष्ण *(भक्तों के प्रति)*— उनकी नाना ढंग से सेवा की जाती है।

''प्रेमिक भक्त उनका नाना रूप से सम्भोग करता है। कभी सोचता है 'तुम पद्म, मैं अलि (भंवरा)'। कभी— 'तुम सच्चिदानन्द, मैं मीन!'

''प्रेमिक भक्त फिर सोचता है 'मैं तुम्हारी नर्तकी!'— और उनके सम्मुख नृत्यगीत करता है। कभी सखी-भाव वा दासी-भाव। कभी उनके

ऊपर वात्सल्य भाव— जैसे यशोदा का। कभी फिर पति-भाव— मधुर भाव— जैसे गोपियों का।

"बलराम कभी सखा के भाव में रहते, वा कभी सोचते, मैं कृष्ण का छाता अथवा आसन हो गया हूँ। सब प्रकार से उनकी सेवा करते।"

ठाकुर प्रेमिक भक्त की अवस्था वर्णन करके क्या अपनी अवस्था बता रहे हैं? और फिर चैतन्यदेव की तीनों अवस्थाओं का वर्णन करके इशारे से, लगता है, अपनी अवस्था समझा रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण— चैतन्यदेव की तीन अवस्थाएँ थीं। अन्तर्दशा में समाधिस्थ— बाह्यशून्य। अर्धबाह्य दशा में आविष्ट होकर नृत्य कर पाते, किन्तु बातें नहीं कर पाते। बाह्यदशा में संकीर्त्तन करते।

(भक्तों के प्रति)— "तुम लोग ये सब बातें सुनते हो— धारणा की चेष्टा करना। विषयी लोग जब साधु के पास आते हैं तब विषय की बातें, विषय की चिन्ता, एकदम छिपा कर रख देते हैं। तब फिर चले जाने पर उन्हें बाहर निकाल लेते हैं। कबूतर मटर खा लेता है; लगता है कि उसको हजम हो गई हैं। किन्तु सब गले के भीतर रख लेता है। गले में मटर गिड़-गिड़ करती रहती हैं।"

(सन्ध्याकालीन उपासना— श्रीरामकृष्ण और मुसलमान धर्म— जप और ध्यान)

"सब काम छोड़कर सन्ध्या के समय तुम लोग उन्हें पुकारोगे।

"अन्धकार में ईश्वर की याद आती है; अभी सब दिखाई दे रहा था!— किसने ऐसा किया है!

"देखा, मुसलमान लोग सब काम छोड़कर ठीक समय पर नमाज पढ़ेंगे।"

मुखर्जी— जी, जप करना अच्छा है?

श्रीरामकृष्ण— हाँ, जप से ईश्वर-लाभ होता है। निर्जन, गोपन में उनका नाम करते-करते उनकी कृपा होती है, तत्पश्चात् दर्शन।

''जैसे जल में पड़ी हुई मोटी लकड़ी है— वह तीर पर जंजीर से बाँधी हुई है; उसी जंजीर की एक-एक कड़ी को पकड़-पकड़ कर चलने पर, अन्त में उस लकड़ी को स्पर्श कर लिया जाता है।

''पूजा से जप बड़ा है। जप से ध्यान बड़ा है। ध्यान से भाव बड़ा है। भाव से बड़ा है महाभाव, प्रेम। चैतन्यदेव को प्रेम हुआ था। प्रेम हो जाने पर ईश्वर को बाँध लेने के लिए रस्सी मिल गई।''

हाजरा आकर बैठ गए हैं।

(रागभक्ति, माला जपना और ठाकुर श्रीरामकृष्ण— नारा'ण)

(हाजरा से)— ''उनके ऊपर प्यार यदि आ जाए तो उसका नाम है रागभक्ति। वैधीभक्ति के आने में जितनी देर है, जाने में भी उतनी देर लगती है। रागभक्ति स्वयंभू लिंग जैसी है। उसकी जड़ खोजने से नहीं मिलती। स्वयंभू लिंग की जड़ काशी तक है। रागभक्ति, अवतार और उनके सांगोपांगों की होती है।''

हाजरा— आहा!

श्रीरामकृष्ण— तुम जब एक दिन जप कर रहे थे— बाह्य से आकर कहा था— माँ, यह कैसी हीन बुद्धि है, यहाँ पर आकर माला लेकर जप कर रहा है!— जो यहाँ पर आएगा उसे एकदम चैतन्य होगा। उसको माला जपना आदि इतना नहीं करना पड़ेगा। तुम कलकत्ता जाओगे तब देखोगे— हजारों-हजारों माला जप करते हैं— वेश्याएँ तक।

ठाकुर मास्टर से कह रहे हैं—

''तुम नारा'ण को गाड़ी में लाना। इनको (मुखर्जी को) भी बता दी है— नारा'ण की बात। उसके आने पर उसे कुछ खिलाऊँगा। उसे खिलाने के अनेक अर्थ हैं।''

षष्ठ परिच्छेद

(ठाकुर श्रीरामकृष्ण कलुटोले में श्रीयुक्त नवीनसेन के मकान पर ब्राह्मभक्तों के संग में— कीर्त्तनानन्द में)

आज शनिवार है, कोजागर पूर्णिमा*। श्रीयुक्त केशवसेन के सबसे बड़े भाई स्वर्गीय नवीनसेन के कलुटोले के मकान में ठाकुर आए हैं। 4 अक्तूबर, 1884 ईसवी; 19वीं आश्विन, 1291 (बंगला) साल।

गत बृहस्पतिवार को केशव की माँ ठाकुर को निमन्त्रण देकर, आने के लिए बहुत कह गई थी।

बाहर के ऊपर के कमरे में ठाकुर जाकर बैठ गए। नन्दलाल आदि केशव के भाई के लड़के, केशव की माता और उन लोगों के आत्मीय बन्धु ठाकुर की खूब आदर-सेवा कर रहे हैं। ऊपर के कमरे में ही संकीर्त्तन हुआ। कलुटोले के सेन परिवारों की अनेक स्त्रियाँ आई हैं।

ठाकुर के संग बाबूराम, किशोरी, और दो-एक भक्त हैं। मास्टर भी आए हैं। वे नीचे बैठकर ठाकुर का मधुर संकीर्त्तन सुन रहे हैं।

ठाकुर ब्राह्मभक्तों से कह रहे हैं,—

संसार अनित्य है, और सर्वदा ही मृत्यु-स्मरण करना उचित है। ठाकुर गाना गा रहे हैं—

भेबे देखो मन केउ कारू नय मिछे भ्रम भूमण्डले।
भूल ना दक्षिणे काली बद्ध होये मायाजाले॥
दिन दुइ तिनेर जन्य भवे कर्त्ता बोले सबाइ माने।
सेइ कर्त्तारे देबे फेले कालाकालेर कर्त्ता एले॥
जार जन्य मरो भेबे, से कि तोमार संगे जाबे।
सेइ प्रेयसी दिबे छड़ा अमंगल होबे बोले॥

[भावार्थ— अरे मन, सोचकर देखो कोई किसी का नहीं है। इस भूमण्डल में मिथ्या भ्रम है। मायाजाल में बद्ध होकर दक्षिणा काली को मत भूलो। इस संसार में दो-तीन दिन के लिए अपने को सब ही कर्त्ता मानते हैं। उसी कर्त्ता को

---

* कोजागर पूर्णिमा = आश्विन शुक्ला पूर्णिमा की रात्रि, जिसमें लक्ष्मी-पूजा होती है।

कालाकाल का कर्त्ता आकर फेंक देगा। चिन्तन करके देखो जिसके लिए मर रहे हो, वह क्या तुम्हारे संग जाएगा? वही प्रिया अमंगल होने के कारण तुम्हें गंवारू वाणी कह देगी।]

ठाकुर कह रहे हैं— डुबकी मारो— ऊपर तैरने से क्या होगा? कुछ दिन निर्जन में जाकर, सब छोड़कर, सोलह आना मन के द्वारा उन्हें पुकारो।

ठाकुर गाना गाते हैं—

डुब् डुब् डुब् रूपसागरे आमार मन।
तलातल पाताल खुंजले पाबि रे प्रेम रत्नधन॥
खुंज् खुंज् खुंज् खुँज्ले पाबि ह्रदय माझे वृन्दावन।
दीप् दीप् दीप् ज्ञानेर बाति ज्वलबे ह्रदे अनुक्षण॥
ड्यां ड्यां ड्यां ड्यांगाय डिंगे चालाय आबार से कोन् जन।
कुबीर बोले शोन् शोन् शोन् भाबो गुरुर श्रीचरण॥

[भावार्थ— अरे मन, प्रभु के रूप-सागर में डूब जा। तलातल पाताल खोज तो तुझे प्रेमरत्न धन मिलेगा। खोज, खूब खोज, तुझे ह्रदय में वृन्दावन मिल जाएगा। ज्ञान का दीपक ले ले, तब तेरे ह्रदय में ज्ञान की बत्ती हर क्षण जलेगी। इस नाव को फिर कौन चलाएगा? कुबीर कहता है— सुनो मेरी बात, श्री गुरु के श्री चरणों का चिन्तन करो।]

ठाकुर ब्राह्मभक्तों से, 'तुमि सर्वस्व आमार।' यह गाना गाने के लिए कह रहे हैं—

तुमि सर्वस्व आमार (हे नाथ) प्राणाधार सारात्सार।
नाहि तोमा बिने, केहो त्रिभुवने, आपनार बोलिबार॥

[हे नाथ, प्राणों के आधार, और सारों के सार, तुम मेरे सर्वस्व हो। तुम्हारे बिना मेरा इस त्रिभुवन में अपना कहलाने वाला कोई नहीं है।]

ठाकुर स्वयं गा रहे हैं :

जशोदा नाचातो गो मा बोले नीलमणि।
सेरूप लुकाले कोथा करालवदनी॥
(एक बार नाचो गो श्यामा) (असि फेले बाँसी लोये)
(मुण्डमाला फेले बनमाला लाये) (तोर शिव बलराम होक)

(तेमनि तेमनि तेमनि करे नाचो गो श्यामा)
(जेरूपे ब्रज माझे नेचेछिलि)
(एक बार बाजा गो मा, तोर मोहन बेनु)
(जे बेनु-रबे गोपीर मन भुलितो)
(जे बेनुरबे धेनु फिरातिस्) (जे बेनुरबे जमुना उजान बय)।
गगने बेला बाडितो, राणीर मन व्याकुल होतो,
बोले धरो धरो धरो, धरो रे गोपाल, क्षीर सर नवनी;
एलोये चाँढर केश राणी बेंधे दितो बेणी।
श्री दामेर संगे, नाचितो त्रिभंगे, गो मा,
आबार ताथैया ताथैया, ताता थैया थैया, बाजतो नुपुरध्वनि;
शुनते पेये आस्तो धेये जतो ब्रजेर रमणी (गो मा!)।

[भावार्थ— यशोदा जिस रूप को नीलमणि बोलकर नचाया करती थी, वह रूप हे करालवदनी, तुमने कहाँ पर छिपा दिया है? जिस रूप से ब्रज में तुम मुण्डमाला फेंककर बनमाला लेकर तथा शिव को बलराम बनाकर असि (तलवार) छोड़ बंसी लेकर नाची थी— एक बार फिर उसी प्रकार, उसी रूप में, वैसे ही नाचो मेरी माता! [अरी माता, वह अपनी मोहन वेणु बजाओ। जिस वेणु के शोर से गोपियों का मन भूल जाता था, जिस रव से गौवें लौट आती थीं, जिस वेणु के रव से जमुना उजान (ऊँचे) पथ पर बहने लगती थी।] आकाश में समय बढ़ता जाता और राणी का मन व्याकुल होता जाता। कहती, लो पकड़ो, यह लो अरे गोपाल, दूध मलाई और मक्खन। बिखरी लटों को राणी वेणी बनाकर बाँध देती। श्रीदाम के संग में त्रिभंगी रूप में नाचते थे और फिर ताथैया-ताथैया, ताता-थैया-थैया नूपुर की ध्वनि बजती थी, जिसे सुनकर ब्रज की स्त्रियाँ दौड़ी आती थीं।

यह गाना सुनकर केशव ने इसी सुर का एक गाना बाँधा था। ब्राह्मभक्तगण खोल (मृदंग)-करताल के संयोग से वही गाना गा रहे हैं—

कतो भालोवासा गो मा मानव सन्ताने,
मने होले प्रेमधारा बहे दुनयने (गो मा)
तब पदे अपराधी, आछि आमि जन्मावधि,
तबु चेये मुख पाने प्रेम नयने, डाकिछ मधुर बचने,
मने होले प्रेमधारा बहे दुनयने।

तोमार प्रेमेर भार, बोहिते पारि ना गो आर,
प्राण उठिछे काँदिया, हृदय भेदिया, तव स्नेह दरशने,
लइनु शरण मा गो तब श्रीचरणे (गो मा)॥

[भावार्थ— माँ, आपका मानव-सन्तान के लिए कितना प्यार है! ओ माँ, याद आते ही दोनों नयनों से प्रेमधारा बहने लगती है। मैं आपके चरणों का जन्म-अवधि से ही अपराधी हूँ, फिर भी आप प्रेम-नयनों से मेरे मुख को देख रही हो, और मधुर वचनों में पुकार रही हो। याद आते ही दोनों नयनों से प्रेम-धारा बहने लगती है।

माँ, अब मैं तुम्हारे प्रेम का भार और सहन नहीं कर सकता। प्राण हृदय भेदन करके रो उठा है, तेरे स्नेह दर्शन से। माँ, अब श्रीचरणों की शरण में ले लो।]

वे और भी माँ का नाम कर रहे हैं—

1. अन्तरे जागिछो गो मा अन्तर यामिनी,
कोले करे आछो मोरे दिवस यामिनी।

[हे माँ अन्तरयामिनी! तुम भीतर जाग रही हो और मुझे रात-दिन गोद में लिए हो।]

2. केनो रे मन भाविस एतो, दीन हीन कंगालेर मत,
आमार मा ब्रह्माण्डेश्वरी सिद्धेश्वरी क्षेमंकरी।

[ऐ मेरे मन, दीन-हीन, कंगाल की भाँति इतनी क्यों चिन्ता करता है, मेरी माँ तो ब्रह्माण्ड की मालकिन, सिद्धियों की ईश्वरी तथा सबकी रक्षिका है।]

ठाकुर अब हरिनाम और श्री गौरांग का नाम कर रहे हैं और ब्राह्मभक्तों के साथ नाच रहे हैं।

1. मधुर हरिनाम नसे रे, जीव यदि सुखे थाकबि।

[हे जीव, यदि सुख में रहना चाहता है तो हरि का मधुर नाम ले।]

2. गौर प्रेमेर ढेउ लेगेछे गाय।
हुंकारे पाषण्ड दलन ए ब्रह्माण्ड तलिये जाय॥*

[शरीर पर चैतन्यदेव के प्रेम की लहर लग गई है। दुष्टों को दलन

---

* पृष्ठ 188 पर पूरा गाना है।

करने वाले की एक हुंकार से ब्रह्माण्ड नीचे ही नीचे धँसता जा रहा है।]

3. ब्रजे जाइ कांगालवेशे कौपिन दाओ हे भारती।
[कंगाल के वेश में ब्रज में जाता हूँ हे भारती, कौपीन दे दो।]

4. गौर निताई तोमरा दुभाई, परम दयाल हे प्रभु।[1]
[हे प्रभु, तुम दो भाई चैतन्यदेव और नित्यानन्द रूप में दयालु हो।]

5. हरि बोले आमार गौर नाचे।[2]
['हरि बोल' बोलकर मेरा गौर नाचता है।]

6. के हरिबोल हरिबोल बोलिये जाय। जारे माधाई जेने आय।
(आमार गौर जाय कि निताई जाय रे)
(जादेर सोनार नूपुरे रांगा पाय)
(जादे नेड़ा माथा छेंडा काँथारे,) (जेनो देखि पागलेर प्राय)

[भावार्थ— अरे मधाई, जा पता करके आ कौन हरिबोल-हरिबोल बोलता हुआ जा रहा है। (मेरा गौर जा रहा है कि निताई जा रहा है, जिनके लाल चरणों में सोने के नूपुर हैं, जिनका सिर मुण्डा हुआ है और फटा हुआ कांथा है— लगता है मानो पागल ही हो)।]

ब्राह्मभक्तगण फिर और गाते हैं—

कतो दिन होबे से प्रेम संचार।[1]
होये पूर्णकाम बोल्बो हरिनाम, नयने बहिबे प्रेम अश्रुधार॥
[मेरे हृदय में वह प्रेम किस दिन उमड़ेगा जब हरि-नाम बोलते ही मेरे नयनों से अश्रुधारा बहेगी और मैं पूर्णकाम होऊँगा।]

ठाकुर उच्च संकीर्त्तन करके गा रहे हैं और नाच रहे हैं—

1. जादेर हरि बोल्ते नयन झरे, तारा, तारा दुभाई एसेछे रे!
(जारा मार खेये प्रेम जाचे, तारा) (जारा आपनि केंदे जगत् कांदाय)।[1]

---

1 परिशिष्ट-2 में पूरा गाना है।

2 पृष्ठ 206 पर पूरा गाना है।

[भावार्थ— अरे, जिनके हरि बोलते हुए नयनों से जल झरता है वे, वे ही दोनों भाई आए हैं। (जो मार खाकर भी प्रेम की भिक्षा माँगते हैं, वे दोनों आए हैं, जो अपने आप रोते हैं और जगत को प्रेम में रुलाते हैं, वे ही दोनों भाई आए हैं)।]

2. नदे टलमल टलमल करे ओई गौर प्रेमेर हिल्लोले रे!

[इस गौर के प्रेम में नदिया हिल्लोले ले रहा है।]

ठाकुर माँ का नाम कर रहे हैं—

गो आनन्दमयी होये आमाय निरानन्द कोरो ना।[1]

[आनन्दमयी होकर मुझे निरानन्द न करो माँ।]

ब्रह्मभक्तगण अपने दो गाने गाते हैं—

(1) आमाय दे माँ पागल करे।[2]

[माँ, हमें पागल बना दे।]

(2) चिदाकाशे होलो पूर्ण प्रेम चन्द्रोदय हे।[3]

[चित्-आकाश में पूर्ण प्रेम-चन्द्र का उदय हो गया है।]

1 पृष्ठ 224 पर पूरा गाना है।

2 पृष्ठ 207 पर पूरा गाना है।

3 पृष्ठ 208-209 पर पूरा गाना है।

द्वाविंश खण्ड

दक्षिणेश्वर-मन्दिर में बाबूराम, मास्टर, नीलकण्ठ, मनोमोहन आदि भक्तों के संग

प्रथम परिच्छेद

(हाजरा महाशय— अहेतुकी भक्ति)

ठाकुर श्रीरामकृष्ण दक्षिणेश्वर-मन्दिर में भक्तों के संग में मध्याह्न की सेवा के पश्चात् अपने कमरे में बैठे हुए हैं। निकट ही धरती पर मास्टर, हाजरा, बड़े काली, बाबूराम, रामलाल, मुखर्जियों के हरि आदि— कोई बैठे हैं, कोई खड़े हुए हैं। श्रीयुक्त केशव की माताजी के निमन्त्रण पर गतकल* उनके कलुटोले के मकान पर जाकर ठाकुर ने खूब कीर्त्तनानन्द किया था।

श्रीरामकृष्ण *(हाजरा के प्रति)*— मैंने कल केशवसेन के मकान पर (नवीनसेन के घर) खूब अच्छा खाया— सुन्दर भक्ति से दिया (खिलाया)।

(हाजरा महाशय और तत्त्व-ज्ञान— हाजरा और तर्कबुद्धि)

हाजरा महाशय अनेक दिनों से ठाकुर के पास रह रहे हैं। 'मैं ज्ञानी' ऐसा उनका थोड़ा-सा अभिमान है। लोगों के पास ठाकुर की कुछ निन्दा भी

---

* अर्थात् आज हुआ 5 अक्तूबर, 1884 (4 अक्तूबर, 1884 अंकित है पिछले एकविंश खण्ड में)

कर ली जाती है। इधर बरामदे में अपने आसन पर बैठकर एक मन होकर माला-जप भी करते हैं। चैतन्यदेव को 'हाल का अवतार' कहकर साधारण समझते हैं। कहते हैं, 'ईश्वर जो केवल शुद्ध भक्ति देते हैं वैसा ही नहीं है; उनके पास ऐश्वर्य का अभाव नहीं है— वे ऐश्वर्य भी देते हैं। उनको प्राप्त कर लेने पर अष्टसिद्धि आदि भी हो जाती हैं।' मकान का उधार कुछ देना है— प्रायः हजार रुपया। उसके लिए वे चिन्तित हैं।

बड़े काली ऑफिस में काम करते हैं। सामान्य वेतन है। घर में स्त्री और लड़के-बच्चे भी हैं। परमहंस (श्रीरामकृष्ण) पर खूब भक्ति है; बीच-बीच में ऑफिस से गैर-हाजिर रहकर भी उनके दर्शन के लिए आते हैं।

बड़े काली *(हाजरा के प्रति)*— तुम जो कसौटी बनकर, कौन-सा शुद्ध सोना, कौन-सा मन्दा सोना है, परख करते फिरते हो— पराये की निन्दा इतनी क्यों करते हो?

हाजरा— जो कहना होता है, उनके पास ही कहता हूँ।

श्रीरामकृष्ण— ऐसा तो है।

हाजरा तत्त्व-ज्ञान के अर्थ की व्याख्या करते हैं।

हाजरा— तत्त्व-ज्ञान के माने हैं— चौबीस तत्त्व जो हैं, इन्हें जानना।

एक जन भक्त— चौबीस तत्त्व क्या-क्या हैं?

हाजरा— पञ्चभूत, छः रिपु, पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँचों कर्म इन्द्रियाँ इत्यादि।

मास्टर *(ठाकुर से, सहास्य)*— ये कहते हैं— छः रिपु चौबीस तत्त्वों में हैं!

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— यह देखा! तत्त्व-ज्ञान के नाम में क्या करता है, और भी देखो। तत्त्व-ज्ञान माने आत्मज्ञान। तत् अर्थात् परमात्मा, त्वम् अर्थात् जीवात्मा। जीवात्मा और परमात्मा एक है, यह ज्ञान होने पर तत्त्वज्ञान होता है।

हाजरा कुछ क्षण पश्चात् कमरे से बरामदे में जाकर बैठ गए।

श्रीरामकृष्ण *(मास्टर आदि से)*— वह केवल तर्क करता है। एक बार अभी तो खूब अच्छी तरह से समझ गया है— कुछ देर पीछे फिर जैसे का तैसा।

"बड़ी मछली जोर मार रही है, देखकर मैं सूत छोड़ देता हूँ। वैसा न होने पर मछली सूत को तोड़ डालेगी, और फिर जो जन पकड़े हुए है, वह उस (सूत) समेत जल में गिर जाएगा। मैं तभी तो और कुछ नहीं बोलता।"

(हाजरा और मुक्ति और षडैश्वर्य— मलिन और अहेतुकी भक्ति)

(मास्टर से)— "हाजरा कहता है, 'ब्राह्मण-शरीर न हो तो मुक्ति नहीं होती।' मैंने कहा, 'वह कैसी बात! भक्ति के द्वारा ही मुक्ति होगी। शबरी व्याध की लड़की थी, रविदास जिसके खाने के समय घण्टा बजा करता था— ये हैं सब शूद्र। इनकी भक्ति द्वारा ही मुक्ति हुई है! हाजरा कहता है, किन्तु!'

"ध्रुव को लेता है। प्रह्लाद को जितना लेता है ध्रुव को उतना नहीं लेता। लाटु ने कहा, 'ध्रुव का बचपन से इतना अधिक अनुराग था'— तब फिर चुप हुआ।

"मैं कहता हूँ, कामनाशून्य भक्ति अहेतुकी भक्ति है— इससे बढ़कर और कुछ भी नहीं है। यह बात वह काट देता है। कुछ माँगने वाले व्यक्ति के आने पर बड़ा आदमी परेशान हो जाता है— रुष्ट होकर कहता है, 'वह आ रहा है।' आने पर और एक प्रकार के स्वर से कहता है, 'बैठिए'!— मानो कितना विरक्त है। माँगने वाले को वह अपनी गाड़ी में नहीं ले जाता।

"हाजरा कहता है, वे ऐसे धनियों जैसे नहीं हैं। उन्हें क्या ऐश्वर्य का अभाव है जो देने में कष्ट होगा?

"हाजरा और भी कहता है— 'आकाश से जब जल गिरता है, तब गंगा तथा सब बड़ी-बड़ी नदियाँ, बड़े-बड़े तालाब इत्यादि बढ़ जाते हैं; और फिर गढ़िये, पोखरे भी भर जाते हैं। उनकी कृपा हो जाने पर वे ज्ञान-भक्ति भी देते हैं,— और फिर रुपया-पैसा भी दे देते हैं।'

"किन्तु इसको मलिनभक्ति कहते हैं। शुद्धाभक्ति में कोई कामना नहीं रहेगी। तुम यहाँ से कुछ नहीं चाहते, किन्तु (मुझे) मिलना और (मेरी) बातें सुनना पसन्द करते हो;— तुम्हारी ओर भी मेरा मन पड़ा रहता है।—

'कैसा है— क्यों नहीं आया'— यही सब चिन्ता करता हूँ।

"कुछ नहीं चाहते किन्तु फिर भी प्यार है— इसका नाम है अहेतुकी भक्ति, शुद्धाभक्ति। प्रह्लाद की यही थी; राज्य नहीं चाहता, ऐश्वर्य नहीं माँगता, केवल हरि को चाहता है।"

मास्टर— हाजरा महाशय केवल फड़-फड़ करके बोलता है। चुप न रहने के कारण (उसका) कुछ नहीं हो रहा।

(हाजरा का अहंकार और लोकनिन्दा)

श्रीरामकृष्ण— एक-एक बार तो नजदीक आकर खूब नरम हो जाता है— कैसे ग्रह हैं कि फिर और तर्क करने लगता है। अहंकार जाना बड़ा कठिन है। अश्वत्थ (पीपल) का वृक्ष अभी काट दो तो अगले दिन फिर प्रशाखा निकल आती है। जब तक उसकी जड़ रहती है, तब तक फिर-फिर होगी।

"मैं हाजरा से कहता हूँ, किसी की निन्दा मत करो।

"नारायण ही ये सब रूप रखकर रह रहे हैं— दुष्ट (बुरे) लोगों की भी पूजा की जाती है।

"देखो ना, कुमारी-पूजा! जो हगती-मूतती है और जिसकी नाक बहती रहती है, ऐसी एक लड़की की पूजा क्यों करना? कारण, वह भगवती का एक रूप जो है।

"भक्त के भीतर वे विशेष रूप से हैं। भक्त ईश्वर का बैठकखाना है।

"कद्दू बहुत बड़ा हो तो तानपुरा अच्छा होता है— अच्छा बजता है। *(सहास्य, रामलाल के प्रति)*— "अरे हाँ रे रामलाल, हाजरा ने वह कैसे करके बोला था— अन्तस् बहिस् यदि हरिस् (स-कार के द्वारा)? जैसे किसी ने कहा था मातारं भातारं खातारं अर्थात् माँ भात खा रही है।" *(सब का हास्य)*।

रामलाल *(सहास्य)*— अन्तर्बहिर्यदि हरिस्तपसा ततः किम्। (यदि अन्दर-बाहर भगवान हैं तो तप से क्या?)

श्रीरामकृष्ण *(मास्टर के प्रति)*— इसी का तुम अभ्यास करो, मुझे कभी-कभी बताओगे।

ठाकुर के कमरे की रकाबी (प्लेट) खो गई है, रामलाल और बृन्दा दासी रकाबी की बात कह रहे हैं— 'उस रकाबी का आपको पता है?'

श्रीरामकृष्ण— कहाँ? अब तो फिर दिखाई नहीं देती! पहले तो निश्चय ही थी— देखी थी।

द्वितीय परिच्छेद

(ठाकुर श्रीरामकृष्ण दो साधुओं के संग में— ठाकुर की परमहंस अवस्था)

आज पञ्चवटी में दो साधु-अतिथि आए हैं। वे गीता-वेदान्त इत्यादि अध्ययन करते हैं। मध्याह्न की सेवा (भोजन) के पश्चात् आकर ठाकुर के दर्शन कर रहे हैं। वे छोटी खाट पर बैठे हैं। साधु प्रणाम करके फर्श पर चटाई पर बैठ गए। मास्टर प्रभृति भी बैठे हुए हैं। ठाकुर हिन्दी में बातें करते हैं।

श्रीरामकृष्ण— आप लोगों की सेवा हो गई?

साधु— जी, हाँ।

श्रीरामकृष्ण— क्या खाया?

साधु— दाल-रोटी। आप खाएँगे?

(साधु और निष्काम कर्म— भक्ति-कामना— वेदान्त— संसारी व 'सोऽहम्')

श्रीरामकृष्ण— नहीं, मैं थोड़ा भात खाता हूँ। अच्छा जी, आप लोग जो जप-ध्यान करते हैं, वह निष्काम करते हैं कि ना?

साधु— जी, महाराज।

श्रीरामकृष्ण— वही अच्छा है, और फल ईश्वर को समर्पण करना चाहिए;

है ना? गीता में ऐसा ही है।

साधु *(अन्य साधु के प्रति)*—

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्।*

श्रीरामकृष्ण— उनको जो एक गुणा देगा, सहस्र गुणा पावेगा। इसीलिए सब कार्य करके जल की अञ्जलि से अर्पण करे— कृष्णे फल समर्पण।

"युधिष्ठिर जब समस्त पाप कृष्ण को अर्पण करने के लिए जा रहे थे, तब एक व्यक्ति (भीम) ने सावधान किया था, 'ऐसा काम मत करो— कृष्ण को जो अर्पण करोगे, वही सहस्रगुणा हो जाएगा!' अच्छा जी, निष्काम होना चाहिए— समस्त कामना त्याग करनी चाहिए?"

साधु— जी, हाँ।

श्रीरामकृष्ण— मेरी किन्तु भक्ति-कामना है। वह बुरी नहीं होती, अपितु भली ही होती है। मिठाई बुरी वस्तु है— अम्ल हो जाता है, किन्तु मिश्री से वरन् उपकार होता है। क्यों?

साधु— जी, महाराज।

श्रीरामकृष्ण— अच्छा जी, वेदान्त कैसा है?

साधु— वेदान्त में षट् शास्त्र (षड्दर्शन) हैं।

श्रीरामकृष्ण— किन्तु वेदान्त का सार— ब्रह्म सत्य, जगत मिथ्या। मैं अलग कुछ नहीं हूँ; मैं वही ब्रह्म हूँ। क्यों?

साधु— जी, हाँ।

श्रीरामकृष्ण— किन्तु जो गृहस्थ में हैं और जिनकी देहबुद्धि है, उनके लिए सोऽहम् भाव ठीक नहीं है। गृहस्थी के लिए है योगवाशिष्ठ, वेदान्त ठीक नहीं। बड़े खराब हैं। गृहस्थी सेव्य-सेवक भाव में रहेंगे। 'हे ईश्वर, तुम सेव्य— प्रभु, मैं सेवक— मैं तुम्हारा दास।'

"जिनकी देहबुद्धि है उनका सोऽहं भाव भला नहीं।"

---

* हे अर्जुन, तू जो भी कर्म करता है, जो कुछ खाता है, जो हवन करता है, और जो भी दान देता है और जो तपस्या करता है, वह मुझे अर्पण कर। — गीता 9 : 27

सब ही चुप हैं। ठाकुर अपने-आप थोड़ा-थोड़ा सा हँस रहे हैं— आत्माराम, अपने आनन्द में आनन्दित!

एक साधु दूसरे साधु से फिस्-फिस् करके (धीरे-धीरे) कह रहा है— 'अ'रे, देखो, देखो! इसे परमहंस अवस्था बोलते हैं।'

श्रीरामकृष्ण *(मास्टर से, उस ओर देखकर)*— हँसी आ रही है।

ठाकुर बालक की न्यायीं अपने-आप ईषत् हँस रहे हैं।

तृतीय परिच्छेद

ठाकुर श्रीरामकृष्ण व 'कामिनी'— संन्यासी के कठिन नियम

(पूर्वकथा— ससुराल जाने की साध— उलो के बामनदास के संग मिलाप)

साधु दर्शन करके चले गए।

ठाकुर और बाबूराम, मास्टर, मुखर्जियों का हरि आदि भक्त कमरे में और बरामदे में टहल रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण *(मास्टर से)*— नवीनसेन के वहाँ पर तुम गए थे?

मास्टर— जी, गया था। नीचे बैठकर गाना सुना था।

श्रीरामकृष्ण— यह बहुत अच्छा किया। तुम्हारे वे (लोग) गए थे। केशवसेन उनका चचेरा भाई है?

मास्टर— थोड़ा-सा अन्तर है।

श्रीयुक्त नवीनसेनहर एक भक्त की ससुराल के सम्पर्कीय हैं।

मणि के साथ टहलते-टहलते ठाकुर अकेले में बातें कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण— लोग ससुराल जाते हैं। इतना सोचा करता था, विवाह करूँगा— साध पूरी करके आनन्द मनाऊँगा! क्या हो गया?

मणि— जी, 'बेटा यदि बाप को पकड़े तो गिर सकता है; बाप यदि बेटे को

पकड़ लेते हैं, वह फिर नहीं गिरता।'— यह बात आपने कही है। आपकी ठीक वही अवस्था है। माँ ने आपको पकड़ रखा है।

श्रीरामकृष्ण— उलो के बामनदास के संग— विश्वासों के घर में— आलाप हुआ था। मैंने कहा, मैं तुम्हें देखने आया हूँ। जब चला आया था, सुना, वह कहता है,— 'बाबा, बाघ जैसे मनुष्य को पकड़ता है, वैसे ही ईश्वर ने इन्हें पकड़ रखा है!' तब समर्थ आयु (नौजवान), खूब मोटा था। सर्वदा ही भाव में!

"मैं नारी से बड़ा भय करता हूँ। देखता हूँ जैसे बाघिनी खाने के लिए आ रही है! और अंग, प्रत्यंग, छिद्र सब खूब बड़े-बड़े देखता हूँ। सब राक्षसीवत् देखता हूँ।

"पहले बड़ा भारी भय था! किसी को निकट नहीं आने देता था। अब किन्तु अनेक प्रकार से मन को समझाकर, माँ आनन्दमयी का एक-एक रूप जानकर देखता हूँ।

"भगवती का अंश है। किन्तु पुरुष के लिए— साधु के पक्ष में— भक्त के पक्ष में त्याज्य है।

"हजार भक्त होने पर भी स्त्री को अधिक देर निकट नहीं बैठने देता। थोड़ी-सी देर बाद, चाहे तो कह देता हूँ, जाओ देवता-दर्शन करो; उससे भी यदि नहीं उठतीं तो तम्बाकू पीने का नाम करके कमरे से बाहर निकल पड़ता हूँ।

"देखता हूँ, किसी-किसी का स्त्री की ओर तनिक भी मन नहीं है। निरञ्जन कहता है— मेरा मन स्त्री की ओर ज़रा भी नहीं है।"

(हरिबाबू, निरञ्जन, पाण्डे खोट्टा, जयनारा'ण)

"हरि (उपेन डॉक्टर के भाई) से पूछा था। वह भी बोला,— 'नहीं, स्त्री की ओर मन नहीं है!'

"जो मन भगवान को देना होगा, उस मन का बारह आना स्त्री ले लेती है। तत्पश्चात् उसका लड़का हो जाने पर प्राय: समस्त मन ही खर्च हो जाता है। वैसा होने पर फिर भगवान को क्या देगा?

"और फिर किसी-किसी का तो चौकसी करते-करते ही प्राण निकल जाता है। पाण्डे जमादार खोट्टा (बूढ़ा, उज्जड़ आदमी)— उस की चौदह वर्ष की बहू! बूढ़े के साथ उसे रहना पड़ता है! गोल पाता (घास-फूस) का घर। वह लड़की घास के पुले खोल-खोल कर लोगों को देखती। अब लड़की निकल गई है।

"किसी की बहू थी— कहाँ रखे, निश्चय ही नहीं कर सकता था। घर में बड़ी गड़बड़ हो गई थी। बड़ा चिन्तित रहा। उस बात का अब प्रयोजन नहीं है।

"और औरत के संग रहने से ही उनके बस में होना पड़ता है। गृहस्थी लोग स्त्रियों के उठ कहने पर उठते हैं, बैठ कहने पर बैठते हैं। सब ही अपनी पत्नी की सुख्याति करते हैं।

"मैं एक जगह जाना चाहता था। रामलाल की चाची से पूछने से मना कर देने पर, फिर जाना नहीं हुआ। थोड़ी देर पश्चात् सोचने लगा— ओह, मैंने गृहस्थ नहीं किया, कामिनी-काञ्चन-त्यागी हूँ, उस पर भी ऐसा है!— गृहस्थी लोग न जाने पत्नियों के पास कितने प्रकार से बस में हैं!"

मणि— कामिनी-काञ्चन के बीच में रहने से कुछ न कुछ आँच शरीर पर लगेगी ही। आपने बताया था, जयनाराय'ण इतना बड़ा पण्डित— बूढ़ा हो गया था— आप जब गए थे, तब तकिये आदि सूखने को डाल रहे थे।

श्रीरामकृष्ण— किन्तु पण्डित होने का अहंकार नहीं था। और जैसा उसने कहा था, अन्त में शास्त्र के अनुसार काशी में जाकर वास हुआ।

"लड़कों आदि को देखा था, अंग्रेज़ी पढ़े हुए हैं, पाँव में बूट पहने थे।"

(ठाकुर की प्रेमोन्माद आदि की नाना अवस्था)

ठाकुर मणि को प्रश्नों के बहाने अपनी अवस्था समझा रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण— पहले खूब उन्माद था, अब कम क्यों हो गया है?— किन्तु कभी-कभी होता है।

मणि— आपकी एक प्रकार की अवस्था तो नहीं है। जैसे बताया था, कभी बालकवत्— कभी उन्मादवत्— कभी जड़वत्— कभी पिशाचवत्— ये ही सब अवस्थाएँ कभी-कभी होती हैं। और कभी-कभी सहज अवस्था भी होती है।

श्रीरामकृष्ण— हाँ, बालकवत्। और फिर उसी के संग बाल्य, पौगण्ड (boyhood, लड़कपन), युवा— ये सब अवस्थाएँ होती हैं। जब ज्ञान-उपदेश देगा, तब युवा की अवस्था।

"और फिर पौगण्ड (लड़कपन) अवस्था। बारह-तेरह वर्ष के छोकरे की भाँति हँसी, शैतानी करने की इच्छा होती है। जभी तो छोकरों को लेकर हँसी, मज़ाक होता है।"

(नारा'ण का गुण— कामिनी-काञ्चन-त्याग ही संन्यासी की कठिन साधना)

"अच्छा, नारा'ण कैसा है?"

मणि— जी, लक्षण सब अच्छे हैं।

श्रीरामकृष्ण— कद्दू का ढोल अच्छा होगा तो तानपुरा सुन्दर बजेगा।

"वह मुझे कहता है, आप सब ही हैं (अर्थात् अवतार)। जिसकी जैसी धारणा, वह वैसा ही कहता है। कोई कहता है, ये वैसे ही केवल साधु, भक्त हैं।

"जिस-जिस बात के लिए मना कर दिया है, उसी-उसी की खूब धारणा करता है। परदा समेटने (उठाने) के लिए मना किया था। उसे नहीं समेटा।

"गिरह (गाँठ) लगाना, सिलाई करना, परदा समेटना, द्वार तथा बक्से को चाबी द्वारा बन्द करना, ये सब मना किए थे— तभी ठीक धारणा है। जो त्याग करेगा उसके लिए ये सब साधन करना आवश्यक है। संन्यासी के लिए ये सब साधन हैं।

"साधना की अवस्था में 'कामिनी' दावानल स्वरूप है— काला साँप

स्वरूप! सिद्ध अवस्था में भगवान-दर्शन के पश्चात्— तब फिर माँ आनन्दमयी! तब फिर माँ का एक-एक रूप मानकर देखेगा।''

कई दिन हुए, ठाकुर ने नारा'ण को कामिनी के सम्बन्ध में बहुत सतर्क किया था। कहा था— 'नारी के शरीर की हवा भी नहीं लगाएगा; शरीर पर मोटा कपड़ा ढके रखेगा, पीछे कहीं उनकी हवा देह पर लगे; और माँ के अतिरिक्त सब के संग आठ हाथ, नहीं तो दो हाथ, नहीं तो अन्तत: एक हाथ सर्वदा अन्तर से रहेगा।'

श्रीरामकृष्ण *(मणि के प्रति)*— उसकी माँ ने नारा'ण से कहा है, उनको देखकर तो हम लोग ही मुग्ध होते हैं, तू तो बालक है। और सरल बिना हुए ईश्वर को नहीं पाया जाता! निरञ्जन कैसा सरल है!

मणि— जी, हाँ।

(निरञ्जन, नरेन्द्र क्या सरल हैं?)

श्रीरामकृष्ण— उस दिन कलकत्ता जाते समय गाड़ी में नहीं देखा? सब समय ही एक भाव रहा— सरल। व्यक्ति घर में एक प्रकार का और फिर घर के बाहर जाने पर और एक प्रकार का हो जाता है। नरेन्द्र, अब (बाप की मृत्यु के पश्चात्) संसार की चिन्ता में पड़ गया है। उस की थोड़ी हिसाबी बुद्धि है। सब लड़के क्या इनके जैसे होते हैं?

(श्रीरामकृष्ण नवीन नियोगी के घर में— नीलकण्ठ की यात्रा)

''नीलकण्ठ की यात्रा (गीतिनाटक) आज सुनने के लिए गया था— दक्षिणेश्वर में— नवीन नियोगी के घर। वहाँ के लौण्डे (छोकरे) बड़े खराब हैं। केवल इसकी निन्दा, उसकी निन्दा! वैसे स्थल पर भाव सम्वरण हो जाता है।''

''उस बार गीतिनाटक के समय मधु डॉक्टर के नेत्रों में धारा देखकर, उसकी ओर देखता रहा था। और किसी की ओर दृष्टि नहीं फिरा सका था।''

चतुर्थ परिच्छेद

(श्रीरामकृष्ण, केशव और ब्राह्मसमाज— समन्वय उपदेश
The Universal Catholic Church of Sri Ramakrishna)

श्रीरामकृष्ण *(मणि के प्रति)*— अच्छा, इतने लोग जो यहाँ पर आकर्षित हुए आते हैं, इसके क्या माने हैं ?

मणि— मुझे तो ब्रज की लीला याद आती है। कृष्ण जब राखाल (गोप) और बछड़े बन गए, तब राखालों के ऊपर गोपियों का, और बछड़ों के ऊपर गायों का आकर्षण अधिक होने लगा।

श्रीरामकृष्ण— वह ईश्वर का आकर्षण है। कैसा है, जानते हो ? माँ जादू कर देती है और आकर्षण हो जाता है।

"अच्छा, केशवसेन के पास जितने लोग जाते थे, यहाँ पर तो उतने नहीं आते। और केशवसेन को कितने लोग इज्जत से मानते हैं, विलायत तक जानते हैं— क्वीन ने (रानी विक्टोरिया ने) केशव के साथ बातें की हैं! गीता में भी कहा है, जिसको अनेक ही जानते-मानते हैं, वहाँ पर ईश्वर की शक्ति है। यहाँ पर तो इतना नहीं होता ?

मणि— केशवसेन के पास गृहस्थी (संसारी) लोग गए हैं।

श्रीरामकृष्ण— हाँ, वह तो ठीक है। ऐहिक लोग गए हैं।

मणि— केशवसेन जो कर गए हैं, वह क्या ठहरेगा ?

श्रीरामकृष्ण— क्यों, वह संहिता बना गया है— उसमें कितने नियम हैं!

मणि— अवतार जब स्वयं कार्य करते हैं, तब अलग बात है— जैसे चैतन्यदेव का कार्य।

श्रीरामकृष्ण— हाँ, हाँ, ठीक।

मणि— आप तो कहते हैं,— चैतन्यदेव ने कहा था, मैंने जो बीज बिखेर दिया है, कभी न कभी इसका काम होगा। कॉर्निश (मुण्डेर) पर बीज रखा था, घर के गिर जाने पर वही बीज फिर दोबारा पेड़ बन जाएगा।

श्रीरामकृष्ण— अच्छा, शिवनाथहर ने समाज बनाया है, उसमें भी अनेक

व्यक्ति जाते हैं।

मणि— जी, वैसे ही लोग जाते हैं।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— हाँ, हाँ, सब गृहस्थी लोग ही जाते हैं। जो ईश्वर के लिए व्याकुल हैं— कामिनी-काञ्चन-त्याग करने की चेष्टा कर रहे हैं— ऐसे सब व्यक्ति तो निश्चय ही कम जाते हैं।

मणि— यहाँ से एक स्रोत यदि बहे, तब तो फिर सुन्दर हो जाए। उस स्रोत के आकर्षण से सब तैर जाएँगे। यहाँ से जो होगा वह तो फिर एकसुरा (कट्टरपन) नहीं होगा।

(श्रीरामकृष्ण और हिन्दु, मुसलमान, ईसाई— वैष्णव और ब्रह्मज्ञानी)

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— जिसका जो भाव होता है मैं तो उसी भाव की रक्षा करता हूँ। वैष्णव को वैष्णवभाव ही रखने के लिए कहता हूँ, शाक्त को शाक्त का भाव ही। किन्तु कहता हूँ, 'यह बात मत कहो कि— मेरा ही पथ सत्य है और सब मिथ्या व भूल है।' हिन्दु, मुसलमान, ईसाई— नाना पथों द्वारा एक जगह पर ही जा रहे हैं। अपने-अपने भाव की रक्षा करते हुए, आन्तरिक उनको पुकारने पर भगवान-लाभ होगा।

''विजय की सास ने कहा, 'तुम बलरामहर से कह दो ना कि साकार पूजा की क्या आवश्यकता है ? निराकार सच्चिदानन्द को पुकारने से ही होता है।'

''मैंने कहा, 'ऐसी बात फिर मैं ही कहने क्यों जाऊँ— और फिर वे ही क्यों सुनेंगे ?' माँ ने मछली पकाई है— किसी लड़के के लिए पुलाव बना दिया है, जिसका पेट नहीं सहता उसके लिए मछली का झोल बना दिया है। रुचि-भेद और अधिकारी-भेद से एक ही वस्तु के नाना रूप कर देने चाहिएँ।''

मणि— जी, हाँ। देश-काल-पात्र भेद से सब अलग-अलग रास्ते हैं। किन्तु जो कोई भी रास्ता क्यों न हो, शुद्ध मन से आन्तरिक और व्याकुल होकर पुकारने से ही तब उन्हें प्राप्त किया जाता है— यह बात आप कहते हैं।

(मुखर्जियों का हरि— श्रीरामकृष्ण और दान-ध्यान)

कमरे में ठाकुर अपने आसन पर बैठे हुए हैं। फर्श पर मुखर्जियों का हरि, मास्टर आदि बैठे हुए हैं। कोई अपरिचित व्यक्ति ठाकुर को प्रणाम करके बैठ गए। ठाकुर ने पीछे बतलाया था, उसके नेत्रों का लक्षण अच्छा नहीं था— बिल्ली जैसी भूरी आँखें।

हरि ने ठाकुर के लिए हुक्का बना कर ला दिया।

श्रीरामकृष्ण *(हुक्का हाथ में लेकर, हरि के प्रति)*— देखूँ, तेरा हाथ देखूँ। यही जो सब (रेखाएँ) हैं— ये बड़े अच्छे लक्षण हैं।

''हाथ को ढीला कर, ज़रा देखूँ। (अपने हाथ पर हरि का हाथ लेकर जैसे वजन कर रहे हैं)— बालक बुद्धि अब भी है;— अभी तक भी कुछ दोष नहीं हुआ। *(भक्तों के प्रति)*— मैं हाथ देखकर बता सकता हूँ खल है या सरल। *(हरि के प्रति)*— क्यों, ससुराल जाना— बहू के साथ बातचीत करना— और इच्छा हो तो थोड़ा-सा आमोद-आह्लाद (हँसी-मज़ाक, आनन्द) करना।''

(मास्टर के प्रति)— क्यों जी, कैसे? *(मास्टर आदि का हास्य)*।

मास्टर— जी, नूतन हँडी यदि खराब हो जाती है, तो फिर उस में दूध नहीं रखा जा सकता।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— अभी तक जो नहीं हुई है, यह कैसे जाना?

मुखर्जी दो भाई हैं— महेन्द्र और प्रियनाथ। वे नौकरी नहीं करते। उनकी मैदे की मशीन है। प्रियनाथ पहले इंजिनीयर थे। ठाकुर हरि से दोनों मुखर्जी भाइयों की बातें कहते हैं।

श्रीरामकृष्ण *(हरि के प्रति)*— बड़ा भाई अच्छा है, (क्यों) नहीं? बड़ा सरल है।

हरि— जी, हाँ।

श्रीरामकृष्ण *(भक्तों के प्रति)*— छोटा तो बड़ा सन (कृपण) है?— यहाँ पर आकर तो फिर भी बड़ा अच्छा हो गया है। मुझ से कहता था, मैं कुछ नहीं

जानता। *(हरि से)* ये लोग कुछ दान-वान करते हैं क्या?

हरि— वैसा तो कुछ नहीं देखता। इनका बड़ा भाई जो था— उनका काल (देहान्त) हो गया है— वे बड़े भले थे— खूब दान-ध्यान था।

(ठाकुर श्रीरामकृष्ण और देह का लक्षण— महेश न्यायरत्न का छात्र)

श्रीरामकृष्ण *(मास्टर आदि से)*— शरीर के लक्षण देखकर बहुत-सा पता लग जाता है, उसका होगा कि नहीं। खल हो तो हाथ भारी होता है।

''नाक दबा हुआ अच्छा नहीं। शम्भु का नाक दबा हुआ था। तभी तो इतना ज्ञान होते हुए भी इतना सरल नहीं था।

''टेढ़ी-मेढ़ी हड्डियाँ, सख्त हड्डियाँ— कोहनी की गाँठ (जोड़) मोटी, हाथ पतले तथा बिल्ली जैसी भूरी आँखें— ये लक्षण अच्छे नहीं।

''होंठ— डोम की न्यायीं होने पर— नीचबुद्धि होती है। विष्णु-मन्दिर का पुरोहित कई मास के लिए एवज़ी पर (पहले पुरोहित के बदले) काम के लिए आया था। उसके हाथ का मैं नहीं खाता था। हठात् मुख से निकल गया, 'ओ डोम।' तत्पश्चात् वह एक दिन बोला, 'हाँ, हमारा घर डोम मुहल्ले में है। मैं डोमों वाले पात्र चंगेरी (डलिया) बुनना जानता हूँ।'

''और भी खराब लक्षण है— एक आँख वाला और वह भी टीरी आँख हो। वरन् एक आँख से काणा भला है, टीरा अच्छा नहीं। वह बड़ा दुष्ट और खल होता है।

''महेश का (स्वर्गीय श्री महेश न्यायरत्न का) एक छात्र था। उसने कहा, 'मैं नास्तिक हूँ'। उसने हृदय से कहा, 'मैं नास्तिक हूँ, तुम आस्तिक होकर मेरे साथ विचार करो'। तब उसको भली प्रकार से देखा। देखा, बिल्ली जैसी आँखें!

''और फिर चलने से भी भला, मन्दा लक्षण पता लग जाता है।

''पुरुष के अंग के ऊपर का चमड़ा मुसलमानों की भाँति यदि कटा हुआ हो तो वह एक विशेष खराब लक्षण है। *(मास्टर आदि का हास्य)*।

(मास्टर से, सहास्य) ''तुम उसे देखो— वह खराब लक्षण है।'' *(सब का हास्य)*।

कमरे से आकर ठाकुर बरामदे में टहल रहे हैं। संग में हैं मास्टर और बाबूराम।

(हाजरा के प्रति)— ''कोई आया था, देखा बिल्ली जैसे चक्षु हैं। वह बोला, 'आप ज्योतिष जानते हैं?— मैं कुछ कष्ट पा रहा हूँ।' मैंने कहा, 'नहीं, बराहनगर जाओ, वहाँ पर ज्योतिष का पण्डित है।'

बाबूराम और मास्टर नीलकण्ठ की यात्रा (गीतिनाटक) की बातें कर रहे हैं। बाबूराम नवीनसेन के घर से दक्षिणेश्वर लौट कर कल रात को यहाँ पर थे। सुबह ठाकुर के संग दक्षिणेश्वर के नवीन नियोगी के मकान में नीलकण्ठ की यात्रा देखी थी।

(श्रीरामकृष्ण, मणि और अकेले में चिन्तन— 'ईश्वर की इच्छा' नारायण के लिए भावना)

श्रीरामकृष्ण *(मास्टर और बाबूराम के प्रति)*— तुम लोगों की क्या बातें हो रही हैं?

मास्टर और बाबूराम— जी, नीलकण्ठ की यात्रा की बात हो रही है,— और उसी गाने की बात— 'श्यामापदे आश, नदीर तीरे वास।'

[श्यामा माँ के चरणों में आशा लेकर नदी के तीर पर वास करना।]

ठाकुर बरामदे में टहलते-टहलते हठात् मणि को अकेले में ले जाकर कह रहे हैं— ईश्वरचिन्तन का जितने लोगों को पता न लगे, उतना ही अच्छा है। हठात् यही बात कहकर ही ठाकुर चले गए।

ठाकुर हाजरा के साथ बातें कर रहे हैं।

हाजरा— नीलकण्ठ ने तो आप से कहा था, वह आएगा। तो उसे बुलाने जाना चाहिए।

श्रीरामकृष्ण— ना, रात को जागा है,— ईश्वर की इच्छा से अपने-आप आता है तो बात अलग है।

ठाकुर झाउतले की ओर जा रहे हैं। संग में बाबूराम और मास्टर हैं। ठाकुर बाबूराम को नारा'ण के घर जाकर मिलने के लिए कह रहे हैं। नारा'ण को साक्षात् नारायण देखते हैं। इसीलिए उसको देखने के लिए व्याकुल हुए हैं। बाबूराम से कह रहे हैं,— ''तू वरन् एक अंग्रेज़ी पुस्तक लेकर उसके पास जा।''

पञ्चम परिच्छेद

(नीलकण्ठ आदि भक्तों के संग संकीर्त्तनानन्द में)

ठाकुर श्रीरामकृष्ण कमरे में अपने आसन पर बैठे हुए हैं। समय प्राय: तीन का होगा। नीलकण्ठ पाँच-सात साथियों को लेकर ठाकुर के कमरे में आ उपस्थित हुए। ठाकुर जैसे पूर्वास्य होकर उसकी अभ्यर्थना करने के लिए अग्रसर हुए। नीलकण्ठ कमरे के पूर्व द्वार से आकर ठाकुर को भूमिष्ठ होकर प्रणाम कर रहे हैं।

ठाकुर समाधिस्थ!— उनके पीछे बाबूराम, सामने मास्टर, नीलकण्ठ और हैरान हुए अन्य अन्य यात्रा वाले जन हैं। खाट के उत्तर के किनारे पर दीनानाथ खजांची आकर दर्शन कर रहे हैं। देखते-देखते कमरा ठाकुर-मन्दिर के लोगों से परिपूर्ण हो गया। कुछ देर पश्चात् ठाकुर का थोड़ा-सा भाव उपशम होने लगा। ठाकुर धरती पर मादुर (चटाई) पर बैठे हुए हैं— सम्मुख नीलकण्ठ और चारों ओर भक्तगण हैं।

श्रीरामकृष्ण *(आविष्ट होकर)*— मैं ठीक हूँ।

नीलकण्ठ *(कृताञ्जलि होकर)*— मुझे भी ठीक कर दें।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— तुम तो ठीक हो। 'क' आकार 'का' हुआ, फिर और आकार लगा देने से क्या होगा? 'का' के ऊपर फिर और आकार लगाने पर वही 'का' ही रहता है। *(सब का हास्य)*।

नीलकण्ठ— जी, इस संसार में ही पड़ा हुआ हूँ।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— तुम्हें संसार में रखा हुआ है पाँच जनों के लिए (और लोगों के लिए)!

"अष्टपाश। ये सब नहीं जाते। दो-एक पाश वे रख देते हैं— लोकशिक्षा के लिए। तुम यह यात्रा (गीतिनाटक) कर रहे हो, तुम्हारी भक्ति देखकर कितने लोगों का उपकार हो रहा है। और यह सब तुम्हारे छोड़ देने पर ये लोग (यात्रा वाले) कहाँ जाएँगे?

"वे तुम्हारे द्वारा कार्य करवा ले रहे हैं। कार्य शेष हो जाने पर तुम फिर नहीं लौटोगे। गृहिणी गृहस्थ का सब काम समाप्त करके— सबको खिला-पिला कर— दास-दासियों तक को खिला-पिला कर— नहाने जाती है;— तब फिर चीख-पुकार करने पर भी नहीं लौटती।"

नीलकण्ठ— मुझे आशीर्वाद कीजिए।

श्रीरामकृष्ण— कृष्ण के विरह में उन्मादिनी हुई यशोदा,— श्रीमती (राधा) के पास गई थी। श्रीमती तब ध्यान कर रही थीं। उन्होंने भावाविष्ट होकर यशोदा से कहा,— 'मैं वही मूल प्रकृति आद्याशक्ति हूँ। तुम मुझसे वर लो!' यशोदा बोली, 'और क्या वर दोगी! यही कहो कि जैसे कायमनोवाक्य से उनका चिन्तन, उनकी सेवा कर सकूँ। कानों से जैसे उनका नाम-गुणगान सुन पाऊँ, हाथों से जैसे उनकी और उनके भक्तों की सेवा कर सकूँ, आँखों से जैसे उनका रूप, उनके भक्त, दर्शन कर सकूँ।'

"जिस समय उनका नाम करते हुए आँखों में जल तैरने लगे, तब फिर तुम्हें क्या चिन्ता?— उनके ऊपर तुम्हारा प्यार हो गया है।

"अनेक जानने का नाम अज्ञान,— एक जानने का नाम ज्ञान— अर्थात् एक ईश्वर ही सत्य हैं, जो सर्वभूतों में रह रहे हैं। उनके संग में आलाप का नाम है विज्ञान; उनको प्राप्त करके नाना प्रकार से प्यार का नाम है विज्ञान।

"और भी है— वे एक, दो के पार हैं— वाक्यमन के अतीत। लीला से नित्य, और फिर नित्य से लीला में आना,— इसका नाम है पक्की भक्ति।

"तुम्हारा वह गाना सुन्दर है— 'श्यामापदे आश नदीतीरे वास।'

"वैसा होने पर ही हुआ,— उनकी कृपा के ऊपर सब निर्भर करता है।

"किन्तु इसीलिए उन्हें पुकारना होगा— चुप किए रहने से नहीं होगा। वकील हाकिम से सब-कुछ कहकर अन्त में कहता है— मैंने तो जो कहना था, कह दिया है। अब हाकिम के हाथ में है।"

कुछ क्षण पश्चात् ठाकुर कहते हैं,
"तुमने प्रात: इतना गाया, और फिर कष्ट करके यहाँ पर आए हो। किन्तु यहाँ पर ऑनरेरी (honorary)— फ्री, मुफ्त है।"

नीलकण्ठ— क्यों?

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— समझ गया हूँ, आप जो कह रहे हैं।

नीलकण्ठ— (यहाँ से) अमूल्य रत्न ले जाऊँगा!!!

श्रीरामकृष्ण— वह अमूल्य रत्न आपके पास है। और फिर 'क' को आकार देने से क्या होगा? ऐसा न हो तो तुम्हारा गाना इतना अच्छा क्यों लगता? रामप्रसाद सिद्ध है, तभी तो उसका गाना अच्छा लगता है।

"साधारण जीव को कहते हैं मनुष्य। जिसे चैतन्य हो गया है, वही है मनहोश। तभी तो तुम मनहोश हो।

"तुम्हारा गाना होगा, सुनकर मैं अपने आप ही जा रहा था— तभी नियोगी भी वही कहने आ रहा था।"

ठाकुर छोटे तख्तपोश के ऊपर अपने आसन पर जाकर बैठ गए। नीलकण्ठ से कह रहे हैं, थोड़ा-सा माँ का नाम सुनूँगा।

नीलकण्ठ साँगोपाँगों को लेकर गाना गाते हैं—

गान— श्यामापदे आश, नदी तीरे वास।

गान— महिषमर्दिनी....

यह गाना सुनते-सुनते ठाकुर खड़े-खड़े समाधिस्थ हो गए।

नीलकण्ठ गाने में कह रहे हैं, 'जिसकी जटा में गंगा, वे राज-राजेश्वरी को हृदय में धारण किए हुए हैं।'

'ठाकुर प्रेमोन्मत्त होकर नृत्य कर रहे हैं। नीलकण्ठ और भक्तगण उनको घेरते-घेरते गाना गा रहे हैं और नृत्य कर रहे हैं।'

गान— शिव, शिव, ...

इस गाने के संग भी ठाकुर भक्तों के संग में नृत्य करने लगे। गाना समाप्त हो गया। ठाकुर नीलकण्ठ से कह रहे हैं,— मैं आप का वह गाना सुनूँगा जो कलकत्ता में सुना था।

मास्टर— 'श्रीगौरांग सुन्दर, नवनटवर, तप्तकाञ्चन काय।'

श्रीरामकृष्ण— हाँ, हाँ।

नीलकण्ठ गा रहे हैं—

श्री गौरांग सुन्दर नव-नटवर, तपत काञ्चन काय।
क'रे स्वरूप विभिन्न, लुकाइये चिह्न, अवतीर्ण नदीयाय।
कलिघोर अन्धकार विनाशिते, उन्नत उज्ज्वल रस प्रकाशिते,
तिन वांछा तिन वस्तु आस्वादिते, एसेछो तिनेरि दाय;—
से तिन परशे, विरस-हरषे, दरशे जगत माताय।
नीलाब्ज हेमाब्जे करिये आवृत्त, ह्लादिनीर पूराओ देहभेदगत;
अधिरूढ़ महाभावे विभावित, सात्त्विकादि मिले जाए;
से भाव आस्वादनेर जन्य, कान्देन अरण्ये,
प्रेमेर वन्ये भेसे भेसे जाए॥
नवीन संन्यासी, सुतीर्थ अन्वेषी, कभु नीलाचले कभु जान काशी;
अयाचके देन प्रेम राशि राशि, नाहि जाति भेद ताए;
द्विज नीलकण्ठ भणे, एइ वांछा मने, कबे बिकाब गौरेर पाए।

[भावार्थ— श्री गौरांग सुन्दर नव-नटवर का तप्त काञ्चन के समान शरीर है। अब की बार वे भिन्न स्वरूप लेकर, पहले के चिह्न छिपाकर, नदिया में अवतीर्ण हुए हैं। कलिकाल का घोर अन्धकार विनाश करने के लिए और उन्नत तथा उज्ज्वल प्रेम-रस के प्रकाशन के लिए, एवं तीन इच्छाएँ, तीन वस्तु आस्वादन के लिए तीनों की जिम्मेवारी लेकर आए हैं, उन तीनों को स्पर्श करके, विशेष प्रेम-रस से हर्षित होकर देखने से जगत मतवाला हो जाता है। अब की बार कृष्णावतार की नीली देह को राधा जैसी सुनहरी-काञ्चन देह में आवृत्त करके

आए हो। तुम महाभाव में समारूढ़ हो गए हो और सात्त्विक आदि भाव तुम में मिल गए हैं। उस भाव के आस्वादन के लिए वनों में क्रन्दन करते फिरते हो तथा प्रेम-रस की बाढ़ आ रही है।

तुम नवीन संन्यासी, सुतीर्थों के अन्वेषी (खोजी) कभी नीलाचल तथा कभी काशी जाते हो; अयाचकों को प्रेम जाति-भेद बिना ढेरों-ढेरों बाँट रहे हो। द्विज नीलकण्ठ कहता है, मन में यही इच्छा है कि कब गौर के चरणों में बिकूँगा।]

'प्रेमेर वन्ये भेसे जाय' (प्रेम की बाढ़ में डूब रहा है)।— इसी पद को पकड़कर ठाकुर नीलकण्ठादि भक्तों के संग फिर नाच रहे हैं। उस अपूर्व नृत्य को जिन्होंने देखा था वे लोग कभी भी नहीं भूलेंगे। कमरा लोगों से भर गया है, सभी उन्मत्त-से हो रहे हैं! कमरा मानो श्रीवास[1] का आँगन हो गया है।

श्रीयुक्त मनोमोहन भावाविष्ट हो गए। उनके घर से कई एक स्त्रियाँ आई हुई हैं; वे उत्तर के बरामदे से यह अपूर्व नृत्य और संकीर्त्तन-दर्शन कर रही हैं। उन स्त्रियों के मध्य एक स्त्री को भाव हुआ था। मनोमोहन ठाकुर के भक्त और श्रीयुक्त राखाल के सम्बन्धी हैं।

ठाकुर ने फिर और गाना पकड़ लिया—

जादेर-हरि बोलते नयन झरे, तारा तारा दुभाई एशेछे रे![2]

[जिनके हरि बोलते हुए नयनों से जल बहने लगता है, वे दो भाई आए हैं।]

संकीर्त्तन करते-करते ठाकुर नीलकण्ठादि भक्तों के संग में नृत्य कर रहे हैं और नया पद जोड़ रहे हैं—

'राधा के प्रेम में मतवाले, वे दो भाई आए हैं रे!'

उच्च संकीर्त्तन सुनकर चारों ओर से लोग आकर जमा हो गए। दक्षिण, उत्तर और पश्चिम के गोल बरामदे में सब लोग खड़े हुए हैं। जो लोग

---

1 श्रीवास पण्डित श्री चैतन्य के निकट संगी थे। उनके घर श्री चैतन्य अपने साथियों के साथ रात-रात भर संकीर्त्तन किया करते थे।

2 परिशिष्ट-2 में पूरा गाना है।

नौका द्वारा जा रहे हैं, वे भी इस मधुर संकीर्त्तन का शब्द सुनकर आकृष्ट हुए हैं।

कीर्त्तन समाप्त हो गया। ठाकुर जगन्माता को प्रणाम कर रहे हैं और कह रहे हैं— भागवत, भक्त, भगवान— ज्ञानियों को नमस्कार, योगियों को नमस्कार, भक्तों को नमस्कार।

अब ठाकुर नीलकण्ठ आदि भक्तों के संग में पश्चिम के गोल बरामदे में आकर बैठ गए। सन्ध्या हो गई है। आज कोजागर पूर्णिमा का अगला दिन है। चारों ओर चाँद का आलोक है। ठाकुर नीलकण्ठ के साथ आनन्द में बातें कर रहे हैं।

(ठाकुर कौन ? 'मैं' खोजने से नहीं मिलता— 'मैं घर में चण्डी लाऊँगा')

नीलकण्ठ— आप ही साक्षात् गौरांग हैं।

श्रीरामकृष्ण— यह सब क्या!— मैं तो सब के दास का दास हूँ।

"गंगा की ही तरंग होती है। तरंग की कभी गंगा होती है ?"

नीलकण्ठ— आप जो कहते हैं, हम आपको वैसा ही देखते हैं।

श्रीरामकृष्ण (कुछ भावाविष्ट होकर, करुण स्वर में)— "भाई, अपने 'मैं' को खोजता हूँ, किन्तु खोजने से नहीं प्राप्त होता।

"हनुमान ने कहा था— हे राम, कभी सोचता हूँ तुम पूर्ण, मैं अंश— तुम प्रभु, मैं दास— और जब तत्त्वज्ञान होता है— तब देखता हूँ, तुम ही मैं, मैं ही तुम!"

नीलकण्ठ— और क्या कहूँ, हम पर कृपा करें।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— तुम कितने लोगों को पार कर रहे हो— तुम्हारा गाना सुनकर कितने लोगों को उद्दीपन हो रहा है!

नीलकण्ठ— पार कर रहा हूँ, आप कह रहे हैं। किन्तु आशीर्वाद कीजिए कि जैसे स्वयं डूब जाऊँ!

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— यदि डूबो तो उसी सुधा-सरोवर में।

ठाकुर नीलकण्ठ को मिल कर आनन्दित हुए हैं। उनसे फिर कह रहे हैं— "तुम्हारा यहाँ पर आना!— जिसको बहुत साधना करने पर ही प्राप्त किया जाता है! किन्तु एक गाना सुनो—

गिरि! गणेश आमार शुभकारी—
पूजे गणपति, पेलाम हेमवती
जाओ हे गिरिराज, आनो गिये गौरी॥

विल्ववृक्षमूले पातिये बोधन,
गणेशेर कल्याणे गौरीर आगमन।
घरे आनबो चण्डी, शुनबो कतो चण्डी,
कतो आसबेन दण्डी योगी जटाधारी॥

[भावार्थ— हे गिरिराज! गणेश मेरे शुभकारी हैं। गणपति को पूज कर मैंने हेमवती प्राप्त की है। हे गिरिराज! जाओ और गौरी (पार्वती) को ले आओ। विल्ववृक्ष के नीचे बोधन करके (दुर्गा-पूजा के पूर्व आश्विन शुक्ला षष्ठी के दिन देवमूर्त्तियों को जगाकर) गणेश के कल्याण के लिए गौरी का आगमन है। घर में चण्डी को लाऊँगी, फिर कितनी चण्डी— गाने सुनूँगी, तब कितने दण्डी, योगी, जटाधारी आएँगे।]

"चण्डी जिस समय आएँगी,— उस समय कितने योगी, जटाधारी आएँगे!"

ठाकुर हँस रहे हैं। कुछ क्षण बाद मास्टर, बाबूराम आदि भक्तों से कह रहे हैं— "मुझे बड़ी हँसी आ रही है। सोचता हूँ— इनको (यात्रागीति वालों को) भी फिर गाना सुनाता हूँ।"

नीलकण्ठ— हम लोग जो गाना गाते हुए फिरते हैं, उसका पुरस्कार आज मिला।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— कोई वस्तु बेचने पर एक खामचा (चुटकी) रूँगा दे देता है— तुम्हारा वहाँ पर गाने का (रूँगा) देना हो गया। *(सब का हास्य)*।

त्रयोविंश खण्ड

बलराम-मन्दिर में
श्री श्री रथयात्रा

प्रथम परिच्छेद

(पूर्ण, छोटे नरेन, गोपाल की माँ)

श्रीरामकृष्ण बलराम के घर की बैठक में भक्तों के संग बैठे हुए हैं। आषाढ़ शुक्ला प्रतिपदा, सोमवार, 13 जुलाई, 1885 ईसवी; समय 9 का है।

कल श्री श्री रथयात्रा है। रथ के लिए बलराम ठाकुर को निमन्त्रण देकर लाए हैं; घर में श्री श्री जगन्नाथ विग्रह की नित्यसेवा होती है। एक छोटा रथ भी है,— रथ के दिन रथ बाहर बरामदे में खींचा जाएगा।

ठाकुर मास्टर के साथ बातें कर रहे हैं। निकट नारा'ण, तेजचन्द, बलराम तथा अन्य अनेक भक्त हैं। पूर्ण के सम्बन्ध में बातें हो रही हैं। पूर्ण की वयस पन्द्रह होगी। ठाकुर उनको देखने के लिए व्याकुल हो गए हैं।

श्रीरामकृष्ण *(मास्टर के प्रति)*— अच्छा, वह (पूर्ण) किस पथ से आकर दर्शन करेगा?— द्विज को और पूर्ण को तुम ही मिलवा देना।

''एक सत्ता और एक वयस के व्यक्ति मैं मिलवा देता हूँ। इसका विशेष अर्थ है। दोनों जनों की ही उन्नति होती है। पूर्ण का कैसा अनुराग है, देखते हो!''

मास्टर— जी हाँ, मैं ट्राम में जा रहा था, छत से मुझको देखकर, सड़क पर

दौड़कर आ गया,— और व्याकुल होकर वहाँ पर से ही नमस्कार किया।

श्रीरामकृष्ण *(साश्रुनयनों से)*— आहा! आहा!— क्योंकि इन्होंने (मास्टर ने) परमार्थ-लाभ के लिए मेरे साथ उसका संयोग करवा दिया है। ईश्वर के लिए व्याकुल बिना हुए इस प्रकार नहीं होता।

(पूर्ण की पुरुषसत्ता— दैवस्वभाव— तपस्या के जोर से नारायण सन्तान)

''इन तीन जनों की पुरुषसत्ता है— नरेन्द्र, छोटे नरेन और पूर्ण। भवनाथ की नहीं— उसका मेदी भाव (स्त्री भाव), प्रकृति भाव है।

''पूर्ण की जो अवस्था है, इससे हो सकता है, शीघ्र देह नष्ट हो जाए— ईश्वर प्राप्त होने पर, फिर क्यों शरीर रखना;— अथवा कुछ दिनों में खूब जोरों से भीतर का भाव बाहर बढ़ेगा।

''दैवस्वभाव— देवता की प्रकृति। उससे लोकभय कम रहता है। यदि गले में माला, शरीर पर चन्दन, धूप-धूनि की गन्ध दी जाए; तो फिर समाधि हो जाती है!— ठीक बोध होता है कि अन्तर में नारायण हैं— नारायण देह धारण करके आए हैं। मुझे पता लग गया है।''

(पूर्वकथा— सुलक्षणा ब्राह्मणी की समाधि— रणजीत की भगवती कन्या)

''दक्षिणेश्वर में जब मेरी प्रथम ऐसी अवस्था हुई, कुछ दिन पश्चात् एक भले घर की ब्राह्मण की लड़की आई थी। बड़ी सुलक्षणा। ज्योंहि गले में माला और धूप-धूना दिया गया त्योंहि समाधिस्थ। कुछ क्षण बाद आनन्द— और (अश्रु) धारा गिरने लगी। मैंने तब प्रणाम किया, 'माँ, मेरा होगा?' वह बोली, 'हाँ!' इसीलिए पूर्ण को एक बार देखना है। उसे देखने की सुविधा कहाँ?

''कला ही जैसे बोध होती है। कैसा आश्चर्य— केवल अंश ही नहीं, कला!

''कैसा चतुर!— पढ़ने में तो खूब है।— इसीलिए तो ठीक समझा है।

"तपस्या के जोर से नारायण सन्तान होकर जन्म ग्रहण करते हैं। उस देश को (कामारपुकुर को) जाने के रास्ते में रणजीतराय की बड़ी दीघि (लम्बा सरोवर) है। रणजीत राय के घर में भगवती कन्या बनकर जन्मी थी। अब भी चैत्र मास में मेला होता है। मेरी जाने की बड़ी इच्छा होती थी!— और अब नहीं होती।

"रणजीतराय वहाँ का जमींदार था। तपस्या के जोर से उनको कन्यारूप में पाया था। कन्या बड़ा स्नेह करती थी। उसी स्नेह के गुण से वह अटकी हुई थी, बाप का साथ प्राय: नहीं छोड़ती थी। एक दिन वह जमींदारी का काम कर रहा था, बड़ा व्यस्त था; लड़की ने बालक स्वभाव से केवल कहा, 'पिताजी, यह क्या है, वह क्या है।' बाप ने बहुत-सी मीठी बातें करके कहा,— 'बेटी, अब जाओ, बड़ा कार्य पड़ा है।' लड़की किसी तरह नहीं जाती। अन्त में बाप ने अन्यमनस्क होकर कह दिया, 'तू यहाँ से दूर हो।' बेटी तब यही बहाना लेकर घर से चली गई। उसी समय एक शांखारी[1] रास्ते में जा रहा था। उसे पुकारकर शांखा पहन लिया। दाम देने की बात पर बोली, 'कमरे में अमुक कुलंगी (ताख) पर रुपया है, जा ले ले।' यह कहकर वहाँ से चली गई, और फिर दिखाई नहीं दी। इधर शांखारी रुपये के लिए चीख-पुकार कर रहा है। तब लड़की घर में नहीं है, देखकर सब भागे आए। रणजीतराय ने नाना स्थानों पर खोज के लिए लोग भेजे। शांखारी का रुपया ठीक उसी ताख पर मिल गया। रणजीतराय रोता-रोता फिर रहा है, तब किसी व्यक्ति ने आकर कहा कि दीघि में क्या दिखाई दे रहा है। सब दीघि के किनारे जाकर देखते हैं कि शांखा पहना हुआ हाथ जल के ऊपर उठा हुआ है। उसके बाद फिर नहीं दिखाई दिया। अब भी भगवती की पूजा उसी मेले के समय होती है— वारुणी[2] के दिन।

(मास्टर से)— "यह सब सत्य है।"

मास्टर— जी, हाँ।

---

1 शांखारी = शंख से चूड़ी, अंगूठी और दूसरी चीजें बनाने और बेचने वाला।

2 वारुणी = स्नान-दिवस— चैत्र की कृष्णा चतुर्दशी।

श्रीरामकृष्ण— नरेन्द्र यह सब विश्वास करता है।

"पूर्ण का विष्णु के अंश से जन्म है। विल्व-पत्र से मानसिक पूजा की थी, तो हुई नहीं— तुलसी-चन्दन दिया, तब हुई!

"वे नानारूपों में दर्शन देते हैं— कभी नररूप में, कभी चिन्मय ईश्वरीय रूप में। रूप मानने चाहिएँ। क्या कहते हो?"

मास्टर— जी, हाँ।

(गोपाल की माँ का प्रकृतिभाव और रूप-दर्शन)

श्रीरामकृष्ण— कामारहाटी की बामनी (गोपाल की माँ) कितना क्या-क्या देखती है! अकेली गंगा के किनारे एक बागान में निर्जन घर में रहती है और जप करती है। गोपाल पास सोता है! (कहते-कहते ठाकुर चौंक गए हैं) कल्पना में नहीं, साक्षात्! देखा गोपाल का हाथ लाल है! साथ-साथ फिरता है!— स्तन पीता है!— बातें करता है। नरेन्द्र सुनकर रोने लगा!

"मैं भी पहले अनेक देखा करता था। अब भाव में फिर इतने दर्शन नहीं होते। अब प्रकृति-भाव कम हो गया है। पुरुष-भाव आ रहा है। तभी भाव अन्तर में है, बाहर उतना प्रकाश नहीं।

"छोटे नरेन का पुरुष-भाव है— जभी तो जप में लीन हो जाता है! भाव आदि नहीं है। नित्यगोपाल का प्रकृति-भाव है। तभी खाँचा-माँचा (उलटा-पुलटा) भाव है;— भाव में उसका शरीर लाल हो जाता है।"

द्वितीय परिच्छेद

कामिनी-काञ्चन-त्याग और पूर्णादि

(विनोद, द्विज, तारक, मोहित, तेजचन्द्र, नारा'ण, बलराम, अतुल)

श्रीरामकृष्ण *(मास्टर के प्रति)*— अच्छा, लोगों का तिल-तिल करके त्याग हो रहा है, उनकी कैसी अवस्था है।

''विनोद ने कहा, 'स्त्री के संग सोना पड़ता है, मन बड़ा ही खराब होता है।'

''देखो, संग हो चाहे न हो, एक संग में सोना ही खराब है। शरीर का घर्षण, शरीर की गर्मी!

''द्विज की कैसी अवस्था! केवल शरीर हिलाता है और मेरे मुख की ओर ताकता रहता है! यह क्या कम है? सारा मन सिमट कर यदि मुझ पर आ गया है, तो फिर सब ही तो हो गया।''

(ठाकुर श्रीरामकृष्ण क्या अवतार?)

''मैं और क्या हूँ?— वे। मैं यन्त्र, वे यन्त्री। इसके (मेरे) भीतर ईश्वर की सत्ता है। जभी इतने लोगों का आकर्षण बढ़ रहा है। छू देने से ही तो हो जाता है। वह खींच, वह आकर्षण ईश्वर का ही आकर्षण है।

''तारक *(बेलघर वाला)* वहाँ (दक्षिणेश्वर) रहकर घर लौट रहा था। देखा, इसके भीतर से शिखा की न्यायीं चम्-चम् करते-करते क्या निकल गया— पीछे-पीछे!

''कई दिन पश्चात् तारक फिर (दक्षिणेश्वर) आया। तब समाधिस्थ होकर उसकी छाती पर (उन्होंने) पाँव रख दिया— इसके (मेरे) भीतर जो हैं।''

''अच्छा, ऐसे छोकरों जैसे क्या और छोकरे हैं!''

मास्टर— मोहित तो अच्छा है। आपके पास दो-एक बार गया था। दो युनिवर्सिटी-परीक्षाओं के लिए पढ़ाई कर रहा है, और ईश्वर में खूब अनुराग है।

श्रीरामकृष्ण— वैसा हो सकता है, किन्तु इतना ऊँचा घर नहीं है। शरीर के लक्षण उतने अच्छे नहीं हैं। मुख चपटा (puggish) है।

''इन लोगों का ऊँचा घर है। किन्तु शरीर धारण करने से बड़ी गड़बड़ होती है। और फिर यदि सराप (शाप) हुआ तो सात जन्म आना होगा। बड़ी सावधानी से रहना चाहिए! वासना रहने से ही शरीर धारण करना पड़ता है।''

एक भक्त— अवतार जो देह धारण करके आते हैं, उनकी भी फिर वासना— ?

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— देखा है, मेरी सारी वासना नहीं गई। एक साधु का अलवान (दुशाला) देखकर वासना हुई थी, वैसा ही पहनूँ। अभी भी है। पता नहीं फिर एक बार आना पड़े!

बलराम *(सहास्य)*— आपका जन्म क्या अलवान (दुशाले) के लिए है? *(सब का हास्य)*।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— एक सत् कामना रखनी चाहिए। उसी का चिन्तन करते-करते देहत्याग होगा, कहते हैं। साधु चार धामों में से एक धाम बाकी रख लेते हैं। अनेक जन जगन्नाथ क्षेत्र को बाकी रख लेते हैं। उससे फिर जगन्नाथ चिन्तन करते-करते शरीर जाएगा।

गेरुआ पहने हुए एक व्यक्ति ने कमरे में प्रवेश करके अभिवादन किया। वे भीतर-भीतर ठाकुर की निन्दा करते हैं, जभी बलराम हँस रहे हैं। ठाकुर अन्तर्यामी हैं, बलराम से कह रहे हैं,— ''वैसा रहे; कहेगा भाण्ड है।''

(तेजचन्द्र का संसारत्याग का प्रस्ताव)

ठाकुर तेजचन्द्र के साथ बातें कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण *(तेजचन्द्र के प्रति)*— तुझे इतना बुलाने भेजता हूँ— आता क्यों नहीं? अच्छा, ध्यान-ट्यान करता है? वह होने पर मैं खुश होऊँगा। मैं तुझे

अपना जन समझता हूँ, तभी बुलाता हूँ।

तेजचन्द्र— जी, ऑफिस जाना होता है,— काम अधिक है।

मास्टर *(सहास्य)*— घर में विवाह था, ऑफिस से दस दिन की छुट्टी ली थी।

श्रीरामकृष्ण— इसीलिए! अवसर नहीं है। इसीलिए कहते हो कि संसार-त्याग करूँगा।

नारा'ण— मास्टर महाशय ने एक दिन कहा था Wilderness of this world— संसार अरण्य।

श्रीरामकृष्ण *(मास्टर के प्रति)*— तुम उसी कहानी को सुनाओ तो इनका उपकार होगा। शिष्य औषध खाकर बेहोश हो गया है। गुरु ने आकर कहा, इसका प्राण बच सकता है, यदि इस गोली को कोई खा ले। यह तो बच जाएगा, किन्तु जो गोली खाएगा, वह मर जाएगा। (कथामृत 3:15:1)

''और वह भी कहो— टेढ़ा-मेढ़ा शरीर। वही हठयोगी जिसने सोचा था कि पत्नी आदि ही मेरे अपने जन हैं।*''

---

* और एक शिष्य ने गुरु से कहा था, मेरी स्त्री बड़ी सेवा करती है, उसके लिए ही गुरुदेव मैं जा नहीं पा रहा हूँ। वह शिष्य हठयोग किया करता था। गुरु ने उसको एक कौशल सिखा दिया। एक दिन उसके घर में खूब रोयाराट मच गया। मुहल्ले के लोग आकर देखते हैं कि हठयोगी घर में आसन पर बैठा है— टेढ़ा-मेढ़ा, अकड़ा हुआ। सबने यही समझा कि उसका प्राणवायु निकल गया है। स्त्री अछाड़-पछाड़ खाकर रो रही है, 'अजी, यह मेरा क्या हो गया— अजी, तुम हमारा क्या कर गए जी! अरी दीदी माँ, ऐसा हो जाएगा, ऐसा तो मैं नहीं जानती थी!' इधर रिश्तेदार खाट ले आए, उसको कमरे से बाहर निकालते हैं।

तब एक गड़बड़ मची। टेढ़ा-मेढ़ा अकड़ा हुआ शरीर होने के कारण द्वार में से निकलता नहीं। तब कोई पड़ोसी दौड़कर एक कटारी लेकर द्वार की चौकाठ काटने लगा। स्त्री अस्थिर हुई रो रही थी, वह दुम्-दुम् शब्द सुनकर भाग आई। आकर रोते-रोते पूछा, अजी क्या हो गया! उन्होंने बताया, ये बाहर निकलते नहीं हैं तभी चौकाठ काट रहा हूँ। तब स्त्री ने कहा, अजी, ऐसा काम मत करें। मैं अब राँड (बेवा) हो गई हूँ। मेरा देखने वाला और कोई नहीं है, इन कई नाबालिगों को पालना है। इस द्वार के कट जाने पर फिर और तो बनेगा नहीं। अजी, उनका तो जो होना था वह तो हो ही गया है— उनके हाथ-पैर काट दो! तब हठयोगी खड़ा हो गया। उसका तब तक औषध का नशा चला गया था। खड़ा होकर कहता है, 'तो फिर ओ साली, मेरे हाथ-पैर काटेगी?' यह कहकर घर का त्याग करके गुरु के संग चला गया। — कथामृत 3 : खण्ड 15 : परिच्छेद 1 (संस्करण 2009, पृ० 231-32)

मध्याह्न में ठाकुर ने श्री श्री जगन्नाथदेव का प्रसाद पाया। बलराम के यहाँ जगन्नाथदेव की सेवा है। जभी ठाकुर कहा करते हैं, 'बलराम का शुद्ध अन्न।' आहार के पश्चात् कुछ विश्राम किया।

सन्ध्या हो गई है। ठाकुर भक्तों के संग उसी कमरे में बैठे हुए हैं। कर्ताभजा चन्द्रबाबू और वही रसिक ब्राह्मण भी हैं। उस ब्राह्मण का स्वभाव एक प्रकार से भाण्ड की तरह का है,— एक-एक बात कहते हैं और सब हँसते हैं।

ठाकुर ने कर्ताभजाओं के सम्बन्ध में अनेक बातें कहीं— रूप, स्वरूप, रज, बीज, पाक-प्रणाली इत्यादि।

(ठाकुर की भावावस्था— श्रीयुक्त अतुल और तेजचन्द्र का भ्राता)

छः बज गए हैं। गिरीश के भ्राता अतुल और तेजचन्द्र के भ्राता आए हैं। ठाकुर भाव-समाधिस्थ हो गए हैं। कुछ क्षण पश्चात् भाव में कह रहे हैं, "चैतन्य का चिन्तन करके क्या अचैतन्य होता है?— ईश्वर की चिन्ता करके क्या कोई पागल होता है?— वे तो बोधस्वरूप हैं। नित्य, शुद्ध, बोधरूप!"

आगन्तुकों में से क्या कोई यह सोच रहा है कि अधिक ईश्वर-चिन्तन करके ठाकुर का मस्तिष्क खराब हो गया है?

('आगे बढ़ो'— कृष्णधन की सामान्य रसिकता)

ठाकुर कृष्णधन नामक उसी रसिक ब्राह्मण से कह रहे हैं—

"कैसे सामान्य से सांसारिक विषय लेकर तुम रातदिन हँसी-मजाक करके समय काटते हो। इसका ईश्वर की ओर मोड़ फिरा दो। जो नून (नमक) का हिसाब कर सकता है, वह मिश्री का हिसाब भी कर सकता है।"

कृष्णधन *(सहास्य)*— आप खींच लें।

श्रीरामकृष्ण— मैं क्या करूँ, तुम्हारी चेष्टा के ऊपर सब निर्भर है। 'ए मन्त्र नय— एखन, मन तोर!' (यह मन्त्र ले, अब है, मन तेरा!)

"वह सामान्य रसिकता छोड़कर ईश्वर के पथ पर आगे बढ़ो,— उससे भी बढ़कर और उससे भी बढ़कर,— है! ब्रह्मचारी ने लकड़हारे से आगे बढ़ने के लिए कहा था। वह आगे बढ़कर देखता है पहले चन्दन की लकड़ी,— उसके बाद देखता है चाँदी की खान,— उसके पश्चात् सोने की खान,— फिर उसके बाद हीरे-माणिक!"

कृष्णधन— इस पथ का शेष नहीं है।

श्रीरामकृष्ण— जिस स्थान पर शान्ति है उस स्थान पर 'तिष्ठ' (रुक जाओ)।

ठाकुर एक आगन्तुक के सम्बन्ध में कहते हैं—

"उसके भीतर कुछ वस्तु नहीं देख पाया। जैसे ओलम्बाकुल (बेकार, जैसे जंगली बेर)।"

सन्ध्या हो गई। कमरे में आलोक जला दिया है। ठाकुर जगन्माता का चिन्तन और मधुर स्वर में नाम कर रहे हैं। भक्तगण चारों ओर बैठे हुए हैं।

कल रथयात्रा है। ठाकुर आज इसी गृह में ही रात्रिवास करेंगे। अन्त:पुर में किञ्चित् जलपान करके फिर दोबारा बड़े कमरे में लौट आए हैं। रात के प्राय: दस बजे होंगे। ठाकुर मणि से कह रहे हैं, 'उस (पास के पश्चिम वाले छोटे) कमरे से अँगोछा तो ले आ।'

ठाकुर की उसी छोटे कमरे में ही शय्या तैयार हुई है। रात के साढ़े दस हो गए हैं। ठाकुर ने शयन किया।

ग्रीष्मकाल। ठाकुर मणि से कह रहे हैं, "पँखा ले आओ।" उनसे पँखा झलने के लिए कहा। बारह बजे रात को ठाकुर की थोड़ी निद्रा भंग हुई। बोले, "शीत लग रहा है, और (पँखे की) आवश्यकता नहीं।"

तृतीय परिच्छेद

(श्री श्री रथयात्रा के दिन बलराम-मन्दिर में भक्तों के संग में)

आज है श्री श्री रथयात्रा— मंगलवार (14 जुलाई, 1885)। अति सवेरे

उठकर ठाकुर एकाकी नृत्य कर रहे हैं और मधुर कण्ठ से नाम कर रहे हैं।

मास्टर ने आकर प्रणाम किया। क्रमशः भक्त आकर प्रणाम करके ठाकुर के पास बैठ गए। ठाकुर पूर्ण के लिए बड़े व्याकुल हैं। मास्टर को देखकर उनकी ही बातें कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण— तुम पूर्ण को मिलने पर कुछ उपदेश देते हो?

मास्टर— जी, चैतन्य-चरित पढ़ने के लिए कहा था। वह उसकी सब बातें सुन्दर कह सकता है। और आप ने कहा था, सत्य को पकड़े रहने के लिए, वह बात भी मैंने कही थी।

श्रीरामकृष्ण— अच्छा 'ये अवतार हैं'— ऐसी बातें पूछने पर क्या कहता है?

मास्टर— मैंने कहा था, चैतन्यदेव जैसा एकजन देखना है तो चलो।

श्रीरामकृष्ण— और कुछ?

मास्टर— आपकी वही बात। पोखरी (गढ़ी) में हाथी के चले जाने पर जल उलट-पलट हो जाता है,— क्षुद्र आधार होने से ही भाव उछल पड़ता है।

'मछली छोड़ने की बात पर उसे कहा था, ऐसा क्यों किया? शोर मच जाएगा।'

श्रीरामकृष्ण— यही ठीक है। अपना भाव भीतर ही भीतर रहना अच्छा है।

(भूमिकम्प और श्रीरामकृष्ण— ज्ञानी की देह और देहनाश समान)

प्रायः साढ़े छः बजे हैं। बलराम के घर से मास्टर गंगास्नान के लिए जा रहे हैं। मार्ग में हठात् भूमिकम्प होने लगा। वे उसी क्षण ठाकुर के कमरे में लौट आए। ठाकुर बैठक में खड़े हुए हैं। भक्तगण भी खड़े हैं। भूचाल की बात हो रही है। भूचाल कुछ अधिक हुआ था। अनेक भक्तों को ही भय हो गया है।

मास्टर— हम सब को नीचे चले जाना उचित था।

(पूर्वकथा— आश्विन का तूफान, श्रीरामकृष्ण— 5 अक्तूबर, 1864 ईसवी)

श्रीरामकृष्ण— जिस घर (देह) में वास है, उस की ही ऐसी दशा है! इस पर भी फिर मनुष्य का अहंकार।

(मास्टर से)— तुम्हें आश्विन का तूफान स्मरण है?

मास्टर— जी हाँ। तब बहुत कम वयस थी— नौ-दस वर्ष वयस थी— एक कमरे में अकेला देवताओं को पुकार रहा था।

मास्टर विस्मित होकर सोचते हैं— ठाकुर ने हठात् आश्विन के तूफान के दिन की बात क्यों पूछी? मैं जो व्याकुल होकर रो-रोकर एकाकी एक कमरे में बैठकर ईश्वर से प्रार्थना कर रहा था, ठाकुर क्या सब जानते हैं और मुझे याद करवा रहे हैं? वे क्या जन्म के समय से ही मेरी गुरुरूप में रक्षा कर रहे हैं?

श्रीरामकृष्ण— दक्षिणेश्वर में बहुत देर से फिर क्या-क्या खाना बना था![1] वृक्ष सब उलट गए थे! देखो, जिस घर में वास है, उसकी ही ऐसी दशा!

"किन्तु पूर्ण ज्ञान हो जाने पर मरा और मारा एक बोध होता है। मरने पर भी कुछ नहीं मरता— मार डालने पर भी कुछ नहीं मरता।[2] जिनकी लीला है उनका ही नित्य है। वही एक रूप में नित्य, एकरूप में लीला हैं। लीला-रूप भग्न होने पर भी नित्य रहता है। जल स्थिर होने पर भी जल है, हिलना-डुलना ठहर जाने पर भी वही जल है।"

ठाकुर बैठक में भक्तों के संग में फिर बैठे हुए हैं। महेन्द्र मुखर्जी, हरिबाबू, छोटे नरेन और अन्यान्य अनेक भक्त लड़के बैठे हुए हैं। हरिबाबू अकेले-अकेले रहते हैं और वेदान्त-चर्चा किया करते हैं। वयस 23/24 होगी। विवाह नहीं किया। ठाकुर उनको बड़ा चाहते हैं। सर्वदा अपने पास आने के लिए कहते हैं। वे अकेले में रहना पसन्द करते हैं, इसलिए हरिबाबू ठाकुर के पास अधिक नहीं जा पाते।

---

1 दक्षिणेश्वर में आए तूफान के समय की बात है।

2 न हन्यते हन्यमाने शरीरे। नायं हन्ति न हन्यते॥ — गीता II/19-20

श्रीरामकृष्ण *(हरिबाबू से)*— क्यों जी, तुम अनेक दिनों से नहीं आए?

(हरिबाबू को उपदेश— अद्वैतवाद और विशिष्टाद्वैतवाद— विज्ञान)

"वे एकरूप में नित्य, एकरूप में लीला। वेदान्त में क्या है?— ब्रह्म सत्य, जगत मिथ्या। किन्तु जब तक 'भक्त का मैं' रख दिया है, तब तक लीला भी सत्य। 'मैं' को जब पोंछ डालेंगे, तब जो है, वही है। मुख से नहीं बोला जाता। जब तक 'मैं' रख दिया है, तब तक सब ही लेना होगा। केले के पेड़ के छिलकों को निकालते रहने पर ही उसका गूदा मिलता है। किन्तु छिलका रहने पर ही गूदा है। गूदा रहने पर ही छिलका है। छिलके का ही गूदा है, गूदे का ही छिलका है। 'नित्य है', यह कहने से ही 'लीला है' समझ में आता है। 'लीला है', कहने से ही 'नित्य है', समझ में आता है।

"वे जीव-जगत बने हैं, चौबीस तत्त्व बने हैं। जब निष्क्रिय रहते हैं, तब उनको ब्रह्म कहता हूँ। जब सृष्टि करते हैं, पालन करते हैं, संहार करते हैं,— तब उन्हें शक्ति कहता हूँ। ब्रह्म और शक्ति अभेद, जल स्थिर रहने पर भी जल है, हिलने-डुलने पर भी जल है।

" 'मैं'-बोध नहीं जाता। जब तक 'मैं'-बोध रहता है; तब तक जीव-जगत मिथ्या है, यह कहना ठीक नहीं। बेल का छिलका और बीज फेंक देने पर समस्त बेल का वजन नहीं मिलता।

"जिस ईंट, चूने, सुरखी की छत है; उसी ईंट, चूने, सुरखी की सीढ़ी है। जो ब्रह्म हैं, उन्हीं की ही सत्ता से जीव-जगत है।

"भक्त और विज्ञानी जन— निराकार-साकार दोनों ही लेते हैं,— अरूप-रूप दोनों को ही ग्रहण करते हैं। भक्ति-हिम से उसी जल का ही थोड़ा-सा बरफ हो जाता है। और फिर ज्ञान-सूर्य उदय होने पर वही बरफ गलकर फिर दोबारा जैसा जल था, वैसा ही हो जाता है।"

(विचार के अन्त में मन का नाश और ब्रह्मज्ञान)

"जब तक मन के द्वारा विचार है तब तक नित्य में नहीं पहुँचा जाता। मन के द्वारा विचार करने लगते ही जगत को छोड़ा नहीं जाता,— रूप, रस, गंध, स्पर्श, शब्द,— इन्द्रियों के ये सब विषय छोड़े नहीं जाते। विचार बन्द होने पर ही तब ब्रह्मज्ञान होता है। इस मन के द्वारा आत्मा को नहीं जाना जाता। आत्मा के द्वारा आत्मा को जाना जाता है। शुद्ध मन, शुद्ध बुद्धि, शुद्ध आत्मा एक ही हैं।"

"देखो ना, एक वस्तु को देखने के लिए कितना कुछ चाहिए— चक्षु आवश्यक, प्रकाश आवश्यक और मन आवश्यक। इन तीनों में से एक को भी छोड़ देने पर उसका दर्शन नहीं होता। इस मन का कार्य जब तक चल रहा है, तब तक कैसे कहें कि जगत नहीं है, 'मैं' नहीं है?

"मन का नाश होने पर, संकल्प–विकल्प चले जाने पर; समाधि होती है,— ब्रह्मज्ञान होता है। किन्तु सा रे गा मा पा धा नी— नी पर बहुत देर तक नहीं रहा जाता।

(छोटे नरेन को उपदेश— ईश्वर–दर्शन के पश्चात् उनके संग आलाप)

छोटे नरेन की ओर देखते हुए ठाकुर कह रहे हैं,

"केवल ईश्वर हैं, ऐसा बोधे बोध करने से क्या होगा? ईश्वर–दर्शन हो जाने से ही जो सब हो गया, वैसा नहीं है।

"उनको घर में लाना चाहिए— आलाप करना चाहिए।

"किसी ने दूध सुना है, किसी ने दूध देखा है, किसी ने दूध पीया है।

"राजा को किसी–किसी ने देखा है। किन्तु दो–एक व्यक्ति ही घर में ला सकते हैं, और खिला–पिला सकते हैं।"

मास्टर गंगास्नान करने के लिए गए।

चतुर्थ परिच्छेद

(पूर्व कथा— श्री काशीधाम में शिव और सोने की अन्नपूर्णा-दर्शन— ब्रह्माण्ड का शालग्राम-रूप में दर्शन)

समय दस का। ठाकुर भक्तों के संग बातें कर रहे हैं। मास्टर ने गंगास्नान करके, आकर ठाकुर को प्रणाम किया और निकट बैठ गए।

ठाकुर भाव-पूर्ण होकर कितनी ही बातें बोल रहे हैं। बीच-बीच में अति गुह्य दर्शन-कथा बोल रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण— सेजोबाबू के साथ जब काशी गया था, मणिकर्णिका के घाट के निकट से हमारी नौका जा रही थी। हठात् शिवदर्शन। मैं नौका के किनारे पर आकर खड़ा-खड़ा समाधिस्थ हो गया। मल्लाह हृदय से कहने लगे— 'पकड़ो! पकड़ो!' पीछे गिर न जाऊँ। मानो (शिव) जगत का सब गाम्भीर्य लेकर उसी घाट पर खड़े हुए हैं। प्रथम देखा कि दूर खड़े हैं, फिर निकट आते देखा, उसके पश्चात् मुझ में मिल गए!

"भाव में देखा, संन्यासी हाथ पकड़ कर ले जा रहा है। एक मन्दिर में प्रवेश किया— सोने की अन्नपूर्णा का दर्शन हुआ!

"वे ही सब हुए हैं, किसी-किसी वस्तु में अधिक प्रकाश है।

(मास्टर आदि के प्रति)— "शालग्राम को तुम लोग शायद नहीं मानते— इंग्लिशमैन नहीं मानते। उसे तुम लोग मानो चाहे न मानो। सुलक्षण शालग्राम में,— अच्छा चक्र रहेगा, गोमुखी होगा; और भी कई लक्षण रहेंगे— वैसा होने पर भगवान की पूजा होती है।"

मास्टर— जी, सुलक्षण युक्त मनुष्य के भीतर जैसे ईश्वर का अधिक प्रकाश होता है।

श्रीरामकृष्ण— नरेन्द्र पहले मन की भूल कहता था, अब सब मानता है।

ईश्वर-दर्शन की बात कहते-कहते ठाकुर की भावावस्था हो गई। भाव-समाधिस्थ। भक्तगण चुप करके एकटक दृष्टि से देख रहे हैं। अनेक क्षण पश्चात् भाव संवरण किया और बातें करने लगे।

श्रीरामकृष्ण *(मास्टर के प्रति)*— क्या देखा! ब्रह्माण्ड एक शालग्राम!— उस के भीतर तुम्हारे दो चक्षु देखे!

मास्टर और भक्तगण यह अद्‌भुत, अश्रुतपूर्व दर्शनकथा अवाक् होकर सुन रहे हैं। इसी समय और एक लड़के भक्त, शारदा ने प्रवेश किया और ठाकुर को प्रणाम करके बैठ गया।

श्रीरामकृष्ण *(शारदा के प्रति)*— दक्षिणेश्वर क्यों नहीं जाता? कलकत्ता में जब आता हूँ, तब क्यों नहीं आता?

शारदा— मुझे खबर नहीं मिलती।

श्रीरामकृष्ण— अब की बार तुम्हें खबर दूँगा।

(मास्टर से, सहास्य) एक फेहरिस्त तो बनाओ लड़कों की। *(मास्टर और भक्तों का हास्य)*।

(पूर्ण का संवाद— नरेन्द्र-दर्शन में ठाकुर का आनन्द)

शारदा— घर वाले विवाह कर देना चाहते हैं। इन्होंने (मास्टर ने) विवाह की बात पर हमें कितनी बार डाँटा है।

श्रीरामकृष्ण— अब विवाह क्यों?

(मास्टर के प्रति)— शारदा की अच्छी अवस्था हो गई है। पहले संकोच भाव था। मानो (मछली) बाँस का चारा खेंच लेती हो। अब मुख पर आनन्द आ गया है।

ठाकुर एक भक्त से कह रहे हैं,

"तुम एक बार पूर्ण के लिए जाओगे?"

अब नरेन्द्र आए हैं। ठाकुर ने नरेन्द्र को जलपान करवाने के लिए कहा। नरेन्द्र को देखकर बड़े ही आनन्दित हुए हैं। नरेन्द्र को खिला कर जैसे साक्षात् नारायण की सेवा कर रहे हैं। देह पर हाथ फेर कर स्नेह कर रहे हैं, जैसे सूक्ष्म भाव में हाथ-पाँव दबा रहे हैं! गोपाल की माँ ('कामारहाटी की ब्राह्मणी') कमरे में आईं। ठाकुर ने बलराम द्वारा कामारहाटी व्यक्ति भिजवाकर गोपाल की माँ से आने के लिए कहलवाया था। जभी वे आई

हैं। गोपाल की माँ, कमरे में आते ही कहती हैं, 'आनन्द से मेरे नेत्रों से जल बह रहा है।' यह कहकर ठाकुर को भूमिष्ठ होकर नमस्कार किया।

श्रीरामकृष्ण— यह क्या जी! तुम वैसे तो मुझे गोपाल कहती हो,— और फिर नमस्कार!

"जाओ, घर में जाकर कोई सब्जी बनाओ— तुड़का खूब लगाइयो, ताकि यहाँ तक गन्ध आए।" *(सब का हास्य)*।

गोपाल की माँ— ये (घर के लोग) क्या सोचेंगे?

गोपाल की माँ क्या यह सोच रही हैं कि यहाँ पर नई-नई आई हूँ, यदि अलग से पकाऊँगी तो घरवाले क्या सोचेंगे!

घर के भीतर जाने से पहले वे नरेन्द्र को सम्बोधन करके कातर स्वर में कहती हैं, 'बेटा! मेरा हो गया है क्या, या बाकी है?'

आज रथयात्रा—

श्री श्री जगन्नाथ के भोगराग आदि होने में कुछ देर हो गई है। अब ठाकुर की सेवा (भोजन) होगी। अन्तःपुर में जा रहे हैं। स्त्रीभक्त व्याकुल हो रही हैं,— उनका दर्शन करेंगी और प्रणाम करेंगी।

ठाकुर की अनेक स्त्री-भक्त थीं। किन्तु वे उनकी बातें पुरुष-भक्तों के निकट अधिक नहीं कहते थे। किसी जन के स्त्री भक्तों के पास यातायात करने पर कहते,

"अधिक मत जा, गिर जाएगा!"

कभी-कभी कहते—

"यदि स्त्री भक्ति में विभोर हो जाए ,तब भी उसके पास यातायात नहीं करोगे। स्त्री भक्तगण अलग रहेंगी— पुरुष भक्तगण अलग रहेंगे। उसमें ही दोनों का मंगल है।"

और फिर कहते—

"स्त्री भक्तों का अधिक गोपाल भाव— 'वात्सल्य भाव' अच्छा नहीं है। इस 'वात्सल्य' से ही फिर एक दिन 'ताच्छल्य' (पतन) हो जाता है।"

पञ्चम परिच्छेद

(बलराम की रथयात्रा— नरेन्द्रादि भक्तों के संग में संकीर्त्तनानन्द)

समय एक का हुआ है। ठाकुर आहारान्ते बैठक में आकर भक्तों के संग में बैठे हुए हैं। एक भक्त पूर्ण को बुलाकर ले आया है। ठाकुर महानन्द में मास्टर से कह रहे हैं, "अरे यह लो! पूर्ण आ गया है।" नरेन्द्र, छोटे नरेन, नारा'ण, हरिपद और अन्यान्य भक्त निकट बैठे हैं और ठाकुर के साथ बातें कर रहे हैं।

(स्वाधीन इच्छा Free Will और छोटे नरेन— नरेन्द्र का गान)

छोटे नरेन— अच्छा, हमारी स्वाधीन इच्छा (free will) है कि नहीं?

श्रीरामकृष्ण— 'मैं' को खोजो तो ज़रा। 'मैं' को खोजते-खोजते वे निकल पड़ते हैं। 'मैं यन्त्र तुम यन्त्री।' सुना है जी, चीन का चाबीवाला पुतला हाथ में चिट्ठी लेकर दुकान पर चला जाता है! ईश्वर ही कर्त्ता है। अपने आपको अकर्त्ता जानकर कर्त्ता की न्यायीं कार्य करो।

"जब तक उपाधि है, तब तक अज्ञान है; मैं पण्डित, मैं ज्ञानी, मैं धनी, मैं मानी; मैं कर्त्ता, पिता, गुरु— यह सब अज्ञान से होता है। 'मैं यन्त्र, तुम यन्त्री'— यह ज्ञान है। अन्य सब उपाधियाँ चली गईं। लकड़ी जलकर समाप्त हो जाने पर फिर शब्द नहीं रहता— उत्ताप (सेंक) भी नहीं रहता। सब ठण्डा— शान्तिः शान्तिः शान्तिः!

(नरेन्द्र से)— "थोड़ा-सा गा ना।"

नरेन्द्र— घर जाता हूँ,— अनेक काम हैं।

श्रीरामकृष्ण— हाँ बच्चे, हमारी बात क्यों सुनेगा? जिसके कान में सोना है, उसकी बात ही पूरी मानी जाती है। जिसके पास फटी लंगोटी है उसकी बात कोई नहीं सुनता। *(सब का हास्य)*।

"तुम गुहों के बागान में जा सकते हो। प्रायः सुनता हूँ आज कहाँ है, वह गुहों के बागान में है!— यह बात नहीं कहता, तूने ही तो निकलवा ली है—

नरेन्द्र कितनी देर चुप रहे। बोले—

'यन्त्र नहीं हैं, खाली गान—'

श्रीरामकृष्ण— हमारी जैसी अवस्था है, बच्चे।— इसी तरह हो सके तो गाओ। उस पर फिर बलराम का बन्दोबस्त!

"बलराम कहता है, आप नौका करके ही आवें। यदि बिल्कुल ही न हो सके तो गाड़ी करें *(सब का हास्य)*। भोजन खिलाया है। आज जभी तो शाम को नचा लेगा *(हास्य)*। यहाँ से एक दिन गाड़ी कर दी थी— बारह आना था भाड़ा। मैंने कहा, बारह आने में दक्षिणेश्वर जाएगी? वह बोला, ऐसा ही होता है। गाड़ी मार्ग में जाते-जाते एक ओर से टूटकर गिर पड़ी— *(सब का हास्य)*। और फिर घोड़ा बीच-बीच में एकदम ठहर जाता। किसी तरह भी नहीं चलता; गाड़ी वाला बार-बार खूब मारता, और वह एक-एक बार दौड़ता! *(उच्च हास्य)*। इधर राम खोल (मृदंग) बजाएगा— और हम नाचेंगे— राम को तालबोध नहीं है। *(सब का हास्य)*। बलराम का भाव है, आप लोग गाओ, नाचो, आनन्द मनाओ।" *(सब का हास्य)*।

भक्तगण घरों से आहार आदि करके धीरे-धीरे आ रहे हैं।

महेन्द्र मुखुज्ये को दूर से प्रणाम करते देखकर ठाकुर उन्हें प्रणाम करते हैं— और फिर सलाम कर रहे हैं। निकट के एक भक्त लड़के से कह रहे हैं— उसको कहना 'सलाम किया है,'— वह बड़ी आनाकानी करता है। *(सब का हास्य)*। गृहस्थ भक्त अनेक ही अपने घर की स्त्रियों को लाए हैं,— वे लोग श्री श्री ठाकुर का दर्शन करेंगी और रथ के सम्मुख कीर्त्तनानन्द देखेंगी। राम, गिरीश आदि भक्तगण क्रम-क्रम से आ रहे हैं। छोकरे भक्त भी अनेक आए हैं।

अब नरेन्द्र गाना गा रहे हैं—

(1) कतो दिने होबे से प्रेम संचार।
होये पूर्णकाम बोलबो हरिनाम, नयने बहिबे प्रेम-अश्रुधार॥*

---

* परिशिष्ट-2 में पूरा गाना है।

[वह प्रेम संचार कितने दिनों में होगा जब पूर्णकाम होकर हरि-नाम बोलूँगा और नयनों से प्रेम की अश्रुधारा बहेगी।]

(2) निबिड़ आँधारे मा तोर चमके ओ रूपराशि।
ताई योगी ध्यान धरे होये गिरि गुहावासी॥[1]

[हे माँ, घने अन्धकार में तेरी रूपराशि चमकती है। तभी तो योगीजन ध्यान लगाकर गिरि की गुहाओं के वासी बन गए हैं।]

बलराम ने आज कीर्त्तन का बन्दोबस्त किया है— बैष्णवचरण और बनवारी का कीर्त्तन। अब वैष्णवचरण गा रहे हैं—

श्रीदुर्गा नाम जप सदा रसना आमार।
दुर्गमे श्रीदुर्गा बिने के करे निस्तार॥[2]

[ऐ मेरी रसना, तू श्री दुर्गा-नाम सदा जप। नहीं तो कठिनाई में श्री दुर्गा बिना कौन निस्तार करेगा?]

थोड़ा-सा गाना सुनते-सुनते ठाकुर समाधिस्थ। खड़े होकर समाधिस्थ!— छोटे नरेन ने पकड़ रखा है। सहास्यवदन हैं। क्रमश: सब स्थिर! कमरा भरा भक्तगण अवाक् होकर देख रहे हैं। स्त्रीभक्त चिक में से देख रही हैं। लगता है साक्षात् नारायण देह धारण करके भक्तों के लिए आए हैं! 'किस प्रकार से ईश्वर को प्यार करना चाहिए', वही सिखाने आए हैं!

नाम करते-करते अनेक क्षण पश्चात् समाधि भंग हुई। ठाकुर के आसन ग्रहण कर लेने पर वैष्णवचरण ने फिर और गाना शुरु किया—

(1) हरि-हरि बोल रे वीणे![3]

(2) विफल दिन जाय रे वीणे, श्री हरिर साधन बिने।

अब एक और कीर्त्तनिया, बनवारी, 'रूप' गा रहे हैं। किन्तु गाना गाते-गाते सदा ही 'आहा! आहा!' बोलकर भूमिष्ठ होकर प्रणाम करते हैं। उससे श्रोताओं में से कोई हँसते हैं और कोई विरक्त होते हैं।

---

1 परिशिष्ट-2 में पूरा गाना है।

2 पृष्ठ 179 पर पूरा गाना है।

3 पृष्ठ 205 पर पूरा गाना है।

अपराह्न हुआ। इसी बीच बरामदे में श्री श्री जगन्नाथदेव का वही छोटा रथ ध्वजा-पताका द्वारा सुसज्जित करके लाया गया। श्री श्री जगन्नाथ, सुभद्रा और बलराम चन्दनचर्चित हैं और वसनभूषण और पुष्पमालाओं द्वारा सुशोभित हुए हैं। ठाकुर ने बनवारी का कीर्त्तन छोड़कर बरामदे में रथ के आगे गमन किया,— भक्तगण भी संग-संग चलने लगे। रथ की रस्सी पकड़कर थोड़ा-सा खेंचा— तत्पश्चात् रथ के आगे भक्तों के संग में नृत्य और कीर्त्तन कर रहे हैं। और-और गानों के संग में ठाकुर पद गाने लगे—

जादेर हरि बोलिते नयन झरे, तारा तारा दु'भाई एसेछे रे!
जारा मार खेये प्रेम जाचे, तारा तारा दु'भाई एशेछे रे[1]

और फिर—

नदे टलमल टलमल करे, गौर प्रेमेर हिल्लोले रे।
[इस गौर के प्रेम में नदिया हिल्लोले ले रहा है।]

छोटे बरामदे में रथ के संग-संग कीर्त्तन और नृत्य हो रहा है। ऊँचा संकीर्त्तन और मृदंग (खोल) का शब्द सुनकर बाहर के लोग अनेक ही बरामदे में आ गए हैं। ठाकुर हरिनाम में मतवाले हैं! भक्तगण भी संग-संग प्रेमोन्मत्त हुए नाच रहे हैं!

षष्ठ परिच्छेद

(नरेन्द्र का गाना— ठाकुर का भावावेश में नृत्य)

रथ के आगे कीर्त्तन और नृत्य के पश्चात् ठाकुर श्रीरामकृष्ण कमरे में आकर बैठ गए हैं। मणि आदि भक्तगण उनकी पदसेवा कर रहे हैं।

नरेन्द्र भावपूर्ण होकर तानपुरा लेकर फिर गाना गा रहे हैं—

(1) एशो मा एशो मा, हृदयरमा, पराणपुतलि गो,
हृदय-आसने, होओ मा आसीन, निरखि तोमारे गो।[2]

1 जिनके हरि बोलते हुए नयनों से जल झरता है, वे ही दोनों भाई आए हैं। जो मार खाकर भी प्रेम की भिक्षा माँगते हैं, वे दोनों भाई आए हैं।

1, 2 परिशिष्ट-2 में पूरा गाना है।

[हृदय में रमण करने वाली मेरी प्राणपुतली माँ, आओ माँ और हृदय-आसन पर आसीन हो जाओ, तुम्हें फिर मैं देखूँ।]

(2) मा त्वं हि तारा, तुमि त्रिगुणधरा परात्परा।
आमि जानि गो ओ दीनदयामयी, तुमि दुर्गमेते दुखहरा॥
तुमि सन्ध्या तुमि गायत्री, तुमि जगद्धात्री गो मा।
तुमि अकूलेर त्राणकर्त्री, सदा शिवेर मनोरमा॥
तुमि जले, तुमि स्थले, तुमि आद्यमूले गो मा।
तुमि सर्वघटे अक्षपुटे, साकार आकार निराकार॥

[भावार्थ— माँ, तुम ही तारा, तुम ही त्रिगुणधरा, परात्परा हो। हे दीन-दयामयी, मैं जानता हूँ तुम विपत्ति में दुःख हरण करने वाली हो। तुम सन्ध्या, तुम गायत्री और जगद्धात्री हो हे माँ। तुम व्याकुल प्राणों की त्राणकर्त्री, सदा शिव के मन का हरण करने वाली हो। हे माँ, तुम्हीं जल में, तुम्हीं स्थल पर और तुम ही आद्यमूल में हो। तुम सर्वघटों में, अक्षपुटों में साकार, आकार, निराकार हो।]

(3) तोमोरेइ करियाछि जीवनेर ध्रुवतारा।
ए समुद्रे आर कभु होबो नाको पथहारा॥*

[आपको ही जीवन का ध्रुव तारा बना लिया है। इस समुद्र में और कभी भी पथ-भ्रान्त नहीं होऊँगा।]

एक भक्त नरेन्द्र से कहते हैं, तुम वह गाना गाओगे?—

अन्तरे जागिछो गो मा अन्तरयामिनी!

श्रीरामकृष्ण— चल! अब ऐसे गाने क्या! अब आनन्द का गाना— 'श्यामा सुधा-तरंगिणी।'

नरेन्द्र गा रहे हैं—

कखनो कि रंगे थाको मा, श्यामा, सुधातरंगिणी।
तुमि रंगे भंगे अपांगे अनंगे भंग दाओ जननी॥

---

* परिशिष्ट-2 में पूरा गाना है।

भावोन्मत्त होकर नरेन्द्र बार-बार गाने लगे—

लंफे झंपे कम्पे धरा असिधरा करालिनी।
(तुमि) त्रिगुणा त्रिपुरा तारा भयंकरा कालकामिनी॥
साधकेर वांछा पूर्ण करो नाना रूप धारिणी।
(कभु) कमलेर कमले नाचो मा पूर्णब्रह्म सनातनी॥

[भावार्थ— हे श्यामा! तुम अमृतमयी लहरों के समान हो। कौन जाने कि तुम कब किस रंग में रहती हो। हे जननि! तुम अपनी रंग-भंगी से कामदेव के कटाक्ष को नष्ट कर देती हो। हे खड्गधारिणी, करालिनी, तुम्हारे लम्फ-झम्प (उछल-कूद) से सारी पृथ्वी काँप उठती है। तुम त्रिगुणा हो, तुम त्रिपुरा हो, तुम तारा हो, तुम भयंकरा हो और कालकामिनी हो। नाना रूप धारण करने वाली माँ! तुम भक्तों की आकांक्षा पूर्ण करने वाली हो। हे पूर्णब्रह्म सनातनी माँ! कभी तो तुम कमलाकान्त के हृत्कमल में नाचो।]

ठाकुर प्रेमोन्मत्त होकर नृत्य कर रहे हैं,— और गा रहे हैं, ओ माँ पूर्णब्रह्मसनातनी! अनेक क्षण नृत्य के पश्चात् ठाकुर ने फिर आसन ग्रहण किया। नरेन्द्र भावाविष्ट होकर साश्रुनयनों से गाना गा रहे हैं, देखकर ठाकुर अत्यन्त आनन्दित हुए।

रात्रि के प्राय: नौ होंगे, अब भी भक्तों के संग ठाकुर बैठे हुए हैं। दोबारा वैष्णवचरण का गाना सुन रहे हैं—

(1) श्री गौरांग सुन्दर नव नटवर...[1]

(2) चिनिबो केमने हे तोमाय (हरि)।[2]

रात के दस-ग्यारह हो गए। भक्त प्रणाम करके विदा ले रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण— अच्छा, अब सब ही घर जाओ। *(नरेन्द्र और छोटे नरेन को दिखलाकर)* इन दो जनों के रहने से ही हुआ। *(गिरीश के प्रति)* तुम क्या अब घर जाकर खाओगे? ठहरो तो, थोड़ा-सा ठहरो। तम्बाकू!— ओह,

1 पृष्ठ 67 पर पूरा गाना है।

2 पृष्ठ 205 पर पूरा गाना है।

बलराम के नौकर भी ऐसे ही हैं। पुकार कर देखो,— नहीं देगा। *(सब का हास्य)* किन्तु तुम तम्बाकू पीकर जाना।

श्रीयुक्त गिरीश के संग एक चश्मा पहने हुए मित्र आए हैं। वे समस्त देख-सुनकर चले गए। ठाकुर गिरीश से कह रहे हैं,— "तुमसे और हरेक से कहता हूँ, जोर करके किसी को मत लाओ,— समय बिना हुए नहीं होता।"

एक भक्त ने प्रणाम किया। संग में बालक है। ठाकुर सस्नेह कहते हैं, "तो फिर तुम चलो, फिर वह (बच्चा) भी संग में है।"

नरेन्द्र, छोटे नरेन और दो-एक भक्त कुछ देर ठहरकर घर लौटेंगे।

सप्तम परिच्छेद

(सुप्रभात और ठाकुर श्रीरामकृष्ण— मधुर नृत्य और नामकीर्त्तन)

श्रीरामकृष्ण बैठक के पश्चिम की ओर के छोटे कमरे में शय्या पर बैठे हुए हैं। रात (तड़के के) चार। कमरे के दक्षिण में बरामदा है, उसमें एक स्टूल रखा हुआ है। उसके ऊपर मास्टर बैठे हुए हैं।

कुछ क्षण पश्चात् ही ठाकुर बरामदे में आ गए। मास्टर ने भूमिष्ठ होकर प्रणाम किया। संक्रान्ति, बुधवार 32वीं आषाढ़, 15 जुलाई, 1885।

श्रीरामकृष्ण— मैं और एक बार उठा था। अच्छा, क्या सवेरे जाऊँ?

मास्टर— जी, सुबह के समय (गंगा की) तरंगें कुछ कम रहती हैं।

भोर हो गई है, अभी भी भक्तगण आकर जमा नहीं हुए। ठाकुर मुख धोकर मधुर स्वर में नाम कर रहे हैं। निकट मास्टर हैं। कुछ देर पश्चात् अनतिदूर (निकट ही) गोपाल की माँ आकर खड़ी हो गई। अन्त:पुर के द्वार की ओर से दो-एक स्त्रीभक्त आकर ठाकुर को देख रही हैं— मानो वृन्दावन की गोपियाँ श्री कृष्ण-दर्शन कर रही हैं। अथवा नवद्वीप की भक्त महिलाएँ प्रेमोन्मत्त श्री गौरांग को ओट से देख रही हैं।

राम-नाम करके ठाकुर कृष्ण-नाम कर रहे हैं— कृष्ण! कृष्ण!

गोपीकृष्ण! गोपी! गोपी! राखाल (गोप)-जीवन कृष्ण! नन्दनन्दन कृष्ण! गोबिन्द! गोबिन्द!

और फिर गौरांग का नाम कर रहे हैं—

श्रीकृष्ण चैतन्य प्रभु नित्यानन्द। हरेकृष्ण हरे राम, राधे गोबिन्द।

और फिर कह रहे हैं, अलख निरञ्जन। निरञ्जन बोलकर रो रहे हैं। उनका क्रन्दन देखकर और कातर स्वर सुनकर निकट खड़े हुए भक्तगण भी रो रहे हैं। वे क्रन्दन करते हैं और कहते हैं, 'निरञ्जन!' आ जा बाप— ले खा ले रे— कब तुझे खिलाकर जन्म सफल करूँगा! तू ही मेरे लिए देह धारण करके नररूप में आया है।"

जगन्नाथ के निकट आर्ति (दु:ख) कर रहे हैं— जगन्नाथ! जगबन्धु! दीनबन्धु! मैं तो जगत से अलग नहीं हे नाथ, मुझ पर दया करो!

प्रेमोन्मत्त होकर गा रहे हैं—

उडिष्या जगन्नाथ भज विराज जी!

[उड़ीसा के जगन्नाथ जी को भजते हुए आनन्द से रहो।]

अब नारायण का नाम-कीर्त्तन करते-करते नाच रहे हैं और गा रहे हैं—

श्रीमन्नारायण! नारायण! नारायण!

नाचते-नाचते फिर और गाना गा रहे हैं—

होलाम जार जन्य पागल, तारे कोइ पेलाम सइ।
ब्रह्मा पागल, विष्णु पागल, और पागल शिव,
तिन पागले युक्ति करे भांगले नवद्वीप
आर एक पागल देखे एलाम वृन्दाबनेर माठे,
राइके राजा साजाये आपनि कोटाल साजे!

[भावार्थ— जिसके लिए पागल हुई हूँ हे सखी, वह तो मुझे नहीं मिला। ब्रह्मा, विष्णु, शिव— तीनों पागल हैं, तीनों पागलों ने सलाह करके नवद्वीप को तोड़ दिया है। और एक पागल को वृन्दावन के मैदान में देखकर आई हूँ, राधा को राजा सजाकर अपने आप कोतवाल बना हुआ है।]

अब ठाकुर भक्तों के संग में छोटे कमरे में बैठे हुए हैं— दिगम्बर! जैसे

पाँच वर्ष का बालक! मास्टर, बलराम तथा और भी दो-एक भक्त बैठे हुए हैं।

(रूप-दर्शन कब ? गुह्यकथा— शुद्धात्मा छोकरों में नारायण-दर्शन रामलाल, निरञ्जन, पूर्ण, नरेन्द्र, बेलघर के तारक, छोटे नरेन)

श्रीरामकृष्ण— ईश्वरीय रूप-दर्शन किया जाता है! जब उपाधियाँ सब चली जाती हैं, विचार बन्द हो जाता है— तब दर्शन! तब मनुष्य अवाक्, समाधिस्थ हो जाता है। थियेटर में जाकर लोग कितनी बातें करते हैं,— यह बात, वह बात। ज्यों ही पर्दा उठ जाता है सब बातचीत बन्द हो जाती है। जो देखता है उसी में ही मग्न हो जाता है।

"तुम लोगों से अति गुह्य बात कहता हूँ। क्यों पूर्ण, नरेन्द्र— इन सबको इतना प्यार करता हूँ। जगन्नाथ के संग मधुर भाव में आलिंगन करने के लिए जाने पर हाथ टूट गया था। जनवा दिया, 'तुमने शरीर धारण किया है— अब नर-रूप के संग सखा, वात्सल्य इत्यादि इन्हीं भावों को लेकर रहो।'

"रामलाला के ऊपर जो-जो हुआ करता था, वही पूर्ण आदि को देखकर होता है। रामलाला को नहलाता, खिलाता, सुलाता— संग-संग लेकर टहलता, रामलाला के लिए बैठा-बैठा रोया करता था, इन लड़कों को लेकर बिल्कुल वैसा ही होता है। देखो ना, निरञ्जन किसी में भी लिप्त नहीं। अपने रुपए से गरीबों को वह डॉक्टर के पास ले जाता है। विवाह की बात पर कहता है 'बाप रे! वह तो विशालाक्षी का भँवर है।' उसे देखता हूँ कि वह एक ज्योति के ऊपर बैठा हुआ है।

"पूर्ण का है ऊँचा साकार का घर— विष्णु के अंश में जन्म! आहा, कैसा अनुराग है!"

(मास्टर के प्रति)— "देखा नहीं, तुम्हारी ओर देखने लगा— जैसे गुरुभाई के ऊपर— जैसे ये हमारा अपना ही जन है! और एक बार मिलेगा— कहता था। कहा है, काप्तेन के घर पर मिलेगा।"

(नरेन्द्र के कितने गुण— छोटे नरेन के गुण)

''नरेन्द्र का है खूब ऊँचा घर— निराकार का घर— पुरुष की सत्ता।

''इतने भक्त आते हैं, उसके जैसा एक भी नहीं है।

''कभी-कभी बैठा हुआ हिसाब लगाता हूँ तो देखता हूँ, अन्य पद्म— किसी के दस दल हैं, किसी के सोलह दल, किसी के शतदल किन्तु पद्मों में नरेन्द्र सहस्रदल है।

''अन्य लोग कलसी, घटी इत्यादि हो सकते हैं,— नरेन्द्र मटका है।

''गढ़ी, तालाबों में नरेन्द्र बड़ा सरोवर है। जैसे हलधार पुकुर।

''मछलियों में नरेन्द्र लाल नेत्रों वाली बड़ी रोहू है, और सब तरह-तरह की (छोटी) मछलियाँ हैं— पोना, काठिबाटा इत्यादि।

''बड़ा आधार है,— अनेक वस्तु रखी जा सकती हैं। बड़े-बड़े छिद्रों वाला बाँस है।

''नरेन्द्र किसी के वश में नहीं। वह आसक्ति, इन्द्रिय-सुख के वश में नहीं। पुरुष कबूतर। चोंच पकड़ लेने पर चोंच खींचकर छुड़ा लेता है— मादा कबूतर चुप रहती है।

''बेलघर के तारक को मृगेल (रोहु जाति की एक मछली) कहा जा सकता है।

''नरेन्द्र पुरुष है, गाड़ी पर तभी तो दाईं ओर बैठता है। भवनाथ का स्त्री भाव है, तभी उसे दूसरी ओर बैठने देता हूँ।

''नरेन्द्र सभा में रहता है तो मेरा बल होता है।''

श्रीयुक्त महेन्द्र मुखर्जी ने आकर प्रणाम किया। अब समय आठ का होगा। हरिपद और तुलसीराम क्रमश: आकर प्रणाम करके बैठ गए। बाबूराम को ज्वर हुआ है,— आ नहीं सके।

श्रीरामकृष्ण *(मास्टर के प्रति)*— छोटा नरेन नहीं आया? शायद सोच रहा है मैं चला गया हूँ। *(मुखर्जी के प्रति)* कैसा आश्चर्य! वह (छोटा नरेन)

बचपन में स्कूल से आकर ईश्वर के लिए रोता था। (ईश्वर के लिए) क्रन्दन क्या कुछ कम है!

"और फिर बुद्धि खूब है। बाँसों में बड़े छिद्र वाला बाँस है।

"और फिर मेरे ऊपर पूरा मन है। गिरीश घोष ने बताया नवगोपाल के घर जिस दिन कीर्त्तन हुआ था, उस दिन (छोटा नरेन) गया था,— किन्तु 'वे कहाँ हैं' कहा; फिर होश नहीं,— लोगों के शरीर के ऊपर से ही चलने लगा!

"और फिर भय भी नहीं है कि घर में डाँटेंगे। दक्षिणेश्वर में तीन रात लगातार रहता है।"

अष्टम परिच्छेद

भक्तियोग का गूढ़ रहस्य— ज्ञान और भक्ति का समन्वय

(मुखर्जी, हरिबाबू, पूर्ण, निरञ्जन, मास्टर, बलराम)

मुखर्जी— हरि (बागबाजार के हरिबाबू) आपकी कल की बात सुनकर अवाक् हैं। कहते हैं, 'सांख्य-दर्शन, पातञ्जल, वेदान्त में— वे सब बातें हैं। ये (श्रीरामकृष्ण) सामान्य नहीं!'

श्रीरामकृष्ण— कहाँ, मैंने सांख्य, वेदान्त नहीं पढ़ा।

"पूर्णज्ञान और पूर्णभक्ति एक ही है। 'नेति-नेति' करके विचार का अन्त होने पर है ब्रह्मज्ञान।— फिर जो त्याग किया था, वही फिर से ग्रहण करना। छत पर चढ़ते समय सावधानी से चढ़ना चाहिए। फिर देखता है कि छत भी जिस वस्तु— ईंट, चूने, सुरखी से बनी है— सीढ़ियाँ भी उसी वस्तु से तैयार हुई हैं।

"जिसे उच्च बोध है, उसे नीच बोध भी है। ज्ञान के पश्चात् ऊपर-नीचे एक बोध हो जाता है।

"प्रह्लाद को जब तत्त्वज्ञान होता, वे 'सोऽहम्' होकर रहते। जब देहबुद्धि आती, 'दासोऽहम्' मैं तुम्हारा दास—, यह भाव आ जाता।

''हनुमान को भी कभी 'सोऽहम्', कभी 'दास मैं'', कभी 'मैं तुम्हारा अंश',— यह भाव आ जाया करता।

''भक्ति लेकर क्यों रहना?— वैसा न करे तो मनुष्य क्या लेकर दिन काटे?

'' 'मैं' तो जाने वाला नहीं। 'मैं' घट के रहते 'सोऽहम्' नहीं होता। समाधिस्थ हो जाने पर 'मैं' पुँछ (साफ हो) जाता है,— तब जो हैं, वही। रामप्रसाद कहता है, तत्पश्चात् मैं अच्छा हूँ या तुम अच्छे हो, वह तुम्हीं जानो।

''जब तक 'मैं' रहता है, तब तक भक्त की भाँति ही रहना अच्छा है! 'मैं भगवान' यह अच्छा नहीं। हे जीव, भक्तवत् न च कृष्णवत्!— किन्तु यदि स्वयं खींच लेते हैं, तो फिर अलग बात है। जैसे मालिक सेवक को प्यार करके कहता है, आ आजा, पास बैठ, मैं जो हूँ, तू भी वही है।

''गंगा की ही तरंगें हैं, तरंगों की गंगा नहीं होती।

''शिव की दोनों अवस्थाएँ हैं। जब आत्माराम, तब है सोऽहम् अवस्था,— योग में सब स्थिर। जब 'मैं' एक विशेष अलग बोध रहता है, तब 'राम! राम!' करके नृत्य।

''जिसका अटल है, उसका टल भी है।

''अभी तुम स्थिर हो। और फिर तुम ही कुछ क्षण पश्चात् कार्य करोगे।

''ज्ञान और भक्ति एक ही वस्तु है।— फिर भी एकजन कहता है 'जल' और एकजन 'जलेर खानिकटा चाप' (बरफ का टुकड़ा) कहता है।''

(दोनों समाधियाँ हैं— समाधि का प्रतिबन्धक— कामिनी-काञ्चन)

''समाधि मोटे तौर पर दो प्रकार की है।— ज्ञान के पथ से, विचार करते-करते अहम् नाश के पश्चात् जो समाधि होती है, उसे स्थिर समाधि अथवा जड़ समाधि (निर्विकल्प समाधि) कहते हैं। भक्ति के पथ वाली समाधि को भाव समाधि कहते हैं। इसमें सम्भोग के लिए, आस्वादन के लिए, रेखा की न्यायीं तनिक अहम् रहता है। कामिनी-काञ्चन से आसक्ति रहने पर ऐसी धारणा नहीं होती।

"केदार से कहा था, कामिनी-काञ्चन में मन रहने से नहीं होगा। इच्छा हुई थी कि एक बार उसकी छाती पर हाथ फेर दूँ— किन्तु नहीं कर सका। भीतर अंकट-बंकट (टेढ़ा-मेढ़ा चित्रण) था। घर में विष्ठा की गन्ध थी— प्रवेश नहीं कर सका। जैसे स्वयंभू लिंग, काशी तक जड़। संसार में आसक्ति,— कामिनी-काञ्चन में आसक्ति रहने से नहीं होगा।

"छोकरों के भीतर अभी तक भी कामिनी-काञ्चन ने प्रवेश नहीं किया है; जभी तो इनको इतना प्यार करता हूँ। हाजरा कहता है, 'धनी का लड़का देखकर, सुन्दर लड़का देखकर,— तुम पसन्द करते हो'। वैसा ही यदि हो तो हरीश, लाटु, नरेन्द्र,— इन सबको क्यों पसन्द करता हूँ? नरेन्द्र को तो भात में नून देकर खाने को भी पैसा नहीं मिलता।

"छोकरों के भीतर विषयबुद्धि ने अभी भी प्रवेश नहीं किया है। इसीलिए अन्तर इतना शुद्ध है।

"और अनेक ही नित्यसिद्ध हैं। जन्म से ही ईश्वर की ओर आकर्षण है। जैसे तुमने एक बाग खरीदा है। सफाई करते-करते एक स्थान पर जल का पहले लगा हुआ नलका मिल गया। एकदम जल धूँ-धूँ करके (जोर-जोर से) बहने लगा।"

(पूर्ण और निरञ्जन— मातृसेवा— वैष्णव का भाव)

बलराम— महाशय, 'संसार मिथ्या है', पूर्ण को इसका एकदम ज्ञान कैसे हुआ?

श्रीरामकृष्ण— जन्मान्तरीण। पूर्व-पूर्व जन्मों में सब किया हुआ है। शरीर ही छोटा होता है और फिर वृद्ध होता है— आत्मा वैसी नहीं है।

"उसका कैसे है, जानते हो?— फल पहले, फिर फूल। पहले दर्शन, तत्पश्चात् गुण-महिमा-श्रवण, उसके बाद मिलन।

"निरञ्जन को देखो— लेना-देना नहीं।— जब पुकार बढ़ेगी, जा सकेगा। किन्तु जब तक माँ है, माँ को देखना होगा। मैं माँ का फूल-चन्दन द्वारा पूजन किया करता था। वही जगत की माँ ही माँ होकर आई हैं। इसीलिए

तो किसी का श्राद्ध होने से ही अन्त में इष्ट की पूजा हो जाती है। किसी के मर जाने पर वैष्णवों के यहाँ महोत्सव होता है, उसका भी यही भाव है।

"जब तक अपने शरीर की खबर है तब तक माँ की खबर लेनी होगी। जभी तो हाजरा से कहता हूँ, अपने खाँसी हो जाने पर मिश्री-मिर्च (काली मिर्च) करनी पड़ती हैं, मिर्च-लवण को जुटाना पड़ता है; जब तक यह सब करना होता है, तब तक माँ की खबर भी लेनी चाहिए।

"नाबालिग अपना भार नहीं ले सकता। तभी उसका वली (guardian) होता है। नाबालिग की अवस्था— जैसे चैतन्यदेव की।"

मास्टर गंगास्नान करने गए।

नवम परिच्छेद

श्रीरामकृष्ण की जन्मपत्री— पूर्वकथा— ठाकुर का ईश्वर-दर्शन

(राम, लक्ष्मण और पार्थसारथि-दर्शन— नागा परमहंस मूर्ति)

ठाकुर श्रीरामकृष्ण भक्तों के संग में उसी छोटे कमरे में बातें कर रहे हैं। महेन्द्र मुखर्जी, बलराम, तुलसी, हरिपद, गिरीश आदि भक्तगण बैठे हुए हैं। गिरीश ठाकुर की कृपा पाकर सात-आठ मास से आने लगे हैं।

मास्टर इस बीच गंगास्नान करके लौट आए हैं और ठाकुर को प्रणाम करके उनके निकट बैठ गए हैं। ठाकुर अपनी अद्‌भुत ईश्वरदर्शन-कथा कुछ-कुछ बतला रहे हैं।

"काली-मन्दिर में एक दिन नागा और हलधारी अध्यात्म (रामायण) पढ़ रहे थे। हठात् देखी नदी, उसके निकट वन, सब्ज रंग के पेड़ पौधे; राम-लक्ष्मण जाँघिया पहने चले जा रहे हैं।

"एक दिन कोठी के सामने अर्जुन का रथ देखा था! सारथि के वेश में भगवान बैठे हैं। वह अब भी याद है।

"और एक दिन, देश में कीर्त्तन हो रहा है,— सामने गौरांग-मूर्त्ति।

"एकजन नागा संग-संग में रहा करता,— उसके धन में हाथ लगा कर मैं मज़ाक किया करता! तब खूब हँसता। यह नंगी मूर्त्ति मेरे ही भीतर से निकलती— परमहंस-मूर्त्ति,— बालक की न्यायीं।

"ईश्वरीय रूप कितने ही जो दर्शन हुए हैं, वह बताया नहीं जाता। उसी समय पेट की बीमारी बहुत हुई। वैसी सब अवस्थाओं में पेट की बीमारी बहुत बढ़ जाया करती। इसीलिए रूप देखने पर बाद में थू-थू किया करता— किन्तु पीछे पड़े हुए भूत की भाँति फिर-फिर मुझे पकड़ लेता! भाव में विभोर हुआ रहता, दिन-रात कहाँ चले जाते! उसके अगले दिन पेट चलकर (धुलने पर) भाव निकलता!" *(हास्य)*।

गिरीश *(सहास्य)*— आपकी जन्मपत्री देखता हूँ।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— द्वितीया के चाँद में जन्म है। और रवि, चन्द्र, बुध के अतिरिक्त और कोई बड़ा नहीं है।

गिरीश— कुम्भ राशि। कर्कट और वृष के राम और कृष्ण हैं;— सिंह में चैतन्यदेव हैं।

श्रीरामकृष्ण— दो साधें थीं। प्रथम— भक्तों का राजा होऊँगा, द्वितीया— सूखा साधु नहीं होऊँगा।

(श्रीरामकृष्ण की जन्मपत्री— ठाकुर का साधन क्यों— ब्रह्मयोनि-दर्शन)

गिरीश *(सहास्य)*— आपका साधना करना क्यों?

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— भगवती ने शिव के लिए अनेक कठोर साधना की थी— पञ्चतपा, शीतकाल में जल में शरीर डुबाए रखना, सूर्य की ओर एक दृष्टि से देखते रहना!

"स्वयं कृष्ण ने राधा-यन्त्र लेकर अनेक साधना की थी। यन्त्र ब्रह्मयोनि— उसकी ही पूजा, ध्यान! इसी ब्रह्मयोनि से कोटि-कोटि ब्रह्माण्डों की उत्पत्ति होती है।

"अति गुह्यकथा है! बेलतले दर्शन हुआ करता था— लक्-लक् करता! (ज्वालावत् लप्लपाता)!"

(पूर्वकथा— बेलतले पर तन्त्र का साधन— ब्राह्मणी का जुटाना)

"बेलतले अनेक तन्त्र के साधन हुए थे। मृतक की खोपड़ी लेकर। और फिर... आसन। ब्राह्मणी सब जुटाती।"

(हरिपद की ओर अग्रसर हो)— "उस अवस्था में बालकों के धन की फूल-चन्दन द्वारा पूजा बिना किए रह नहीं सकता था।

"और एक अवस्था होती। जिस दिन अहंकार करता, उसके अगले दिन ही असुख हो जाता।"

मास्टर (ठाकुर के) श्रीमुख से निःसृत पूर्व-अश्रुत वेदान्त वाक्य सुनकर अवाक् हुए चित्र में अर्पित की न्यायीं बैठे हुए हैं। भक्तगण भी मानो उसी पूतसलिला पतितपावनी श्रीमुखनिःसृत भागवत-गंगा में स्नान करके बैठे हुए हैं।

सब चुप किए हुए हैं।

तुलसी— ये हँसते नहीं।

श्रीरामकृष्ण— भीतर हँसी है। फल्गु नदी के ऊपर रेत है,— खोदने से जल मिल जाता है।

(मास्टर के प्रति)— "तुम जिह्वा नहीं छीलते! रोज जिह्वा छीलना।"

बलराम— अच्छा, इनके *(मास्टर के)* पास से पूर्ण ने आपकी अनेक बातें सुनी हैं—

श्रीरामकृष्ण— पहले की बात— ये जानते हैं— मैं नहीं जानता।

बलराम— पूर्ण स्वभावसिद्ध है। फिर ये लोग?

श्रीरामकृष्ण— ये लोग हेतु (साधन) मात्र हैं।

नौ बज गए हैं— ठाकुर श्रीरामकृष्ण दक्षिणेश्वर जाएँगे। उसका प्रबन्ध हो रहा है। बागबाजार के श्री अन्नपूर्णा के घाट पर नौका का प्रबन्ध किया

गया है। ठाकुर को भक्तगण भूमिष्ठ होकर प्रणाम कर रहे हैं।

ठाकुर दो-एक भक्तों के साथ नौका पर जाकर बैठ गए, गोपाल की माँ उसी नौका पर चढ़ीं,— दक्षिणेश्वर में किञ्चित् विश्राम करके शाम को पैदल कामारहाटी जाएँगी।

ठाकुर के दक्षिणेश्वर के कमरे की कैम्पखाट को मरम्मत करने के लिए दिया गया था। वह भी उसी नौका में चढ़ा दी गई। इसी खाट पर श्रीयुक्त राखाल प्राय: शयन किया करते थे।

आज किन्तु मघा नक्षत्र है। यात्रा बदलने के लिए ठाकुर श्रीरामकृष्ण इस शनिवार को बलराम के मकान में फिर शुभागमन करेंगे।

चतुर्विंश खण्ड

दक्षिणेश्वर में राखाल, मास्टर, महिमाचरण प्रभृति भक्तों के संग में

प्रथम परिच्छेद

(द्विज, द्विज के पिता और ठाकुर श्रीरामकृष्ण— मातृऋण और पितृऋण)

श्रीरामकृष्ण दक्षिणेश्वर-मन्दिर में उसी पूर्वपरिचित कमरे में राखाल, मास्टर आदि भक्तों के संग में बैठे हैं। समय है तीन-चार का।

ठाकुर के गले के असुख का सूत्रपात हो गया है। तथापि समस्त दिन केवल भक्तों का मंगल-चिन्तन करते रहते हैं— किस प्रकार वे लोग संसार में बद्ध न हों,— कैसे उन्हें ज्ञान-भक्ति लाभ हो; ईश्वर-लाभ हो जाए।

दस-बारह दिन हुए, 28 जुलाई, मंगलवार, 1885 ईसवी को उन्होंने कलकत्ता श्रीयुक्त नन्दलाल बसु के घर में देवताओं की छवियाँ देखने के लिए आकर बलराम आदि और-और भक्तों के घरों में भी शुभागमन किया था।

श्रीयुक्त राखाल वृन्दावन से आकर कुछ दिन घर में थे। आजकल वे, लाटु, हरीश और रामलाल ठाकुर के पास रहते हैं।

श्री श्री माँ ने कई मास हुए, ठाकुर की सेवार्थ देश से शुभागमन किया है। वे नहबत में हैं। 'शोकातुरा ब्राह्मणी' आकर कई दिन से उनके

पास रह रही हैं।

ठाकुर के पास द्विज, द्विज के पिता और भाई, मास्टर प्रभृति बैठे हैं। आज है 9 अगस्त, 1885 ईसवी।

द्विज की वयस सोलह वर्ष होगी। उनकी माता के परलोक-प्राप्ति के पश्चात् पिता ने दूसरा विवाह कर लिया है। द्विज मास्टर के साथ प्राय: ठाकुर के पास आते हैं। किन्तु उनके पिता इससे बहुत असन्तुष्ट हैं।

द्विज के पिता ने बहुत दिन हुए ठाकुर का दर्शन करने आने के लिए कहा था। जभी आज आए हैं। कलकत्ता में सौदागरी ऑफिस के वे एक कर्मचारी हैं— मैनेजर। हिन्दु कॉलेज से डी०एल० रिचर्डसेन से पढ़े थे और हाईकोर्ट की वकालती पास की थी।

श्रीरामकृष्ण *(द्विज के पिता के प्रति)*— आपके बेटे यहाँ पर आते हैं, उसके लिए कुछ चिन्ता मत करें।

"मैं कहता हूँ, चैतन्य-लाभ के पश्चात् गृहस्थ में जाकर रहो। बहुत परिश्रम करके यदि कोई सोना पा ले, वह उसे मिट्टी में रख सकता है— बक्स के भीतर भी रख सकता है, जल के भीतर भी रख सकता है— सोने का कुछ नहीं होता।

"मैं कहता हूँ, अनासक्त होकर संसार करो। हाथ पर तेल मलकर कटहल तोड़ो— तो फिर हाथ में चिपक नहीं लगेगी।

"कच्चे मन को संसार में रखने से मन मलिन हो जाता है। ज्ञान-लाभ करके फिर ही संसार में रहना चाहिए।

"जल में दूध रखने पर दूध नष्ट हो जाता है। मक्खन निकालकर जल के ऊपर रखने से फिर कुछ भी गड़बड़ नहीं होती।"

द्विज के पिता— जी, हाँ।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— आप जो इन्हें बुरा-भला कहते हैं, उसका मतलब समझता हूँ। आप भय दिखाते हैं। ब्रह्मचारी ने साँप से कहा था,— तू तो बड़ा मूर्ख है! तुझको काटने के लिए तो मैंने ही मना किया था। तुझे फुँकार करने के लिए तो रोका नहीं था! तू यदि फुँकार करता तो फिर तेरे शत्रु तुझे मार नहीं

पाते। आप लड़कों को जो डाँटते-डपटते हैं,— वह केवल फुँकार करते हैं।

द्विज के पिता हँस रहे हैं।

''अच्छा बेटा होना पिता के पुण्य का चिह्न है। यदि तालाब का जल अच्छा होता है— वह सरोवर के मालिक का पुण्य चिह्न होता है।

''लड़के को आत्मज कहते हैं। तुम और तुम्हारे बेटे में कोई अन्तर नहीं। तुम्हीं एकरूप में बेटा बने हो। एक रूप में तुम विषयी हो, ऑफिस में काम करते हो, गृहस्थ भोग करते हो;— और एक रूप में तुम्हीं भक्त हुए हो— अपनी सन्तान के रूप में। सुना था, आप खूब घोर विषयी हो! वैसा तो नहीं है! *(सहास्य)* यह सब तो आप जानते हैं। किन्तु आप तो कितने सतर्क हैं, उस पर भी 'हाँ'-'हाँ' किए चले जा रहे हैं।

द्विज के पिता ईषत् हँस रहे हैं।

''यहाँ पर आने से, आप क्या वस्तु हैं, ये लोग यह जान सकेंगे। बाप कितनी बड़ी वस्तु है! बाप-माँ को धोखा देकर जो धर्म करेगा, उसका किया व्यर्थ होगा!''

(पूर्वकथा— वृन्दावन में माँ के लिए श्रीरामकृष्ण की चिन्ता)

''मनुष्य के बहुत-से ऋण हैं। पितृ-ऋण, देव-ऋण, ऋषि-ऋण। इसके अतिरिक्त फिर और है मातृ-ऋण। तथा फिर स्त्री के सम्बन्ध में भी ऋण है— प्रतिपालन करना होगा। पतिव्रता होने पर, मरने के पश्चात् भी उसके लिए कुछ प्रबन्ध करके जाना चाहिए।

''मैं माँ के लिए वृन्दावन नहीं रह सका था। ज्योंहि मन में आया माँ दक्षिणेश्वर में कालीबाड़ी में हैं, त्योंहि फिर मन वृन्दावन में भी नहीं टिका।

''मैं इनसे कहता हूँ, संसार भी करो, और फिर भगवान में भी मन रखो।— संसार छोड़ने को तो नहीं कहता,— यह भी करो, वह भी करो।''

पिता— मैं कहता हूँ, पढ़ना-लिखना चाहिए,— आपके पास यहाँ आने के

लिए नहीं मना करता। किन्तु लड़कों के साथ यारकी (दोस्ती) करके समय न काटे।

श्रीरामकृष्ण— इसका (द्विज का) अवश्य संस्कार था। इन दोनों भाइयों का क्यों नहीं हुआ? फिर इसका ही क्यों हुआ?

"जोर जबरदस्ती से आप क्या मना कर सकेंगे? जिसका जैसा (संस्कार) है, वैसा ही होगा।"

पिता— हाँ, वह तो ठीक है।

ठाकुर फर्श पर द्विज के पिता के निकट आकर मादुर (चटाई) के ऊपर बैठ गए हैं। बातें करते-करते एक-एक बार उनकी देह पर हाथ फेर रहे हैं।

सन्ध्या आगतप्राय। ठाकुर मास्टर आदि से कह रहे हैं,

"इन्हें सब देवताओं के दर्शन करवा लाओ— मैं ठीक होता तो संग में जाता।"

लड़कों को सन्देश देने को कहा। द्विज के पिता से कहा,

"ये लोग थोड़ा खाएँगे, मिष्टिमुख करना चाहिए।"

द्विज के पिता देवालय और देवताओं के दर्शन करके बागान में थोड़ा टहल रहे हैं। ठाकुर श्रीरामकृष्ण अपने कमरे के दक्षिणपूर्व के बरामदे में भूपेन, द्विज, मास्टर प्रभृति के साथ आनन्द से बातें कर रहे हैं। उन्होंने खेलते-खेलते भूपेन और मास्टर की पीठ पर थप्पड़ मारे। द्विज को सहास्य कह रहे हैं,— "तेरे बाप से कैसे कहा?"

सन्ध्या के पश्चात् द्विज के पिता फिर दोबारा ठाकुर के कमरे में आए। कुछ क्षण पश्चात् ही विदा लेंगे।

द्विज के पिता को गर्मी लगी है, ठाकुर अपने हाथ से पंखा झल रहे हैं।

पिता ने विदा ली,— ठाकुर स्वयं उठकर खड़े हो गए।

द्वितीय परिच्छेद

(ठाकुर मुक्तकण्ठ— श्रीरामकृष्ण क्या सिद्ध पुरुष या अवतार ?)

रात्रि आठ। ठाकुर महिमाचरण के साथ बातें कर रहे हैं। कमरे में राखाल, मास्टर, महिमाचरण के दो-एक संगी हैं।

महिमाचरण आज रात को रहेंगे।

श्रीरामकृष्ण— अच्छा, केदार को कैसा देखते हो ?— दूध देखा है या पिया है ?

महिमा— हाँ, आनन्द-भोग कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण— नित्यगोपाल ?

महिमा— खूब !— सुन्दर अवस्था।

श्रीरामकृष्ण— हाँ अच्छा, गिरीश घोष कैसे हो गए हैं ?

महिमा— बढ़िया हो गए हैं। किन्तु उनकी श्रेणी अलग है।

श्रीरामकृष्ण— नरेन्द्र ?

महिमा— मैं पन्द्रह वर्ष पहले जो था, वह वैसे हैं।

श्रीरामकृष्ण— छोटा नरेन ? कैसा सरल है ?

महिमा— हाँ, खूब सरल है।

श्रीरामकृष्ण— ठीक कहा। *(चिन्ता करते-करते)* और क्या है ?

"जो समस्त छोकरे (लड़के) यहाँ पर आते हैं, उन्हें— दो चीजें विशेष जान लेना ही बहुत है। वैसा हो जाने पर और अधिक साधन-भजन नहीं करना पड़ेगा। प्रथम, मैं कौन हूँ,— दूसरे वे कौन हैं। इन लड़कों में अनेक ही अन्तरंग हैं।

"जो अन्तरंग हैं उनकी मुक्ति नहीं होगी। (उत्तर-पश्चिम) में और एक बार मेरी देह होगी।

"छोकरों को देखकर मेरा प्राण शीतल होता है। तथा जिन्होंने पुत्र पैदा किए हैं, मुकदमेबाजी आदि लिए फिरते हैं— कामिनी-काञ्चन लेकर रह रहे हैं— उन्हें देखने से कैसे आनन्द होगा ? शुद्धआत्मा बिना देखे कैसे रहूँ !"

महिमाचरण शास्त्र से श्लोकों की आवृत्ति करके सुना रहे हैं— और

तन्त्रोक्त भूचरी, खेचरी, शाम्भवी आदि नाना मुद्राओं की बातें कह रहे हैं।

(ठाकुर की पाँच प्रकार की समाधि— षट्चक्रभेद— योग-तत्त्व— कुण्डलिनी)

श्रीरामकृष्ण— अच्छा, मेरी आत्मा समाधि के पश्चात् महाकाश में पक्षी की भाँति उड़ती-फिरती है, कोई-कोई ऐसा कहते हैं।

''ऋषिकेश का साधु आया था। उसने कहा कि समाधि पाँच प्रकार की है— तुम्हारी वे सब ही होती हैं, देखा है। पिपीलिकावत्, मीनवत्, कपिवत्, पक्षिवत्, तिर्यग्वत्।

''कभी-कभी वायु उठकर च्यूँटी की भाँति शिड़-शिड़ (गति) करती है— कभी-कभी समाधि अवस्था में भाव-समुद्र के भीतर आत्मा-मीन आनन्द में खेल करती है!

''कभी-कभी करवट से लेटा हुआ हूँ, महावायु बन्दर की न्यायीं मुझे ठेलकर— आमोद करती है। मैं चुप रहता हूँ। वही वायु हठात् बन्दर की भाँति छलाँग मार कर सहस्रार में चढ़ जाती है! जभी तो चञ्चल होकर छलाँग लगाकर उठता हूँ।

''और फिर कभी-कभी पक्षीवत् इस डाल से उस डाल पर, उस डाल से इस डाल पर— महावायु चढ़ती रहती है। जिस डाल पर बैठती है, वह स्थान आग जैसा लगता है। शायद मूलाधार से स्वाधिष्ठान, स्वाधिष्ठान से हृदय, इसी क्रम से सिर में चढ़ जाती है।

''कभी-कभी— महावायु तिर्यक् गति से चलती है— टेढ़ी-मेढ़ी! इसी प्रकार चलते-चलते अन्त में सिर में आने पर समाधि होती है।''

**(पूर्वकथा—22/23 वर्ष में प्रथम उन्माद 1858 ईसवी—
षट्चक्र भेद)**

''कुलकुण्डलिनी बिना जागे चैतन्य नहीं होता।''

''मूलाधार में कुलकुण्डलिनी हैं। चैतन्य हो जाने पर वे सुषुम्ना नाड़ी के मध्य से स्वाधिष्ठान, मणिपुर इत्यादि ये सब चक्र भेदन करके, अन्त में सिर के मध्य जा पड़ती हैं। इसी का नाम है महावायु की गति— इसीलिए अन्त में समाधि हो जाती है।

''केवल पोथी पढ़ने से चैतन्य नहीं होता— उनको पुकारना चाहिए। व्याकुल होने पर ही तब कुलकुण्डलिनी जागती हैं। सुनता है, ज्ञान की बातें पुस्तक में पढ़ता है— उससे क्या होगा!

''यह अवस्था जब हुई, उससे एकदम पहले मुझे दिखा दिया— कैसे कुलकुण्डलिनी-शक्ति का जागरण होता है। क्रम-क्रम से सब पद्मसमूह खिलने लगे और समाधि हो गई। यह अति गुह्य बात है। देखा, बिल्कुल मेरे जैसा बाइस-तेइस वर्ष का छोकरा, सुषुम्ना नाड़ी के भीतर जाकर, जिह्वा द्वारा योनि रूप पद्म के संग में रमण कर रहा है! प्रथम गुह्य, लिंग, नाभि। चतुर्दल, षड्दल, दशदल पद्म सब अधोमुख हुए-हुए थे— ऊर्ध्वमुख (ऊपर मुख) हो गए!

''हृदय में जब आया— खूब अच्छा स्मरण है— जिह्वा द्वारा रमण करने के उपरान्त द्वादशदल (बारह दल) अधोमुख पद्म ऊर्ध्वमुख हो गया,— और खिल गया! उसके पश्चात् कण्ठ में षोडशदल (सोलहदल) और कपाल (ललाट) में द्विदल। अन्त में सहस्रदल पद्म प्रस्फुटित हुआ! उसी अवधि से मेरी ऐसी अवस्था है।''

तृतीय परिच्छेद

पूर्वकथा— ठाकुर मुक्तकण्ठ— ठाकुर सिद्धपुरुष कि अवतार ?

(ईश्वर के संग में बातें— मायादर्शन— भक्त के आने से पहले उनका दर्शन— केशवसेन को भावावेश में दर्शन— अखण्ड सच्चिदानन्द-दर्शन और नरेन्द्र— और केदार— प्रथम उन्माद में ज्योतिर्मय देह— पिता का स्वप्न— नागा और तीन दिन में समाधि— मथुर की 14 वर्ष सेवा 1858-71— कोठी के ऊपर भक्तों के लिए व्याकुलता— अविरत समाधि— सब प्रकार के साधन)

ठाकुर ये बातें बोलते-बोलते उतरकर और आकर फर्श पर महिमाचरण के निकट बैठ गए। पास ही मास्टर तथा और भी दो एक भक्त हैं। कमरे में राखाल भी हैं।

श्रीरामकृष्ण *(महिमा के प्रति)*— आप को बहुत दिनों से बताने की इच्छा थी, बता नहीं सका— आज बताने की इच्छा हो रही है।

''मेरी जो अवस्था है,— आप कहते हैं, साधन कर लेने से ही वैसी हो जाती है, यह बात नहीं है। इसमें (मुझ में) कुछ विशेष है।''

मास्टर, राखाल प्रभृति भक्तगण अवाक् होकर ठाकुर क्या कहेंगे, उत्सुक होकर सुन रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण— बातें करता है!— केवल दर्शन नहीं— बातें करता है। बटतले देखा था, गंगा के भीतर से चढ़कर आने पर— तब फिर कितनी हँसी! खेल-खेल में उंगली मरोड़ना हुआ। तब फिर बातें।— बातें करता है!

''तीन दिन तक रोया था, उन्होंने वेद, पुराण, तन्त्र— इन सब शास्त्रों में क्या है— (उन्होंने) सब दिखला दिया।

''महामाया की माया जो क्या है, वह भी एक दिन दिखलाई। कमरे के भीतर छोटी ज्योति क्रम-क्रम से बढ़ने लगी! और खूब बिखर कर जगत को ढकने लगी!

''और फिर दिखलाया,— जैसे खूब बड़ा सरोवर— पाना (काई, जल

का पौधा) से ढका हुआ! हवा से काई थोड़ी-सी हट गई,— तुरन्त जल दिखाई दिया। किन्तु देखते-देखते चारों ओर से 'पाना' ने नाचते-नाचते आकर, फिर दोबारा ढक डाला। दिखलाया, वह जल जैसे सच्चिदानन्द है, और पाना जैसे माया है। माया के कारण सच्चिदानन्द दिखाई नहीं देता,— यद्यपि एक-एक बार क्षणिक झलक की भाँति दिखाई देता है, तब फिर माया से ढक लिया जाता है।

"किस प्रकार के लोग (भक्त) यहाँ पर आएँगे, आने से पहले ही दिखा देते हैं। बटतले से बकुलतला तक चैतन्यदेव के संकीर्त्तन का दल दिखाया। उसमें बलराम को मैंने देखा— न होने पर तो मिश्री इत्यादि कौन दे? और इनको (मास्टर को) देखा।"

(श्रीरामकृष्ण, केशवसेन और उनके समाज में हरिनाम और माँ के नाम का प्रवेश)

"केशवसेन के संग मिलन होने से पहले, उसे देखा! समाधि-अवस्था में देखा, केशवसेन और उसका दल। कमरा भर लोग मेरे सामने बैठे हुए हैं। केशव को देखा था, जैसे एक मोर अपने पंखों का विस्तार करके बैठा हुआ है। पंख अर्थात् दल-बल। केशव के माथे पर देखी लालमणि! वह है रजोगुण का चिह्न। केशव शिष्यों को कह रहा है— 'ये क्या कहते हैं, तुम सब सुनो।' माँ से कहा, माँ इनका अंग्रेज़ी मत है,— इन्हें क्यों बताना? तत्पश्चात् माँ ने समझा दिया कि कलि में इसी प्रकार होगा। तब यहाँ से (मेरे पास से) हरिनाम और माँ का नाम वे लोग ले गए। जभी माँ ने केशव के दल से विजय को लिया। किन्तु आदिसमाज में नहीं गई।"

(स्वयं को दिखलाकर) "इसके (मेरे) भीतर एक विशेष कुछ है। गोपालसेन नामक एक लड़का आया करता था— बहुत दिन हो गए। इसके भीतर जो है, उसने गोपाल की छाती पर पैर दिया। वह भाव में बोलने लगा, 'तुम्हें अभी देरी है। मैं ऐहिक लोगों के साथ पार नहीं पा सकता।' तदुपरान्त 'जा रहा हूँ', कहकर घर चला गया। उसके पश्चात् सुना देहत्याग कर दी। वही लगता है नित्यगोपाल है।

"अद्भुत दर्शन सब हुए हैं। अखण्ड सच्चिदानन्द-दर्शन। उसके भीतर देख रहा हूँ, बीच में बाड़ लगाकर दो श्रेणियाँ हैं। एक तरफ केदार, चुनी तथा और बहुत से साकारवादी भक्त। टट्टी की दूसरी तरफ चमकदार लाल सुर्खी के स्तूप की भाँति ज्योति। उसके मध्य बैठा है नरेन्द्र— समाधिस्थ!

"ध्यानस्थ देखकर बोला, 'ओ नरेन्द्र!' तनिक सी आँख खोली।— समझ गया वही एक रूप में सिमले में कायस्थ का बेटा बनकर आया है।— तब कहा 'माँ, उसको माया में बद्ध करो।— वैसा न होने पर समाधिस्थ होकर देहत्याग करेगा।'— केदार था साकारवादी, झाँककर देखने पर सिहरकर भाग गया।

"जभी सोचता हूँ इसके (अपने) भीतर माँ स्वयं भक्त को लेकर लीला कर रही हैं। जब प्रथम यह अवस्था हुई, तब ज्योति से देह चमकती। छाती लाल हो जाती। तब कहा, 'माँ, बाहर मत प्रकाशित होओ, घुस जाओ, घुस जाओ!' इसीलिए अब यह हीन देह है।

"वैसा न होने से लोग सताते। लोगों की भीड़ लग जाती— वैसी ज्योतिर्मय देह रहने पर। अब बाहर प्रकाश नहीं है। इससे व्यर्थ के (फालतू) भाग जाते हैं— जो शुद्ध भक्त हैं— वे ही केवल रहेंगे। यह रोग ही क्यों हुआ?— इसका अर्थ वही है। जिनकी है सकाम भक्ति, वे बीमारी की अवस्था देखकर चले जाएँगे।

"साध थी— माँ से कहा था, माँ, भक्तों का राजा होऊँ!

"और फिर मन में उठा, 'जो आन्तरिक ईश्वर को पुकारेगा उसको यहाँ पर आना ही होगा! आना ही होगा।' देखो, वही हो रहा है— वैसे ही समस्त लोग आ रहे हैं।

"इसके भीतर क्या है, मेरे माँ-बाप हर जानते थे! बाप ने गया में स्वप्न में देखा था— रघुवीर कह रहे हैं, 'मैं तुम्हारा बेटा होऊँगा।'

"इसके भीतर वे ही हैं। कामिनी-काञ्चन त्याग! यह क्या मेरा कर्म! स्त्री-सम्भोग स्वप्न में भी नहीं हुआ!"

''न्यांगटा (नागा) ने वेदान्त का उपदेश दिया। तीन दिन में ही समाधि। माधवीतले वह समाधि अवस्था देखकर, वह हतबुद्धि होकर कहता है 'अरे यह क्या रे!' पीछे वह समझ पाया था— इसके भीतर क्या है। तब मुझ से कहा, 'तुम मुझे छोड़ दो! यह सुनकर मेरी भावावस्था हो गई— मैंने उसी अवस्था में कहा, 'वेदान्त-बोध हुए बिना तुम्हारा जाना नहीं हो सकता।'

''तब रात-दिन उसके निकट! केवल वेदान्त! ब्राह्मणी कहती, 'बाबा (बेटा), वेदान्त मत सुनो!— उससे भक्ति की हानि होगी'।

''माँ से जैसे ही कहा, 'माँ, यह देह-रक्षा कैसे होगी, और साधु-भक्त लेकर कैसे रहूँगा!— एक बड़ा मनुष्य जुटा दो!' तब ही सेजोबाबू ने चौदह वर्ष तक सेवा की!

''इसके भीतर जो हैं, पहले से बता देते हैं कि किस श्रेणी (समूह) का भक्त आएगा। जैसे ही देखता हूँ गौरांग रूप सामने आए हैं, तुरन्त समझ लेता हूँ, गौर भक्त आ रहे हैं। यदि शाक्त आता है, तो फिर शक्ति रूप,— काली रूप— दर्शन होता है।

''कोठी के ऊपर से आरती के समय चिल्लाया करता था, 'ओ रे, तुम लोग कौन कहाँ हो, आओ।' देखो, अब सब क्रम-क्रम से आकर मिल रहे हैं।

''इसके भीतर वे निज रह रहे हैं— जैसे निज उपस्थित रहकर ये सब भक्त लेकर काम कर रहे हैं।

''एक-एक भक्त की अवस्था कैसी आश्चर्यजनक है! छोटे नरेन— इसका कुम्भक अपने-आप हो जाता है। और फिर समाधि! एक-एक बार कभी-कभी अढ़ाई घण्टे! कभी-कभी अधिक! कैसा आश्चर्य!

''सब प्रकार का साधन यहाँ पर हो गया है— ज्ञानयोग, भक्तियोग, कर्मयोग। हठयोग पर्यन्त— आयु बढ़ाने के लिए! इसके भीतर एकजन है। वैसा न होता तो समाधि के पश्चात् भक्ति, भक्त लेकर कैसे रहता! कुंवरसिंह कहता था— समाधि के पश्चात् लौटकर आया हुआ व्यक्ति कभी भी देखा नहीं है।— तुम ही नानक।''

(पूर्वकथा— केशव, प्रताप और कुक के संग जहाज में— 1881 ईसवी)

''चारों ओर ऐहिक-व्यक्ति हैं— चारों ओर कामिनी-काञ्चन— इतनों के भीतर रहकर ऐसी अवस्था है!— समाधि, भाव, लगा ही रहता है। जभी तो प्रताप (ब्राह्मसमाज के श्री प्रतापचन्द्र मजुमदार) ने— कुक साहिब जब यहाँ पर आए थे, जहाज में मेरी अवस्था (समाधि की अवस्था) देखकर— कहा था, ''बाबा! जैसे भूत चढ़ा हुआ है!''

राखाल, मास्टर प्रभृति अवाक् होकर ठाकुर श्रीरामकृष्ण के श्रीमुख से ये सकल आश्चर्यजनक बातें सुन रहे हैं।

महिमाचरण क्या ठाकुर का इंगित समझ पाए हैं? ये समस्त बातें सुनकर वे कह रहे हैं,—

''जी, आपके प्रारब्ध के कारण इस प्रकार यह सब हुआ है।''

उनके मन का भाव है, ठाकुर साधु या भक्त हैं। ठाकुर उनकी बात पर सम्मति देकर कह रहे हैं,

'हाँ, पूर्व जन्म का! जैसे बाबू के बहुत से घर हैं, यहाँ पर एक विशेष बैठकखाना है। भक्त है उनका बैठकखाना।'

चतुर्थ परिच्छेद

महिमाचरण का ब्रह्मचक्र— पूर्वकथा— तोतापुरी का उपदेश

('स्वप्न में दर्शन क्या कम?' नरेन्द्र का ईश्वरीय रूप-दर्शन)

रात के नौ हो गए। ठाकुर छोटी खाट पर बैठे हुए हैं। महिमाचरण की साध है कि कमरे में ठाकुर रहें— ब्रह्मचक्र करें। उन्होंने राखाल, मास्टर, किशोरी और दो-एक भक्तों को लेकर फर्श पर चक्र बनाया। सबको ध्यान करने को कहा। राखाल की भावावस्था हो गई। ठाकुर नीचे

उतरकर आकर उनकी छाती पर हाथ लगाकर माँ का नाम करने लगे। राखाल का भाव संवरण हो गया।

रात का एक बजा होगा। आज कृष्णपक्ष की चतुर्दशी तिथि। चारों ओर निबिड़ (घना) अन्धकार। दो-एक भक्त गंगा के पोस्ता के ऊपर एकाकी टहल रहे हैं। ठाकुर श्रीरामकृष्ण एक बार उठे। वे भी बाहर आ गए और भक्तों से कह रहे हैं, न्यांगटा (नागा) कहा करता था, 'इस समय, ऐसी गम्भीर रात में— अनाहत शब्द सुनाई देता है।'

शेष (अन्तिम) रात में महिमाचरण और मास्टर ठाकुर के कमरे में ही फर्श पर लेटे हुए हैं। राखाल भी कैम्प खाट पर सोए थे।

ठाकुर पाँच वर्ष के लड़के की भाँति नंगे होकर कभी-कभी कमरे के मध्य में पादचारण कर रहे हैं।

प्रभात हो गया। ठाकुर माँ का नाम कर रहे हैं। पश्चिम के बरामदे में जाकर गंगा के दर्शन किए। कमरे के मध्य में जितने देव-देवियों के पट थे, निकट जाकर नमस्कार किया। भक्तगण शय्या से उठकर प्रणामादि करके प्रातःकृत्य करने लगे।

ठाकुर पञ्चवटी में एक भक्त के साथ बातें कर रहे हैं। उन्होंने (भक्त ने) स्वप्न में चैतन्यदेव का दर्शन किया था।

श्रीरामकृष्ण *(भावाविष्ट होकर)*— आहा! आहा!

भक्त— जी, वह स्वप्न है।

श्रीरामकृष्ण— स्वप्न क्या कम बात है!

ठाकुर के चक्षुओं में जल— गद्‌गद् स्वर!

एक भक्त की जागरण-अवस्था में दर्शन की बात सुनकर कह रहे हैं—

'उसमें क्या आश्चर्य! आजकल नरेन्द्र भी ईश्वरीयरूप देखता है।'

महिमाचरण प्रातःकृत्य समापन करके, ठाकुरबाड़ी के प्रांगण में पश्चिम की दिशा के शिव के मन्दिर में जाकर, निर्जन में वेदमन्त्र-उच्चारण कर रहे हैं।

समय आठ का हो गया है। मणि गंगास्नान करके ठाकुर के पास आए। शोकातुरा ब्राह्मणी भी दर्शन करने आई हैं।

श्रीरामकृष्ण *(ब्राह्मणी के प्रति)*— इनको (मणि/मास्टर को) कुछ प्रसाद खाने के लिए तो दे दो जी, पूरी–शूरी ताक के ऊपर है।

ब्राह्मणी— पहले आप खाएँ। तत्पश्चात् वे प्रसाद पाएँगे।

श्रीरामकृष्ण— तुम पहले जगन्नाथ का अटका खाओ, तत्पश्चात् प्रसाद।

प्रसाद पाकर मणि शिव–मन्दिर में शिव–दर्शन करके ठाकुर के पास फिर दोबारा आ गए और प्रणाम करके विदा ग्रहण कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण *(सस्नेह)*— तुम जाओ। और फिर (तुम्हें) काम पर जाना होगा।

पञ्चविंश खण्ड

ठाकुर श्रीरामकृष्ण दक्षिणेश्वर-मन्दिर में राखाल, मास्टर, पण्डित श्यामापद प्रभृति भक्तों के संग में

प्रथम परिच्छेद

(समाधिमन्दिर में— पण्डित श्यामापद के प्रति कृपा)

श्रीरामकृष्ण दो-एक भक्तों के संग में घर में बैठे हैं। अपराह्ण पाँच; बृहस्पतिवार, 27 अगस्त, 1885 ईसवी; (12वाँ भाद्र, श्रावण कृष्णा द्वितीया)।

ठाकुर के असुख का सूत्रपात हो गया है। तथापि भक्तों में से किसी के आने पर शरीर को शरीर नहीं समझते। हो सकता है कि सारा दिन उनको लेकर बातें करते रहते हैं— अथवा कभी गाना ही कर रहे हैं।

श्रीयुक्त मधु डॉक्टर प्राय: नौका द्वारा आते हैं— ठाकुर की चिकित्सा के लिए भक्तगण बड़े ही चिन्तित हो गए हैं। जैसे भी हो मधु डॉक्टर प्रतिदिन आकर देखें, यही उनकी इच्छा है। मास्टर ठाकुर से कह रहे हैं, 'वे बहुदर्शी (अनुभवी) व्यक्ति हैं। वे नित्य देख लें तो अच्छा हो।'

पण्डित श्यामापद भट्टाचार्य ने आकर ठाकुर का दर्शन किया। इनका निवास आँटपुर गाँव में है। सन्ध्या प्राय: आ गई है देखकर, पण्डित ने 'सन्ध्या करने के लिए जाना है' कहकर गंगातीर पर चाँदनी के घाट पर

गमन किया।

सन्ध्या करते-करते पण्डित ने कैसा आश्चर्यपूर्ण दर्शन किया! सन्ध्या समाप्त हो जाने पर ठाकुर के कमरे में आकर धरती पर बैठ गए। ठाकुर माँ के नाम और चिन्तन के पश्चात् अपने आसन पर ही बैठे हैं। पायदान के ऊपर मास्टर हैं। राखाल, लाटु प्रभृति कमरे में यातायात कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण *(मास्टर के प्रति, पण्डित को दिखला कर)*— ये बढ़िया व्यक्ति हैं।

(पण्डित के प्रति) " 'नेति, नेति' करके जहाँ पर मन को शान्ति होती है, वहाँ पर ही वे हैं।"

(ईश्वर-दर्शन के लक्षण और पण्डित श्यामापद— समाधिमन्दिर में)

"सात ड्योढ़ियों के पश्चात् राजा है। प्रथम ड्योढ़ी में जाकर देखता है कि कोई ऐश्वर्यवान पुरुष अनेक लोगों को लिए बैठा है; खूब चमक-दमक है! राजा को जो देखने गया है, वह संगी से पूछता है— 'क्या यही राजा है?' संगी ईषत् हँसकर कहता है, 'नहीं'।

"दूसरी ड्योढ़ी और अन्य-अन्य ड्योढ़ियों पर भी उसी प्रकार कहता है। देखता है, जितना आगे बढ़ता है, उतना ही ऐश्वर्य है! और चमक-दमक है! सात ड्योढ़ियाँ पार हो जाने पर जब देखता है तब फिर संगी से नहीं पूछता। राजा का अतुल ऐश्वर्य-दर्शन करके अवाक् होकर खड़ा रहा।— समझ गया कि यही राजा है।— इस विषय में अब और कोई सन्देह नहीं।"

(ईश्वर, माया, जीव-जगत— अध्यात्म रामायण— यमलार्जुन का स्तव)

पण्डित— माया का राज्य छोड़कर जाने से ही उन्हें देखता है।

श्रीरामकृष्ण— उनके साक्षात्कार के बाद फिर देखता है, यह माया, जीव-जगत वे ही हुए हैं। यह संसार धोखे की टट्टी है— स्वप्नवत्,— यह बोध होता है, जब 'नेति-नेति' विचार करता है। उनके दर्शन के पश्चात् फिर तो

यह संसार 'मजे की कुटी है।'

"केवल शास्त्र पढ़ने से क्या होगा? पण्डितगण केवल विचार ही करते हैं।"

पण्डित— मुझे कोई पण्डित कहता है तो घृणा होती है।

श्रीरामकृष्ण— वही तो है उनकी कृपा! पण्डित लोग तो केवल विचार करते हैं। किन्तु किसी ने दूध सुना है, किसी ने दूध देखा है। साक्षात्कार के पश्चात् सब नारायण देखेगा— नारायण ही सब बने हैं।

पण्डित नारायण का स्तव सुना रहे हैं। ठाकुर आनन्द में विभोर हैं।

पण्डित— सर्वभूतस्थमात्मानं सर्व भूतानि चात्मनि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः॥ (गीता 6:29)

श्रीरामकृष्ण— आपने अध्यात्म (रामायण) देखी हुई है?

पण्डित— जी हाँ, थोड़ी-सी देखी हुई है।

श्रीरामकृष्ण— वह ज्ञान-भक्ति से परिपूर्ण है। शबरी का उपाख्यान, अहल्या का स्तव, सब भक्ति से परिपूर्ण हैं।

"किन्तु एक बात है। वे विषयबुद्धि से अनेक दूर हैं।"

पण्डित— जहाँ पर विषयबुद्धि है, वे 'सुदूरम्'— और जहाँ पर वह नहीं है, वहाँ पर वे 'अदूरम्'। उत्तरपाड़ा के एक जमीदार मुखुज्ये को देखकर आया हूँ। उमर हो गई है— केवल नावल की कहानी सुन रहा है।

श्रीरामकृष्ण— अध्यात्म में और भी एक बात कही है— वे ही जीव-जगत हैं।

पण्डित आनन्दित होकर यमलार्जुन के इसी भाव के स्तव की श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध से अवृत्ति करते हैं—

कृष्ण! कृष्ण! महायोगिंस्त्वमाद्यः पुरुषः परः।
व्यक्ताव्यक्तमिदं विश्वं रूपं ते ब्राह्मणा विदुः॥
त्वमेकः सर्वभूतानां देहस्वात्मेन्द्रियेश्वरः।
त्वमेव कालो भगवान् विष्णुरव्ययः ईश्वरः॥

त्वं महान् प्रकृतिः सूक्ष्मा रजःसत्त्वतमोमयी।
त्वमेवपुरुषोऽध्यक्षः सर्वक्षेत्रविकारवित्॥

[भावार्थ— हे कृष्ण! आप महायोगी, परम आदिपुरुष हो। आपके व्यक्त-अव्यक्त इस विश्व रूप को 'ब्राह्मण' जानते हैं। तुम ही सर्वभूतों की देह, आत्मा, इन्द्रिय और ईश्वर हो। तुम काल भगवान, अव्यय और विष्णुरूप में ईश्वर हो। तुम महान्, सत्त्व-रज-तममयी सूक्ष्म प्रकृति हो। तुम ही पुरुषों की शक्ति के अध्यक्ष, सर्वक्षेत्रों के विकारों के ज्ञाता बने हो।]

(श्रीरामकृष्ण समाधिस्थ— आन्तरिक ध्यान-जप करने पर आना ही होगा)

ठाकुर स्तव सुनकर समाधिस्थ खड़े हैं। पण्डित बैठे हैं। पण्डित के अंक (गोद) और वक्ष पर एक चरण रखकर ठाकुर हँस रहे हैं।

पण्डित चरण धारण करके कह रहे हैं, 'गुरो! चैतन्यं देहि'। ठाकुर छोटे तख्त के निकट पूर्वास्य हुए खड़े हैं।

पण्डित कमरे से चले गए। ठाकुर मास्टर से कह रहे हैं— मैं जो कहता हूँ, मिल रहा है न? आन्तरिक ध्यान-जप जिन्होंने किया है, उन्हें यहाँ पर आना ही होगा।

रात के दस हो गए हैं। ठाकुर थोड़ी सामान्य सूजी की पायस खाकर लेट गए। मणि से कह रहे हैं, "पाँवों पर हाथ फेर दो तो!"

कुछ क्षण पश्चात् उन्होंने देह और छाती पर भी हाथ फेर देने के लिए कहा।

सामान्य-सी नींद के बाद वे मणि से बोले, "तुम सो जाओ;— देखूँ यदि अकेले में आँख लग जाए।"

ठाकुर रामलाल से कह रहे हैं,— "कमरे में ये (मणि) और राखाल सो जाएँ।"

द्वितीय परिच्छेद

[ठाकुर श्रीरामकृष्ण और यीशु क्राइस्ट— (Jesus Christ)]

प्रत्यूष (सवेरा) हुआ। ठाकुर उठकर माँ का चिन्तन कर रहे हैं। अस्वस्थ होने के कारण भक्तगण उनके श्रीमुख से वह मधुर नाम नहीं सुन पाए। ठाकुर प्रात:कृत्य समापन करके कमरे में निज आसन पर आकर बैठ गए। मणि से कह रहे हैं,

''अच्छा, रोग क्यों हुआ है?''

मणि— जी, मनुष्य की भाँति सब कुछ बिना हुए जीव को साहस नहीं होगा। वे देख रहे हैं, इस देह को इतना असुख है, तो भी आप ईश्वर के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं जानते।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— बलराम ने भी कहा है, 'आप का ही यदि ऐसा है, तो फिर हमें क्यों नहीं होगा?'

''सीता के शोक में राम के द्वारा धनुष न उठाया जा सकने पर लक्ष्मण को आश्चर्य हुआ। किन्तु पञ्च भूतेर फाँदे ब्रह्म परे काँदे। (पञ्चभूत के बन्धन ब्रह्म करे क्रन्दन)।''

मणि— भक्तों का दु:ख देखकर यीशु क्राइस्ट भी साधारण लोगों की भाँति रोए थे।

श्रीरामकृष्ण— क्या हुआ था?

मणि— मार्था, मेरी दो बहनें, तथा लैजेरस भाई— तीनों ही यीशु क्राइस्ट के भक्त थे। लैजेरस की मृत्यु हो गई। यीशु उनके घर में आ रहे थे। रास्ते में एक बहन (मेरी) मोड़ पर जाकर उनके पैरों पर गिर कर रोते-रोते कहने लगी, 'प्रभु यदि तुम आ जाते, तो फिर यह नहीं मरता।' यीशु उनका रोना देखकर रो पड़े थे।

[श्रीरामकृष्ण और सिद्धियाँ (miracles)]

"उसके बाद वे कब्र के निकट जाकर नाम लेकर पुकारने लगे। तुरन्त लैजेरस प्राण पाकर उठ आया।"

श्रीरामकृष्ण— मेरा किन्तु वैसा नहीं होता।

मणि— वह आप नहीं करते— इच्छा करके ही। वे सब सिद्धियाँ हैं, तभी आप नहीं करते। वैसा करने से लोगों का मन देह में ही जाएगा— शुद्धा भक्ति की ओर नहीं जाएगा। इसीलिए आप करते नहीं हैं।

"आप के संग में यीशु क्राइस्ट का अनेक मिलता है।"

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— और क्या-क्या मिलता है?

मणि— आप भक्तों को उपवास करने के लिए या और कुछ कठोर करने के लिए नहीं कहते— खाने-पीने के सम्बन्ध में कोई कठिन नियम नहीं। यीशु क्राइस्ट ने भी शिष्यों को रविवार का नियम न करके उन्हें खिलाया था, जभी तो जो लोग शास्त्र मान कर चलते थे उन्होंने उनका तिरस्कार किया था। यीशु ने कहा, 'वे खाएँगे, खूब करेंगे, जितने दिन वर के संग हैं वर-यात्रीगण आनन्द करेंगे।'

श्रीरामकृष्ण— इसके क्या मायने हैं?

मणि— अर्थात् जितने दिन अवतार के संग-संग हैं, सांगोपांगगण केवल आनन्द ही करेंगे— क्यों निरानन्द होंगे? वे जब स्वधाम चले जाएँगे, तब उनके निरानन्द के दिन आएँगे।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— और कुछ मिलता है?

मणि— जी, आप जैसे कहते हैं— 'छोकरों के भीतर कामिनी-काञ्चन ढुका नहीं है; वे लोग उपदेश की धारणा कर सकेंगे,— जैसे नूतन हण्डी में दूध रखा जाता है। दही जमाने वाली हण्डी में रखने पर दूध नष्ट हो सकता है'; वे भी उसी तरह कहा करते।

श्रीरामकृष्ण— क्या कहा करते?

मणि— 'पुरानी बोतल में नूतन मद रखने से बोतल फट सकती है।' और

'पुराने कपड़े पर नूतन थेगली लगाने से कपड़ा शीघ्र फट जाता है।'

"आप जैसे कहते हैं, 'माँ और आप एक', वे भी वैसे ही कहा करते, 'पिता और मैं एक'। (I and my Father are one.)"

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— और कुछ?

मणि— आप जैसे कहते हैं, 'व्याकुल हो कर पुकारने से वे सुनेंगे ही सुनेंगे।' वे भी कहा करते, 'व्याकुल होकर द्वार खटखटाने पर द्वार खुल जाएगा। (Knock and it shall be opened unto you.)'

श्रीरामकृष्ण— अच्छा, अवतार यदि होता है, तो पूर्ण या अंश या कला? कोई-कोई कहता है, पूर्ण।

मणि— जी, पूर्ण, अंश, कला— यह सब तो भली प्रकार नहीं समझ पाता। किन्तु जैसे आपने कहा था, उसको तो अच्छी तरह समझ गया हूँ— प्राचीर के बीच में गोल छेद।

श्रीरामकृष्ण— क्या, बोलो तो सुनूँ?

मणि— प्राचीर के भीतर एक गोल छिद्र है— उसी छिद्र के भीतर से प्राचीर के उस पार का मैदान थोड़ा-सा दिखाई देता है। उसी प्रकार आपके भीतर से उसी अनन्त ईश्वर का थोड़ा-सा देखा जाता है।

श्रीरामकृष्ण— हाँ, दो-तीन कोस एकदम दिखाई देता है!

मणि चाँदनी के घाट पर गंगास्नान करके फिर ठाकुर के पास कमरे में आ गए। समय आठ का है।

मणि लाटु से अटका माँग रहे हैं— श्री श्री जगन्नाथदेव का अटका।

श्रीरामकृष्ण निकट आकर मणि से कह रहे हैं,

"तुम वह (प्रसाद) खाया करो— जो भक्त होता है, प्रसाद न होने पर आहार नहीं कर सकता।"

मणि— जी, मैं कल तक का बलराम बाबू के घर से जगन्नाथ का अटका लाया था— उसे ही रोज एक-दो (थोड़ा-थोड़ा) करके खाता हूँ।

मणि भूमिष्ठ होकर ठाकुर को प्रणाम कर रहे हैं और विदा ग्रहण कर रहे हैं। ठाकुर सस्नेह कह रहे हैं, ''तो फिर तुम सुबह-सुबह चलो— और फिर यह भाद्र मास की धूप— बड़ी खराब!''

षड्विंश खण्ड

दक्षिणेश्वर-मन्दिर में जन्माष्टमी-दिवस पर भक्तों के संग में

प्रथम परिच्छेद

(सुबोध का आगमन— पूर्ण, मास्टर, गंगाधर, क्षीरोद, निताई)

श्रीरामकृष्ण उसी पूर्वपरिचित कमरे में विश्राम कर रहे हैं। रात के आठ हैं। सोमवार, 16 भाद्र, श्रावण-कृष्णा-षष्ठी; 31 अगस्त, 1885 ईसवी।

ठाकुर अस्वस्थ हैं— गले में रोग का सूत्रपात हो चुका है। किन्तु निशिदिन एक चिन्ता है, किसी प्रकार भक्तों का मंगल हो जाए। एक-एक बार बालक की न्यायीं बीमारी को लेकर कातर होते हैं। दूसरे क्षण ही सब भूलकर ईश्वर-प्रेम में मतवाले हैं। और हैं भक्तों के प्रति स्नेह और वात्सल्य में उन्मत्तप्राय।

दो दिन हो गए— गत शनिवार रात को— श्रीयुक्त पूर्ण ने पत्र लिखा है— 'मुझे खूब आनन्द होता है। बीच-बीच में रात को आनन्द से निद्रा नहीं आती।'

ठाकुर ने पत्र सुनकर कहा—

''मेरे शरीर पर रोमाञ्च हो रहा है! उसकी यही आनन्द की अवस्था पीछे (बाद में) ठहर जाएगी; देखूँ पत्र।''

पत्र को हाथ में लेकर, उसे मोड़कर, दबाकर, कह रहे हैं—

''और की चिट्ठी को छू नहीं सकता; इसकी बड़ी अच्छी चिट्ठी है।''

उसी रात को थोड़ा–सा सोए हैं। हठात् शरीर में पसीना आ गया— शय्या से उठकर कह रहे हैं—

''मुझे बोध हो रहा है, यह रोग ठीक नहीं होगा।''

यह बात सुनकर भक्तगण सब ही चिन्तित हो गए।

श्री श्री माँ ठाकुर की सेवा करने के लिए आई हुई हैं और बहुत ही एकान्त में नहबत में रहती हैं। नहबत में जो वे रहती हैं, भक्तगण प्राय: कोई नहीं जानते। एक स्त्री भक्त (श्री गोलाप माँ) भी कई दिन से नहबत में हैं। वे ठाकुर के कमरे में प्राय: आती हैं और उनके दर्शन करती हैं।

ठाकुर ने उन्हें पिछले दिन रविवार को कहा था—

''तुम अनेक दिनों से यहाँ पर हो, लोग क्या सोचेंगे? बल्कि दस दिन जाकर घर में रहो।'' मास्टर ने यह समस्त कथा सुनी।

आज सोमवार। ठाकुर अस्वस्थ हैं। रात के प्राय: आठ बजे हैं। ठाकुर छोटी खाट पर पीठ करके दक्षिण की ओर सिर करके लेटे हुए हैं। गंगाधर सन्ध्या के पश्चात् कलकत्ता से मास्टर के साथ आए हैं। वे उनके चरणों में बैठे हुए हैं। ठाकुर मास्टर के साथ बातें कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण— दो लड़के आए थे। शंकरघोष के नाती का लड़का (सुबोध) और एक उनके मुहल्ले का लड़का (क्षीरोद)। अच्छे हैं दोनों लड़के। मुझे अब असुख है, तुमहारे पास आकर उपदेश लेने के लिए मैंने उनसे कहा है। तुम थोड़ा ध्यान देना।

मास्टर— जी हाँ, हमारे मुहल्ले में उनका घर है।

(असुख का सूत्रपात— भगवान डॉक्टर— निताई डॉक्टर)

श्रीरामकृष्ण— उस दिन फिर पसीने के कारण नींद टूट गई थी। यह रोग क्या हो गया!

मास्टर— जी, हम एक बार भगवान रुद्र को दिखाएँगे, यही निश्चय किया है।

वे एम०डी० पास हैं। बहुत अच्छे डॉक्टर हैं।

श्रीरामकृष्ण— कितना लेंगे?

मास्टर— अन्य जगह से बीस-पच्चीस रुपये लेते हैं।

श्रीरामकृष्ण— तो फिर रहने दो!

मास्टर— जी, हम हद्द चार-पाँच रुपए देंगे।

श्रीरामकृष्ण— अच्छा ऐसे करके यदि एक बार कहो, 'दया करके उन्हें देखने चलिए।' यहाँ की बातें क्या कुछ नहीं सुनीं?

मास्टर— लगता तो है सुनी हैं। एक तरह से तो कहा है कि कुछ नहीं लेंगे किन्तु हम देंगे; क्योंकि तब फिर वे दोबारा भी आ जाएँगे।

श्रीरामकृष्ण— निताई (डॉक्टर) को यदि लाओ तो अपितु अच्छा है। फिर डॉक्टर लोग आकर ही क्या करते हैं? केवल घाव दबा देते हैं।

रात के नौ— ठाकुर तनिक सूजी की पायस खाने बैठे।

खाते हुए कोई कष्ट नहीं हुआ! जभी आनन्द करते-करते मास्टर से कह रहे हैं— "ज़रा-सा खा पाया, मन में बड़ा आनन्द हुआ।"

द्वितीय परिच्छेद

जन्माष्टमी-दिवस— नरेन्द्र, राम, गिरीश आदि के संग

(बलराम, मास्टर, गोपाल की माँ, राखाल, लाटु, छोटे नरेन, पंजाबी साधु, नवगोपाल, काटोवा के वैष्णव, राखाल डॉक्टर)

आज है जन्माष्टमी, मंगलवार, 17 भाद्र; पहला सितम्बर, 1885 ईसवी। ठाकुर स्नान करेंगे। एक भक्त तेल मल रहे हैं। ठाकुर दक्षिण के बरामदे में बैठे तेल मलवा रहे हैं। मास्टर ने गंगास्नान करके आकर ठाकुर को प्रणाम किया।

स्नान के अन्त में ठाकुर गमछा (अंगोछा) पहने दक्षिणास्य होकर

उसी बरामदे से देवताओं को उद्देश्य करके प्रणाम कर रहे हैं। शरीर अस्वस्थ होने के कारण श्री काली-मन्दिर या विष्णु-मन्दिर नहीं जा सके।

आज जन्माष्टमी— राम आदि भक्त ठाकुर के लिए नव वस्त्र लाए हैं। ठाकुर ने नव वस्त्र पहने हैं— वृन्दावनी धोती और शरीर पर लाल रेशमी कपड़ा। उनकी शुद्ध, अपापविद्ध देह नव वस्त्र में शोभा पाने लगी। वस्त्र पहनते ही उन्होंने देवताओं को प्रणाम किया।

आज जन्माष्टमी है। गोपाल की माँ गोपाल के लिए कुछ खाने को बनाकर कामारहाटी से लाई हैं। वे आकर ठाकुर को दु:ख प्रकट करते हुए कह रही हैं, ''तुम तो खाओगे नहीं।''

श्रीरामकृष्ण— यह देखो, असुख हो गया है।

गोपाल की माँ— मेरा भाग्य!— थोड़ा हाथ में लो!

श्रीरामकृष्ण— तुम आशीर्वाद करो।

गोपाल की माँ ठाकुर को ही गोपाल मानकर सेवा करती हैं।

भक्त मिश्री लाए हैं। गोपाल की माँ कह रही हैं, ''यह मिश्री नहबत में ले जाती हूँ।'' श्रीरामकृष्ण कहते हैं, ''यहाँ पर भक्तों को देनी होती है। कौन सौ बार माँगेगा, यहाँ ही रहे।''

समय ग्यारह। कलकत्ता से भक्त क्रम-क्रम से आ रहे हैं। श्रीयुक्त बलराम, नरेन्द्र, छोटे नरेन, नवगोपाल, काटोवा (Katoa) से एक वैष्णव, क्रमश: आकर जुट गए। राखाल, लाटु आजकल यहाँ रहते हैं। एक पंजाबी साधु पञ्चवटी में कई दिन से रह रहे हैं।

छोटे नरेन के माथे पर एक गिलटी है। ठाकुर पञ्चवटी में टहलते-टहलते कह रहे हैं,
''तू गिलटी कटवा ले ना, वह तो गले में नहीं है— माथे पर है। उससे फिर क्या होगा— लोग तो एकशिरा (बढ़ा हुआ अण्डकोष) तक कटवा लेते हैं।'' *(हास्य)*।

पंजाबी साधु उद्यान के पथ से जा रहे हैं। ठाकुर कह रहे हैं, ''मैं उसको नहीं खींचता। ज्ञानी का भाव है। देख रहा हूँ जैसे सूखी काठ!''

कमरे में ठाकुर लौट आए। श्यामापद भट्टाचार्य की बातें होती हैं।

बलराम— उन्होंने कहा है, नरेन्द्र की छाती पर पाँव देने से (भावावेश में) जो हुआ था, कहाँ, मेरे को तो वह नहीं हुआ।

श्रीरामकृष्ण— बात क्या है, जानते हो? कामिनी-काञ्चन में मन रहने पर बिखरा हुआ मन समेटना संकट (कठिन) है। उसे पंचायत करनी पड़ती है, उसने बताया था। और फिर घर के लड़कों-बच्चों के विषय में सोचना पड़ता है। नरेन्द्र आदि का मन तो बिखरा हुआ नहीं है— उसके भीतर अभी तक कामिनी-काञ्चन ने प्रवेश नहीं किया है।

"किन्तु (श्यामापद) बड़ा अच्छा व्यक्ति है।"

काटोवा के वैष्णव ठाकुर से प्रश्न कर रहे हैं। वैष्णव कुछ कंजे (squint-eyed) हैं।

(जन्मान्तर की खबर— भक्ति-लाभ के लिए ही मनुष्य-जन्म)

वैष्णव— मोशाय, फिर दूसरा जन्म होता है क्या?

श्रीरामकृष्ण— गीता में है— मृत्यु के समय जो जैसी चिन्ता करता हुआ देहत्याग करता है, उसे उसी भाव को लेकर जन्म ग्रहण करना पड़ता है। हरिण की चिन्ता करके भरत राजा का हरिण-जन्म हुआ था।

वैष्णव— ऐसा जो होता है, कोई आँखों से देखकर बताए तो विश्वास हो।

श्रीरामकृष्ण— वह मुझे पता नहीं भाई। मैं अपना रोग हटा नहीं सक रहा— तो फिर मरने पर क्या होता है!

"तुम जो कह रहे हो, यह सब हीन बुद्धि की बात है। ईश्वर में किस प्रकार भक्ति हो, इसी की चेष्टा करो। भक्ति-लाभ के लिए ही मनुष्य बनकर जन्मे हो। बाग में आम खाने आए हो, कितने हजार डाल, कितने लाख पत्ते, इन सब खबरों से क्या काम?— जन्म-जन्मान्तर की खबर!"

(गिरीश घोष और अवतारवाद— कौन पवित्र ?— जिसके विश्वास, भक्ति हैं)

श्रीयुक्त गिरीश घोष दो-एक मित्रों के संग गाड़ी करके उपस्थित हुए। कुछ पान किया हुआ है! रोते-रोते आए हैं और ठाकुर के चरणों में सिर रखकर रो रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण सस्नेह उनके शरीर को थपथपाने लगे। एक भक्त को पुकार कर कह रहे हैं— ''ओ रे, इसे तम्बाकू पिला।''

गिरीश सिर उठाकर हाथ जोड़कर कह रहे हैं,—

''तुम ही पूर्णब्रह्म! वह यदि न हो तो सब ही मिथ्या है!

''बड़ा खेद रह गया है, तुम्हारी सेवा नहीं कर सका!''

(ये बातें ऐसे स्वर में कह रहे हैं कि दो-एक भक्त रोने लग गए!)

''वर दो भगवन, एक वर्ष तुम्हारी सेवा करूँगा? मुक्ति तो बिखरी पड़ी है— इस पर प्रस्राव (पिशाब) करता हूँ। कहिए, आपकी सेवा एक वर्ष करूँगा?''

श्रीरामकृष्ण— यहाँ के लोग अच्छे नहीं हैं— कोई कुछ कहेगा।

गिरीश— वैसा नहीं होगा, कहिए—

श्रीरामकृष्ण— अच्छा, तुम्हारे घर पर जब जाऊँगा—

गिरीश— नहीं, वह नहीं! यहाँ पर करूँगा।

श्रीरामकृष्ण *(जिद देखकर)*— अच्छा, जैसी ईश्वर की इच्छा।

ठाकुर के गले में असुख है, गिरीश फिर और बातें कर रहे हैं,—

''कहिए आराम हो जाए!— अच्छा, मैं झाड़ देता हूँ। काली! काली!''

श्रीरामकृष्ण— मुझे लगेगा!

गिरीश— ठीक हो जा! (फूँ)। यदि चंगा न हो जाए तो... यदि मेरी भी प्राप्त की हुई कुछ भक्ति है, तो फिर अवश्य अच्छा हो जाएगा! कहो, अच्छा हो गया।

श्रीरामकृष्ण *(परेशान, विरक्त होकर)*— जा भाई, मैं ऐसे नहीं बोल सकता। रोग अच्छा हो जाने की बात माँ से नहीं कह सकता। अच्छा, ईश्वर की इच्छा

से होगा।

गिरीश— मुझे भुलाइए मत। आपकी ही इच्छा से (होगा)!

श्रीरामकृष्ण— छिः, वह बात नहीं कहते। भक्तवत् न च कृष्णवत्। तुम जो सोचना चाहो, तुम सोच सकते हो। तुम्हारा गुरु तो भगवान है— इस कारण वैसी बातें कहने से अपराध होता है— वैसी बातें नहीं कहते।

गिरीश— कहो, अच्छा हो जाएगा।

श्रीरामकृष्ण— अच्छा, जो हुआ है वह जाएगा।

गिरीश अपने भाव में बीच-बीच में ठाकुर को सम्बोधन करके कह रहे हैं—

''हाँ जी, इस बार रूप लेकर क्यों नहीं आए जी?''

कुछ क्षण पश्चात् फिर और कहते हैं—

''अब की बार है शायद बंगाल-उद्धार।''

कोई-कोई भक्त सोच रहे हैं, बंगाल-उद्धार या समस्त जगत-उद्धार!

गिरीश फिर कहते हैं—

''ये यहाँ पर क्यों रह रहे हैं, कोई समझा है? जीव के दुःख में कातर होकर आए हैं; उनके उद्धार के लिए।''

गाड़ी वाला पुकार रहा था। गिरीश उठकर उसके पास जा रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण मास्टर से कहते हैं—

''देखो, कहाँ जा रहा है— मारेगा तो नहीं।''

मास्टर ने भी संग-संग गमन किया।

गिरीश फिर वापस लौट आए और ठाकुर का स्तव कर रहे हैं—

''भगवन्, मुझे पवित्रता दो; जिससे कभी एक भी पापचिन्ता न हो।''

श्रीरामकृष्ण— तुम पवित्र तो हो।— तुम्हारा जो विश्वास और भक्ति है! तुम तो आनन्द में हो?

गिरीश— जी, नहीं। मन खराब है— अशान्ति है— जभी तो खूब मद पी

लिया है।

कुछ क्षण पश्चात् गिरीश फिर और कहते हैं,

''भगवन, आश्चर्य हो रहा है कि पूर्णब्रह्म भगवान की सेवा कर रहा हूँ। ऐसी क्या तपस्या की थी जो ऐसी सेवा का अधिकारी हुआ हूँ!''

ठाकुर ने मध्याह्न की सेवा की। रोग होने के कारण अति सामान्य तनिक-सा आहार किया।

ठाकुर की सर्वदा ही भावावस्था है— जोर करके शरीर की ओर मन ला रहे हैं। किन्तु शरीर-रक्षा करने में बालक की भाँति अक्षम हैं। बालक की न्यायीं भक्तों से कह रहे हैं—

अब थोड़ा-सा खा लिया है, थोड़ा लेटूँगा। तुम लोग बाहर जाकर बैठो।

ठाकुर ने तनिक-सा विश्राम कर लिया है! भक्तगण फिर दोबारा कमरे में बैठे हुए हैं।

(गिरीश घोष— गुरु ही इष्ट— द्विविध भक्त)

गिरीश— हाँ जी, गुरु और इष्ट;— गुरु-रूप सुन्दर लगता है— भय नहीं होता— क्यों भाई? भाव देखकर दस हाथ दूर जाता हूँ। भय होता है।

श्रीरामकृष्ण— जो इष्ट हैं, वे ही गुरु-रूप बनकर आते हैं। शव-साधना के पश्चात् जब इष्ट-दर्शन होता है, गुरु ही आकर शिष्य से कहते हैं— ऐ (शिष्य), वह (तेरा इष्ट)। यह बात कहते ही इष्ट-रूप में लीन हो जाते हैं। शिष्य फिर गुरु को नहीं देख पाता। जब पूर्णज्ञान हो जाता है, तब फिर कौन गुरु, कौन शिष्य! वह बड़ी कठिन अवस्था है, गुरु-शिष्य एक-दूसरे को देख नहीं पाते।

एक भक्त— गुरु का सिर, शिष्य के पाँव।

गिरीश *(आनन्द से)*— हाँ।

नवगोपाल— इसका अर्थ सुनो! शिष्य का मस्तक गुरु की वस्तु है, और गुरु

के पाँव शिष्य की वस्तु। सुन लिया?

गिरीश— नहीं, यह अर्थ नहीं है। बाप के कन्धे पर क्या बेटा नहीं चढ़ता? जभी शिष्य के पाँव।

नवगोपाल— वह वैसा कच्चा (छोटा-सा) बेटा हो तो होता है।

(पूर्वकथा— सिख भक्त— दो श्रेणी के भक्त— बन्दर का बच्चा और बिल्ली का बच्चा)

श्रीरामकृष्ण— दो प्रकार के भक्त हैं। एक श्रेणी (के भक्तों) का बिल्ली के बच्चे का स्वभाव है— सम्पूर्ण निर्भर— माँ जो करे। बिल्ली का बच्चा केवल म्यूँ-म्यूँ करता है। कहाँ जाएगा, क्या करेगा— कुछ नहीं जानता। माँ कभी रसोई में रखती है— कभी फिर बिछौने के ऊपर रखती है। उसी प्रकार भक्त ईश्वर को आममुख्त्यारी (बकलमा) दे देता है। आममुख्त्यारी देकर निश्चिन्त।

''सिखों ने कहा था— ईश्वर दयालु हैं। मैंने कहा, वे हमारे माँ-बाप हैं, वे फिर दयालु कैसे? बच्चों को जन्म देकर बाप-माँ लालन-पालन नहीं करेंगे,— तो क्या बामुन मुहल्ले के लोग आकर करेंगे? भक्तों का यह ठीक विश्वास है— वे अपनी माँ, अपना बाप।

''और एक श्रेणी के भक्त हैं, उनका बन्दर के बच्चे का स्वभाव है। बन्दर का बच्चा स्वयं जिस किसी भी तरह माँ को हाथों में पकड़े रहता है। इनको थोड़ा-सा कर्त्तव्य-बोध रहता है। मुझे तीर्थ करना होगा, जप-तप करना होगा, षोडशोपचार से पूजा करनी होगी, तभी मैं ईश्वर को पकड़ पाऊँगा,— इनका ऐसा भाव है।

''दोनों जन ही भक्त। *(भक्तों के प्रति)*— जितना आगे बढ़ोगे उतना ही देखोगे वे ही सब बने हुए हैं— वे ही सब कर रहे हैं। वे ही गुरु, वे ही इष्ट। उन्होंने ही ज्ञान-भक्ति समस्त दिए हैं।''

(पूर्वकथा— केशवसेन को उपदेश— 'आगे बढ़ो')

"जितना आगे बढ़ोगे, देखोगे, चन्दन की लकड़ी से परे भी है, चाँदी की खान,— सोने की खान,— हीरे, माणिक! जभी 'आगे बढ़ो'।

"और 'आगे बढ़ो' यह बात भी कैसे कहूँ!— गृही लोगों का अधिक आगे जाने पर संसार-वंसार (गृहस्थ) खाली हो जाता है! केशवसेन उपासना कर रहा था,— कहा, 'हे ईश्वर, तुम्हारी भक्ति-नदी में जैसे डूब जाऊँ।' सब हो जाने के बाद मैंने केशव से कहा, 'अजी तुम भक्ति-नदी में कैसे डूब जाओगे? डूब जाने पर, चिक के भीतर जो बैठी हैं, उनका क्या होगा? किन्तु एक काम करो— बीच-बीच में डुबकी लगाओ, और एक-एक बार किनारे पर आओ' *(सब का हास्य)*।

(वैष्णव की 'कलकलानि'— 'धारणा करो!' सच बोलना तपस्या)

काटोवा के वैष्णव तर्क कर रहे थे। ठाकुर उनसे कहते हैं,

"तुम कलकलानि छोड़ो। घी कच्चा रहने पर ही कलकल करता है।

"एक बार उनका आनन्द पा लेने पर विचारबुद्धि भाग जाती है। मधुपान का आनन्द पा लेने पर फिर भन्‌भनानि नहीं रहती।

"पुस्तक पढ़कर बहुत-सी बातें बोल सकने से क्या होगा? पण्डित लोग कितने श्लोक बोलते हैं— 'शीर्णा गोकुलमण्डली।'— इत्यादि।

"भंग-भंग मुख से बोलने से क्या होगा? कुरले करने से भी कुछ नहीं होगा। पेट में जानी चाहिए! तभी नशा होगा। ईश्वर को निर्जन में, गोपन में व्याकुल होकर बिना पुकारे, इन सब बातों की धारणा नहीं होती।

डॉक्टर राखाल ठाकुर को देखने आए हैं। वे व्यस्त भाव से कह रहे हैं—

"आओ जी, बैठो।" वैष्णव के साथ बातें चल रही हैं।

श्रीरामकृष्ण— मनुष्य और मन होश। जिसे चैतन्य हो गया है, वही मनहोश है। चैतन्य बिना हुए वृथा है मनुष्य-जन्म!

(पूर्वकथा— कामारपुकुर में धार्मिक, सत्यवादी द्वारा पंचायती)

''हमारे देश में मोटे पेट और बड़ी मूँछों वाले अनेक व्यक्ति हैं। किन्तु दस कोस दूर से भले मनुष्य को पालकी करके क्यों लाते हैं— धार्मिक, सत्यवादी देखकर। वे विवाद मिटा देंगे। केवल कोरे (खोखले) पण्डित जो हैं, उन्हें नहीं लाते।

''सत्यवाणी है कलि की तपस्या। सत्यवाणी, (ईश्वर पर) अधीनता, परस्त्री मातृसमान।''

ठाकुर बालक की भाँति डॉक्टर से कह रहे हैं—

''बाबू, मेरा यह तो ठीक कर दो।''

डॉक्टर— मैं चंगा कर दूँगा?

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— डॉक्टर नारायण हैं। मैं सब मानता हूँ।

(Reconciliation of free will and God's will—
of liberty and necessity— ईश्वर ही महावत नारायण)

''यदि कहो सब ही नारायण हैं, तब तो चुप करके रहना चाहिए। फिर मैं तो महावत नारायण भी मानता हूँ।

''शुद्ध मन और शुद्ध आत्मा एक ही है। शुद्ध मन में जो उठता है, वह उनकी ही बात है। 'वे ही महावत नारायण हैं'।

''उनकी बात क्यों नहीं सुनूँगा? वे ही कर्त्ता हैं। 'मैं' जब तक रखा हुआ है, उनका आदेश सुनकर कार्य करूँगा।''

ठाकुर के गले का रोग अब डॉक्टर देखेंगे। ठाकुर कह रहे हैं—

''महेन्द्र सरकार ने जिह्वा दबाई, जैसे गाय की जिह्वा को दबाते हैं।''

ठाकुर फिर दोबारा बालक की न्यायीं डॉक्टर के कुरते पर बारम्बार हाथ लगाकर कह रहे हैं,—

''बाबू! बाबू! तुम इसको तो चंगा कर दो!''

Laryngoscope (लैरिंगोस्कोप— गला देखने का आईना) को देखकर हँसते-हँसते ठाकुर कह रहे हैं— "समझ गया हूँ, इसमें छाया पड़ेगी।"

नरेन्द्र ने गाना गाया। ठाकुर को असुख होने के कारण अधिक गाना नहीं हुआ।

तृतीय परिच्छेद

(श्रीयुक्त डॉक्टर भगवान रुद्र और ठाकुर श्रीरामकृष्ण)

ठाकुर श्रीरामकृष्ण मध्याह्न सेवा करके अपने आसन पर बैठे हुए हैं। वे डॉक्टर भगवान रुद्र और मास्टर के साथ बातें कर रहे हैं। कमरे में राखाल, लाटु आदि भक्त भी हैं।

आज बुधवार है, नन्दोत्सव; 18 भाद्र, श्रावण की अष्टमी-नवमी तिथि; 2 सितम्बर, 1885 ईसवी। ठाकुर के रोग के विषय में डॉक्टर ने समस्त सुना। ठाकुर नीचे फर्श पर आकर डॉक्टर के पास बैठे हुए हैं।

श्रीरामकृष्ण— देखो जी, औषध सहन नहीं होती! धात् (धातु— प्रकृति) अलग है।

(रुपया-स्पर्शन, गिरह बाँधना, संचय— ये सब ठाकुर के लिए असम्भव)

"अच्छा, इससे तुम्हें क्या लगता है? रुपया छू लेने पर हाथ एंके बेंके (टेढ़ा-मेढ़ा) हो जाता है। नि:श्वास बन्द हो जाता है। और यदि मैं गिरह (गाँठ) बाँध लेता हूँ तो जब तक गिरह नहीं खोली जाती, तब तक नि:श्वास बन्द हुई रहती है!"

यह कहकर उन्होंने एक रुपया लाने के लिए कहा। डॉक्टर देखकर अवाक्! जिस हाथ के ऊपर रुपया रखा गया था वह हाथ टेढ़ा हो गया; और नि:श्वास बन्द हो गई। रुपए को हटा लेने पर, क्रम-क्रम से तीन बार दीर्घनि:श्वास निकलने पर तब हाथ फिर से शिथिल हुआ।

डॉक्टर मास्टर से कह रहे हैं—

"Action on the nerves. (स्नायु के ऊपर क्रिया)।"

(पूर्वकथा— शम्भुमल्लिक के बागान में अफीम संचय— जन्मभूमि कामारपुकुर में आम तोड़ना— संचय असम्भव)

ठाकुर डॉक्टर से और कह रहे हैं,

''और एक अवस्था है। कुछ भी संचय जो नहीं कर सकता। शम्भुमल्लिक के बागान में एक दिन गया था। तब पेट का बड़ा रोग था। शम्भु ने कहा— थोड़ी-थोड़ी-सी करके अफीम खाना, तो फिर कम हो जाएगा। मेरे कपड़े के खूँटे (छोर) में थोड़ी-सी अफीम बाँध दी। जब लौटकर आ रहा था, फाटक के पास, कौन जाने, घूमने लग गया— जैसे खोजकर भी पथ नहीं मिल रहा था। तब फिर जब अफीम फेंक दी, तब फिर दोबारा सहज अवस्था होने पर बागान से लौट आया।

''देश में भी आम तोड़कर ला रहा था— फिर चल नहीं पाया, खड़ा हो गया। तब फिर उन्हें एक गढ़ी (पोखरी) जैसे स्थान पर रखना पड़ा— तब ही आ पाया। अच्छा, यह क्या है?''

डॉक्टर— उसके पीछे और एक (शक्ति) है, मन की शक्ति।

मणि— ये कहते हैं, यह ईश्वर की शक्ति (God force) है, आप कहते हैं मन की शक्ति (will force)।

श्रीरामकृष्ण *(डॉक्टर के प्रति)*— और फिर ऐसी अवस्था है कि यदि कोई कह देता है कि 'कम हो गया है' तो तुरन्त बहुत-सा कम हो जाता है। उस दिन ब्राह्मणी ने कहा 'आठ आना कम हो गया है'— तुरन्त नाचने लग गया!

ठाकुर डॉक्टर का स्वभाव देखकर सन्तुष्ट हुए हैं। वे (ठाकुर) डॉक्टर से कह रहे हैं—

''तुम्हारा स्वभाव तो सुन्दर है। ज्ञान के दो लक्षण हैं— शान्त स्वभाव और अभिमान नहीं रहेगा।''

मणि— इन्हें *(डॉक्टर को)* स्त्री-वियोग हुआ है।

श्रीरामकृष्ण *(डॉक्टर के प्रति)*— मैं कहता हूँ, तीन खैंच (आकर्षण) होने पर भगवान मिलते हैं। माँ का बेटे के ऊपर आकर्षण, सती स्त्री का पति के

ऊपर आकर्षण, विषयी का विषय के ऊपर आकर्षण।

''जैसे भी हो, बाबू मेरे, इसको चंगा कर दो।''

डॉक्टर अब असुख का स्थान देखेंगे। गोल बरामदे में एक कुर्सी के ऊपर ठाकुर बैठ गए। ठाकुर पहले डॉक्टर सरकार की बातें कहते हैं,

''साला, जैसे गाय की जिह्वा दबा दी!''

भगवान— उन्होंने शायद इच्छा करके वैसा नहीं किया।

श्रीरामकृष्ण— नहीं, वैसी बात नहीं, खूब अच्छी तरह देखेंगे, इस कारण दबाया था।

सप्तविंश खण्ड

श्यामपुकुर के घर में
डॉक्टर सरकार, नरेन, शशी, शरत्, मास्टर, गिरीश प्रभृति के संग

प्रथम परिच्छेद

(पूर्वकथा—उन्मादावस्था में कोठी के पीछे जैसे शरीर में होमाग्नि-ज्वलन! पण्डित पद्मलोचन का विश्वास और उनकी मृत्यु)

ठाकुर श्रीरामकृष्ण श्यामपुकुर के घर में चिकित्सार्थ भक्तों के संग में वास कर रहे हैं। आज है कोजागर पूर्णिमा, शुक्रवार; 23 अक्तूबर, 1885 ईसवी। समय 10 का। ठाकुर मास्टर के साथ बातें कर रहे हैं।

मास्टर उनके पाँव में मौजे पहना रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— कन्फोर्टर (मफलर) काटकर पाँव में पहनने से नहीं चलेगा? अच्छा गरम है। *(मास्टर हँस रहे हैं)*।

गत कल बृहस्पतिवार रात को डॉक्टर सरकार के साथ अनेक बातें हो गईं। 'श्री श्रीरामकृष्ण कथामृत' प्रथम भाग में वे सब बातें प्रकाशित हुई हैं। ठाकुर उन सब बातों का उल्लेख करके मास्टर को हँसते-हँसते कह रहे हैं— ''कल कैसे तुँहुँ-तुँहुँ बोला मैं।''

ठाकुर ने कल कहा था—

''जीव त्रिताप में जलता है, तब भी कहता है, बहुत ठीक हूँ। तिरछे काँटे से

हाथ कट रहा है। धड़-धड़ खून गिर रहा है— तब भी कहता है— 'मेरे हाथ में कुछ भी तो नहीं हुआ।' ज्ञानाग्नि द्वारा इस काँटे को जलाना होगा।''

छोटे नरेन वही बात स्मरण करके कह रहे हैं—

'कल के बेंके (टेढ़े) काँटे की बात तो सुन्दर है। ज्ञानाग्नि में जला देना'

श्रीरामकृष्ण— मेरी तो साक्षात् वैसी ही अवस्था होती थी।

''कोठी के पीछे से जाते-जाते देह में जैसे होमाग्नि जल गई!

''पद्मलोचन ने कहा था— 'तुम्हारी अवस्था सभा करके लोगों से कहूँगा! उसके पश्चात् किन्तु उसकी मृत्यु हो गई।''

समय ग्यारह है। ठाकुर का संवाद लेकर डॉक्टर सरकार के घर में मणि आए हैं।

डॉक्टर ठाकुर का संवाद लेकर उनके ही विषय में कथावार्त्ता कर रहे हैं— उनकी बातें सुनते-सुनते औत्सुक्य-प्रकाश कर रहे हैं।

डॉक्टर *(सहास्य)*— मैंने कल कैसे कहा, 'तुँहुँ तुँहुँ' कहने के लिए वैसे धुनिये के हाथ में पड़ना पड़ता है!

मणि— जी हाँ, वैसे ही गुरु के हाथ में बिना पड़े अहंकार नहीं जाता।

''कल भक्ति की बात कैसे बताई!— भक्ति स्त्री जाति है, अन्त:पुर पर्यन्त जा सकती है।''

डॉक्टर— हाँ, वह तो बड़ी सुन्दर बात है; किन्तु उस कारण ज्ञान को तो फिर छोड़ नहीं दिया जाता।

मणि— परमहंसदेव तो वैसा नहीं कहते। वे ज्ञान-भक्ति दोनों ही लेते हैं— निराकार, साकार। वे कहते हैं, भक्ति-हिम में जल की थोड़ी-सी बरफ बन गई, और फिर ज्ञानसूर्य के उदय होने पर बरफ गल गई। अर्थात् भक्तियोग में साकार, ज्ञानयोग में निराकार।

''और देखा है, ईश्वर को इतना निकट देखते हैं कि उनके संग में सर्वदा बातें कर रहे हैं। छोटे लड़के की भाँति कहते हैं,— 'माँ, बड़ा लगता है। (बहुत दर्द होता है।)'

"और कैसा ऑबजरवेशन (observation— निरीक्षण; दर्शन)! म्यूजियम (अजायबघर) में फॉस्सिल (जानवरों के मृत देह-पत्थर) बने देखे थे। तुरन्त साधुसंग की उपमा बन गई! पत्थरों के पास रहते-रहते पत्थर हो गए हैं, वैसे ही साधु के पास रहते-रहते साधु हो जाता है।"

डॉक्टर— ईशान बाबू कल अवतार-अवतार कर रहे थे। अवतार ही फिर और है क्या!— मनुष्य को ईश्वर कहना!

मणि— उनका जैसा-जैसा विश्वास है, उसमें फिर इन्टरफियर (हस्तक्षेप) करके क्या होगा?

डॉक्टर— हाँ, क्या काम?

मणि— और उस बात पर तो कैसे हँसे हैं!— 'कोई देख गया कि एक अमुक घर गिर पड़ा है किन्तु अखबार में वह लिखा नहीं है। अतएव उस पर विश्वास नहीं किया जाएगा।'

डॉक्टर चुप हैं— क्योंकि ठाकुर ने कहा था, 'तुम्हारी सायन्स में— अवतार की बात नहीं है, अतएव (तुम्हारी दृष्टि से) अवतार नहीं होता!'

समय दोपहर हो गया। डॉक्टर मणि को लेकर गाड़ी पर बैठे। अन्यान्य रोगियों को देखकर अन्त में ठाकुर श्रीरामकृष्ण को देखने जाएँगे।

डॉक्टर उस दिन गिरीश के निमन्त्रण पर 'बुद्ध-लीला' अभिनय देखने गए थे। वे गाड़ी पर बैठकर मणि से कह रहे हैं,— "बुद्ध को दया का अवतार कहते तो ठीक होता;— विष्णु का अवतार क्यों कहा?"

डॉक्टर ने मणि को हेदुए के चौराहे पर उतार दिया।

द्वितीय परिच्छेद

(ठाकुर की परमहंस अवस्था— चारों ओर आनन्द का कुहासा (कोहरा)-दर्शन— भगवती का रूपदर्शन— जैसे कहती हैं, 'लगा जादू')

समय तीन का है। ठाकुर के पास एक-दो भक्त बैठे हैं। वे 'डॉक्टर कब आएँगे' और 'कितने बजे हैं' बालक की न्यायीं अधीर होकर बार-बार

पूछ रहे हैं। डॉक्टर आज सन्ध्या के बाद आएँगे।

हठात् ठाकुर की बालक की न्यायीं अवस्था हो गई। तकिया गोद में लेकर जैसे वात्सल्य रस में आप्लुत होकर बच्चे को दूध पिला रहे हैं! भावाविष्ट बालक की न्यायीं हँस रहे हैं— और एक प्रकार से कपड़ा (धोती) पहन रहे हैं!

मणि आदि अवाक् होकर देख रहे हैं।

कुछ देर में भाव का उपशम हुआ। ठाकुर के आहार का समय हुआ, उन्होंने थोड़ी-सी सूजी खाई।

मणि से अकेले में अति गुह्य बात कह रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण *(मणि के प्रति, एकान्त में)*— इतनी देर भावावस्था में क्या देखा था, जानते हो?— तीन-चार कोस फैला हुआ सिओड़ में (सिहर में) जाने का मैदान। उसी मैदान में मैं अकेला हूँ!— वही जो पन्द्रह-सोलह वर्ष के छोकरे, जैसा परमहंस वटवृक्षतले देखा था, फिर अब ठीक उसी प्रकार का देखा।

''चारों ओर आनन्द का कोहरा!— उसके भीतर से 13/14 वर्ष के एक लड़के का उठा मुख दिखाई देता है! पूर्ण का रूप! दोनों ही दिगम्बर— उसके बाद मैदान में आनन्द से दोनों का दौड़ा-दौड़ी करना!

''दौड़-भाग करने से पूर्ण को प्यास लगी। उसने एक पात्र में लेकर जल पिया। जल पीकर मुझे देने आया। मैंने कहा, 'भाई तेरा झूठा पी नहीं सकूँगा।' तब उसने हँसते-हँसते जाकर उस गिलास को धोकर और एक गिलास जल ला दिया।''

('भयंकरा कालकामिनी'— दिखला रही हैं सब जादू)

ठाकुर फिर समाधिस्थ। कुछ क्षण पश्चात् प्रकृतिस्थ होकर मणि के साथ फिर बातें कर रहे हैं।

''और फिर अवस्था बदलती है!— प्रसाद खाना छूट गया!— सत्य, मिथ्या एक हो रहा है!— फिर और क्या देखा था, जानते हो? ईश्वरीय रूप! भगवती-मूर्त्ति— पेट के भीतर बच्चा— उसको बाहर निकालती है और

निगल जाती है। भीतर जितना जाता है, उतना ही शून्य हो जाता है! मुझे दिखा रही है कि सब शून्य है!

''जैसे कहती हैं, लगा! लगा! लगा जादू! लगा!''

मणि ठाकुर की बात पर विचार कर रहे हैं— जादूगर (बाजीगर) ही सत्य है और सब मिथ्या।

(सिद्धाई अच्छी नहीं— नीचे घर की सिद्धाई)

श्रीरामकृष्ण— अच्छा, तब पूर्ण को आकर्षित करने का प्रयास किया, वैसा हुआ क्यों नहीं? इसी से थोड़ा-सा विश्वास कम हो रहा है।

मणि— वह सब तो सिद्धाई जो है!

श्रीरामकृष्ण— घोर सिद्धाई!

मणि— जब अधरसेन के घर से गाड़ी में आपके साथ हम दक्षिणेश्वर आ रहे थे— बोतल टूट गई थी। किसी ने कहा कि इससे क्या हानि होगी, आप एक बार देखिए। आपने कहा, मुझे क्या जरूरत पड़ी देखने की— वह सब तो सिद्धाई है!

श्रीरामकृष्ण— वैसे ही हरि-लूट के लड़के— रोग चंगा करते हैं— यह सब सिद्धाई है। जिनका अति नीचा घर होता है, वे ही रोग चँगा करने के लिए ईश्वर को पुकारते हैं।

तृतीय परिच्छेद

(पूर्णज्ञान— देह और आत्मा अलग— श्रीमुख कथित चरित्तामृत)

सन्ध्या हो गई। श्रीरामकृष्ण शय्या पर बैठे हुए माँ का चिन्तन और नाम कर रहे हैं। कई भक्त जन उनके निकट निःशब्द बैठे हैं।

थोड़ी देर में डॉक्टर सरकार आ उपस्थित हुए। कमरे में लाटु, शशी, शरत, छोटे नरेन, पल्टु, भूपति, गिरीश प्रभृति बहुत-से भक्त आए हुए हैं।

गिरीश के संग में थियेटर के श्रीयुक्त रामतारण आए हैं— गाना गाएँगे।

डॉक्टर *(श्रीरामकृष्ण के प्रति)*— कल रात तीन के समय मैंने तुम्हारे लिए बहुत चिन्ता की थी। वर्षा हो गई, सोचता रहा द्वार-श्वार खोल रखे हैं या क्या किया है— कौन जाने!

श्रीरामकृष्ण डॉक्टर का स्नेह देखकर प्रसन्न हुए हैं और कह रहे हैं, ''क्या कह रहे हो जी!

''जब तक शरीर है तब तक प्रयत्न करना चाहिए।

''किन्तु देख रहा हूँ कि यह तो अलग है। कामिनी-काञ्चन के ऊपर से प्यार यदि एकदम चला जाए, तब फिर ठीक समझ में आ जाता है कि देह अलग और आत्मा अलग है। नारियल का समस्त जल सूख जाने पर खोल अलग और गिरी अलग हो जाते हैं। तब नारियल का पता लग जाता है— टपर-टपर (खड़-खड़) करने लगता है। जैसे म्यान और तलवार— म्यान अलग, तलवार अलग।

''इसीलिए तो देह के रोग के लिए उनसे अधिक नहीं कह सकता।''

गिरीश— पण्डित शशधर ने इनसे कहा था, 'आप समाधि-अवस्था में देह के ऊपर मन को लाएँ— तो फिर रोग हट जाएगा।' इन्होंने भाव में देखा था कि यह शरीर तो जैसे धक्-धक् कर रहा है। (जैसे हाड़ मांस का पिण्ड है।)

(पूर्वकथा— म्यूजियम-दर्शन और पीड़ा के समय प्रार्थना)

श्रीरामकृष्ण— बहुत दिन हो गए— तब मैं खूब बीमार था। काली-मन्दिर में बैठा था। माँ से प्रार्थना करने की इच्छा हुई। किन्तु एकदम अपने आप नहीं बोल पाया। बोला था— माँ, हृदे ने तुम से बीमारी की बात कहने के लिए कहा है। और अधिक नहीं बोल पाया— कहते-कहते झट दप् से याद आ गया सोसाइटी (Asiatic Society's Museum)— वहाँ का तार से बँधा हुआ मनुष्य, हाड़ों का देह-कंकाल (skeleton)। तुरन्त कहा,— 'माँ तुम्हारा नाम-गुण करता फिरूँगा— इस देह को थोड़ा तार द्वारा जोड़ दो, यहाँ

की भाँति! सिद्धि तो माँगनी ही नहीं है जो!'

''प्रथम-प्रथम हृदे ने कह दिया था, हृदे के अण्डर (under) था कि ना— 'माँ के पास से कुछ क्षमता (शक्ति) माँगो।' काली-मन्दिर में क्षमता माँगने जाकर देखा— तीस/पैंतीस वर्ष की राण्ड (वेश्या)— धोती खोलकर भड़्-भड़् करके हग रही है। तब हृदे के ऊपर क्रोध हुआ— क्यों उसने सिद्धि माँगने के लिए सिखाया था?''

(श्रीयुक्त रामतारण का गान— ठाकुर की भावावस्था)

अब रामतारण का गाना हो रहा है—

आमार एइ साधेर बीणे, यत्ने गाँथा तारेर हार।
जे यत्ने जाने, बाजाय बीणे, उठे सुधा अनिवार॥

ताने माने बाँधले डुरी, शत धारे बय माधुरी।
बाजे ना आल्गा तारे, टाने छिँड़े कोमल तार॥

[भावार्थ— मेरी यह बड़ी ही साध की वीणा है, जिसके तार बड़े यत्न से गूँथे गए हैं। जो यत्न से इसे रखना जानता है, वही वीणा बजा पाता है और फिर इससे निरन्तर सुधा निकलती रहती है। तान और अर्थ की डोरी बाँध लेने से शत धाराओं में माधुरी बहने लगती है। तारों के ढीले रहने पर यह नहीं बजती और फिर अधिक खींचने से इसके कोमल तार टूट जाते हैं।]

डॉक्टर *(गिरीश के प्रति)*— ये सब गाने इत्यादि क्या ऑरिजनल (नूतन) हैं?

गिरीश— नहीं। Edwin Arnold का thought (एडविन ऑरनेल्ड का भाव) लेकर गाना है।

रामतारण पहले बुद्धचरित्त से गाना गा रहे हैं—

जुड़ाइते चाइ कोथाय जुड़ाइ?
कोथा होते आसि कोथा भेसे जाइ?
फिरे फिरे आसि कत काँदि हासि,
कोथा जाइ सदा भावि गो ताइ!

करो हे चेतन, के आछो चेतन,
कतो दिने आर भाँगिबे स्वपन?

के आछो चेतन घुमाओ ना आर,
दारुण ए घोर निबिड़ आँधार।
करो तमो नाश होओ हे प्रकाश,
तोमा बिने आर नाहिक उपाय
तव पदे ताइ शरण चाइ॥

[भावार्थ— शान्ति पाना चाहता हूँ, कहाँ पर पाऊँ? कहाँ से मैं आया हूँ, कहाँ बह रहा हूँ? बार-बार आता हूँ, कितना रोता-हँसता हूँ। 'कहाँ जाऊँगा' सदा सोचता हूँ। हे भाई! कोई चेतन हो तो मुझे चेतन करो। फिर कितने दिन में यह स्वप्न भंग होगा? कहाँ हो हे चेतन! अब और निद्रा मत करो, यह घना अन्धकार बड़ा दारुण है, इस तम का नाश करो, तुम प्रकाश बन जाओ, तुम्हारे बिना और कोई उपाय नहीं है, इसीलिए तेरे चरणों में शरण चाहता हूँ।]

यह गाना सुनते-सुनते ठाकुर भावाविष्ट हो गए हैं।

गान— कों कों कों बहरे झड़।
[सन् सन् सन् चल दी आँधी।]

(सूर्य के, अन्तर्यामी देवता के दर्शन)

इस गाने के समाप्त होने पर ठाकुर कह रहे हैं,—

''यह क्या किया!— पायस के पश्चात् नीम का झोल!—

''ज्योंहि गाया— 'करो तमोनाश' त्योंहि देखा सूर्य!— उदय होते मात्र ही चारों ओर का अन्धकार नष्ट हो गया! और उसी सूर्य के पैरों में सब शरणागत होकर पड़ रहे हैं।''

रामतारण फिर और गा रहे हैं—

(1) दीनतारिणी, दुरितहारिणी, सत्त्वरजस्तम त्रिगुणधारिणी,
सृजन-पालन-निधनकारिणी, सगुणा निर्गुणा सर्वस्वरूपिणी।
त्वंहि काली तारा परमाप्रकृति, त्वंहि मीन कूर्म वराह प्रभृति,
त्वंहि स्थल जल अनल अनिल, त्वंहि व्योम व्योमकेश-प्रसविनी।
सांख्य पातञ्जल मीमांसक न्याय, तन्न तन्न ज्ञाने ध्याने सदा ध्याय,

वैशेषिक वेदान्त भ्रमे होय भ्रान्त, तथापि अद्यापि जानिते पारेनि॥

निरुपाधि आदिअन्तरहित, करिते साधक जनार हित,
गणेशादि पञ्चरूपे कालवंच भवभयहरा त्रिकालवर्तिनी।
साकार साधके तुमि जे साकार, निराकार उपासके निराकार,
केहो केहो कय ब्रह्म ज्योतिर्मय, सेइ तुमि नगतनया जननी।
जे अवधि जार अभिसन्धि होय, से अवधि से परब्रह्म कय,
तत्परे तुरीय अनिर्वचनीय, सकलि मा तारा त्रिलोकव्यापिनी।

[भावार्थ— माँ, तुम दीनतारिणी, दुरित हारिणी (पाप नाशिनी), सत्त्वरजतम त्रिगुणधारिणी हो। सृजन-पालन-विनाशकारिणी, तुम ही सगुणा, निर्गुणा, सर्वस्वरूपिणी हो। तुम ही काली, तारा, परमाप्रकृति हो; तुम ही मीन, कूर्म, वराह आदि हो; तुम ही स्थल, जल, अग्नि, वायु हो; तुम ही व्योम (आकाश)हो, हे व्योमकेश-प्रसविनी!

सांख्य, पातञ्जल, मीमांसक, न्याय पुंखानुपुंख (सूक्ष्म) ध्यान में सदा तुम्हें ध्याते हैं; वैशेषिक, वेदान्त भ्रम में भ्रान्त हो गए हैं, तथापि आज तक भी आपको जान नहीं सके हैं। साधक आप निरुपाधि, आदि-अन्त रहित को जानने का प्रयत्न कर रहे हैं। गणेश आदि पाँच रूपों (ब्रह्मा, विष्णु, महेश, भवानी, गणेश) में आप हैं। आप कालवंच (काल को ठगने वाली), भवभयहरा, त्रिकालवर्तिनी (तीनों कालों में रहने वाली) हैं। साकार साधक के लिए आप साकार हैं, निराकार उपासक के पास निराकार। कोई-कोई कहता है जो ज्योतिर्मय ब्रह्म है, वही तुम हो हे नगतनया माँ। जिस समय जिसकी अभिसन्धि हो जाती है, उस समय वह परब्रह्म कहलाता है। फिर है उसके पश्चात् तुरीय जो कहा नहीं जा सकता— त्रिलोक में व्याप्त सब कुछ ही माँ तारा।]

(2) धरम करम सकलि गेलो, श्यामापूजा बुझि होलो ना!
मन निबारिते नारि कोन मते, छि-छि, कि ज्वाला बोलो ना॥

[धर्म कर्म सब गए, श्यामापूजा शायद हुई नहीं है। मन किसी तरह भी नहीं रुक रहा है और यह कैसी ज्वाला है? छि: छि:, कहो मत।]

यह गाना सुनकर ठाकुर फिर भावाविष्ट हो गए।

रांगा जवा के दिले तोर पाये मुठो मुठो।

[हे माँ, यह लाल जवा किसने तेरे चरणों में ढेरों-ढेरों दिया है?]

चतुर्थ परिच्छेद

(छोटे नरेन प्रभृति की भावावस्था— संन्यासी और गृहस्थ के कर्त्तव्य)

गान समाप्त हो गया। अनेक भक्त भावाविष्ट हैं। निस्तब्ध हुए बैठे हैं। छोटे नरेन ध्यानमग्न हैं। काष्ठवत् बैठे हुए हैं।

श्रीरामकृष्ण *(छोटे नरेन को दिखलाकर, डॉक्टर से)*— यह अति शुद्ध! विषयबुद्धि का लेश भी इस पर नहीं लगा।

डॉक्टर नरेन को देखते हैं। अभी तक भी ध्यान भंग नहीं हुआ।

मनोमोहन *(डॉक्टर के प्रति, सहास्य)*— आपके बेटे की बात के लिए ये कहते हैं,— 'लड़के को यदि पा लूँ, तो बाप की चाह नहीं।'

डॉक्टर— यही तो है।— तभी तो कहता हूँ, तुम लोग बालक को लेकर ही भूल जाते हो! (अर्थात् ईश्वर को छोड़कर अवतार अथवा भक्त को लेकर भूल जाते हो)।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— बाप को नहीं चाहता— यह नहीं कहता।

डॉक्टर— वह समझता हूँ। इस प्रकार दो-एक बातें न कहें तो होगा कैसे?

श्रीरामकृष्ण— तुम्हारा लड़का तो अच्छा सरल है। शम्भु ने लाल मुख करके कहा था— 'सरल भाव से पुकारने पर वे सुनेंगे ही सुनेंगे।' इन छोकरों को इतना प्यार क्यों करता हूँ, जानते हो? ये लोग असली दूध हैं, एक उबाल देने से हो जाता है— ठाकुर-सेवा में चलता है।

"जलीय दूध को बहुत से उबाल देने पड़ते हैं— बहुत लकड़ी फूँकनी पड़ती है।

"छोकरे जैसे नूतन हाँडी हैं— पात्र अच्छा है— दूध निश्चिन्त होकर रखा जाता है। ज्ञानोपदेश देने से उन्हें शीघ्र चैतन्य हो जाता है। विषयी लोगों को शीघ्र नहीं होता। दही जमी हाँडी में दूध रखने से भय रहता है, कहीं पीछे नष्ट न हो जाए!

"तुम्हारे लड़के के भीतर विषयबुद्धि— कामिनी-काञ्चन— नहीं घुसा।"

डॉक्टर— बाप का जो खा रहे हैं, तभी!—

''अपने हाथ से करके खाने पर देखता, विषयबुद्धि प्रवेश की है या नहीं।''

(संन्यासी और नारी-त्याग— संन्यासी और काञ्चन-त्याग)

श्रीरामकृष्ण—यह तो है, यह तो है। फिर भी क्या है, जानते हो? वे विषयबुद्धि से बहुत दूर हैं, वैसा न हो तो वे हाथ के भीतर हैं। *(सरकार और डॉक्टर दोकड़ी के प्रति)* कामिनी-काञ्चन-त्याग आप लोगों के पक्ष में नहीं है। आप लोग मन से त्याग करेंगे। गोस्वामियों से वही कहा था— तुम लोग त्याग की बात क्यों कहते हो?— त्याग करने पर तुम लोगों का नहीं चलेगा— श्यामसुन्दर की जो सेवा है।

''संन्यासी के पक्ष में त्याग। वे लोग स्त्री का चित्रपट तक भी नहीं देखेंगे। स्त्रियाँ उनके लिए विषवत् हैं। कम से कम दस हाथ अन्तर पर, बिल्कुल सम्भव न हो तो एक हाथ अन्तर पर रहेगा ही। हजार भक्त हो, स्त्री होने से उनके संग अधिक बातें नहीं करेगा।

''यहाँ तक कि संन्यासी को ऐसे स्थान पर रहना उचित है कि जहाँ से स्त्री का मुख न दिखाई दे,— या बहुत काल बाद दिखाई पड़े।

''रुपया भी संन्यासी के लिए विष है। रुपया पास रहते ही भावना, अहंकार, देह-सुख की चेष्टा, क्रोध इत्यादि आ जाते हैं। रजोगुण बढ़ जाता है। और फिर रजोगुण रहने से ही तमोगुण। जभी संन्यासी काञ्चन स्पर्श न करे। कामिनी-काञ्चन ईश्वर को भुला देते हैं।''

(डॉक्टर को उपदेश— रुपये का ठीक व्यवहार— गृहस्थ के लिए स्वदारा)

''तुम लोग जानते हो कि रुपये से दाल-भात होता है, पहनने को कपड़ा— रहने को एक स्थान होता है, भगवान-सेवा, साधु-भक्त की सेवा होती है।

''जमा करने की चेष्टा मिथ्या है। बड़े कष्ट से मधुमक्खी शहद का

चाक (छत्ता) तैयार करती है— और एक कोई आकर तोड़कर ले जाता है।"

डॉक्टर— जमा करते हैं, किसके लिए?— यही तो, एक बुरे लड़के के लिए।

श्रीरामकृष्ण— बुरा लड़का!— स्त्री शायद ठीक नहीं— द्विचारिणी है! तुम्हारी ही घड़ी, तुम्हारी ही चेन उसको दे देगा!

"तुम्हारे लिए स्त्री का एकदम त्याग नहीं। अपनी स्त्री में गमन-दोष नहीं। तो भी लड़के-बच्चे हो जाने पर, भाई-बहन की भाँति रहना चाहिए।

"कामिनी-काञ्चन में आसक्ति रहने से ही विद्या का अहंकार, रुपये का अहंकार, उच्चपद का अहंकार— ये सब ही हो जाते हैं।"

पञ्चम परिच्छेद

(डॉक्टर सरकार को उपदेश— अहंकार अच्छा नहीं विद्या का 'मैं' अच्छा— इससे लोकशिक्षा (Lecture) होती है)

श्रीरामकृष्ण— अहंकार बिना गए ज्ञानलाभ नहीं किया जाता। ऊँचे टीले पर जल नहीं जमा होता (नहीं ठहरता)। नीची जमीन पर चारों ओर से जल हुड़-हुड़ करके (तेज़ी से) से आ जाता है।

डॉक्टर— किन्तु नीची जमीन पर जो चारों ओर से जल आता है, उसके भीतर अच्छा जल भी है, खराब जल भी है— गदला जल, टट्टी का जल इत्यादि सब ही है। पहाड़ के ऊपर भी नीची जमीन है। नैनीताल, मानसरोवर— जहाँ पर केवल आकाश का शुद्ध जल है।

श्रीरामकृष्ण— केवल आकाश का जल— वाह, सुन्दर!

डॉक्टर— और ऊँची जगह का जल चारों ओर दिया जा सकेगा।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— किसी को सिद्धमन्त्र मिल गया था। उसने पहाड़ के ऊपर खड़े होकर चीत्कार करके बता दिया— तुम लोग इस मन्त्र का जप करके ईश्वर-लाभ करोगे।

डॉक्टर— हाँ।

श्रीरामकृष्ण— किन्तु एक विशेष बात है। जब ईश्वर के लिए प्राण व्याकुल होता है; अच्छा जल, टट्टी का जल— यह सब हिसाब नहीं रहता। उनके जानने के लिए कभी भले व्यक्ति के पास भी जाता है, कभी कच्चे व्यक्तियों के पास भी जाता है। किन्तु उनकी कृपा होने पर मैला जल भी कोई हानि नहीं करता। जब वे ज्ञान देते हैं, कौन-सा भला, कौन-सा मन्दा, सब बता देते हैं।

"पहाड़ के ऊपर नीची जमीन हो सकती है, किन्तु बदजात् मैं-रूप पहाड़ के ऊपर नहीं रहती। विद्या का 'मैं' यदि भक्त का 'मैं' बन जाता है,— तब ही आकाश का शुद्ध जल आकर गिरता है।

"ऊँची जगह का जल चारों ओर से दिया तो चाहे जा सकता है। वह विद्या के 'मैं'-रूप पहाड़ से हो सकता है।

"उनका आदेश बिना हुए लोकशिक्षा नहीं होती। शंकराचार्य ने ज्ञान के पश्चात् विद्या का 'मैं' रखा हुआ था— लोकशिक्षा जन्य। उनको प्राप्त बिना किए ही लैक्चर! उससे लोगों का क्या उपकार होगा?"

(पूर्वकथा— सामाध्यायी का लैक्चर— नन्दन बागान-समाजदर्शन)

"नन्दन बागान के ब्राह्मसमाज में गया था। उन्होंने उपासना के बाद वेदी पर बैठकर लैक्चर दिया। लिखकर लाया था। पढ़ने के समय फिर चारों ओर देखता रहा।— ध्यान करता है, तो भी एक-एक बार देखता है!

"जिसने ईश्वर-दर्शन नहीं किया है, उसका उपदेश ठीक-ठीक नहीं होता। एक बात यदि ठीक हुई, तो और एक गोलमाल हो जाती है।

"सामाध्यायी ने लैक्चर दिया। कहा— ईश्वर वाक्य-मन के अतीत हैं— उनमें कोई रस नहीं— तुम लोग प्रेम-भक्ति रूप रस द्वारा उनका भजन करो। देखो! जो रस स्वरूप, आनन्द स्वरूप हैं, उन्हें ऐसा कहता है। इस लैक्चर से क्या होगा? इससे क्या लोकशिक्षा होती है?

"किसी ने कहा था— मेरे मामा के घर एक गौशाला भर घोड़े हैं। गौशाला में फिर घोड़े! *(सबका हास्य)*। उससे समझना होगा घोड़े नहीं हैं।"

डॉक्टर *(सहास्य)*— गायें भी नहीं हैं। *(सबका हास्य)*।

भक्तों में से जो-जो भावाविष्ट हुए थे, सब ही प्रकृतिस्थ हो गए हैं। भक्तों को देखकर डॉक्टर आनन्द कर रहे हैं।

मास्टर से पूछ रहे हैं, 'ये कौन', 'ये कौन'? पल्टु, छोटे नरेन, भूपति, शरत्, शशी प्रभृति छोकरे भक्तों में से मास्टर, एक-एक को दिखाकर, डॉक्टर को परिचय दे रहे हैं।

श्रीयुक्त शशी* के सम्बन्ध में मास्टर कह रहे हैं— "ये बी०ए० की परीक्षा देंगे।"

डॉक्टर कुछ अन्यमनस्क हो गए थे।

श्रीरामकृष्ण *(डॉक्टर के प्रति)*— देखो जी, ये क्या कह रहे हैं!

डॉक्टर ने शशी का परिचय सुना।

श्रीरामकृष्ण *(मास्टर को दिखलाकर, डॉक्टर के प्रति)*— ये सब स्कूलों के छात्रों, लड़कों को उपदेश देते हैं।

डॉक्टर— वह सुना है।

श्रीरामकृष्ण— कैसा आश्चर्य है! मैं मूर्ख हूँ— किन्तु पढ़े-लिखे लोग यहाँ पर आते हैं, यह कैसा आश्चर्य! इतना तो कहना होगा कि ईश्वर का खेल है!

आज है कोजागर पूर्णिमा। रात्रि प्रायः नौ होंगे। डॉक्टर छह बजे से बैठे हुए हैं और यह सब व्यापार देख रहे हैं।

गिरीश *(डॉक्टर के प्रति)*— अच्छा महाशय, ऐसा क्या आपका होता है?— यहाँ पर नहीं आऊँगा, नहीं आऊँगा कह रहा हूँ— फिर भी कौन जैसे खींच कर ले आता है।— मेरा तो ऐसा हुआ है, जभी कहता हूँ।

डॉक्टर— ऐसा तो बोध नहीं होता। किन्तु हार्ट की (हृदय की) बात हार्ट ही जानता है। *(श्रीरामकृष्ण के प्रति)* और यह सब बताने का भी तो कुछ लाभ नहीं है।

---

* शशी ने 1884 में श्रीरामकृष्ण के प्रथम दर्शन किए।

अष्टविंश खण्ड

श्यामपुकुर-वाटी में
नरेन्द्र, डॉक्टर सरकार प्रभृति भक्तों के संग

प्रथम परिच्छेद

[डॉ० सरकार और सर्वधर्म परीक्षा (Comparative religion)]

ठाकुर श्रीरामकृष्ण नरेन्द्र, महिमाचरण, मास्टर, डॉक्टर सरकार प्रभृति भक्तों के संग में श्यामपुकुर के घर में दोतलवाले कमरे में बैठे हुए हैं। समय प्राय: एक का है— 24 अक्तूबर, 1885 ईसवी; 9वाँ कार्तिक।

श्रीरामकृष्ण— तुम्हारी यह होम्योपैथिक चिकित्सा सुन्दर है!

डॉक्टर— इसमें रोगी की अवस्था पुस्तक के साथ मिलानी होती है। जैसे अंग्रेज़ी बाजा— देखकर पढ़ना और गाना।

"गिरीश घोष कहाँ है?— रहने दो, रहने दो, कल जागा है।"

श्रीरामकृष्ण— अच्छा, भावावस्था में भँग जैसा नशा होता है, यह क्या है?

डॉक्टर *(मास्टर से)*— nervous centre (स्नायु केन्द्र) में action (क्रिया) बन्द हो जाती है, इसीलिए चेतनाशून्य— तब इधर-उधर पाँव डोलता है, जितनी energies (शक्तियाँ) हैं, सब brain (मस्तिष्क) की ओर जाती हैं। इसी nervous system (स्नायविक क्रिया) के साथ life (जीवन) है। ग्रीवा (कन्धे) के पास है— medulla oblongata— मडुला आब्बालङ्गेटा; उसकी क्षति होने से life extinct (जीवन समाप्त) हो सकता है।

श्रीयुक्त महिमाचरण चक्रवर्ती सुषुम्ना नाड़ी के भीतर से कुल-कुण्डलिनी शक्ति की बात बता रहे हैं—

''स्पाइनल कार्ड (मेरु दण्ड) के भीतर सुषुम्ना नाड़ी सूक्ष्मभाव में है— कोई देख नहीं पाता। महादेव की वाणी है।''

डॉक्टर— महादेव ने man in the maturity को examine किया (महादेव ने मानव की पूर्णावस्था की परीक्षा की)। Europeans ने embroy (गर्भावस्था) से maturity (पूर्णावस्था) तक की समस्त stages (अवस्थाएँ) जाँची हैं। Comparative history (तुलनात्मक इतिहास) सब जान लेना अच्छा है। सन्थालों का इतिहास पढ़ने से पता लगा है कि काली एक सन्थाली स्त्री (भीलनी) थी— खूब लड़ी थी। *(सबका हास्य)*।

''तुम लोग हँसो मत। और फिर comparative anatomy (तुलनात्मक जीव-शरीर-विद्या) से कितना उपकार हुआ है, सुनो। पहले pancreatic juice और bile (पाचन शक्ति पैदा करने वाले रस और पित्त) का भेद समझ में नहीं आ रहा था। फिर Claude Bernard (क्लॉड बरनार्ड) ने खरगोश के stomach, liver (आमाशय, यकृत) आदि examine (परीक्षण) करके दिखाया कि bile (पित्त) का action (प्रतिक्रिया) और उस रस की प्रतिक्रिया अलग है।

''उससे सिद्ध हुआ कि lower animal (छोटे पशु, प्राणियों) को हमें देखना चाहिए— केवल मनुष्य को देखने से ही नहीं चलेगा।

''इसी प्रकार comparative religion (तुलनात्मक धर्म) से भी विशेष उपकार होता है।

''यही जो ये (परमहंसदेव जी) कहते हैं, वह इतना अन्तर (हृदय) में क्यों लगता है? इनके सब धर्म देखे हुए हैं— हिन्दु, मुसलमान, ईसाई, शाक्त, वैष्णव— इन सबको इन्होंने निज करके देखा हुआ है। मधुकर के नाना फूलों पर बैठकर मधु संचय कर लेने ही से तब एक सुन्दर छत्ता बनता है।

मास्टर *(डॉक्टर के प्रति)*— इन्होंने (महिमा ने) खूब सॉइन्स पढ़ी हुई है।

डॉक्टर *(सहास्य)*— क्या Maxmuller's Science of Religion (क्या, मैक्समूलर की सॉइन्स ऑफ रिलिजियन) ?

महिमा *(श्रीरामकृष्ण के प्रति)*— आप के रोग में, डॉक्टर जन और क्या करेंगे ? जब सुना कि आपको असुख हुआ है तब सोचने लगा कि डॉक्टरों का अहंकार बढ़ा रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण— ये खूब अच्छे डॉक्टर हैं। और खूब विद्या है।

महिमाचरण— जी हाँ, ये जहाज हैं और हम सब डिंगी (मोटे पेड़ का तना खोदकर बनाई गई छोटी नाव) हैं।

डॉक्टर विनीत होकर हाथ जोड़ रहे हैं।

महिमा— किन्तु यहाँ पर (ठाकुर श्रीरामकृष्ण के पास) सब ही समान हैं।

ठाकुर नरेन्द्र से गाना गाने के लिए कह रहे हैं।

नरेन्द्र का गान—

(1) तोमारेइ करियाछि जीवनेर ध्रुवतारा।*

[तुम्हें ही जीवन का ध्रुवतारा बना लिया है।]

(2) अहंकारे मत्त सदा, अपार बासना।

[सदा अहंकार में मत्त रहता हूँ और मेरी वासनाएँ अनगिनत हैं।]

(3) चमत्कार अपार, जगत् रचना तोमार!
शोभार आगार विश्व संसार!*

[हे प्रभु, तुम्हारी जगत की रचना अपार और चमत्कारपूर्ण है। यह संसार शोभा का घर है।]

(4) महा सिंहासने बोसि सुनिछो हे विश्वपतिः।
तोमारि रचित छन्द महान् विश्वेर गीत।
मर्त्येर मृत्तिका होये, क्षुद्र एइ कण्ठ लये,
आमिओ दुयारे तव, होयेछि हे उपनीत।

---

* परिशिष्ट–2 में पूरा गाना है।

किछु नाहि चाहि देव, केवल दर्शन मागि,
तोमार शोनार गीति एसेछि ताहारि लागि।
गाय जथा रवि शशी, सेइ सभा माझे बसि,
एकान्त गाइते चाहे एइ भकतेर चित।

[भावार्थ— महान सिंहासन पर बैठकर, हे विश्वपति, आप अपने ही रचित महान छन्द में विश्व का गीत सुन रहे हो। मर्त्य की मृतिका बनकर, मैं भी क्षुद्र कण्ठ लेकर तुम्हारे द्वारे पर उपनीत होकर (उपनयन संस्कार होकर) आ पहुँचा हूँ। हे देव! मैं कुछ नहीं चाहता, केवल दर्शन माँगता हूँ। आपकी सुनहली गीति भी उसी के लिए है। जैसे रवि, शशी गाते हैं, उसी सभा में बैठकर एकान्त में इस भक्त का चित्त गाना चाहता है।]

(5) ओ हे राज राजेश्वर, देखा दाओ!
करुणा भिखारी आमि करुणा कटाक्षे चाओ।[1]

[हे राज राजेश्वर! दर्शन दो। मैं आपकी करुणा का भिक्षुक हूँ। आप मेरी ओर करुणा-कटाक्ष करो।]

(6) हरि रस मदिरा पिये मम मानस मातो रे!
लुटाय अवनीतल हरि हरि बोलि काँदो रे!![2]

[हरिरस-मदिरा पीकर ऐ मेरे मन! मस्त हो जाओ। पृथ्वी पर लोटते हुए हरि-हरि बोल कर रोओ।]

श्रीरामकृष्ण— और 'जो कुछ है सो तू ही'।[3]

डॉक्टर— आहा!

गान समाप्त हो गया। डॉक्टर मुग्धप्राय हो गए हैं।

कुछ क्षण पश्चात् डॉक्टर अति भक्तिभाव से हाथ जोड़कर ठाकुर से कह रहे हैं—

"तो फिर आज चलूँ— कल फिर आऊँगा।"

श्रीरामकृष्ण— थोड़ा ठहरो ना! गिरीश घोष को खबर दी है। *(महिमा को*

1 पृष्ठ 24 पर पूरा गाना है।
2 पृष्ठ 209 पर पूरा गाना है।
3 परिशिष्ट-2 में पूरा गाना है।

दिखलाकर) ये विद्वान हैं, हरि-नाम में नाचते हैं, अहंकार नहीं है। कोन्नगर में चले गए थे— हम चले गए थे ना इस कारण; और फिर स्वाधीन, धनवान, किसी की चाकरी नहीं करनी पड़ती। *(नरेन्द्र को दिखलाकर)* यह कैसा है?

डॉक्टर— खूब भला है!

श्रीरामकृष्ण— और ये—

डॉक्टर— आहा!

महिमाचरण— हिन्दुओं का दर्शन पढ़े बिना दर्शन ही पढ़ना नहीं होता। सांख्य के चतुर्विंशति तत्त्व यूरोप नहीं जानता— समझ भी नहीं सकता है।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— तीन पथ तुम कौन से कहते हो?

महिमा— सत्पथ— ज्ञान का पथ। चित्पथ है योग का। कर्मयोग— इसमें चार आश्रमों की क्रिया है। क्या-क्या कर्त्तव्य हैं, ये इसके भीतर आते हैं। आनन्द पथ— भक्ति-प्रेम का पथ।— आप में तीनों पथों का व्यापार है— आप तीनों पथों की खबर बतला देते हैं। *(ठाकुर हँसते हैं)*।

"मैं और क्या कहूँगा? जनक वक्ता, शुकदेव श्रोता!"

डॉक्टर ने विदा ग्रहण की।

(सन्ध्या के बाद समाधिस्थ— नित्यगोपाल और नरेन्द्र— 'जप से सिद्धि')

सन्ध्या होने पर चाँद उदय हुआ। आज कोजागर पूर्णिमा का दूसरा दिन, शनिवार, 9वाँ कार्त्तिक। ठाकुर समाधिस्थ! खड़े हुए हैं। नित्यगोपाल भी उनके पास भक्ति-भाव से खड़े हुए हैं।

ठाकुर बैठ गए हैं— नित्यगोपाल पदसेवा कर रहे हैं। देवेन्द्र, कालीपद प्रभृति अनेक भक्त पास बैठे हैं।

श्रीरामकृष्ण *(देवेन्द्र आदि के प्रति)*— ऐसा मन में उठ रहा है, नित्यगोपाल की ये अवस्थाएँ जब चली जाएँगी— उसका सम्पूर्ण मन सिमटकर मुझ पर ही आ जाएगा— जो इसके भीतर हैं, उन पर।

"नरेन्द्र को देखते हो ना?— सम्पूर्ण मन उसका भी मेरे ऊपर ही आ रहा है।"

अनेक भक्त विदा ले रहे हैं। ठाकुर खड़े हैं। एक भक्त को जप की बात कह रहे हैं।

"जप करना अर्थात् निर्जन में चुपचाप उनका नाम करना। एक मन से नाम करते-करते— जप करते-करते— उनका रूप-दर्शन हो जाता है— उनका साक्षात्कार होता है। शृंखला (जंजीर) में बँधी हुई शहतीरी गंगा के गर्भ में डूबी हुई है— शृंखला का एक सिरा तीर पर बँधा हुआ है। शृंखला की एक-एक चेन पकड़े-पकड़े क्रमशः डुबकी लगाने पर शृंखला पकड़-पकड़ कर जाते-जाते उस शहतीर को स्पर्श कर लिया जाता है। ठीक इसी प्रकार जप करते-करते मग्न हो जाने पर क्रम से भगवान का साक्षात्कार होता है।"

कालीपद *(सहास्य, भक्तों के प्रति)*— हमारे ये ठाकुर खूब हैं!— जप, ध्यान, तपस्या नहीं करनी पड़ती!

इस समय ठाकुर हठात् कह रहे हैं—

"यह कैसे कहते हो?"*

ठाकुर के गले में दर्द हो रहा है। देवेन्द्र कह रहे हैं— "इस बात से फिर नहीं भूलता (धोखे में नहीं आता)।" देवेन्द्र के मन का यही भाव है कि ठाकुर केवल भक्तों को भुलाने के लिए रोग दिखला रहे हैं।

भक्तों ने विदा ली। रात को कई छोकरे भक्त पारी करके रहेंगे। आज मास्टर भी रात को रहेंगे।

---

* अर्थात् ठाकुर यह सब खूब करते हैं।

ऊनत्रिंश खण्ड

श्यामपुकुर का घर—
नरेन्द्र, मणि प्रभृति भक्तों के संग में

प्रथम परिच्छेद

(असुख क्यों? नरेन्द्र के प्रति संन्यास का उपदेश)

ठाकुर श्यामपुकुर के घर में नरेन्द्रादि भक्तों के संग में बैठे हुए हैं। समय दस। आज 27 अक्तूबर, 1885 ईसवी, मंगलवार; आश्विन कृष्णा चतुर्थी, 12वाँ कार्त्तिक।

26 अक्तूबर, 11वें कार्त्तिक की बातें और डॉक्टर सरकार के साथ विचार, श्री श्री कथामृत प्रथम भाग में प्रकाशित हुई हैं।

ठाकुर नरेन्द्र, मणि प्रभृति के साथ बातें कर रहे हैं।

नरेन्द्र— डॉक्टर कल क्या कर गया?

एक भक्त— सूत (धागे, डोरी) से मछली गूँथी थी; फट गई।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— बंड़शि से बँधी हुई है— मर कर तैर कर ऊपर आ जाएगी।

नरेन्द्र तनिक बाहर गए हैं, फिर आ जाएँगे। ठाकुर मणि के साथ पूर्ण के सम्बन्ध में बातें कर रहे हैं—

श्रीरामकृष्ण— तुम्हारे लिए कहता हूँ— ऐसे जीवों की नहीं सुनते— प्रकृतिभाव

में पुरुष को (ईश्वर को) आलिंगन, चुम्बन करने की इच्छा होती है।

मणि— नाना प्रकार का खेल— आपका रोग पर्यन्त भी खेल के बीच है। यह रोग हुआ है, इसी कारण तो यहाँ पर नए-नए भक्त आ रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— भूपति कहता है, रोग न होता तो केवल भाड़े पर मकान लेने पर लोग क्या कहते? अच्छा, डॉक्टर का क्या हुआ?

मणि— इधर दास्य मानता है— 'मैं दास, तुम प्रभु।' और फिर कहता है— मनुष्य की उपमा क्यों लाते हो! (मनुष्य को भगवान क्यों मानते हो?)

श्रीरामकृष्ण— देख लो! आज क्या फिर तुम उसके पास जाओगे?

मणि— खबर यदि देनी है, तो जाऊँगा।

श्रीरामकृष्ण— बंकिम कैसा लड़का है? यहाँ पर यदि न आ सके, तो तुम ही उसको सब बता देना।— चैतन्य होगा।

(पहले संसार की साजसज्जा, या ईश्वर? केशव और नरेन्द्र को इंगित)

नरेन्द्र आकर पास बैठ गए। नरेन्द्र पिता की परलोक-प्राप्ति होने से बड़े ही परेशान हो गए हैं। माँ और भाई हैं, उनका भरण-पोषण करना होगा। नरेन्द्र कानून की परीक्षा के लिए तैयारी कर रहे हैं। बीच में विद्यासागर के बौबाजार के स्कूल में कई मास पढ़ाया है। घर में एक व्यवस्था करके निश्चिन्त होंगे— यही चेष्टा कर रहे हैं।

ठाकुर को सब पता है— नरेन्द्र को एक दृष्टि से सस्नेह देख रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण *(मास्टर से)*— अच्छा, केशव से कहा था— यदृच्छालाभ (जो कुछ मिल जाए)। जो बड़े घर का लड़का है, उसको खाने के लिए चिन्ता नहीं होती— वह महीने-महीने मासिक वृत्ति पाता है। किन्तु नरेन्द्र का इतना ऊँचा घर है, फिर भी क्यों नहीं होता? भगवान में सम्पूर्ण मन समर्पण करने पर वे सब व्यवस्था कर देंगे।

मास्टर— जी होगा; अभी भी तो समय गया नहीं।

श्रीरामकृष्ण— किन्तु तीव्र वैराग्य हो जाने पर वह सब हिसाब नहीं रहता। घर का सब बन्दोबस्त कर दूँगा, उसके बाद साधना करूँगा— तीव्र वैराग्य

होने पर मन में ऐसा नहीं होता। *(सहास्य)*। गोसाईं ने लैक्चर दिया था। तो कहा, दस हजार रुपया होने पर उससे खाना-पीना इत्यादि हो सकता है— तब निश्चिन्त होकर ईश्वर को अच्छी तरह पुकारा जा सकता है।

''केशवसेन ने भी वैसा ही इंगित किया था। कहा था— 'महाशय, यदि कोई विषय इत्यादि ठीक-ठाक करके ईश्वर-चिन्तन करे— तो क्या ऐसा कर सकता है? उसका उसमें कुछ दोष तो नहीं हो सकता?'

''मैंने कहा— तीव्र वैराग्य होने पर संसार मृत्यु-कूप और अपने आत्मीय काल-सर्प जैसे बोध होते हैं। तब, 'रुपया जमा करूँगा, विषय ठीक-ठाक करूँगा,' ऐसा हिसाब नहीं आता। ईश्वर ही वस्तु है और सब अवस्तु— ईश्वर को छोड़कर सब विषय-चिन्ता है।

''एक औरत को भारी शोक हुआ था। पहले नथ को कपड़े के आँचल में बाँध लिया— तब फिर, 'अरे, मेरा क्या हो गया जी।' कहकर पछाड़ खाकर गिर गई किन्तु खूब सावधान रही, नथ न टूट जाए।''

सब हँस रहे हैं।

नरेन्द्र यह सब बातें सुनकर बाणविद्ध की न्यायीं करवट लेकर लेट गए। मास्टर उनके मन की अवस्था समझकर—

मास्टर *(नरेन्द्र के प्रति, सहास्य)*— लेट गए तुम!

श्रीरामकृष्ण *(मास्टर के प्रति, सहास्य)*— ''मैं तो अपने जेठ जी को लेकर रहती हूँ, उससे ही लज्जा में मरी जा रही हूँ, ये सब (अन्य औरतें) तो परपुरुष को लेकर पता नहीं कैसे रह रही हैं?

मास्टर स्वयं गृहस्थ में हैं, उनका लज्जित होना उचित है। अपना दोष कोई नहीं देखता— औरों का देखता है। ठाकुर यही बात कह रहे हैं। एक स्त्री जेठ के साथ खराब हुई थी। वह अपना दोष कम, अन्य खराब स्त्रियों का दोष अधिक सोचती है। कहती, 'जेठ तो अपना ही व्यक्ति है, उससे भी लज्जा से मरी जा रही हूँ।'

(मुक्त हस्त कौन ?
चाकरी और खुशामद के रुपये में अधिक माया)

नीचे कोई वैष्णव गाना गा रहा था। ठाकुर सुनकर अतिशय आनन्दित हुए। वैष्णव को कुछ पैसे देने के लिए कहा। एक भक्त कुछ देने गए। ठाकुर ने पूछा— क्या दिया? एक भक्त ने कहा— ''उन्होंने दो पैसे दिए हैं।''

ठाकुर— चाकरि करा टाका कि ना।— नौकरी करके कमाया गया कि ना! अनेक कष्ट का रुपया— खुशामदी से कमाया गया रुपया। मैंने मन में सोचा था, ''चार आने दिबे'' (चार आने तो देगा ही)!

(Electricity का विद्युत्यन्त्र और बागची-चरित्र— षड्भुज और रामचन्द्र का आलेख्य-दर्शन— पूर्वकथा— दक्षिणेश्वर का दीर्घकेश संन्यासी)

छोटे नरेन ने ठाकुर से कहा था— विद्युत्यन्त्र लाकर विद्युत् की प्रकृति दिखाऊँगा। आज लाकर दिखाया।

समय दो का है। ठाकुर भक्तों के संग में बैठे हुए हैं। अतुल एक मुंसिफ मित्र को लाए हैं। शिकदार मुहल्ले के प्रसिद्ध चित्रकार बागची आए हैं। उन्होंने कई चित्र ठाकुर को उपहार में दिए।

ठाकुर आनन्द के साथ चित्रपट देख रहे हैं। षड्भुजमूर्त्ति-दर्शन करके भक्तों से कह रहे हैं— ''देखो, कैसी बनी है!''

भक्तों को फिर और दिखाने के लिए 'अहल्या पाषाणी का चित्र' लाने के लिए कहा। चित्र में श्री रामचन्द्र को देखकर आनन्द कर रहे हैं।

श्रीयुक्त बागची के स्त्रियों की भाँति लम्बे केश हैं। ठाकुर बता रहे हैं, ''बहुत समय हुआ दक्षिणेश्वर में एक संन्यासी देखा था। नौ हाथ लम्बे केश थे। संन्यासी 'राधे-राधे' करता था। ढोंग नहीं था।''

कुछ क्षण पश्चात् नरेन्द्र गाना गा रहे हैं। ये गाने सब वैराग्यपूर्ण हैं। ठाकुर के मुख से तीव्र वैराग्य की बात और संन्यास का उपदेश सुनकर क्या नरेन्द्र को उद्दीपन हुआ है ?

नरेन्द्र के गान—

(1) जाबे कि हे दिन आमार विफले चलिये,

आछि नाथ दिवानिशि आशापथ निरखिये।*

[क्या हमारे ये दिन विफल ही चले जाएँगे? हे नाथ, मैं रातदिन आशापथ देख रहा हूँ।]

(2) अन्तरे जागिछो ओ मा अन्तरयामिनी।

[हे माँ, अन्तर्यामिनी होकर तुम 'अन्तर' में जाग रही हो।]

(3) कि सुख जीवने मम ओ हे नाथ दयामय हे,
यदि चरण-सरोजे पराण-मधुप, चिर मगन न रय हे!
अगणन धनराशि ताय किया फलोदय हे
यदि लभिये से धन, परम रतने यतन न करय हे।
सुकुमार कुमार मुख देखिते ना चाइ हे
यदि से चाँदबयाने तब प्रेममुख देखिते ना पाइ हे।
कि छार शशांकज्योतिः, देखि आँधारमय हे,
यदि से चाँद प्रकाशे तब प्रेम चाँद नाहि होय उदय हे।
सतीर पवित्र प्रेम ताओ मलिनतामय हे,
यदि से प्रेमकनके, तब प्रेममणि नाहि जड़ित रये हे।
तीक्ष्ण बिषा व्याली सम सतत दंशय हे,
यदि मोह परमादे नाथ तोमाते घटाय संशय हे।
कि आर बोलिबो नाथ, बोलिबो तोमाय हे,
तुमि आमार हृदयरतन मणि, आनन्दनिलय हे।

[भावार्थ—मेरे जीवन में हे दयामय नाथ, क्या सुख है यदि आपके चरण-कमलों में मेरा प्राण-मधुप चिरमग्न नहीं रहता? अगणित धनराशि का क्या लाभ है यदि उस परम रत्न को प्राप्त करने का यत्न मैं नहीं करता? सुकुमार कुमार का मुख मैं देखना भी नहीं चाहता यदि मैं तेरे प्रेममय चाँदमुख को नहीं देख पाता हूँ। चन्द्र की ज्योति व्यर्थ है, मैं उसे अन्धकारमय देखता हूँ, यदि उस चाँद के प्रकाश में तेरा प्रेम-चाँद उदित नहीं होता। सती का पवित्र प्रेम भी मलिनतामय है यदि उस प्रेम-स्रोत के सोने में तेरी प्रेम-मणि जड़ित नहीं रहती।

---

* पृष्ठ 204 पर पूरा गाना है।

हे नाथ, तीक्ष्ण विष–सर्पिणी के समान संशय लगातार डंक मारता है तथा मोह के प्रमाद में वह तुम्हारे प्यार को घटाता है। हे नाथ, और मैं अब क्या कहूँ तुम्हें! तुम्हीं तो मेरे हृदय–रत्न–मणि आनन्द के आधार हो।]

त्रिंश खण्ड

श्यामपुकुर-वाटी में हरिवल्लभ, नरेन्द्र, मिश्र आदि के संग

प्रथम परिच्छेद

(श्रीयुक्त बलराम के लिए चिन्ता— श्रीयुक्त हरिवल्लभ बसु)

श्रीरामकृष्ण श्यामपुकुर वाले घर में भक्तों के संग में चिकित्सार्थ वास कर रहे हैं। आज है शनिवार— आश्विन कृष्णा अष्टमी तिथि, 16वाँ कार्त्तिक; 31 अक्तूबर, 1885 ईसवी। समय नौ।

यहाँ पर भक्तगण रात-दिन रहते हैं— ठाकुर की सेवार्थ! अभी तक किसी ने भी संसार का त्याग नहीं किया है।

बलराम सपरिवार ठाकुर के सेवक हैं। वे जिस वंश में जन्मे हैं, वह है अति भक्तवंश! पिता वृद्ध हो गए हैं, वृन्दावन में एकाकी वास करते हैं— उन्हीं के द्वारा प्रतिष्ठित श्री श्री श्यामसुन्दर के कुंज में। उनका पितृव्यपुत्र (चचेरा भाई) श्रीयुक्त हरिवल्लभ बसु और घर के अन्य सब ही वैष्णव हैं।

हरिवल्लभ कटक के प्रधान वकील हैं। (बलराम) परमहंसदेव के पास यातायात करते हैं— विशेषत: स्त्रियों को लेकर जाते हैं— सुनकर परेशान हुए थे। मिलने पर, बलराम ने कहा था, तुम उनका एक बार दर्शन करो— उसके उपरान्त जो हो, कहो!

आज हरिवल्लभ आए हैं। उन्होंने ठाकुर के दर्शन करके अति भक्ति-भाव से प्रणाम किया।

श्रीरामकृष्ण— कैसे यह ठीक होगा!— क्या आप को लगता है कि यह कोई कठिन रोग है?

हरिवल्लभ— जी, डॉक्टर लोग बता सकते हैं।

श्रीरामकृष्ण— स्त्रियाँ पाँव की धूल लेती हैं। तब सोचता हूँ, एक रूप में वे ही (ईश्वर) भीतर हैं— यही हिसाब लाता हूँ।

हरिवल्लभ— आप तो साधु! आपको सब ही प्रणाम करेंगे, उसमें दोष भी क्या?

श्रीरामकृष्ण— वह तो ध्रुव, प्रह्लाद, नारद, कपिल आदि कोई भी होने से होता। मैं क्या हूँ! आप फिर आना!

हरिवल्लभ— जी, हम लोग आप ही खिंचकर आएँगे— आप कहते क्यों हैं!

हरिवल्लभ विदा लेंगे— प्रणाम कर रहे हैं। पदधूलि लेने बढ़ रहे हैं— ठाकुर ने पाँव हटा लिया। किन्तु हरिवल्लभ ने छोड़ा नहीं— जोर करके पदधूलि ले ली।

हरिवल्लभ उठे। ठाकुर जैसे उनकी खातिर करने के लिए खड़े हो गए। कह रहे हैं—

"बलराम बहुत दुःख करता है। मैंने सोचा था, एक दिन जाऊँ— जाकर तुम्हारे संग मिलूँ। किन्तु उस पर भय होता है। पीछे कहीं तुम कहो— 'इनको कौन लाया'!"

हरिवल्लभ— ऐसी बातें क्यों कहते हैं? आप कुछ भी चिन्ता न करें।

हरिवल्लभ चले गए।

श्रीरामकृष्ण *(मास्टर के प्रति)*— भक्ति है— नहीं तो भला जोर करके पदधूलि क्यों ली?

"वही जो तुमसे कहा था, 'भाव में देखा था डॉक्टर और एक व्यक्ति को—यही है वह एकजन। जभी देखो, आया है।"

मास्टर— जी, भक्ति का ही घर।

श्रीरामकृष्ण— कैसा सरल है!

डॉक्टर सरकार के पास ठाकुर के रोग का संवाद देने के लिए मास्टर

शाँखारीटोला में आए हैं। डॉक्टर आज फिर ठाकुर को देखने जाएँगे।

डॉक्टर ठाकुर की और महिमाचरण आदि भक्तों की बातें कर रहे हैं।

डॉक्टर— कहाँ, वे (महिमाचरण) वह पुस्तक तो लाए नहीं— जो पुस्तक उन्होंने मुझे दिखाने के लिए कहा था! कहने लगा, भूल गया। वह हो सकती है— मेरी भी होती है।

मास्टर— उनका खूब पढ़ा-सुना हुआ है।

डॉक्टर— ऐसा होने पर भी ऐसी दशा!

ठाकुर के सम्बन्ध में डॉक्टर कह रहे हैं,

"केवल भक्ति लेकर क्या होगा— ज्ञान यदि न हो।"

मास्टर— क्यों? ठाकुर तो कहते हैं, ज्ञान के पश्चात् भक्ति। किन्तु उनके 'ज्ञान, भक्ति' और आप लोगों के 'ज्ञान, भक्ति' के अर्थ अलग हैं।

"वे जब कहते हैं— 'ज्ञान के बाद भक्ति' उसके माने हैं— तत्त्वज्ञान के पश्चात् भक्ति, ब्रह्मज्ञान के बाद भक्ति— भगवान को जान लेने के बाद भक्ति। आप लोगों के ज्ञान के माने हैं सेन्स-नॉलेज (इन्द्रियों के विषय से प्राप्त किया हुआ ज्ञान)। प्रथम तो not verifiable by our standard; तत्त्वज्ञान इन्द्रियलभ्य ज्ञान द्वारा निश्चित नहीं किया जाता। द्वितीय— verifiable (जड़ज्ञान)।"

डॉक्टर चुप हैं। फिर अवतार के सम्बन्ध में बातें करते हैं।

डॉक्टर— अवतार फिर क्या? और पाँव की धूलि लेना क्या?

मास्टर— क्यों, आप ही तो कहते हैं एक्सपैरिमेण्ट (अनुभव) के समय उनकी सृष्टि देखकर भाव हो जाता है, मनुष्य देखकर भाव हो जाता है। वैसा ही यदि होता है तो ईश्वर को क्यों न माथा नमाऊँ! मनुष्य के हृदय में ईश्वर है।

"हिन्दु धर्म में देखते हैं सर्वभूत में नारायण! यह उतना अपना जाना हुआ नहीं है। सर्वभूत में यदि रहते हैं तो उन्हें प्रणाम करने में क्या है?"

"परमहंसदेव कहते हैं, किसी-किसी वस्तु में उनका अधिक प्रकाश

है। सूर्य का प्रकाश जल में, आरसी (दर्पण) में। जल सब जगह है— किन्तु नदी में, तालाब में अधिक प्रकाश होता है। ईश्वर को ही नमस्कार किया जाता है— मनुष्य को नहीं। God is God— not man is God (ईश्वर ही ईश्वर है— मनुष्य ईश्वर नहीं)।

''उन्हें तो रीजनिंग (सामान्य विचार) करके नहीं जाना जाता— समस्त विश्वास के ऊपर निर्भर है— यही सब बातें ठाकुर कहते हैं।''

आज डॉक्टर ने अपनी रचित एक पुस्तक मास्टर को उपहार दी— Physiological Basis of Psychology— फिजिओलोजिकल बेसिस ऑफ साइकॉलोजी—'as a token of brotherly regards.'

द्वितीय परिच्छेद

(श्रीरामकृष्ण और यीशु क्राइस्ट Jesus Christ— उनसे ईसाइयों का आविर्भाव)

ठाकुर भक्तों के संग में बैठे हुए हैं। समय ग्यारह। मिश्र नामक एक ईसाई भक्त के साथ बातें कर रहे हैं। मिश्र की आयु 35 वर्ष की होगी। मिश्र क्रिश्चियन वंश में जन्मे हैं। यद्यपि उनकी साहब की पोशाक है, तथापि भीतर गेरुआ है। अब संसार का त्याग कर दिया है। इनका जन्मस्थान पश्चिमांचल है। एक भाई के विवाह के दिन उस भाई की तथा और एक भाई की एक दिन में ही मृत्यु हुई। उसी दिन से मिश्र ने संसार-त्याग कर दिया है। ये क्वेकर सम्प्रदाय के हैं।

मिश्र— 'ओहि राम घट-घट में लेटा।'

श्रीरामकृष्ण छोटे नरेन को आहिस्ते-आहिस्ते कह रहे हैं— जिससे मिश्र भी सुन पाएँ—

'एक राम, उनके हजार नाम।'

''क्रिश्चियन जिन्हें गॉड कहते हैं, हिन्दु उनको ही राम, कृष्ण, ईश्वर

इत्यादि कहते हैं। तालाब के कई घाट हैं। एक घाट से हिन्दु जल पीते हैं, कहते हैं जल— ईश्वर। क्रिश्चियन और एक घाट से पीते हैं— कहते हैं वाटर— गॉड, यीशु। मुसलमान और एक घाट पर जाते हैं— कहते हैं, पानी— अल्लाह।''

मिश्र— मेरी का लड़का यीशु नहीं। यीशु स्वयं ईश्वर हैं।

(भक्तों के प्रति) ''ये (श्रीरामकृष्ण) अब ऐसे हैं— और फिर एक समय हैं साक्षात् ईश्वर।

''आप लोग (भक्तगण) इनको पहचान नहीं पाते हैं। मैंने पहले से ही इन्हें देखा हुआ है— अब साक्षात् (सामने) देख रहा हूँ। देखा था— एक विशेष बाग में ये ऊपर आसन पर बैठे हुए हैं; धरती पर और एक व्यक्ति बैठे हुए हैं; वे इतने advanced (उन्नत) नहीं।

''इस देश में चार द्वारपाल हैं। बम्बई अञ्चल में तुकाराम और कश्मीर में रोबर्ट माइकल;— यहाँ पर ये; — और पूर्व देश में और एकजन हैं।''

श्रीरामकृष्ण— तुम कुछ देखते-वेखते हो?

मिश्र— जी, घर में जब था तब से ज्योति-दर्शन होता रहा है। उसके पश्चात् यीशु का दर्शन किया है। उस रूप का फिर क्या बताऊँ!— उस सौन्दर्य के पास स्त्री का सौन्दर्य क्या है!

कुछ क्षण पीछे भक्तों से बातें करते-करते मिश्र ने कोट-पतलून खोलकर भीतर का गेरुआ कौपीन दिखाया।

ठाकुर बरामदे में से आकर कह रहे हैं—

''बाहर से नहीं हुआ,— इनको (मिश्र को) देखा, वीर की भंगी (मुद्रा) बनाए हुए खड़ा है।

यह बात कहते-कहते ठाकुर समाधिस्थ हो रहे हैं। पश्चिमास्य होकर खड़े हुए समाधिस्थ हैं।

किंचित् प्रकृतिस्थ होकर मिश्र को देखते-देखते हँस रहे हैं। ऐसे ही खड़े हैं। भावावेश में मिश्र के साथ शेकहैण्ड (हाथ मिलाना) कर रहे

हैं और हँस रहे हैं। हाथ पकड़कर कह रहे हैं, "तुम जो चाहते हो वह हो जाएगा।"

लगता है ठाकुर को यीशु का भाव हो गया है। वे और यीशु क्या एक हैं?

मिश्र *(कर जोड़कर)*— मैंने उसी दिन से मन, प्राण, शरीर— सब आपको दे दिया है।

ठाकुर भावावेश में हँस रहे हैं।

ठाकुर बैठ गए। मिश्र भक्तों से अपनी पूर्वकथा का सब वर्णन कर रहे हैं। उनके दो भाइयों ने वर की सभा में शामियाना गिर जाने से मानवलीला संवरण कर ली थी— वह भी बताया।

ठाकुर ने मिश्र की देखभाल (सेवा) करने के लिए भक्तों से कहा।

(नरेन्द्र, डॉक्टर सरकार आदि के संग में कीर्त्तनानन्द)

डॉक्टर सरकार आए। डॉक्टर को देखकर ठाकुर समाधिस्थ। किंचित् भाव-उपशम के बाद ठाकुर भावावेश में कह रहे हैं—

"कारणानन्द के बाद सच्चिदानन्द।— कारण का कारण।"

डॉक्टर कह रहे हैं,

"हाँ!"

श्रीरामकृष्ण— बेहोश नहीं हुआ हूँ।

डॉक्टर समझ गए हैं कि ठाकुर को ईश्वर का आवेश हुआ है। इसीलिए कह रहे हैं—

"ना, तुम खूब होश में हो।"

ठाकुर सहास्य कह रहे हैं—

आमि सुरा पान करि ना, सुधा खाइ जय काली बोले,
मन-माताले माताल करे, मद-माताले माताल बोले।

गुरुदत्त बीज लये प्रवृत्ति ताय मशला दिये,
ज्ञान शुँड़ीते चोयाय माँटी, पान करे मोर मन माताले।
मूल मन्त्र यन्त्र भरा, शोधन करि बोले तारा,
प्रसाद बोले एमन सुरा पेले चतुर्वर्ग मिले।

[भावार्थ— मैं (सुरा) नहीं पीता। 'जय काली' बोलकर अमृत-सुधा पीता हूँ। मन जब मस्त हो जाता है तो मतवाला बना देता है। शराब के नशे में शराबी कहलाता है। गुरु द्वारा दिया गया बीज लेकर प्रवृत्ति का उसमें मसाला लगाकर ज्ञान कलवार द्वारा भट्ठी में चुआकर (टपकाकर) पीने से मेरा मन मतवाला हो रहा है। आज यन्त्र (शरीर) मूलमन्त्र से भरा हुआ है। मैं 'तारा' बोलकर उसको शुद्ध करता हूँ। प्रसाद कहते हैं, ऐसी सुरा पीने पर चतुर्वर्ग (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) मिल जाते हैं।]

गाना सुनकर डॉक्टर प्राय: भावाविष्ट हो गए। ठाकुर का भी और भावावेश हो गया। भाव में डॉक्टर की गोद में चरण बढ़ा दिए।

कुछ क्षण बाद भाव संवरण हुआ— तब चरण समेट कर डॉक्टर से कह रहे हैं—

''उह! तुमने कैसी बात ही कही है! उनकी ही गोद में बैठा हुआ हूँ, उनसे रोग की बात नहीं कहूँगा तो फिर किससे कहूँगा!— पुकारना हो तो उनको ही पुकारूँगा।''

यह बात बोलते-बोलते ठाकुर के चक्षु जल से भर गए।

फिर और भावाविष्ट हो गए। भाव में डॉक्टर से कह रहे हैं—

''तुम खूब शुद्ध हो। वैसा न होने से पाँव नहीं रख पाता!''

फिर और कह रहे हैं—

''शान्त वही है, जो रामरस चाखे।

''विषय क्या है?— उसमें क्या है?— रुपया-पैसा, मान, शरीर का सुख— उसमें भी क्या है? ऐ दिल! जिसने राम को नहीं पहचाना, उसने फिर पहचाना ही क्या?''

इतने असुख के ऊपर ठाकुर को भावावेश होता देखकर भक्तगण चिन्तित हो गए हैं। ठाकुर कह रहे हैं— "वही गाना हो जाने पर मैं थम (रुक) जाऊँगा— हरिरस मदिरा।"

नरेन्द्र अन्य कमरे में थे, उनको बुलाया गया। वे अपने देवदुर्लभ कण्ठ से गाना सुना रहे हैं—

हरि-रस-मदिरा पिए मम मानस मातो रे।
एक बार लुटाए अवनीतल, हरि-हरि बोलि काँदो रे।
(गति कर कर बोले)।
गभीर निनादे हरिनामे गगन छाओ रे।
नाचो हरि बोले दुबाहु तुले, हरिनाम बिलाओ रे।
(लोकेर द्वारे-द्वारे)।
हरि प्रेमानन्दरसे अनुदिन भासो रे,
गाओ हरिनाम होओ पूर्णकाम; नीच वासना नाशो रे॥

[भावार्थ— ऐ मेरे मानस (मन)! तू हरि-रस-मदिरा पीकर मस्त हो जा। एक बार धरती पर लोट-पोट होकर, हरि-हरि कहते हुए रो रे। (गति करो-गति करो, कह-कहकर)। हरिनाम के गम्भीर निनाद (ध्वनि-गर्जन) को गगन में छा दो, दोनों बाहें उठाकर, हरि बोलकर नाचो, और हरिनाम वितरण करो (लोगों के द्वार-द्वार पर जाकर)। रात-दिन तुम हरि के प्रेमानन्द के रस में तरो और हरिनाम गाओ तथा पूर्णकाम हो जाओ, नीच वासना का नाश हो जाए।]

श्रीरामकृष्ण— और वह भी? 'चिदानन्द सिन्धु नीरे?'

नरेन्द्र गा रहे हैं—

चिदानन्द सिन्धुनीरे प्रेमानन्देर लहरी।
महाभाव रसलीला कि माधुरी— मरि मरि॥
महायोगे सब एकाकार होइलो।
देशकाल व्यवधान सब घुचिलो रे॥
एखन आनन्दे मातिया, दुबाहु तुलिया, बोल रे मन हरि हरि॥

[भावार्थ— चिदानन्द-समुद्र के जल में प्रेमानन्द की लहरें चल रही हैं। महाभाव-रसलीला की माधुरी में मैं मरा-मरा हो रहा हूँ। महायोग में सब एकाकार हो गया है। देशकाल का व्यवधान सब समाप्त हो गया है। अब आनन्द में

मतवाला होकर, दोनों बाहें उठाकर, अरे मन! हरि-हरि बोल।]

चिन्तय मम मानस हरि चिद्घन निरंजन,
किवा अनुपम भाति, मोहन मूरति, भगत-हृदय-रंजन।
नवरागे रंजित, कोटि शशी-विनिन्दित,
किवा बिजली चमके, से रूप आलोके, पुलके शिहरे जीवन।
हृदि-कमलासने, भाबो ताँर चरण,
देखो शान्त मने, प्रेमनयने, अपरूप प्रियदर्शन।
चिदानन्द-रसे, भक्तियोगावेशे, होओ रे चिरमगन।

[भावार्थ— हे मेरे मन, चिद्घन निरंजन हरि का चिन्तन कर। भक्तों के हृदय को प्रसन्न करने वाली वह मोहन मूर्ति कैसी अनुपम, ज्योतिर्मय है! नव प्रेम में रंगी हुई, करोड़ों चन्द्रमाओं को लज्जित करने वाली कैसी अद्भुत बिजली चमकती है! उस रूप के आलोक में जीवन पुलकायमान होकर रोमांचित हुआ रहता है। अपने हृदय रूपी कमल-आसन पर तुम उनके चरणों का ध्यान करो, शान्त मन से प्रेम भरे नयनों से उस अपरूप प्रियदर्शन का दर्शन करो और चिदानन्द के रस में, भक्ति-योग के आवेश में, चिरकाल मग्न हो जाओ।]

डॉक्टर एकाग्र मन से सुन रहे हैं। गाना समाप्त होने पर कहते हैं, 'चिदानन्द सिंधुनीरे'— वह तो बहुत सुन्दर है! डॉक्टर का आनन्द देखकर ठाकुर कह रहे हैं—

''लड़के ने कहा था, 'पिताजी, थोड़ा-सा मद आप चखकर देखें, उसके बाद मुझे छोड़ने के लिए कहो, तो छूट जाएगा।' पिता ने खाकर कहा, 'बच्चे, तुम छोड़ो, मुझे आपत्ति नहीं है। किन्तु मैं तो नहीं छोड़ता' *(डॉक्टर और सब का हास्य)*।

''उस दिन, माँ ने दो व्यक्ति दिखाए। ये उनमें से एक हैं। देखा है, खूब ज्ञान होगा— किन्तु शुष्क। *(डॉक्टर से, सहास्य)* किन्तु तुम रसयुक्त हो जाओगे।''

डॉक्टर चुप किए हैं।

एकत्रिंश खण्ड

काशीपुर-उद्यान में नरेन्द्रादि के संग

प्रथम परिच्छेद

(कृपासिन्धु श्रीरामकृष्ण— मास्टर, निरञ्जन, भवनाथ)

श्रीरामकृष्ण भक्तों के संग में काशीपुर में वास कर रहे हैं। इतना असुख है— किन्तु एक चिन्ता है— किस प्रकार भक्तों का मंगल हो। रात-दिन किसी न किसी भक्त की चिन्ता करते हैं।

शुक्रवार, 11 दिसम्बर, 27वाँ अग्रहायण, शुक्ला पञ्चमी को श्यामपुकुर से ठाकुर काशीपुर-बागान में आए हैं। आज बारह दिन हो गए हैं। लड़के भक्त क्रमशः काशीपुर में आकर रहने लगे हैं— ठाकुर की सेवा के लिए। अब भी घरों से अनेक ही आते-जाते हैं। गृही भक्त प्रायः रोज देख जाते हैं— बीच-बीच में रात को रहते हैं।

भक्तगण प्रायः सब ही मिल गए हैं। 1881 ईसवी से भक्त-समागम हो रहा है। शेष के भक्त सब ही आ गए हैं। 1884 ईसवी के शेषाशेषि (अन्त में) शशी और शरत ने ठाकुर के दर्शन किए; कॉलेज की परीक्षा आदि के बाद 1885 के मध्य से वे लोग सर्वदा यातायात करते हैं। 1884 ईसवी सितम्बर मास में स्टार थियेटर में श्रीयुक्त गिरीश (घोष) ने ठाकुर का दर्शन किया। तीन मास बाद से अर्थात् दिसम्बर के आरम्भ से वे सर्वदा यातायात करते हैं। 1884, दिसम्बर के अन्त में सारदा ने दक्षिणेश्वर-मन्दिर में ठाकुर के दर्शन किए। सुबोध और क्षीरोद ने 1885 के अगस्त मास में ठाकुर के प्रथम दर्शन किए।

आज है सुबह से प्रेम की छड़ाछड़ि (बहुतायत से बखेर)। निरञ्जन से कहते हैं, ''तू मेरा बाप है, तेरी गोद में बैठूँगा।'' कालीपद का वक्ष स्पर्श करके कहते हैं, ''चैतन्य हो!'' और चिबुक (ठोडी) पकड़कर उसको प्यार कर रहे हैं, और कह रहे हैं, ''जिसने आन्तरिक ईश्वर को पुकारा है या सन्ध्या–आह्निक (नित्यकर्म) किया है, उसको यहाँ पर आना ही होगा।'' आज सुबह दो स्त्री भक्तों के ऊपर भी कृपा की है। समाधिस्थ होकर उनके वक्ष पर चरण द्वारा स्पर्श किया है। वे लोग अश्रु–विसर्जन करने लगीं; एक स्त्री रोते–रोते बोली, ''आपकी इतनी दया!'' प्रेम की छड़ाछड़ि! सींथी के गोपाल पर कृपा करेंगे, इस लिए कह रहे हैं, ''गोपाल को बुला ला।''

आज बुधवार है। 9वीं पौष, अग्रहायण की कृष्णा द्वितीया, 23 दिसम्बर, 1885 ईसवी। सन्ध्या हो गई। ठाकुर जगन्माता का चिन्तन कर रहे हैं।

कुछ क्षण बाद ठाकुर अति मृदु स्वर में दो एक भक्तों के साथ बातें कर रहे हैं। कमरे में काली, चुनीलाल, मास्टर, नवगोपाल, शशी, निरञ्जन आदि भक्तगण हैं।

श्रीरामकृष्ण— एक स्टूल खरीद लाना— यहाँ के लिए। कितना लेगा?

मास्टर— जी, दो–तीन रुपए के मध्य।

श्रीरामकृष्ण— जलपीढ़ी (जल–चौकी) यदि बारह आना है, तो उसका दाम इतना क्यों होगा?

मास्टर— अधिक नहीं होगा— उसके बीच ही हो जाएगा।

श्रीरामकृष्ण— अच्छा, कल फिर तो बृहस्पतिवार की बारबेला है (अशुभ समय)। तुम तीन बजे से पहले नहीं आ सकोगे?

मास्टर— जो आज्ञा, आ जाऊँगा।

(ठाकुर श्रीरामकृष्ण क्या अवतार? असुख का गुह्य उद्देश्य)

श्रीरामकृष्ण *(मास्टर के प्रति)*— अच्छा, यह असुख (रोग) कितने दिनों में सुधरेगा (ठीक होगा)?

मास्टर— थोड़ा अधिक हुआ है— दिन लेगा।

श्रीरामकृष्ण— कितने दिन ?

मास्टर— 'पाँच-छह' मास हो सकते हैं।

इस बात पर ठाकुर बालक की न्यायीं अधीर हो गए और कह रहे हैं— "क्या कहते हो ?"

मास्टर— जी, पूर्णतया ठीक हो जाएगा।

श्रीरामकृष्ण— यह कहो। अच्छा, इतना ईश्वरीय रूप-दर्शन, भाव, समाधि !— फिर भी ऐसी बीमारी क्यों ?

मास्टर— जी, कष्ट तो खूब हो रहा है, किन्तु उद्देश्य है।

श्रीरामकृष्ण— क्या उद्देश्य है ?

मास्टर— आपकी अवस्था परिवर्तन होगी— निराकार की ओर झुकाव हो रहा है।— 'विद्या का मैं' तक नहीं ठहर रहा।

श्रीरामकृष्ण— हाँ, लोकशिक्षा बन्द हो रही है— और बोल नहीं सकता। सब राममय देख रहा हूँ।— बारम्बार मन में आता है, किसको फिर बताऊँगा ! देखो न, यह घर किराये पर लिया गया है, इसलिए कितने प्रकार के भक्त आ रहे हैं।

"कृष्णप्रसन्न सेन या शशधर जैसा साइनबोर्ड तो नहीं बनेगा— अमुक समय लैक्चर होगा।" *(ठाकुर का और मास्टर का हास्य)*।

मास्टर— और एक उद्देश्य है, लोक-छँटाई। पाँच वर्ष की तपस्या करके जो नहीं होता, वह भक्तों का इन्हीं कुछ दिनों में हो गया है— साधना, प्रेम, भक्ति।

श्रीरामकृष्ण— हाँ, वह तो निश्चय ही हुआ है। अभी निरञ्जन घर गया था। *(निरञ्जन के प्रति)* तू बता तो ज़रा, कैसा बोध होता है ?

निरञ्जन— जी, पहले प्यार तो चाहे था,— किन्तु अब तो छोड़कर रहा ही नहीं जाता !

मास्टर— मैंने एक दिन देखा था, ये कितने बड़े लोग हैं !

श्रीरामकृष्ण— कहाँ पर ?

मास्टर— जी, श्यामपुकुर के घर में एक ओर खड़े होकर देखा था। बोध

हुआ, ये लोग एक-एक व्यक्ति कितनी विघ्न बाधाएँ हटाकर वहाँ पर आकर बैठे हैं— सेवा के लिए।

(समाधिमन्दिर में— आश्चर्य अवस्था— निराकार— अन्तरंग-चयन)

यह बात सुनते-सुनते ठाकुर भावाविष्ट हो रहे हैं। कुछ क्षण बाद निस्तब्ध हो गए। समाधिस्थ!

भाव का उपशम होने पर मास्टर से कह रहे हैं—

"देखा, साकार से सब निराकार में जा रहा है। और-और बातें कहने की इच्छा हो रही है, किन्तु बोल नहीं सकता।

"अच्छा, वही जो निराकार की ओर खिंचाव,— वह क्या केवल लय होने के लिए है; या नहीं?"

मास्टर *(अवाक् होकर)*— जी, वैसा ही होगा!

श्रीरामकृष्ण— अब भी देख रहा हूँ निराकार अखण्ड सच्चिदानन्द इसी प्रकार किए हुए हैं!··· किन्तु खूब कष्ट से भाव दबाया हुआ है।

"लोक-छँटाई जो कह रहे हो, वह ठीक है। यह असुख होने से कौन अन्तरंग, कौन बहिरंग, पता लग जाएगा। जो संसार छोड़कर यहाँ आ रहे हैं, वे हैं अन्तरंग और जो एक बार आकर 'महाशय कैसे हैं', पूछते हैं, वे हैं बहिरंग।

"भवनाथ देखा है ना? श्यामपुकुर में वर (दूल्हा-सा) सजकर आया। जिज्ञासा की 'कैसे हैं?' उसके पश्चात् फिर नहीं मिला। नरेन्द्र की खातिर ही उसको इसी प्रकार करता हूँ, किन्तु मन नहीं है।"

द्वितीय परिच्छेद

(श्रीमुख-कथित चरितामृत— श्रीरामकृष्ण कौन? मुक्तकण्ठ)

आहुस्त्वाम् ऋषय: सर्वे देवर्षिनारदस्तथा।
असितो देवलो व्यास: स्वयंचैव ब्रवीषि मे॥ (गीता 10:13)

श्रीरामकृष्ण *(मणि के प्रति)*— वे भक्त के लिए देह धारण करके जब आते हैं, उनके संग-संग भक्तगण भी आते हैं। कोई अन्तरंग, कोई बहिरंग, कोई रसददार।

"दस-ग्यारह वर्ष की आयु में देश में विशालाक्षी देखने जाते हुए मैदान में प्रथम ऐसी अवस्था हुई। क्या देखा!— एकदम बाह्यशून्य!

"जब बाईस-तेईस वर्ष की वयस थी, काली-मन्दिर (दक्षिणेश्वर) में (माँ) बोली, 'तू क्या अक्षर होना चाहता है?'— (मैं) अक्षर के मायने नहीं जानता था। जिज्ञासा की। हलधारी ने कहा, 'क्षर के मायने हैं जीव, अक्षर का अर्थ है परमात्मा'।

"जब आरती होती, कोठी के ऊपर से चीत्कार किया करता, 'अरे ओ, कौन कहाँ पर भक्त हो, आओ। ऐहिक (जागतिक) लोगों के साथ मेरा प्राण जाता है।' इंग्लिशमैनों से कहा। वे बोले, 'यह सब है मन की भूल!' तब 'वैसा ही होगा'— कहकर शान्त हो गया था। किन्तु अब तो वही सब मिलता जा रहा है।— सब भक्त आकर इकट्ठे हो रहे हैं।

"फिर दिखाया पाँच जने सेवायेत (सेवा करने वाले)। प्रथम सेजोबाबू (मथुर बाबू) उसके बाद शम्भुमल्लिक,— उसको पहले कभी नहीं देखा था। भाव में देखा था,— गौरवर्ण पुरुष, सिर पर ताज। जब अनेक दिन बाद शम्भु को देखा था, तब याद आ गया,— इसको ही पहले भावावस्था में देखा है! और तीन जने सेवादार अभी तक भी ठीक नहीं हुए हैं। किन्तु सब गौरवर्ण। सुरेन्द्र तो बहुत ही रसददार जैसा बोध होता है।

"जब ऐसी अवस्था हुई, ठीक मेरे जैसा एक जन आकर ईड़ा, पिंगला, सुषुम्ना आदि नाड़ियों को फाड़-तोड़ गया! षड्चक्रों के एक-एक पद्म में जिह्वा द्वारा रमण करता है और अधोमुख पद्म ऊर्ध्वमुख होकर खिल उठता है। अन्त में सहस्रार पद्म प्रस्फुटित हो गया।

"जब जैसा व्यक्ति आएगा पहले से ही दिखा देता! इन्हीं आँखों से— भाव में नहीं— देखा, चैतन्यदेव का संकीर्त्तन वटवृक्षतले की ओर से बकुलतले की ओर जा रहा है। उसमें बलराम को देखा, और जैसे तुम्हें देखा।

चुनी के और तुम्हारे आने-जाने से उद्दीपन हुआ है। शशी और शरत को देखा, ऋषि क्राइस्ट के दल में थे।

"वटतले एक लड़का देखा था। हृदय बोला, तब तो फिर तुम्हारे एक बेटा होगा। मैंने कहा, 'मेरी तो मातृयोनि! मेरा बेटा कैसे होगा?' वही लड़का है राखाल।

"कहा था, माँ! ऐसी अवस्था यदि की है तो फिर एक बड़ा मनुष्य मिला दो। जभी सेजोबाबू ने चौदह वर्ष तक सेवा की। उसने कितना ही कुछ किया!— अलग भण्डार कर दिया— साधु-सेवा के लिए— गाड़ी, पालकी— जिसे जो देने को मैं कहता, उसको वही देता। ब्राह्मणी उसे कहती— प्रताप रुद्र* है यह।

"विजय ने इसी रूप (अर्थात् ठाकुर की मूर्त्ति) के दर्शन किए हैं। यह क्या है? बताओ, तुम्हें जैसे स्पर्श करना है, उसी प्रकार छुआ था।

"नोटो (लाटु) ने गिने इकत्तीस भक्त। ये तो कोई अधिक नहीं।— फिर केदार और विजय कितने ही बना रहे हैं!

"भाव में दिखाया, अन्त में पायस खाकर रहना पड़ेगा!

"इस बीमारी में पत्नी (भक्तों की श्री श्री माँ) ने पायस खिला दिया था, तब यह कह कर रोया था— क्या यही है पायस खाना! इसी कष्ट में!"

---

* प्रताप रुद्र उड़ीसा के राजा तथा श्री चैतन्य महाप्रभु के भक्त थे। उन्होंने श्री चैतन्यदेव की अत्यन्त श्रद्धा और भक्ति के साथ सेवा की थी।

द्वात्रिंश खण्ड

काशीपुर-उद्यान में श्रीयुक्त नरेन्द्र प्रभृति भक्तों के संग में

प्रथम परिच्छेद

(नरेन्द्र को ज्ञानयोग और भक्तियोग का समन्वय-उपदेश)

ठाकुर श्रीरामकृष्ण काशीपुर-बागान में हॉल कमरे में भक्तों के संग में रह रहे हैं। रात्रि प्राय: आठ। कमरे में नरेन्द्र, शशी, मास्टर, बूढ़े गोपाल, शरत् हैं। आज बृहस्पतिवार— 28वाँ फाल्गुन, 1292 (बंगला) साल, फाल्गुन मास की शुक्ला षष्ठी तिथि; 11 मार्च, 1886 ईसवी।

ठाकुर अस्वस्थ हैं— थोड़ा लेटे हुए हैं। भक्तगण पास बैठे हुए हैं। शरत् खड़े हुए पंखा कर रहे हैं। ठाकुर असुख की बात बता रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण— भोलानाथ के पास जाने पर वह तेल देगा। और वह बतला देगा, कैसे लगाना चाहिए।

बूढ़े गोपाल— तो फिर कल सुबह हम जाकर ले आएँगे।

मास्टर— आज जाकर कोई कह सकता है।

शशी— मैं जा सकता हूँ।

श्रीरामकृष्ण *(शरत् को दिखलाकर)*— यह जा सकता है।

शरत् कुछ क्षण बाद दक्षिणेश्वर-मन्दिर में केरानी (मुहर्रिर) श्रीयुक्त भोलानाथ मुखोपाध्याय के पास से तेल लेने के लिए चल पड़े।

ठाकुर लेटे हुए हैं। भक्त निःशब्द बैठे हुए हैं। ठाकुर हठात् उठकर बैठ गए। नरेन्द्र को सम्बोधन करके बातें कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण *(नरेन्द्र के प्रति)*— ब्रह्म अलेप। तीन गुण उनमें हैं, किन्तु वे हैं निर्लिप्त।

''जैसे वायु में सुगन्ध-दुर्गन्ध दोनों ही पाए जाते हैं, किन्तु वायु है निर्लिप्त। काशी में शंकराचार्य सड़क पर जा रहे थे। चण्डाल मांस का भार लेकर जा रहा था— हठात् छू दिया। शंकर बोले, छू दिया! चण्डाल बोला— ठाकुर, तुमने भी मुझे नहीं छुआ! मैंने भी तुम्हें नहीं छुआ। आत्मा है निर्लिप्त। तुम वही शुद्ध आत्मा हो।

''ब्रह्म और माया। ज्ञानी माया फेंक देता है।

''माया है आवरणस्वरूप। यह देखो, यह अंगोछा ओट में कर लिया, प्रदीप का आलोक दिखाई नहीं देता फिर।

ठाकुर ने अंगोछे को अपने और भक्तों के बीच में रख लिया! कह रहे हैं— यह देखो, मेरा मुख अब नहीं दिखाई दे रहा।

''रामप्रसाद ने जैसे कहा है— 'मसहरी उठाकर देख (मशारि तुलिया देख।)

''किन्तु भक्त माया को नहीं छोड़ता। महामाया की पूजा करता है। शरणागत होकर कहता है, 'माँ! पथ छोड़ दो! तुम पथ छोड़ोगी तभी ब्रह्मज्ञान होगा।' जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति— ज्ञानी ये तीनों अवस्थाएँ उड़ा देता है! भक्त ये सब अवस्थाएँ ही लेता है— जब तक 'मैं' है तब तक सब ही है।

''जब तक 'मैं' है, तब तक देखता है कि माया, जीव-जगत, चतुर्विंशति तत्त्व (24 तत्त्व), वे ही सब बने हुए हैं।

नरेन्द्र प्रभृति सब चुप किए हैं।

मायावाद शुक्नो (मायावाद सूखा)। क्या कहा मैंने, बताओ तो।

नरेन्द्र— शुक्नो (सूखा)।

ठाकुर नरेन्द्र का हाथ-मुख स्पर्श करने लगे। फिर और बातें कर रहे हैं—

''ये सब *(नरेन्द्र के सब)* भक्त के लक्षण हैं। ज्ञानी का लक्षण और होता है— मुख, चेहरा शुक्नो होता है *(सूखा होता है)*।

''ज्ञानी ज्ञान-लाभ करने पर भी विद्या माया लेकर रह सकता है— भक्ति, दया, वैराग्य— ये सब लेकर रह सकता है। इसके दो उद्देश्य हैं। प्रथम, लोकशिक्षा होती है, और फिर रसास्वादन के लिए।

''ज्ञानी यदि समाधिस्थ होकर चुप किए रहे, तो फिर लोकशिक्षा नहीं होती। तभी तो शंकराचार्य ने 'विद्या का मैं' रखा था।

''और ईश्वर का आनन्द भोग करने के लिए— सम्भोग करने के लिए— भक्ति-भक्त लेकर रहता है।

''यही जो 'विद्या का मैं', 'भक्त का मैं' है— इसमें दोष नहीं है। 'बज्जात् मैं' में दोष होता है। उनका दर्शन करने पर बालक का स्वभाव हो जाता है। 'बालक के मैं' में कोई दोष नहीं। जैसे दर्पण का मुख— लोगों को गालीगलौच नहीं करता। जली रस्सी देखने में ही रस्सी का आकार है, फूँक मारने से उड़ जाती है। ज्ञानाग्नि में अहंकार जल गया है। अब फिर किसी का अनिष्ट नहीं करता। नाममात्र 'मैं'।

''नित्य में पहुँचकर तब फिर लीला में रहना! जैसे उस पार जाकर फिर इस पार आना। लोकशिक्षा और विलास के लिए— आमोद के लिए।

ठाकुर अति मृदुस्वर में बातें कर रहे हैं। थोड़ा-सा चुप किए रहे। फिर भक्तों से कह रहे हैं—

''शरीर का ऐसा रोग है— किन्तु अविद्या माया नहीं रख रहा! यही देखो, रामलाल, या घर, या स्त्री, मुझे याद नहीं!— कौन वह है पूर्ण नाम का कायस्थ, बस उसके लिए चिन्ता कर रहा हूँ।— औरों के लिए तो चिन्ता नहीं होती।

''उन्होंने ही विद्यामाया रख दी है— लोगों के लिए— भक्तों के लिए।

''किन्तु विद्यामाया रहने से फिर आना होगा। अवतार आदि विद्यामाया रखते हैं। तनिक-सी भी वासना रहने पर आना पड़ता है— लौट-लौट कर

आना पड़ता है। समस्त वासना जाने पर ही मुक्ति है। किन्तु भक्तगण मुक्ति नहीं चाहते।

"यदि काशी में किसी की देह त्याग हो तो फिर मुक्ति होती है— फिर लौटना नहीं पड़ता। ज्ञानी की मुक्ति।"

नरेन्द्र— उस दिन हम महिम् चन्द्र चक्रवर्ती के घर पर गए थे।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— उसके पश्चात्?

नरेन्द्र— उसके जैसा शुष्क ज्ञानी नहीं देखा!

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— क्या हुआ था?

नरेन्द्र— हमें गाना गाने के लिए कहा। गंगाधर ने गाया—

श्यामनामे प्राण पेये धनि इति उति चाय,
ना देखि से चाँदमुख कांदे उभराय।
(बोले कोइरे श्रीदाम) (तोरा जार नाम शुनाइलि कोई)
(एक बार एने देखागो)
सम्मुखे तमाल तरु देखिबार पाय।
(तखन) शेइ तमाल तरु करि निरीक्षण (बोले ओई जे चूड़ा)
(आमार कृष्णेर ओई जे चूड़ा) (चूड़ा देखा जाय)
(तमाल गाछे मयूर हेरे बोले ओई जे चूड़ा देखा जाय)।

[श्याम-नाम को सुनकर राधा जी इधर-उधर देखती हैं। कृष्ण का चन्द्रमुख न देखकर सिसकने लगती हैं। कहती हैं— ओ श्रीदाम, जिनका तूने नाम सुनाया है, वे कहाँ हैं? एक बार लाकर दिखा तो! सामने तमाल वृक्ष देखती हैं। तब उसी तमाल का निरीक्षण करके कहती हैं— वही तो है मेरे कृष्ण का चूड़ा। तमाल वृक्ष पर मोर को देखकर कहती हैं— वही तो चूड़ा दिखाई दे रहा है।]

"गाना सुनकर बोला— ऐसे गाने क्यों? प्रेम-व्रेम अच्छा नहीं लगता। उसके अतिरिक्त, स्त्री-पुत्र लेकर रह रहा हूँ, ऐसे गाने यहाँ पर क्यों?"

श्रीरामकृष्ण *(मास्टर के प्रति)*— भय देखा!

त्रयत्रिंश खण्ड

काशीपुर-उद्यान में नरेन्द्र प्रभृति भक्तों के संग

प्रथम परिच्छेद

(नारियों का लज्जा ही भूषण—
पूर्वकथा— मास्टर के घर शुभागमन)

श्रीरामकृष्ण काशीपुर-बाग में भक्तों के संग में वास कर रहे हैं। शरीर खूब अस्वस्थ है— किन्तु भक्तों के मंगल के लिए सर्वदा ही व्याकुल हैं। आज है शनिवार, 5वाँ वैशाख, चैत्र शुक्ला चतुर्दशी। 17 अप्रैल, 1886। पूर्णिमा भी पड़ी है।

कई दिन से नरेन्द्र प्राय: नित्य दक्षिणेश्वर जा रहे हैं— पञ्चवटी में ईश्वर-चिन्तन करते हैं— साधना करते हैं। आज सन्ध्या के समय लौटे। संग में श्रीयुक्त तारक और काली हैं।

रात के आठ हैं। ज्योत्स्ना और दक्षिणी वायु ने उद्यान को सुन्दर बना दिया है। भक्तगण अनेक ही नीचे के कमरे में ध्यान कर रहे हैं। नरेन्द्र मणि से कह रहे हैं, 'एरा छाडाच्छे' (ये लोग अब छूट रहे हैं अर्थात् ध्यान करते-करते उपाधि से छूट रहे हैं।)

कुछ क्षण पश्चात् मणि ऊपर के हॉल कमरे में ठाकुर के पास बैठे हुए हैं। ठाकुर ने उन्हें डाबर (बड़ा कटोरा) और अँगोछा साफ करके लाने की आज्ञा की। वे पश्चिम के तालाब के घाट पर से चाँद के आलोक

में उन्हें धोकर ले आए।

अगले दिन प्रातः ठाकुर ने मणि को बुलाने भेजा। वे गंगा-स्नान के पश्चात् ठाकुर का दर्शन करके हॉल कमरे की छत पर गए थे।

मणि की पत्नी पुत्रशोक में क्षिप्तप्राय (पागलप्राय) हो गई हैं। ठाकुर ने उन्हें बागान में लाने को कहा, और कहा, 'यहाँ पर आकर प्रसाद पाएगी'।

ठाकुर इशारा करके कह रहे हैं—

''यहाँ पर आने के लिए कहना— दो दिन रहेगी;— गोद वाले बच्चे को भी ले आए— और यहाँ आकर खाएगी।''

मणि— जो आज्ञा। ईश्वर में खूब भक्ति हो, तो फिर अच्छा है।

श्रीरामकृष्ण इशारा करके कह रहे हैं—

ऊंहुं: (नहीं)— (शोक) ठेल देता है (भक्ति को)। और फिर इतना बड़ा लड़का!

''कृष्णकिशोर के भवनाथ के जैसे दो लड़के थे। दोनों ही अढ़ाई पास थे। (यूनिवर्सिटी की दो-दो परीक्षाएँ पास किए हुए थे)। मर गए। इतना बड़ा ज्ञानी!— प्रथम-प्रथम अपने को सम्भाल नहीं सका। मुझे तो सौभाग्य से ईश्वर ने दिया ही नहीं।

''अर्जुन इतना बड़ा ज्ञानी! संग में कृष्ण। तो भी अभिमन्यु के शोक से एकदम अधीर! किशोरी क्यों नहीं आया?''

एक भक्त— वह नित्य गंगा-स्नान को जाता है।

श्रीरामकृष्ण— यहाँ पर क्यों नहीं आता?

भक्त— जी, आने के लिए कहूँगा।

श्रीरामकृष्ण *(लाटू के प्रति)*— हरीश क्यों नहीं आता?

(स्त्रियों का लज्जा ही भूषण—पूर्वकथा— मास्टर के घर शुभागमन)

मास्टर के घर की नौ-दस वर्ष की दो कन्याओं ने ठाकुर के निकट काशीपुर-बागान में आकर 'दुर्गानाम जप सदा', 'मजलो आमार मन भ्रमरा'* इत्यादि गाने सुनाए थे।— ठाकुर ने जब मास्टर के श्यामपुकुर वाले तेलिपाड़ा के घर में शुभागमन किया था, (30 अक्तूबर 1884 ईसवी, 15वाँ कार्त्तिक, बृहस्पतिवार को उत्थान एकादशी के दिन), तब इन दोनों कन्याओं ने ठाकुर को गाना सुनाया था। ठाकुर गान सुनकर अतिशय सन्तुष्ट हुए थे। जब ठाकुर के पास काशीपुर-बागान में आज उन्होंने ऊपर गाना गाया था, भक्तों ने नीचे से सुना था। उन्होंने फिर दोबारा उन्हें नीचे बुलाकर गाना सुना।

श्रीरामकृष्ण *(मास्टर के प्रति)*— अपनी लड़कियों को और गाना मत सिखाइयो। अपने आप गाएँ तो और बात है। जिस किसी के निकट गाने से लज्जा चली जाती है, लज्जा स्त्रियों में बड़ी ही आवश्यक है।

(ठाकुर श्रीरामकृष्ण की आत्मपूजा— भक्तों को प्रसाद प्रदान)

ठाकुर के सम्मुख पुष्पपात्र में फूल-चन्दन लाकर दिया गया। ठाकुर शय्या पर बैठे हैं। फूल-चन्दन से वे अपने-आप की ही पूजा कर रहे हैं। चन्दनयुक्त पुष्प कभी मस्तक पर, कभी कण्ठ में, कभी हृदय पर, कभी नाभि पर धारण कर रहे हैं।

मनोमोहन कोन्नगर से आए हैं और ठाकुर को प्रणाम करके बैठ गए। ठाकुर अभी भी अपनी पूजा कर रहे हैं। उन्होंने अपने गले में पुष्पमाला डाल ली।

कुछ क्षण बाद मानो प्रसन्न होकर मनोमोहन को निर्माल्य प्रदान किया। मणि को एक चम्पक दिया।

---

* दोनों गाने क्रमशः पृष्ठ 179 और 190 पर हैं।

द्वितीय परिच्छेद

(क्या बुद्धदेव ईश्वर का अस्तित्व मानते थे ? नरेन्द्र को शिक्षा)

समय नौ का हो गया, ठाकुर मास्टर के साथ बातें कर रहे हैं, कमरे में शशी भी हैं।

श्रीरामकृष्ण *(मास्टर के प्रति)*— नरेन्द्र और शशी क्या कह रहे थे ?— क्या विचार कर रहे थे ?

मास्टर *(शशी के प्रति)*— क्या बातें हुई थीं बई ?

शशी— निरञ्जन शायद कहता है ?

श्रीरामकृष्ण— 'ईश्वर नास्ति-अस्ति'। ऐसी ये क्या-क्या बातें हो रही थीं ?

शशी *(सहास्य)*— नरेन्द्र को बुलाऊँ ?

श्रीरामकृष्ण— बुला।

नरेन्द्र आकर बैठ गए।

(मास्टर के प्रति)— तुम कुछ पूछो। क्या बात हो रही थी, बोल।

नरेन्द्र— पेट गरम हो गया। और क्या कहूँगा।

श्रीरामकृष्ण— ठीक हो जाएगा।

मास्टर *(सहास्य)*— बुद्ध की अवस्था कैसी है ?

नरेन्द्र— क्या मेरी वैसी हुई है, जो बताऊँ ?

मास्टर— 'ईश्वर हैं'— वे क्या कहते हैं ?

नरेन्द्र— 'ईश्वर हैं' कैसे कहते हो ? तुमने क्या जगत की सृष्टि की है ? Barkley (बार्कले) क्या कहते हैं, जानते तो हो ना ?

मास्टर— हाँ, वे कहते तो हैं, Their esse is percipii (The existence of external objects depends upon their perception)— 'जब तक इन्द्रियों का कार्य चल रहा है, तब तक ही जगत है।'

(पूर्वकथा— तोतापुरी का ठाकुर को उपदेश— 'मन से ही जगत')

श्रीरामकृष्ण— न्यांग्टा कहता था, 'मन से ही जगत है, और फिर मन में ही लय हो जाता है।'

"किन्तु जब तक 'मैं' है, तब तक सेव्य-सेवक भाव ही अच्छा है।"

नरेन्द्र *(मास्टर के प्रति)*— विचार यदि करो, तब तो ईश्वर हैं, कैसे कहोगे? और विश्वास के ऊपर यदि जाओ, तब तो सेव्य-सेवक मानना ही होगा। वह यदि मानो— और मानना ही पड़ेगा— तब तो दयामय भी कहना होगा।

"तुमने केवल दुःख को ही स्मरण रखा हुआ है। उन्होंने जो इतना सुख दिया है— उसे क्यों भूल जाते हो? उनकी कितनी कृपा है! तीन बड़ी-बड़ी वस्तुएँ हमें दी हैं— मनुष्यजन्म, ईश्वर को जानने की व्याकुलता, महापुरुष संग।— मनुष्यत्वं मुमुक्षुत्वं महापुरुषसंश्रयः।"

सब चुप किए हैं।

श्रीरामकृष्ण *(नरेन्द्र के प्रति)*— किन्तु मुझे खूब अच्छा बोध होता है, भीतर कोई एक है।

डॉक्टर राजेन्द्रलाल दत्त आकर बैठ गए। होमियोपैथिक मत से ठाकुर की चिकित्सा कर रहे हैं। औषधि आदि की बातें हो गईं, ठाकुर अंगुली का निर्देश करके मनोमोहन को दिखा रहे हैं।

डॉक्टर राजेन्द्र— ये मेरे ममेरे भाई का लड़का है।

नरेन्द्र नीचे आ गए। अपने-आप ही गाना गा रहे हैं—

'सब दुःख दूर करिले दरशन दिये मोहिले प्राण।
सप्त लोक भूले शोक तोमारे पाइये,
कोथा आमि अति दीन हीन।'

[हे प्रभु, दर्शन देकर आपने सब दुःख दूर कर दिए हैं और प्राणों

को मोह लिया है। तुम्हें पाकर सप्तलोक अपना शोक भूल जाते हैं। फिर मुझ दीन, हीन की क्या बात!]

नरेन्द्र को थोड़ा पेट का असुख हुआ है। मास्टर से कह रहे हैं— "प्रेम, भक्ति के पथ पर रहने से देह में मन आ जाता है। वह न हो तो मैं कौन? मनुष्य भी नहीं— देवता भी नहीं— मेरा सुख भी नहीं, दु:ख भी नहीं।"

(ठाकुर की आत्मपूजा— सुरेन्द्र को प्रसाद— सुरेन्द्र की सेवा)

रात के नौ हो चुके हैं। सुरेन्द्र प्रभृति भक्तों ने ठाकुर के निकट पुष्पमाला लाकर निवेदन की हैं! कमरे में बाबूराम, सुरेन्द्र, लाटु, मास्टर आदि हैं।

ठाकुर ने सुरेन्द्र की माला अपने गले में धारण की है, सब ही चुप किए हुए हैं। जो अन्तर में हैं, ठाकुर उन्हीं की पूजा कर रहे हैं।

हठात् सुरेन्द्र को इंगित करके बुला रहे हैं। सुरेन्द्र के शय्या के निकट आने पर प्रसादी माला (जो माला निज पहनी थी) लेकर स्वयं उनके गले में पहना दी।

सुरेन्द्र ने माला पाकर प्रणाम किया। ठाकुर फिर और उनको इंगित करके पैर पर हाथ फेरने के लिए कह रहे हैं। सुरेन्द्र ने कुछ क्षण ठाकुर की पदसेवा की।

(काशीपुर-उद्यान में भक्तों का संकीर्त्तन)

ठाकुर जिस कमरे में हैं, उसके पश्चिम की ओर एक तालाब है। इस तालाब के घाट के चबूतरे पर कई एक भक्त खोल-करताल लेकर गाना गा रहे हैं। ठाकुर ने लाटु के द्वारा कहला भेजा है— 'तुम लोग थोड़ा हरिनाम करो।'

मास्टर, बाबूराम आदि अभी ठाकुर के पास बैठे हुए हैं। वे सुन रहे हैं, भक्तगण गा रहे हैं—

हरि बोले आमार गौर नाचे।
नाचे रे गौरांग आमार हेमगिरिर माझे।

रांगा पाये सोनार नूपुर रुणु झुनु बाजे॥
थेको रे बाप नरहरि थेको गौरेर पाशे।
राधार प्रेमे गड़ा तनु धूलाय पड़े पाछे॥
बामेते अद्वैत आर दक्षिणे निताई।
तार माझे नाचे आमार चैतन्य गोसाँई॥

[भावार्थ— हरि बोल कर मेरा 'गौर' नाचता है। मेरा गौरांग हेमगिरि के बीच में नाचता है। लाल चरणों में सोने के नूपुर रुणु-झुनु बजते हैं। हे पिता नरहरि, ठहरो, गौर के पास आप रहो। राधा के प्रेम से गढ़ा हुआ शरीर धूलि में पड़ा है। बायें अद्वैतानन्द जी तथा दायें नित्यानन्द जी हैं। उसके बीच में मेरा गोसांई चैतन्य नाचता है।]

ठाकुर गाना सुनते-सुनते बाबूराम, मास्टर प्रभृति को इशारा करके कह रहे हैं— 'तुम लोग नीचे जाओ। उनके संग में गान करो— और नाचोगे।'

उन्होंने नीचे आकर कीर्त्तन में योगदान किया।

कुछ क्षण पीछे ठाकुर ने फिर और लोग भेजकर कह दिया, ये नए आखर (वाक्यांश) जोड़ोगे—

गौर नाचना भी जानता है रे!
गौर के भाव में बलि बलि जाऊँ रे!
गौर मेरा नाचे दोनों हाथ उठाकर!

कीर्त्तन समाप्त हो गया। सुरेन्द्र भावाविष्ट होकर गा रहे हैं—

आमार पागल बाबा, पागली आमार मा।
आमि तादेर पागल छेले, आमार मायेर नाम श्यामा॥
बाबा बम् बम् बोले, मद खेये मा गाये पड़े तले,
श्यामार एलोकेश होले;
रांगा पाये भ्रमर गाजे, ओई नूपुर बाजे शुनो ना।

[भावार्थ— मेरा पागल पिता है और पगली माँ है। मैं उनका पागल बच्चा हूँ, मेरी माँ का नाम श्यामा है। पिता बम् बम् बोलते हैं, मद खाकर मेरी माँ के पाँव लड़खड़ाते रहते हैं, श्यामा के खुले-बिखरे केश झूल रहे हैं। लाल चरणों में भ्रमर गूँज रहे हैं। वे जो नूपुर बज रहे हैं, तुम नहीं सुन पा रहे ?]

तृतीय परिच्छेद

(नरेन्द्र और ईश्वर का अस्तित्व— भवनाथ, पूर्ण, सुरेन्द्र)

ठाकुर श्रीरामकृष्ण का दर्शन करके हीरानन्द गाड़ी पर बैठ रहे हैं। गाड़ी के पास नरेन्द्र, राखाल खड़े हुए उनके साथ मिष्ट आलाप कर रहे हैं। समय दस। हीरानन्द कल फिर आएँगे। वे सब बातें श्री श्री कथामृत, द्वितीय भाग, सत्ताईसवें खण्ड में वर्णित हैं।

आज बुधवार है, 9वाँ वैशाख, चैत्र कृष्णा तृतीया— 21 अप्रैल, 1886 ईसवी। नरेन्द्र उद्यान-पथ पर टहलते-टहलते मणि के साथ बातें कर रहे हैं। घर में माँ और भाइयों को बड़ा कष्ट है— अभी तक भी सुबन्दोबस्त नहीं कर पाए हैं। उसके लिए चिन्तित हैं।

नरेन्द्र— विद्यासागर के स्कूल का काम मुझे नहीं चाहिए। गया जाऊँगा, सोच रहा हूँ। एक की जमींदारी के मैनेजर का काम है, किसी ने कहा है। ईश्वर-टीश्वर नहीं है।

मणि *(सहास्य)*— वैसा तो तुम अब कह रहे हो; पीछे नहीं कहोगे। Scepticism ईश्वर-लाभ के पथ की यह तो विशेष स्टेज है; ऐसी स्टेज पार होने पर, और भी आगे बढ़ने पर ही तो भगवान मिलते हैं— परमहंसदेव ने कहा है।

नरेन्द्र— जैसे वृक्ष देख रहा हूँ, वैसे ही क्या किसी ने भगवान को देखा है?

मणि— हाँ, ठाकुर ने देखा है।

नरेन्द्र— वह मन की भूल हो सकती है।

मणि— जिस-जिस अवस्था में जो देखता है, उसी अवस्था में वह उसके पक्ष में रीयेलिटी— सत्य है। जब तक स्वप्न देखते हो, एक बाग में गए हो वह बाग तुम्हारे लिए रीयेलिटी है; किन्तु तुम्हारी अवस्था बदलने पर— जैसे जागरण अवस्था में— तुम्हें तब वह भूल बोध हो सकती है। जिस अवस्था में ईश्वर-दर्शन किया जाता है— वह अवस्था होने पर तब रीयेलिटी (सत्य) बोध होगा।

नरेन्द्र— मैं Truth (सत्य) चाहता हूँ। उस दिन परमहंस महाशय के संग में

खूब तर्क किया।

मणि *(सहास्य)*— क्या हुआ था?

नरेन्द्र— उन्होंने मुझ से कहा था, 'मुझको कोई-कोई ईश्वर कहता है।' मैंने कहा 'हजार लोग ईश्वर कहें, मुझे जब तक यह सत्य जानकर बोध नहीं होता, तब तक नहीं कहूँगा।'

"वे बोले, 'अनेकजन जो कहेंगे, वही तो सत्य है— वही तो धर्म।

"मैं बोला, 'स्वयं ठीक तरह बिना समझे अन्य लोगों की कही बात नहीं सुनूँगा।"

मणि *(सहास्य)*— तुम्हारा भाव Copernicus, Barkeley आदि जैसा मत है। जगत के लोग कहते हैं— सूर्य चलता है, Copernicus ने वह नहीं सुना;— जगत के लोग कहते हैं external world (जगत) है, Barkeley ने वह नहीं सुना। तभी Lewis ने कहा 'Why was not Barkeley a philosophical Copernicus?— बर्कले क्यों एक दार्शनिक कोपरनिकस नहीं था?

नरेन्द्र— एक History of philosophy (फिलोसफी की हिस्ट्री) दे सकेंगे?

मणि— क्या Lewis (लिविस) की?

नरेन्द्र— ना Ueberweg युबरवेग की— German जर्मन पढ़नी पड़ेगी।

मणि— तुम कहते हो, सामने वृक्ष की तरह क्या किसी ने देखा है? वह ईश्वर मनुष्य होकर यदि आकर कहें, 'मैं ईश्वर हूँ' तो फिर क्या तुम विश्वास करोगे? तुम लजारस की कहानी तो जानते हो? जब लजारस ने परलोक में जाकर इब्राहम से कहा कि मैं अपने सम्बन्धियों, मित्रों से कह आता हूँ कि सचमुच ही परलोक और नरक हैं। इब्राहम ने कहा, तुम जाकर कहोगे तो क्या वे विश्वास करेंगे? वे कहेंगे कोई एक ठग आकर ऐसी बातें कर रहा है।

"ठाकुर ने कहा है, उनको विचार करके नहीं जाना जाता। विश्वास से ही समस्त होता है;— ज्ञान, विज्ञान, दर्शन, आलाप— सब।"

भवनाथ ने विवाह किया है। उसको अन्न की चिन्ता हो गई है। वे मास्टर

के पास आकर कह रहे हैं, 'विद्यासागर का नया स्कूल होगा, सुना है। मुझे भी तो खाने का बन्दोबस्त करना होगा। स्कूल का कोई काम करने से नहीं होगा?'

(रामलाल— पूर्ण का गाड़ी-भाड़ा— सुरेन्द्र का खसखस का परदा)

समय तीन–चार का है। ठाकुर लेटे हैं। श्रीयुक्त रामलाल पदसेवा कर रहे हैं। कमरे में सींथी के गोपाल और मणि हैं। रामलाल दक्षिणेश्वर से आज ठाकुर को देखने आए हैं।

ठाकुर मणि को खिड़की बन्द कर देने के लिए और पाँवों पर हाथ फेरने के लिए कह रहे हैं।

श्रीयुक्त पूर्ण को भाड़े की गाड़ी करके काशीपुर–उद्यान में आने के लिए कहा था। वे दर्शन कर गए हैं। गाड़ी का किराया मणि देंगे। ठाकुर गोपाल को इंगित करके पूछ रहे हैं, ''इनसे रुपया मिला?''

गोपाल— जी हाँ।

रात के नौ हो गए। सुरेन्द्र, राम आदि कलकत्ता जाने का उद्योग कर रहे हैं।

वैशाख मास की धूप— दिन के समय ठाकुर का कमरा बड़ा ही गरम हो जाता है। सुरेन्द्र ने इसीलिए खसखस ला दी है। परदा बनवाकर खिड़की में टाँग देने से कमरा अच्छा ठण्डा हो जाएगा।

सुरेन्द्र— कहाँ है, खसखस का पर्दा? कहाँ, टाँगा तो नहीं गया?— कोई भी ध्यान नहीं देता।

एक भक्त *(सहास्य)*— भक्तों की अब ब्रह्मज्ञान की अवस्था है। अब 'सोऽहम्'— जगत मिथ्या है। और फिर 'तुम प्रभु, मैं दास' यह भाव जब आएगा, तब यह सब सेवा होगी। *(सब का हास्य)*।

परिशिष्ट–1

बराहनगर–मठ

(नरेन्द्र, राखाल आदि भाइयों का 'शिवरात्रि–व्रत')

बराहनगर–मठ। श्रीयुक्त नरेन्द्र, राखाल आदि ने आज श्री शिवरात्रि का उपवास किया है। दो दिन पश्चात् ठाकुर की जन्मतिथि–पूजा होगी।

बराहनगर मठ अभी पाँच मास हुए स्थापित हुआ है। ठाकुर श्रीरामकृष्ण को नित्यधाम में गए अधिक दिन नहीं हुए। नरेन्द्र, राखाल आदि भक्तों में तीव्र वैराग्य है। एक दिन राखाल के पिता उसे घर लौटा ले जाने के लिए राखाल से अनुरोध करने आए थे। राखाल ने कहा,
''क्यों आप कष्ट करके आते हैं! मैं यहाँ पर अच्छा हूँ। अब आशीर्वाद करें, जैसे आप मुझे भूल जाएँ, और मैं आप लोगों को भूल जाऊँ।''

सब को ही है तीव्र वैराग्य! सर्वदा साधन–भजन लेकर रहते हैं। एक उद्देश्य है— कैसे भगवान–दर्शन हो।

नरेन्द्र आदि भक्तगण कभी जप–ध्यान करते हैं, कभी शास्त्र–पाठ करते हैं। नरेन्द्र कहते हैं,

''गीता में भगवान जो निष्काम कर्म करने के लिए कहते हैं— वह पूजा, जप, ध्यान इत्यादि ऐसे ही कर्म हैं— अन्य कर्म नहीं।''

आज सुबह नरेन्द्र कलकत्ता आए हैं। घर के मुकदमे की पैरवी करनी है। अदालत में साक्षी देनी होती है।

मास्टर नौ बजे मठ में पहुँचे हैं। 'दानवों के कमरे' में प्रवेश करने पर उनको देखकर श्रीयुक्त तारक आनन्द में शिव का गाना गाने

लगे—

'ताथैया ताथैया नाचे भोला'।

उनके गाने के संग राखाल ने भी योग दिया। और गाना गाते-गाते दोनों जन नृत्य करने लगे। इस गाने की नरेन्द्र ने अभी-अभी रचना की है।

ताथैया ताथैया नाचे भोला, बम् बम्, बाजे गाल।
डिमि डिमि डिमि डमरू बाजे दुलिछे कपाल माल।
गरजे गंगा जटा माझे, उगरे अनल-त्रिशूल राजे।
धक् धक् धक् मौलि बन्ध, ज्वले शशांक भाल।

[भावार्थ— ताथैया, ताथैया करके भोला नाच रहे हैं, बम् बम् मुँह से बज रहा है। डिमि-डिमि-डिमि डमरू बज रहा है और कपाल की माला झूल रही है। जटा के बीच में गंगा गरज रही है। आग उगलता हुआ त्रिशूल शोभायमान है। धक्-धक्-धक् करते हुए मस्तक पर जूड़ा बँधा हुआ है, भाल पर चन्द्र अच्छा लग रहा है।]

मठ के सब भाइयों ने उपवास किया हुआ है। कमरे में अब नरेन्द्र, राखाल, निरञ्जन, शरत्, शशी, काली, बाबूराम, तारक, हरीश, सींथी के गोपाल, शारदा और मास्टर हैं। योगीन, लाटु श्री वृन्दावन में हैं। उन्होंने अभी तक मठ नहीं देखा।

आज सोमवार है; शिवरात्रि; 21 फरवरी, 1887 ईसवी। आगामी शनिवार को शरत्, काली, निरञ्जन, शारदा, श्री श्रीजगन्नाथ दर्शनार्थ श्री पुरीधाम की यात्रा करेंगे।

श्रीयुक्त शशी दिन-रात ठाकुर की सेवा लेकर रहते हैं। पूजा हो गई। शरत् तानपुरा लेकर गाना गा रहे हैं—

शिव शंकर बम् बम् (भोला), कैलाशपति महाराजराज!
उड़े श्रृंग कि खेयाल, गले ब्याल माल, लोचन विशाल, लाले लाल;
भाले चन्द्र शोभे, सुन्दर विराजे।

नरेन्द्र कलकत्ता से अभी आए ही हैं। अभी तक स्नान नहीं किया। काली ने नरेन्द्र से पूछा,

मुकदमे की क्या खबर है?

नरेन्द्र *(विरक्त होकर)*— तुम लोगों को उस बात से क्या मतलब?

नरेन्द्र तम्बाकू पी रहे हैं और मास्टर आदि के साथ बातें कर रहे हैं— ''कामिनी-काञ्चन-त्याग बिना किए नहीं होगा। कामिनी नरकस्य द्वारम्। जितने भी मनुष्य हैं, सब स्त्रियों के वश में हैं। शिव और कृष्ण, इनकी बात अलग है। शक्ति को शिव ने दासी बनाकर रखा हुआ था। श्रीकृष्ण ने संसार तो किया था, किन्तु कैसे निर्लिप्त थे!— वृन्दावन कैसे तुरन्त त्याग दिया!''

राखाल— और फिर द्वारिका कैसे त्याग कर दी!

नरेन्द्र गंगा-स्नान करके मठ में लौटे। हाथ में गीली धोती और अँगोछा है। शारदा ने समस्त शरीर पर मिट्टी मलकर— आकर नरेन्द्र को साष्टांग होकर नमस्कार किया। उन्होंने भी शिवरात्रि का उपवास किया है— गंगा-स्नान के लिए जाएँगे। नरेन्द्र ने कमरे में जाकर ठाकुर को प्रणाम किया और बैठकर कितनी ही देर तक ध्यान किया।

भवनाथ की बात होती है। भवनाथ ने विवाह कर लिया है, काम-काज करना पड़ता है। नरेन्द्र कहते हैं, ''वे तो संसारी कीट हैं!''

अपराह्ण हो गया। शिवरात्रि की पूजा का आयोजन हो रहा है। बेलकाठ और विल्वपत्र चुने गए हैं। पूजान्ते होम होगा।

सन्ध्या हो गई। ठाकुर-कमरे में धूना देकर शशी अन्य-अन्य कमरों में भी धूना लेकर गए। प्रत्येक देव-देवी के पट के पास प्रणाम करके अति भक्ति भरा नाम उच्चारण कर रहे हैं—

''श्रीश्रीगुरुदेवाय नमः! श्रीश्रीकालिकायै नमः! श्रीश्रीजगन्नाथ सुभद्रा-बलरामेभ्यो नमः! श्रीश्रीषड्भुजाय नमः! श्रीश्रीराधा-वल्लभाय नमः! श्रीनित्यानन्दाय, श्रीअद्वैताय, श्रीभक्तेभ्यो नमः! श्री गोपालाय, श्री श्रीयशोदायै नमः! श्रीरामाय, श्रीलक्ष्मणाय, श्रीविश्वामित्राय नमः!''

मठ के बेलतले शिवपूजा का आयोजन।— रात्रि नौ। अब प्रथम पूजा होगी। साढ़े ग्यारह बजे दूसरी पूजा। रात के चार प्रहरों में चार पूजा हैं। नरेन्द्र, राखाल, शरत्, काली, सींथी के गोपाल प्रभृति मठ के भाई सब ही बेलतले उपस्थित हैं। भूपति और मास्टर भी हैं। मठ के भाइयों

में से एक जन पूजा कर रहे हैं।

काली गीता-पाठ कर रहे हैं। सैन्य-दर्शन— सांख्ययोग— कर्मयोग। पाठ के बीच-बीच में नरेन्द्र के साथ कथा और विचार होता है।

काली— मैं ही सब। मैं सृष्टि, स्थिति, प्रलय करता हूँ।

नरेन्द्र— मैं सृष्टि कहाँ करता हूँ? और एक शक्ति मुझसे करवाती है। ये नाना कार्य— चिन्ता तक वे करवाते हैं।

मास्टर *(स्वगत)*— ठाकुर ने कहा, जब तक मैं 'ध्यान करता हूँ' यह बोध है, तब तक भी आद्याशक्ति का इलाका है! शक्ति को मानना ही होगा।

काली निःस्तब्ध होकर कुछ देर चिन्तन करते हैं। तब फिर कहते हैं—

''जिन कार्यों की बात तुम कहते हो, वे सब मिथ्या हैं!— चिन्तन तो बिल्कुल भी नहीं होता— वे सब याद करने पर हँसी आती है—''

नरेन्द्र— 'सोऽहम्' कहने पर जो 'मैं' समझ में आता है, वह यह 'मैं' नहीं है। मन, देह इत्यादि सब के छोड़ने के बाद जो बचता है, वही 'मैं'।

गीता पाठान्ते काली शान्तिपाठ बोल रहे हैं— शान्तिः! शान्तिः! शान्तिः!

अब नरेन्द्रादि भक्तगण सब खड़े होकर नृत्य, गीत करते-करते बिल्वमूल की बार-बार परिक्रमा कर रहे हैं। बीच-बीच में समस्वर में 'शिवगुरु!' 'शिवगुरु!'— यह मन्त्र उच्चारण कर रहे हैं। गम्भीर रात्रि। कृष्णपक्ष की चतुर्दशी तिथि। चारों ओर अन्धकार! जीव, जन्तु सब ही निःस्तब्ध।

गैरिक वस्त्रधारी, इन कौमार-वैराग्यवान भक्तगणों के कण्ठों से उच्चारित 'शिवगुरु!' 'शिवगुरु!'— यह महामन्त्रध्वनि मेघगम्भीररव से अनन्त आकाश में चढ़कर अखण्ड सच्चिदानन्द में लीन होने लगी!

पूजा समाप्त हो गई। अरुणोदय होय होय (हुआ कि हुआ)। नरेन्द्र आदि भक्तों ने ब्रह्ममुहूर्त्त में गंगास्नान किया।

सुबह हो गई। स्नानान्ते भक्तगण मठ में ठाकुर-मन्दिर में जाकर ठाकुर को प्रणाम करने के पश्चात् दानवों के कमरे (बैठक) में क्रम-क्रम

से आकर एकत्रित हो रहे हैं। नरेन्द्र ने सुन्दर नव गैरिक वस्त्र धारण किया है। वसन के सौन्दर्य के संग उनके मुख और देह की तपस्या सम्भूत अपूर्व स्वर्गीय पवित्र ज्योति मिल रही है। वदनमण्डल है— तेज:परिपूर्ण और प्रेमानुरञ्जित! जैसे अखण्ड, सच्चिदानन्दसागर का एक बिन्दु ज्ञान-भक्ति सिखाने के लिए देव-देह धारण करके आया है— अवतार-लीला की सहायता के लिए। जो देखता है, वह फिर दृष्टि फिरा नहीं सकता। नरेन्द्र की आयु ठीक चौबीस वर्ष है। ठीक इसी आयु में श्री चैतन्य ने संसार-त्याग किया था।

भक्तों के पारण* के लिए श्रीयुक्त बलराम ने अपने घर से फल, मिष्टान्न आदि पहले दिन (शिवरात्रि के दिन) ही भेज दिए हैं।

राखाल आदि दो एक भक्तों के संग नरेन्द्र कमरे में खड़े-खड़े किञ्चित् जलपान कर रहे हैं। थोड़ा-सा खाकर आनन्द करते-करते कह रहे हैं, 'धन्य बलराम, धन्य बलराम!' *(सब का हास्य)*।

अब नरेन्द्र बालक की न्यायीं खेल कर रहे हैं। रसगुल्ला मुख में रखकर एकदम स्पन्दहीन! चक्षु निमेषशून्य! नरेन्द्र की अवस्था देखकर एक भक्त ने बनावटी भाण (अभिनय) करके उनको पीछे से पकड़ लिया— कहीं पीछे गिर न जाएँ!

कुछ क्षण पश्चात् नरेन्द्र (रसगुल्ला मुख में रखे हुए ही)— आँखें खोलकर कह रहे हैं, ''मैं— अच्छा— हूँ।'' *(सब का उच्च हास्य)*।

मास्टर आदि को सिद्धि (भंग) और मिठाई-प्रसाद वितरण किया गया।

मास्टर आनन्द की हाट देख रहे हैं। भक्तगण जय-ध्वनि कर रहे हैं।

—''जय गुरु महाराज! जय गुरु महाराज!''

---

* पारण = उपवास के दूसरे दिन किया जाने वाला भोजन।

परिशिष्ट–2

इस ग्रन्थ में आए अपूर्ण गानों का पूरा रूप

गानों की सूची

पृष्ठ संख्या

गाने के अन्त में—

— पुस्तक का नाम

— भाग : 1, 2 या 3

— खण्ड (अध्याय)

— परिच्छेद देने के बाद पाठकों की सुविधा के लिए ब्रैकट में पृष्ठ संख्या भी दी गयी है। ये पृष्ठ संख्या सभी भागों के द्वितीय संस्करणों की है।

भाग-1 का द्वितीय संस्करण सन् 1998 में

भाग-2 का द्वितीय संस्करण सन् 2008 में तथा

भाग-3 का द्वितीय संस्करण सन् 2009 में प्रकाश में आया।

सो, पृष्ठ संख्या क्रमशः सन् 1998, 2008 तथा सन् 2009 के संस्करणों की है।

परिशिष्ट–2

इस ग्रन्थ में आए अपूर्ण गानों का पूरा रूप

1.

आय मन बेड़ाते जाबि।
काली कल्पतरुमूले रे मन, चारि फल कुड़ाये पाबि॥
प्रवृत्ति निवृत्ति जाया, निवृत्ति रे संगे लोबि।
विवेक नामे तार बेटा रे, तत्त्व कथा ताय शुधाबि॥
प्रथम भार्यार सन्तानेरे दूर होते बुझाइबि।
यदि ना माने प्रबोध ज्ञान सिन्धु माझे डुबाइबि॥
शुचि अशुचिरे लोये दिव्य घरे कबे शुबि।
तादेर दुइ सतीने पिरित होले तबे श्यामा माके पाबि॥
धर्माधर्म दुटो अजा, तुच्छ खोटाय बेधे थूबि।
यदि न माने निषेध, तबे ज्ञान खड्गे बलि दिबि॥
अहंकार अविद्या तोर, पितामाताय ताड़िये दिबि।
यदि मोहगर्ते टेने लय, धैर्य खोटा धरे रबि॥
प्रसाद बोले एमन होले कालेर काछे जवाब दिबि।
तबे बापू बाछा बापेर ठाकुर मनेर मत मन होबि॥

[भावार्थ— आ रे मन, टहलने चलें। काली-कल्पतरु के नीचे तुझे चारों फल— धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष मिलेंगे। प्रवृत्ति और निवृत्ति पत्नियाँ हैं। निवृत्ति को साथ लेना। उनका विवेक नामक पुत्र है। उसे सार बात बताना। प्रथम पत्नी की सन्तान को दूर से समझाना, यदि न समझे तो ज्ञान-सिन्धु में डुबा देना। शुचि-अशुचि को संग लेकर दिव्य (पवित्र) घर में कब सोएगा? जब उन दोनों सौतों में प्रेम हो जाएगा, तब श्यामा माँ मिलेंगी। धर्म, अधर्म दो बकरियाँ हैं, उन्हें एक छोटे खूँटे पर बाँध देना। यदि तुम्हारा निषेध न मानें, तो ज्ञान-खड्ग से बलि दे देना।

अहंकार-अविद्या— तेरे पिता-माता हैं, उन्हें मार कर भगा देना। यदि वे मोह-गर्त में खींचने लगें, तो धैर्य का खूँटा पकड़े रहना। प्रसाद कहता है, ऐसा होने पर काल के निकट जवाब दे देना। तभी तू भाई, बचेगा और भगवान पिता के मन की भाँति तेरा मन हो जाएगा।]

— कथामृत 1-2-6(61), 1-9-2(156)

2.

डाको देखि मन डाकार मत केमन श्यामा थाकते पारे।
केमन श्यामा थाकते पारे, केमन काली थाकते पारे॥
मन यदि एकान्त होओ, जवा बिल्वदल लओ।
भक्ति चन्दन मिशाइये (मार) पदे, पुष्पांजलि दाओ॥

[भावार्थ— हे मन! आन्तरिक पुकार से पुकारो तो देखूँ फिर माँ कैसे रह सकती हैं? कैसे श्यामा रहती हैं? कैसे काली रह सकती हैं? हे मन, यदि एकान्त में हो तो जवा, बिल्वदल ले लो और भक्ति रूप चन्दन मिलाकर (माँ के) चरणों में पुष्पांजलि प्रदान करो।]

— कथामृत 1-1-5(31)

3.

जीव साज समरे, रणवेशे काल प्रवेशे तोर घरे।
भक्ति रथे चड़ि, लये ज्ञान तूण, रसना-धनुके दिये प्रेम गुण,
ब्रह्ममयीर नाम ब्रह्म अस्त्र ताहे सन्धान करे॥
आर एक युक्ति रणे, चाइ ना रथरथी, शत्रुनाशे जीव होबे सुसंगति,
रणभूमि यदि करे दाशरथी भागीरथीर तीरे॥

[भावार्थ— हे जीव, समर के लिए सजो, रणवेश में काल ने तेरे घर में प्रवेश कर लिया है। भक्ति के रथ पर चढ़कर, ज्ञान-तरकश लेकर, रसना रूपी धनुष को प्रेम की डोरी लगाकर, ब्रह्ममयी के नाम रूपी ब्रह्मास्त्र को उस पर सन्धान करो। रण की एक युक्ति और है। दाशरथी कहता है कि यदि तुम भागीरथी के तीर पर

रणभूमि बना लेते हो तो रथ-रथी की जरूरत नहीं पड़ेगी, शत्रु का नाश होगा और जीव को सुसंगति मिल जाएगी।]

— कथामृत 2-3-5(56)

4.

दोष कारु नय गो मा, आमि स्वखात सलिले डूबे मरि श्यामा।
षडरिपु होलो कोदण्डस्वरूप, पुण्यक्षेत्र माझे काटिलाम कूप,
से कूपे बेड़िलो कालरूप जल, काल-मनोरमा॥
आमार कि होबे तारिणी, त्रिगुणधारिणी—विगुण करेछे स्वगुणे!
किसे ए बारि निबारि भेवे दाशरथिर अनिवार वारि नयने;
छिलो वारि कक्षे, क्रमे एलो वक्षे, जीवने जीवन केमने होय माँ रक्षे,
आछि तोर अपिक्षे, दे मा मुक्तिभिक्षे, कटाक्षेते कोरे पार॥

[भावार्थ— हे माँ श्यामा, दोष किसी का नहीं है, मैं अपने खोदे हुए कुएँ में डूब कर स्वयं मर रहा हूँ। छः रिपु— काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य आदि धनुष स्वरूप हैं, पवित्र क्षेत्र में कुआँ खोद लिया था। उस कूप में कालरूप जल भर गया है। हे काल-मनोरमा! काल की कामिनी! हे तारिणी, मेरा क्या होगा? हे त्रिगुणधारिणी, तुम तो अपने गुणों द्वारा गुणरहित कर देती हो। कैसे इस जल को हटाऊँ— यह सोच कर दाशरथी के नेत्रों से सतत जल बह रहा है। जल पहले तो जल के स्थान (नेत्रों) तक ही था, धीरे-धीरे छाती तक आ गया है। अब जीवन की रक्षा कैसे होगी माँ? मैं तो तुम्हारी आशा में हूँ। माँ! तुम मुक्ति दो, तुम तो अपने कटाक्ष— मात्र एक नज़र, से ही पार कर देती हो।

— कथामृत 2-3-3(45)

5.

भाव श्रीकान्त नरकान्तकारी रे।
नितान्त कृतान्त भयान्त होबि॥
भाबिले भव भावना जाक रे—

तरे तरंगे भ्रूभंगे त्रिभंगे जेबा भावे।
एलि कि तत्त्वे, ए मर्त्ये कुचित्त कुवृत्त करिले कि हबे रे—
उचित तो नय, दाशरथिरे डुबाबि रे—
करो ए चित्त प्राचित्त, से नित्य पद भेबे॥

[भावार्थ— हे मन, नर-कान्तकारी (मनुष्य को सुन्दर करने वाले) श्रीकान्त (श्रीकृष्ण) का चिन्तन करो। तुम यमराज के भय से बिल्कुल निडर हो जाओगे। उनका चिन्तन करने पर भव (जगत) की चिन्ता चली जाती है। जो त्रिभंगी का चिन्तन करते हैं, वे उनकी भ्रू-भंग से भव-तरंग तर जाते हैं। क्या सोचते हो, इस मर्त्य शरीर में बुरी वृत्ति लेकर चित्त को बुरा करने से क्या होगा रे?— दाशरथि कहते हैं कि डुबाएँगे, ऐसा तो उचित नहीं है— जो अपने इस चित्त को उनके चित्त में लगा देता है, वह नित्यपद पाता है।)

— कथामृत 3-11-3(161)

6.

घरेर बाहिरे दण्डे शतबार, तिले तिले आइसे जाय।
मन उचाटन निःश्वास सघन, कदम्ब कानने चाय॥
(राइ एमन केने वा होइलो)।
गुरु दुरु जन, भय नाहि मन, कोथा वा कि देबो पाइलो॥
सदाइ चंचल, बसन अंचल, सम्वरण नाहि करे।
बसि बसि थाकि, उठये चमकि, भूषण खसिया पड़े॥
वयसे किशोरी, राजार कुमारी, ताहे कुलवधु बाला।
किवा अभिलाषे, आछये लालसे, ना बुझि ताहार छला॥
ताहार चरिते, हेनो बुझि चिते, हात बाडाइलो चान्दे।
चण्डीदास कय, करि अनुनय, ठेकेछे कालिया फान्दे॥

[भावार्थ— घर के बाहिर सैंकड़ों बार खड़ी होती हैं, क्षण-क्षण में आती-जाती हैं। मन उचाट हो रहा है और गहरे श्वास-प्रश्वास लेती हुई कदम्ब-कानन की ओर देख रही हैं। (राधा ऐसी क्यों हो गईं हैं!) बड़ों का और दुष्टों का भी मन में भय नहीं है, या इन्हें कहीं से कोई देवता मिल गया है? सदा ही चंचल हैं, वस्त्र और

आँचल को सम्भाल नहीं पा रहीं। बैठी-बैठी रहती हैं, और चौंक-चौंक कर उठती हैं, जेवर गिर पड़ता है। ये राजकुमारी आयु में किशोरी और फिर कुलवधु हैं। क्या अभिलाषा और लालसा है, उनकी छलना समझ में नहीं आ रही। ऐसा लगता है कि वे चाँद की ओर हाथ बढ़ा रही हैं। चण्डीदास अनुनय-विनय करके कहते हैं कि वे काले कन्हाई के फन्दे में आ गई हैं।]

— कथामृत 2-24-4(322)

7.

समर आलो करे कार कामिनी!
सजल जलद जिनिया काय, दशने प्रकाशे दामिनी॥
एलाय चाँचर चिकुर-पाश, सुरासुर माझे ना करे त्रास,
अट्टहासे दानव नाशे, रण प्रकाशे रंगिणी॥
किबा शोभा करे श्रमज बिन्दु, घनतनु घेरि कुमुदबन्धु,
अमिय सिन्धु हेरिया इन्दु, मलिन ए कोन मोहिनी॥
ए कि असम्भव भव पराभव, पदतले शवसदृश नीरव,
कमलाकान्त करो अनुभव, के बोटे ओ गजगामिनी॥

[भावार्थ— किसकी कामिनी समर (आँगन) को आलोकित कर रही है?— जिसका शरीर सजल मेघ जैसा है और दाँतों में बिजली चमक रही है— जो अपने पास घुँघरू वाले केश बिखेर कर सुर-असुरों के मध्य भी तनिक-सा नहीं भयभीत होती। और अट्टहास करती हुई, दानवों का नाश करती हुई रण में यह रंगिणी प्रकाशित हो रही है। श्रम से निकले बिन्दु घन-शरीर रूपी कुमुदों को घेर कर कैसी शोभा दे रहे हैं! अमृत सागर-रूप चन्द्र देख कर यह कौन मोहिनी मलिन हो गई है? क्या यह असम्भव है कि इनके चरणों के नीचे शव की भाँति भव को पराभूत करने वाले शिव चुपचाप लेटे हुए हैं? कमलाकान्त सोचते हैं कि यह गजगामिनी फिर कौन है?]

— कथामृत 2-20-2(272)

8.

कि देखिलाम रे, केशव भारतीर कुटीरे,
अपरूप ज्योति, श्री गौरांग मूरति, दुनयने प्रेम बहे शतधारे,
गौर मत्तमातंगेर प्राय, प्रेमावेशे नाचे गाये,
कभु धूलाते लुटाय, नयन जले भासे रे,
कांदे आर बोले हरि, स्वर्गमर्त्य भेद करि, सिंहरवे रे;
आबार दन्ते तृण लये, कृतांजलि होये,
दास्य मुक्ति याचेन बारे बारे।
मुड़ाय चाँचर केश, धरेछेन योगीर वेश,
देखे भक्ति प्रेमावेश, प्राण केंदे उठे रे;
जीवेर दुःखे कातर होये,
एलेन सर्वस्व त्यजिये प्रेम बिलाते रे;
प्रेमदासेर वांछा मने, श्री चैतन्य चरणे,
दास होये बेड़ाइ द्वारे द्वारे।

[भावार्थ— केशव भारती की कुटीर में मैंने कैसी अपूर्व ज्योतिर्मय श्री गौरांग की मूर्त्ति देखी जिसके दोनों नयनों से शतधाराओं में प्रेम बहता है। मस्त हाथी की तरह गौरांग नाचते हैं, गाते हैं और कभी धूल में, नयन-जल में बहते हुए-से, लोटते हैं। वे सिंह-रव से स्वर्गलोक और मर्त्यलोक का भेदन करके रोते हुए हरि को पुकार रहे हैं। फिर दाँतों में तृण लेकर, बद्धांजलि हो, बार-बार दास की मुक्ति माँगते हैं। घुँघराले बाल मुण्डवा कर योगीवेश धारण किया है। उनका भक्ति-प्रेमावेश देखकर प्राण रो उठते हैं रे! जीव के दुःख में कातर होकर, सर्वस्व त्यागकर वे 'प्रेम' बाँटने आए हैं। प्रेमदास की मनोकामना है कि वह श्री चैतन्य-चरणों का दास बनकर द्वार-द्वार घूमे।]

— कथामृत 2-12-3(145)

9.

जादेर हरि बोलते नयन झरे तारा तारा दुभाई एसेछे रे।
(जारा आपनि केंदे जगत काँदाय) (जारा मार खेये प्रेम याचे)
(जारा ब्रजेर कानाई बलाई) (जारा ब्रजेर माखन चोर)

(जारा जातिर विचार नाहिं करे) (जारा आपामरे कोल देय)
(जारा आपनि मेते जगत माताय) (जारा हरि होय हरि बोले)।
(जारा जगाई माधाई उद्धारिलो) (जारा आपन पर नाहि बाचे)।
जीव तराते तारा दुभाई एसेछे रे। (निताई गौर)।

[भावार्थ— जिनके हरि कहते-कहते दोनों नयन झरते हैं, वे दो भाई आए हैं। जो स्वयं रोकर जगत को रुलाते हैं, जो मार खाकर भी प्रेम माँगते हैं, जो ब्रज के कान्हाई-बलाई हैं, जो ब्रज के माखनचोर हैं, जो जाति का विचार नहीं करते, जो अधम तक को आलिंगन करते हैं, जो स्वयं मतवाले होकर जगत को मतवाला बनाते हैं, जो स्वयं हरि होकर हरि बोलते हैं, जिन्होंने जगाई-मधाई का उद्धार किया है, जो अपना-पराया नहीं देखते, जीवों का उद्धार करने वे दो भाई आए हैं— निताई, गौर आए हैं।]

— कथामृत 2-24-4(325)

10.

श्री दुर्गा नाम जपो सदा रसना आमार।
दुर्गमे श्रीदुर्गा बिने के करे निस्तार॥
दुर्गानाम तरी भवार्णव तरिवारे,
मासितेछे सेई तरी श्रद्धासरोवरे।
श्रीगुरु करुणा करि जेइ धन दिले,
साधना करहो तरी मिलिबे गो कूले॥
यदि बोलो छय रिपु होइये पवन,
धरिते ना दिबे तरी करिबे तुफान।
तुफानेते कि करिबे श्रीदुर्गानाम जार तरी,
अवश्य पाइबे कूल मृत्युंजय जार काण्डारी॥
तुमि स्वर्ग, तुमि मर्त्य मा, तुमि से पाताल,
तोमा होते हरि, ब्रह्मा, द्वादश गोपाल।
दश महाविद्या माता, दश अवतार,
एबार कोनोरूपे आमाय करिते होबे पार॥

चल अचल तुमि मा तुमि सूक्ष्म, स्थूल,
सृष्टि, स्थिति, प्रलय तुमि मा तुमि विश्वमूल,
त्रिलोकजननी तुमि, त्रिलोक तारिणी;
सकलेर शक्ति तुमि मा तोमार शक्ति तुमि॥

ठाकुर गायक के संग पुनः पुनः गाने लगे—

चल अचल तुमि मा तुमि सूक्ष्म, स्थूल,
सृष्टि, स्थिति, प्रलय तुमि मा तुमि विश्वमूल,
त्रिलोकजननी तुमि, त्रिलोक तारिणी;
सकलेर शक्ति तुमि मा तोमार शक्ति तुमि॥

कीर्त्तनिया ने फिर और आरम्भ किया—

वायु, अन्धकार आदि शून्य आर आकाश,
रूप दिक् दिगन्तर तोमा होते प्रकाश।
ब्रह्मा विष्णु आदि करि जतेक अमरे,
तव शक्ति प्रकाशिछे सकल शरीरे॥
इड़ा पिंगला सुषुम्ना बज्रा चित्राणीते,
क्रमयोगे आछे जेगे सहस्त्रा होइते।
चित्राणीर मध्ये ऊर्ध्वे आछे पद्म सारि सारि,
शुक्लवर्ण सुबर्णबर्ण विद्युतादि करि॥
दुइ पद्म प्रस्फुटित एकपद्म कोढ़ा,
अधोमुखे ऊर्ध्वे मुखे आछे दुइ पद्म जोड़ा।
हंसरूपे बिहार तथाय करोगो आपनि,
आधार कमले होओ मा कुलकुण्डलिनी॥
तदूर्ध्वे मणिपुर नाम नाभिस्थल,
रक्तवर्ण पद्म ताहे आछे दशदल।
सेइ पद्मे तव शक्ति अनल आछय,
से अनल निबृत्ति होले सकलइ निभाय॥
हृदि पद्मे आकाश मानस सरोवर,
अनाहत पद्म भासे ताहार उपर।

सुबर्णबर्ण द्वादशदल तथाय शिव बाण,
सेइ पद्मे तव शक्ति जीव आर प्राण॥

तदूर्ध्वे कण्ठदेश धुम्रवर्ण पद्म,
षोडशदल नाम ताँर पद्म विशुद्धाख्य।
सेइ पद्मे तव शक्ति आछये आकाश,
से आकाश रुद्ध होले सकलि आकाश॥

तदूर्ध्वे शिरसि मध्ये पद्म सहस्रदल,
गुरुदेवेर स्थान सेइ अति गुह्य स्थल।
सेइ पद्मे विश्वरूपे परमशिव विराजे,
एका आछेन शुक्लवर्ण सहस्रदल पंकजे॥

ब्रह्मरन्ध्र आछे यथा शिव विश्वरूप,
तुमि तथा गेले, शिव होन स्वीयरूप।
तथा शिवसंगे रंगे करो गो विहार,
विहार समापने शिव होन बिम्बाकार॥

[भावार्थ— हे मेरी रसना, तुम सदा श्री दुर्गानाम जपो। इस दुर्गम स्थान से श्री दुर्गा बिना कौन निस्तार कर सकता है? भवसागर तरने के लिए दुर्गानाम की नाव श्रद्धा-सरोवर में तैर रही है। श्री गुरु करुणाकर जो धन देते हैं, साधना करने से वह नाव कूल (किनारे) पर लग जाती है।

यदि कहो कि छह रिपु पवन बन कर नाव को तूफान में घेर लेंगे तो तूफान में से दुर्गा नाम की नाव अवश्य किनारा पा लेगी क्योंकि उसके कर्णधार मृत्युञ्जय हैं।

तुम ही स्वर्ग! मर्त्य, पाताल हो माँ! तुम से ही हरि, ब्रह्मा, द्वादश गोपाल, दश महाविद्या-माताएँ, दश अवतार हुए हैं। अब की बार मुझे किसी न किसी रूप में पार करना ही होगा। चल, अचल, सूक्ष्म, स्थूल, सृष्टि, स्थिति, प्रलय तुम ही हो। तुम ही विश्वमूल, त्रिलोकजननी, त्रिलोकतारिणी हो। सब की शक्ति तुम ही हो और तुम्हारी शक्ति भी तुम ही हो माँ।

वायु, अन्धकार आदि, शून्य और आकाश, दिशाएँ— सब तुम से ही प्रकाश पाकर रूपायित होते हैं। ब्रह्मा, विष्णु आदि जितने भी अमर हुए हैं, उन सब शरीरों में तुम्हारी शक्ति ही प्रकाशित हो रही है।

इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना, बज्रा, चित्राणी आदि क्रमशः सहस्रार से ही जाग रही

हैं। चित्राणी के मध्य में और ऊपर पंक्ति की पंक्तियाँ पद्म हैं। शुक्लवर्ण, सुवर्णवर्ण की विद्युत आदि की रोशनी देते हैं।

दो पद्म तो खिले हुए हैं और एक डोडी है। अधोमुख और ऊर्ध्वमुख दो जोड़े कमल हैं। माँ! आप वहाँ पर हंस रूप में, आधार कमल में, कुलकुण्डलिनी होकर विहार कर रही हो।

उसके ऊपर मणिपुर नाम नाभिस्थल है। उस पर रक्तवर्ण का दशदल कमल है। उस पद्म में तुम्हारी शक्ति, अग्नि रहती है, उस अग्नि के हट जाने पर सब ही बुझ जाता है।

हृदयपद्म में आकाश रूपी मानस सरोवर है, उस पर अनाहत पद्म तैर रहा है। वहाँ पर सुवर्ण रंग का द्वादश दल पद्म तथा शिव-बाण है। उस पद्म में तेरी शक्ति जीव और प्राण रूप में रहती है। उस के ऊपर कण्ठ स्थान में धूम्रवर्ण का षोडशदल विशुद्धा नामक पद्म है। उस पद्म में तेरी शक्ति आकाश रूप में रहती है, उस आकाश के रुद्ध हो जाने पर सब आकाश ही आकाश बन जाता है।

उसके ऊपर सिर में सहस्त्र दल पद्म है, गुरुदेव का अति गुह्य स्थल वही स्थान है। उसी पद्म में विश्व रूप में परमशिव विराजमान रहते हैं, और वे शुक्लवर्ण के सहस्त्र दल कमल में अकेले रहते हैं।

जहाँ पर शिव बिम्बरूप में हैं, वहाँ ब्रह्मरंध्र है। तुम्हारे वहाँ जाने पर शिव स्वीय रूप में हो जाते हैं। वहाँ पर तुम शिव के संग में आनन्द से विहार करती हो और विहार के समापन होने पर शिव बिम्बाकार में हो जाते हैं।]

— कथामृत 2-18-2(231)

11.

के जाने काली केमन, षड़दर्शने ना पाय दर्शन॥
मूलाधारे सहस्रारे सदा योगी करे मनन।
काली पद्म-बने हंससने हंसीरूपे करे रमण॥
आत्मारामेर आत्मा काली, प्रमाण प्रणवेर मतन।
तिनि घटे घटे विराज करेन इच्छामयीर इच्छा जेमन॥
मायेर उदरे ब्रह्माण्ड-भाण्ड प्रकाण्ड ता जानो केमन।
महाकाल जेनेछेन कालीर मर्म अन्य केवा जाने तेमन॥

प्रसाद भासे लोके हासे सन्तरणे सिन्धु तरण।
आमार मन बुझेछे प्राण बुझे ना, धरबे शशी होये बामन॥

[भावार्थ— कौन जानता है काली कैसी हैं, षड्दर्शनों ने भी तो उनका दर्शन नहीं पाया है। मूलाधार और सहस्रार में योगी सदा मनन करते हैं। काली पद्मबन में हंस के सहित हंसी रूप में रमण करती हैं। आत्माराम की आत्मा काली, प्रणव के प्रमाण की न्यायीं हैं। इच्छामयी की जैसी इच्छा होती है, वैसे ही वे घट-घट में विराजती हैं। माँ के पेट में प्रकाण्ड ब्रह्माण्ड-बर्तन जानते हो कैसे है! महाकाल ने काली का मर्म जान लिया है। वैसा मर्म अन्य और कौन जान सकता है! प्रसाद तैरता है, जगत उसके सिन्धु पार करके तैरने पर हँसता है। मेरा मन तो समझ गया है किन्तु प्राण नहीं समझे हैं। वह (मन) बौना होकर शशि को पकड़ना चाहता है।]

— कथामृत 3-9-1(106)

12.

एबार आमि भालो भेवेछि।
भालो भावीर काछे भाव शिखेछि॥
जे देशे रजनी नाइ सेइ देशेर एक लोक पेयेछि।
आमि किबा दिबा किबा सन्ध्या सन्ध्यारे बन्ध्या करेछि॥
घु भेंगेछे आर कि घुमाइ योगे यागे जेगे आछि।
योगनिद्रा तोरे दिये मा, घुमेरे घुम पाड़ायेछि॥
सोहागा गंधक दिये खासा रंग चड़ायेछि।
मणि मन्दिर भेजे लोबे अक्ष दुटि करे कुंचि॥
प्रसाद बोले भुक्ति मुक्ति उभये माथाय रेखेछि।
(आमि) कालीब्रह्म जेने मर्म धर्माधर्म सब छेड़ेछि॥

[भावार्थ— अब की बार मैंने ठीक सोच लिया है। एक अच्छा सोचने वाले से मैंने सोचने का ढंग सीख लिया है। मुझे उस देश का कोई जन मिल गया है जहाँ रात नहीं है। दिन हो या शाम, मैंने सन्ध्या को भी बन्ध्या कर दिया है। निद्रा टूट गई है। अब और क्या सोऊँ? योग के यज्ञ में जगा हुआ हूँ। तुम्हारे द्वारा प्रदत्त योग-निद्रा पाकर, निद्रा को सुला दिया है। सुहागा, गन्धक द्वारा पक्का (असली) रंग चढ़ाया है। मन रूपी मन्दिर के फर्श पर दोनों अक्ष (आँखें) कुंचि-झाड़ू (brush) फेर

रही हैं। रामप्रसाद कहते हैं भुक्ति-मुक्ति दोनों को मैंने मस्तक पर रख रखा है। मैंने काली और ब्रह्म का मर्म जान कर धर्म-अधर्म सब छोड़ दिया है।]

— कथामृत 3-11-4(163)

13.

गौर निताई तोमरा दु'भाई, परम दयाल हे प्रभु

(आमि ताई शुने एसेछि हे नाथ)

आमि गियेछिलाम काशीपुरे,

आमाय कये दिलेन काशी विश्वेश्वरे,ओ से परब्रह्म शचीर घरे,

(आमि चिनेछि हे, परब्रह्म)।

आमि गियेछिलाम अनेक ठाँइ, किन्तु एमन दयाल देखि नाइ।

(तोमादेर मत)।

तोमरा ब्रजे छिले कानाइ, बलाइ, एखन नदे एसे होले गौर निताइ।

(से रूप लुकाए)।

ब्रजेर खेला छिलो दौड़ादौड़ि, एखन नदेर खेला धुलाय गड़ागड़ि।

(हरिबोल बोले हे) (प्रेमे मत्त होये)।

छिलो ब्रजेर खेला उच्चरोल, आज नदेर खेला केवल हरिबोल।

(ओहे प्राण गौर)।

तोमार सकल अंग गेछे ढाका, केवल आछे दूटि नयन बाँका।

(ओहे दयाल गौर)।

तोमार पतित पावन नाम शुने, बड़ भरसा पेयेछि मने।

(ओहे पतित पावन)।

बड़ आशा करे एलाम धेये, आमाय राखो चरण छाया दिये।

(ओहे दयाल गौर)।

जगाई मधाइ तरे गेछे, प्रभु सेइ भरसा आमार आछे।

(ओहे अधम-तारण)।

तोमरा नाकि आचण्डाले दाओ कोल, कोल दिए बोलो हरिबोल।

(ओहे परम करुण) (ओ कांगालेर ठाकुर)।

[भावार्थ— हे प्रभु, गौर और निताई तुम दोनों भाई परम दयालु हो। मैं काशी गया था। मुझे काशी के विश्वेश्वर ने कह दिया है, 'मैं नदिया की शची देवी के घर में आया हूँ।' हे प्रभु, मैंने तुम्हें पहचान लिया है। मैं अनेक जगह गया, किन्तु तुम्हारे जैसा दयालु देखा नहीं। तुम ब्रज के कन्हाई, बलाई थे; अब वह रूप छुपाकर नदिया में गौर-निताई हुए हो। ब्रज का खेल था दौड़ा-दौड़ी; अब नदिया का खेल है हरिबोल बोलकर, प्रेम में मत्त होकर धूल में लोटपोट होना। ब्रज का खेल था उच्चरोल; आज नदिया का खेल है केवल हरिबोल। ओ दयालु गौरांग, तुम्हारा सारा अंग तो ढक गया, किन्तु दो बांके नयन बचे हैं। ओ पतितपावन, तुम्हारा पतितपावन नाम सुनकर मन में बड़ा भरोसा हुआ। बड़ी आशाओं से देहली पर आया हूँ, ओ दयालु गौरांग! मुझे अपनी चरण-छाया के नीचे रखना। जगाई-मधाई तर गए हैं; ओ अधमतारण प्रभु, मुझे भी वही भरोसा है। तुम चाण्डाल तक को गोद में बिठाते हो और गोद में बिठाकर ओ परम करुण, कंगालों के ठाकुर, 'हरिबोल' बोलते हो।]

— कथामृत 2-12-3(146)

14.

कतो दिने होबे से प्रेम संचार,
होये पूर्णकाम बोलबो हरिनाम, नयने बहिबे प्रेम अश्रुधार॥
कबे होबे आमार शुद्ध प्राण मन, कबे जाबो आमि प्रेमेर बृन्दाबन,
संसार बन्धन होइबे मोचन, ज्ञानांजने जाबे लोचन आधार॥
कबे परशमणि करि परशन लौहमय देह होइबे कांचन,
हरिमय विश्व करिबो दर्शन, लुटाइबो भक्ति पथे अनिवार॥
(हाय) कबे जाबे आमार धरम करम, कबे जाबे जाति कुलेर भरम
कबे जाबे भय 'भावना सरम' परिहरि अभिमान लोकाचार
माखि सर्व अंगे भक्त पद धूलि, कांधे लये चिर बैराग्येर झुली,
पिबो प्रेम बारि दुइ हातेतुलि, अंजलि-अंजलि प्रेमयमुनार॥
प्रेमे पागल होये हासिबो काँदिबो सच्चिदानन्द सागरे भासिबो,
आपनि मातिये सकले माताबो, हरिपदे नित्य करिबो बिहार॥

[भावार्थ— कितने दिन में वह प्रेम संचार होगा जब पूर्णकाम होकर हरि-नाम

बोलूँगा, तथा नयनों से प्रेम-अश्रुधार बहेगी? कब मेरा प्राण-मन शुद्ध होगा और कब मैं प्रेम के वृन्दावन जाऊँगा, संसार-बन्धन का मोचन होगा तथा ज्ञान के अंजन (काजल) से आँखों का अन्धेरा चला जाएगा? कब लोहमय (जड़) शरीर पारस पत्थर को छूकर सोना बनेगा, कब मैं हरिमय विश्व का दर्शन करूँगा और भक्ति के पथ पर निरन्तर लोट लगाऊँगा? (हाय!) मेरा धर्म-कर्म कब जाएगा, जाति-कुल का भ्रम कब जाएगा? कब भय की भावना, शर्म जाएगी; कब लोकाचार— अभिमान हटेगा? भक्तों के चरणों की धूलि कब सारे अंगों पर मल कर, कन्धे पर चिरवैराग्य की झोली लटका कर दोनों हाथों से अंजली भर-भर प्रेम-यमुना का प्रेम-जल पिऊँगा? कब प्रेम में पागल होकर हँसूँगा, रोऊँगा और सच्चिदानन्द-सागर में तैरूँगा? कब अपने आप मतवाला होकर सब को मतवाला बनाऊँगा और हरि-चरणों में नित्य विहार करूँगा?]

— कथामृत 1-18-1(344)

15.

निबिड़ आँधारे माँ तोर चमके ओ रूपराशि।
ताइ योगी ध्यान धरे होये गिरि-गुहावासी।
अनन्त आँधार कोले, महानिर्वाण हिल्लोले।
चिरशान्ति परिमल, अविरल जाय भासि।
महाकाल रूप धरि, आंधार बसन परि,
समाधि मन्दिरे ओ माँ के तुमि गो एका बोसि।
अभय पद-कमले, प्रेमेर बिजली ज्वले,
चिन्मय मुख मण्डले शोभे अट्ट-अट्ट हासि।

[भावार्थ— हे माँ, घने अन्धकार में तेरी यह रूपराशि चमक रही है। इसीलिए तो योगी ध्यान करने के लिए गिरि-गुहा-वासी हुए हैं। अनन्त अन्धकार की गोद में, महानिर्वाण हिलोरें ले रहा है। चिर-शान्ति का परिमल निरन्तर बह रहा है। महाकाल का रूप धारण करके वस्त्र पहन कर हे माँ, तुम कौन हो जो अकेली बैठी हुई हो? तुम्हारे अभय पदकमलों में प्रेम की बिजली जल रही है, चिन्मय मुख-मण्डल पर अट्टाहास शोभा दे रहा है।]

— कथामृत 1-18-1(342)

16.

एसो मा एसो मा, ओ हृदय-रमा, पराण-पुतली गो।
हृदय आसने होओ मा आसीन, निरखि तोरे गो।
आछि जन्मावधि तोर मुख चेये,
जानो मा जननी कि दुख पेये,
एक बार हृदयकमल विकाश करिए,
प्रकाशो ताहे आनन्दमयी॥

[भावार्थ— ओ हृदय-रमा माँ, प्राण-पुतली माँ, आओ, आओ माँ! माँ, हृदय के आसन पर आसीन हो जाओ। हे माँ, तुम्हें तब निरखूँ। जन्म के समय तेरे मुख की ओर देख रहा था। माँ, तुम तो जानती हो, कैसा दुःख पाया है! एक बार हृदय-कमल विकसित करके उस पर प्रकाशित हो जाओ, आनन्दमयी!]

— कथामृत 3-15-3(239)

17.

तोमारेइ करियाछि जीवनेर ध्रुवतारा।
ए समुद्रे आर कभु होबो नाको पथहारा॥
जेथा आमि जाइनाको, तुमि प्रकाशित थाको,
आकुल नयन जले ढालो गो किरण धारा॥
तव मुख सदा मने, जागितेछे संगोपने,
तिलेक अन्तर होले ना हेरि कूल किनारा॥
कखनओ विपथे यदि, भ्रमिते चाहे एहृदि,.
अमनि ओ मुख हेरि सरमेते होय सारा॥

[भावार्थ— तुम्हें ही जीवन का ध्रुव तारा बनाया है, इस समुद्र में फिर कभी भी नहीं भटकना होगा। जहाँ मैं जाता हूँ, तुम वहाँ पर ही प्रकाशित रहते हो। व्याकुल नयनों के जल में तुम किरण-धारा ढालते रहते हो। तुम्हारा मुख सर्वदा मन में, गोपन में जगा रहता है। यदि तनिक भी वह छिप जाता है, तो कूल-किनारा नज़र नहीं आता। यदि यह हृदय कभी घूमते-घूमते गलत रास्ते पर चला भी जाता है तो आपका मुख देखकर मैं शर्मसार हो जाता हूँ।]

— कथामृत 1-14-10(284)

18.

चमत्कार अपार जगत् रचना तोमार,
शोभार आगार विश्व संसार।
अयुत तारका चमके रतन–कांचन हार
कतो चन्द्र कतो सूर्य नाहि अन्त तार।
शोभे वसुन्धरा धनधान्यमय, होय पूर्ण तोमार भण्डार
हे महेश, अगणनलोक गाय धन्य–ऐ गीति अनिवार।

[भावार्थ— तुम्हारे जगत की रचना अपार सुन्दर है, यह सम्पूर्ण संसार शोभा का आगार (भण्डार) है। करोड़ों तारों का रत्न–काञ्चन–हार चमक रहा है। कितने चन्द्र हैं, कितने सूर्य हैं, उनका कोई अन्त नहीं है। धन–धान्यमय वसुन्धरा सुशोभित हो रही है। तुम्हारा भण्डार पूर्ण है। हे महेश, अगणित लोग धन्य, धन्य करते हुए यह गीत निरन्तर गा रहे हैं।]

— कथामृत 1–18–1(341)

19.

तुझ से हम ने दिल को लगाया, जो कुछ है सो तू ही है।
एक तुझ को अपना पाया, जो कुछ है सो तू ही है।
सब के मकान दिल को यकीन तू, कौन–सा दिल है जिसमें नहीं तू।
हरएक दिल में है तू समाया, जो कुछ है सो तू ही है।
क्या मलायक क्या इनसान, क्या हिन्दु क्या मुसलमान,
जैसे चाहे तूने बनाया, जो कुछ है सो तू ही है।
काबा में क्या और दयेर में क्या, तेरी परस्तिश होगी सब जां,
आगे तेरे सिर सबों ने झुकाया, जो कुछ है सो तू ही है।
अर्श से लेकर फरश ज़मीं तक, और ज़मीं से अर्श वरी तक,
जहाँ मैं देखा तू ही नज़र आया, जो कुछ है सो तू ही है।
सोचा समझा देखा भाला, तुझ जैसा न कोई ढूँढ निकाला,
अब यह समझ में ज़ाफर की आया, जो कुछ है सो तू ही है।

— कथामृत 2–27–3(362)

20.

कि सुख जीवने मम ओ हे नाथ दयामय हे
यदि चरण सरोजे पराण मधुप चिरमगन ना रये हे।
अगणन धनराशि ताय किया फलोदय हे
यदि लभिये से धन, परम रतने यतन न करय हे।
सुकुमार कुमार मुख देखिते ना चाइ हे
यदि से चाँदबयाने तब प्रेममुख देखिते ना पाइ हे।
कि छार शशांकज्योति; देखि आँधारमय हे,
यदि से चाँद प्रकाशे तब प्रेम चाँद नाहि होय उदय हे।
सतीर पवित्र प्रेम ताओ मलिनतामय हे,
यदि से प्रेमकनके, तब प्रेममणि नाहि जड़ित रये हे।
तीक्ष्ण बिषा व्याली सम सतत दंशय हे,
यदि मोह परमादे नाथ तोमाते घटाय संशय हे।
कि आर बोलिबो नाथ, बोलिबो तोमाय हे,
तुमि आमार हृदयरतन मणि, आनन्दनिलय हे।

[भावार्थ— मेरे जीवन में हे दयामय नाथ, क्या सुख है यदि आपके चरण-कमलों में मेरा प्राण-मधुप चिरमग्न नहीं रहता? अगणित धनराशि का क्या लाभ है यदि उस परम रत्न को प्राप्त करने का यत्न मैं नहीं करता? सुकुमार कुमार का मुख मैं देखना भी नहीं चाहता यदि मैं तेरे प्रेममय चाँदमुख को नहीं देख पाता हूँ। चन्द्र की ज्योति व्यर्थ है, मैं उसे अन्धकारमय देखता हूँ, यदि उस चाँद के प्रकाश में तेरा प्रेम-चाँद उदित नहीं होता। सती का पवित्र प्रेम भी मलिनतामय है यदि उस प्रेम-स्रोत के सोने में तेरी प्रेम-मणि नहीं जड़ित रहती। हे नाथ, तीक्ष्ण विष-सर्पिणी के समान संशय लगातार डंक मारता है तथा मोह के प्रमाद में वह तुम्हारे प्यार को घटाता है। हे नाथ, और मैं अब क्या कहूँ तुम्हें! तुम्हीं तो मेरे हृदय-रत्न-मणि, आनन्द के आधार हो।]

— कथामृत 1-18-1(343)

21.

जागो माँ कुलकुण्डलिनी,
तुमि नित्यानन्द स्वरूपिणी तुमि ब्रह्मानन्द स्वरूपिणी।
प्रसुप्त भुजगाकारा आधार पद्मवासिनी।
त्रिकोणे ज्वले कृशानु तापित होइलो तनु।
मूलाधार त्यज शिवे स्वयंभूशिववेष्ठिनी।
गच्छ सुषुम्नार पथ, स्वाधिष्ठाने होओ उदित,
मणिपुर अनाहत विशुद्धाज्ञासंचारिणी॥
शिरसि सहस्रदले, परमशिवेते मिले,
क्रीड़ा करो कुतुहले सच्चिदानन्ददायिनी॥

[भावार्थ— हे माँ कुल कुण्डलिनी, जागो। तुम तो नित्यानन्द स्वरूपिणी हो। माँ, तुम ब्रह्मानन्द स्वरूपिणी हो। तुम आधार में सोए हुए सर्प के आकार वाली हो और पद्मवासिनी हो।

तीनों ओर आग जल रही है। शरीर तप चुका है। शिवानी, मूलाधार को छोड़कर स्वयंभू शिव को घेर लो। आप सुषुम्ना के पथ से चल पड़ो और स्वाधिष्ठान में उदित हो जाओ, प्रार्थना है। मणिपुर, अनाहत, विशुद्ध, आज्ञा में संचरण करती हुई सिर में सहस्रदल पद्म पर आप परम शिव से मिलकर फिर बड़े आनन्द से क्रीड़ा करो। हे माँ, आप सच्चिदानन्द दायिनी हो। आप जागो माँ। जागो।]

— श्री म दर्शन 3-17-3(346)

श्री 'म' ट्रस्ट के प्रकाशन

1. श्री म दर्शन

बंगला संस्करण— भाग 1 से 16— स्वामी नित्यात्मानन्द

श्री म दर्शन महाकाव्य में ठाकुर, माँ सारदा, स्वामी विवेकानन्द तथा अन्यान्य संन्यासी एवं गृही भक्तों के विषय में नूतन वार्ताएँ हैं। और इसमें है कथामृतकार श्री 'म' द्वारा 'कथामृत' के भाष्य के साथ-साथ उपनिषद्, गीता, चण्डी, पुराण, तन्त्र, बाईबल, कुरान आदि की अभिनव सरल व्याख्या।

2. श्री म दर्शन

हिन्दी संस्करण— भाग 1 से 16

श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता द्वारा बंगला से यथावत् हिन्दी-अनुवाद।

3. श्री म दर्शन

अंग्रेज़ी संस्करण— ('M'— The Apostle and the Evangelist)

श्री 'म' दर्शन ग्रन्थमाला का अंग्रेज़ी अनुवाद प्रोफेसर धर्मपाल गुप्ता ने 'M'— The Apostle and the Evangelist नाम से किया है। ट्रस्ट के पास प्रथम ग्यारह भाग तो उपलब्ध भी हैं। शेष पाँच भाग अभी मुद्रण-प्रकाशन-प्रक्रिया में हैं।

4. Sri Sri Ramakrishna Kathamrita Centenary Memorial

प्रोफेसर धर्मपाल गुप्ता और पद्मश्री डी०के० सेनगुप्ता द्वारा अंग्रेज़ी में सम्पादित वृहद् ग्रन्थ, जिसमें ठाकुर श्रीरामकृष्ण, 'कथामृत', श्री 'म' और 'श्री म दर्शन' पर श्रीरामकृष्ण मिशन के संन्यासियों समेत अनेक गणमान्य विद्वानों के शोधपूर्ण लेख हैं।

5. A Short Life of Sri 'M'

स्वामी नित्यात्मानन्द जी महाराज के मन्त्र-शिष्य और श्री म ट्रस्ट के फाऊँडर सैक्रेट्री प्रोफेसर धर्मपाल गुप्ता द्वारा अंग्रेज़ी में लिखी गई श्री म की संक्षिप्त जीवनी।

6. **Life of M. and Sri Sri Ramakrishna Kathamrita**

प्रोफेसर धर्मपाल गुप्ता द्वारा लिखित श्री म के जीवन तथा 'कथामृत' पर शोध प्रबन्ध

7. **श्री श्री रामकृष्ण कथामृत**

हिन्दी संस्करण— भाग 1 से 5

श्री महेन्द्रनाथ गुप्त ने ठाकुर रामकृष्ण परमहंस के श्रीमुख-कथित चरितामृत को अवलम्बन करके ठाकुरबाड़ी (कथामृत भवन), कोलकता-700 006 से 'श्री श्री रामकृष्ण कथामृत' का (बंगला में) पाँच भागों में प्रणयन एवं प्रकाशन किया था।

इनका बंगला से यथावत् हिन्दी अनुवाद करने में श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता ने भाषा-भाव-शैली— सभी को ऐसे सरल और सहज रूप में संजोया है कि अनुवाद होते हुए भी यह ग्रन्थमाला मूल बंगला का रसास्वादन कराती है।

8. **Sri Sri Ramakrishna Kathamrita**

English Edition

श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता के हिन्दी-अनुवाद से प्रोफेसर धर्मपाल गुप्ता द्वारा कथामृत का अंग्रेज़ी-अनुवाद। चार भाग प्रकाश में आ चुके हैं। पाँचवाँ भाग प्रकाशनाधीन है।

9. **नूपुर**

वार्षिक स्मारिका

श्री म ट्रस्ट के संस्थापक और हम सब के पूजनीय गुरु महाराज स्वामी नित्यात्मानन्द जी के 101वें जन्मदिन पर उनकी स्मृति में 'नूपुर' नाम से सन् 1994 ईसवी में एक स्मारिका का प्रकाशन हुआ था। उसी स्मारिका ने अब वार्षिक पत्रिका का रूप ले लिया है, जिसमें

अन्य बातों के अतिरिक्त ठाकुर रामकृष्ण परमहंस, माँ सारदा, श्री म, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी नित्यात्मानन्द, 'श्री म दर्शन' आदि के बारे में प्रचुर सामग्री रहती हैं। साथ ही कथामृतकार श्री म के द्वारा 'श्री म दर्शन' में कही उन बातों को भी प्रकाश में लाया जाता है, जो 'श्री श्री रामकृष्ण कथामृत' में नहीं हैं।

❖

श्रीरामकृष्ण परमहंस
(18-2-1836 – 16-8-1886)

श्री श्री रामकृष्ण कथामृत

श्री 'म' कथित

पाँच भागों में सम्पूर्ण ग्रन्थावली का

चतुर्थ भाग

मूल बंगला का शब्द-शब्द अनुवाद

अनुवाद

श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता

सहयोग

डॉ० नौबत राम भारद्वाज

एम०ए०, पीएच० डी०

विषय सूची

माँ सारदा

(22-12-1853 — 21-07-1920)

सन् 1910 में बंगला कथामृत भाग-IV के प्रकाशन के समय श्री म का 'निवेदन' :

श्री श्रीरामकृष्णो जयति

स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव।
स्थितधी: किं प्रभाषेत किमासीत व्रजेत किम्॥

(गीता—2/54)

परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान्।
पुरुषं शाश्वतं दिव्यमादिदेवमजं विभुम्॥

आहुस्त्वामृषय: सर्वे देवर्षिर्नारदस्तथा।
असितो देवलो व्यास: स्वयं चैव ब्रवीषि मे॥

(गीता—10/12,13)

श्री श्रीगुरुदेव

श्री पादपद्म भरोसा

पूजा और निवेदन

या देवी सर्वभूतेषु मातृरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नम:॥

माँ,

श्री श्री दुर्गापूजा फिर उपस्थित है। आज नवमी आदि कल्प आरम्भ हुआ। हमारा नैवेद्य ग्रहण करें। श्री श्रीरामकृष्ण

कथामृत, चतुर्थ भाग, इस बार का नैवेद्य है।

माँ, तुम्हारे और बाबा (पिता) के आशीर्वाद से श्री श्री कथामृत फिर प्रकाशित हुई है। ठाकुर श्रीरामकृष्ण के अद्‌भुत चरित्र के तैंतीस चित्र इसमें सन्निवेशित हैं। भगवद्भक्तगण ध्यान करेंगे।

भक्तों के लिए इस बार एक विशेष शुभ संवाद है। ठाकुर कहते हैं, ''माँ! यहाँ पर जो आन्तरिक आकर्षण से आवेंगे, वे जैसे सिद्ध हो जाएँ।'' (पृष्ठ 309)। यह शुभ अंगीकार वाणी भक्तों को जैसे सदा स्मरण रहे।

अब की बार भक्त समागम की अनेक बातें हैं! छोटे नरेन, पूर्ण, नारा'ण (नारायण) आदि आखिरी लड़के-भक्तों के लिए व्याकुलता; नरेन्द्र के प्रति पुनः पुनः संन्यास का उपदेश; अधर को नौकरी से निवृत्ति का उपदेश; श्री जन्माष्टमी के दिन गिरीश का स्तव और उनके प्रति ठाकुर की उत्साह-वाणी— ये सब चित्र भक्तगण ध्यान करेंगे, इसमें सन्देह नहीं है।

ठाकुर की नानाविध ईश्वरीय अवस्था का वर्णन करना मनुष्य के लिए असाध्य है। उनकी बाल्यावस्था व परमहंस अवस्था के कयेक चित्र दिए हैं और सिद्धि लाभ के पश्चात् साधनावस्था में जो सब अमानुषिक भाव व अद्‌भुत दर्शन होते थे, उसका भी किंञ्चित् आभास इस भाग में मिलेगा।

मैंने उनके अपने मुख से जो सुना है और अपने चक्षुओं से जो देखा है, वे ही इस ग्रन्थ में श्रीमुख-कथित विस्तृत चरितामृत और ठाकुर की नानाविध अवस्थाएँ एक स्थान पर सजा दी गई हैं।

माँ, तेरह वर्ष पूर्व जब श्री श्री कथामृत-प्रणयन का दुरूह व्रत तुम्हारी अयोग्य सन्तान ने ग्रहण किया था, तब आपने आशीर्वाद किया था और अभय प्रदान किया था। श्री नरेन्द्र आदि गुरु भाइयों ने अति अनन्त उत्साह दिया था। अब भी

श्रीयुक्त बाबूराम, शशी, गिरीश आदि भाई सर्वदा उत्साह दे रहे हैं।

माँ, तुम्हारा आशीर्वाद और अभयवाणी ही इस दासानुदास का अवलम्बन है।

अब हाथ जोड़कर प्रार्थना करता हूँ, कृपा करके आशीर्वाद करें कि जैसे श्री श्रीरामकृष्ण कथामृत एकमात्र बाबा (पिता) की सेवा, आपकी सेवा, और आपकी सन्तानों के और भक्तों के आनन्दवर्धन में उत्सर्गीकृत होती रहे। इति—

एकान्त शरणागत, दासानुदास
माँ, आपकी अयोग्य सन्तान,
श्री म—

नवम्यादि कल्पारम्भ और देवी का बोधन।
कलकत्ता, 27 सितम्बर, 1910 ईसवी;
10वीं आश्विन, 1317 (बं०) साल।